आदिनाथ हिन्दी-जैन-साहित्य-मालाके माननीय

आजीवन-संरक्षक और सभासदों की

नामावली

संरक्षक :—

जीयागंज-बालुचर (मुर्शिदाबाद) निवासी लक्ष्मीपतसिंहजी
छत्रपतसिंहजीके पुत्र-रत्न परम श्रद्धेय धर्म-निष्ठ दानवीर
श्रीमान् माननीय बाबू

श्री श्रीपतसिंहजी दूगड़

आजीवन सभासद्

श्रीयुत् बाबू वीरेन्द्र कुमार सिंहजी, अशोक कुमार सिंहजी सिंघी, कलकत्ता।

„ „ लक्ष्मीचन्द्रजी धन्नालालजी करनावट, कलकत्ता।

„ „ छन्नालालजी रिखबदासजी करनावट, कलकत्ता।

„ „ रावतमलजी भैरूँदानजी सुराणा, बीकानेर।

„ „ चान्दमलजी जवानमलजी मुणोत, शोलापुर।

„ „ हजारीमलजी नथमलजी राम्पुरिया, बीकानेर।

„ „ रायसाहब मन्नालालजी दयाचंदजी पारख, कलकत्ता।

Printed by—S. K. Manna
Bholanath Printing Works, 13, Rajendra Sen Lane, Calcutta-6

जैन शास्त्रोंमें ज्ञानका जो अटूट खजाना भरा पड़ा है। उसके चार हिस्से किये गये हैं। द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग, कथानुयोग और चरितानुयोग।

द्रव्यानुयोग दर्शनको कहते हैं, इससे वस्तुओंके वास्तविक स्वरूपका भली-भाँति ज्ञान मिलता है। दूसरा चरितानुयोग है, इसमें महत् पुरुषोंके जीवन-चरित्र और उनके द्वारा प्राप्त होनेवाली शिक्षायें भरी हुई हैं। तीसरा गणितानुयोग है, इसमें गणित और ज्योतिषके समूचे विषय भरे हुए हैं। और चौथा चरण करणानुयोग कहलाता है, इसमें चरण सत्तरी और करण सत्तरीका विवेचन और तत्सम्बन्धी विधियाँ दी गयी हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ चरितानुयोगका है। इस प्रकारके ग्रन्थोंसे अल्प बुद्धि मनुष्य भी एक समान लाभ ले सकते हैं। इसीसे प्राचीन कालके यति और आचार्योंने कथानुयोगके अनेक ग्रन्थ रच डाले हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ भी उसी ढंगका है।

इसमें भगवान नेमिनाथ स्वामीके चरित्रके अतिरिक्त कृष्ण, बलराम, वसुदेव, कंस, जरासन्ध, देवकी, रुक्मिणी- सत्यभामा और राजिमती प्रभृतिका भी चरित्र अंकित किया गया है। जो हरएक मनुष्यके पढ़ने सुनने और मनन करने योग्य है।

प्रस्तुत ग्रन्थके मूल लेखक गुणविजयजी हैं, जिन्होंने इस

ग्रन्थको १६६८ में लिखा है। इसकी मूल भाषा गद्य संस्कृत है, और इसीके आधार पर हमने इस ग्रन्थको लिखा है। आशा है, हमारे प्रेमि पाठकोंको हमारा यह उद्योग प्रिय प्रतीत होगा। यदि हमारे पाठक इसे पसंद कर हमें उत्साहित करेंगे तो भविष्यमें अन्यान्य तीर्थंकरोंके चरित्र भी लिखकर हम पाठकोंके समक्ष रखनेका प्रयत्न करेंगे।

यहाँ पर मैं बीकानेर-निवासी रावतमलजी भैरूँदानजी सुराणा की फर्मके मालिक माननीय बाबू भैरूँदानजी सुराणा को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने हमारी आदिनाथ हिन्दी-जैन-साहित्य-मालाको २०१) रुपये प्रदान कर आजीवन सदस्य बनने की कृपा की है। आशा है, हमारे अन्यान्य जैन बन्धु भी आपकी उदार भावनाका अनुसरण कर "माला" के सदस्य बनने की कृपा करेंगे।

मैं उन सज्जनोंका पूर्ण आभारी हूँ। जिन्होंने इस ग्रन्थके अग्रिम ग्राहक बनकर मुझे उत्साहित किया है। अस्तु!

ता० १५-७-१९५६
७, खेलात घोष लेन,
कलकत्ता-६

आपका—
काशीनाथ जैन

जीयागंज (मुर्शिदाबाद) निवासी

माननीय बाबू श्रीपतसिंहजी दूगड़

आपने "आदिनाथ हिन्दी-जैन-साहित्य-माला" के सहायतार्थ ५०००) पाँच हज़ार रुपये पुरस्कार देकर 'सहायक-संरक्षक' बनने की कृपा की है।

जीयागंज (मुर्शिदाबाद) निवासी स्वर्गीय

राय बहादूर लछमीपत सिंहजी के वंशज

श्रीयुक्त बाबू

श्रीपत सिंहजी दूगड़ का

संक्षिप्त जीवन परिचय

शास्त्रकारोंने ठीक ही कहा है कि :—

परिवर्तिनि संसारे, मृतः को वा न जायते ।

स जातो येन जातेन, याति वंशः समुन्नतिम् ॥

इस संसार-सागरमें जिसके रंग निरन्तर पलटते रहते हैं। जिसमें मनुष्यका जीवन पानीके बुलबुलके समान है। पैदा होना और मर जाना नित्यका खेल-सा है। उसमें उसीका जन्म ग्रहण करना ठीक है जिसके द्वारा अपनी जाति की कुछ भलाई हो, अपने वंशका गौरव हो, अपने कुलका नाम ऊँचा हो, नहीं तो इस संसार में निरन्तर हजारों लाखों पैदा होते और मरते रहते हैं। उनकी ओर कौन लक्ष देता है और इस जातिके उपकार करनेवालोंका नाम मर जानेपर भी इस संसारके चित्र-पटपर विराजमान रहता है। उनके यशरूपी शरीरको न तो बुढ़ापा आता है और न मृत्यु ग्रास करती है। वे अपनी कीर्तिके द्वारा अमर हो जाते हैं। ऐसे अमर कीर्ति सत्पुरुषोंका नाम सभी लोग बड़ी श्रद्धाके साथ लिया करते हैं। ऐसे ही विरले सज्जनोंमें बालुचर जीयागंज (मुर्शिदाबाद) निवासी सुप्रसिद्ध रईस-जमिदार बाबू श्रीपत सिंहजी हैं। आपका जन्म सं० १९३८ में जीयागंज में हुआ था। आपके पिताजीका नाम

छत्रपत सिंहजी और माताजीका नाम फुलकुमारी था। आपकी शिक्षा जीयागञ्ज में हुई। आपका विवाह संस्कार १२ वर्ष की आयु में बीकानेर-निवासी गोरेलालजी कोचर की सुपुत्रीके साथ हुआ था। आपका जैसा रहन-सहन एवं अध्यवसाय है, वैसा ही आपकी धर्मपत्नी रानी धन्नाकुमारी का भी है। फलतः आपका गृहस्थ-जीवन सानन्द व्यतीत होता जा रहा है। आपकी ३७ वर्षकी आयुमें आपके पिताजी का देहावसान हो गया। इसके बाद कारोबार का सारा भार आपके ऊपर आ पड़ा। जिसे आप सुचारु रूपसे संचालन करते जा रहे हैं।

आपका धर्म प्रेम, जाति-प्रेम, देश-प्रेम परम प्रशंसनीय है। आपने अपने बाहुबलसे अच्छा वैभव उपार्जन किया है। आपकी दानशीलताकी जितनी प्रशंसा की जाय उतनी ही कम है। आपके औदार्यके उज्ज्वल उदाहरण भी ऐसे हैं जो आपकी कीर्तिको चिर-स्थायी बनाये रहेंगे।

आपने निम्नलिखित संस्थाओंको आर्थिक सहायता प्रदान की है और नियमित मासिक सहायता भी दिया करते हैं। आपने अपनी जमिदारीके राजमहल नामक गाँवमें अपनी माता जवाहिर कुमारीके स्मरणार्थ हाई स्कूल (High School) बनवा दी है, जिसमें आपने १०,०००) दस हजार रुपये प्रदान किये हैं एवं मासिक सहायता भी दिया करते हैं। ईस्वी सन् १९१९ के दुष्कालके जमाने-में आपने अनेक दीन-दुःखी मनुष्योंको अन्न-वस्त्र एवं उनके निर्वाहके लिये बहुमूल्यमें चावल खरीदकर नाममात्र अल्पमूल्य लेकर बँटवाये थे। भागलपुरमें आपने पूर्वजोंका निर्माण कराया हुआ "श्रीवासुपूज्य

भगवान" का मंदिर है। वह जीर्ण शीर्ण हो गया था, इसलिये उसके जीर्णोद्धारमें १२,०००) बारह हजार रु० लगाकर पुनः प्रतिष्ठा करवाई। एवं समूचे मंदिरका जीर्णोद्धार करवाया। यह जीर्णोद्धार २००१ में करवाया है। इसी वर्ष जीयागंजके श्रीसंभवनाथ भगवानके मंदिरमें तथा दादा-वाड़ीके मंदिरमें भी १५००) रु० लगाकर जीर्णोद्धार करवाया।

इसके सिवा बनारसमें अपने पूर्वजोंका बनाया हुआ श्रीपार्श्व-नाथ भगवानका मंदिर है, उसके जीर्णोद्धारके चन्देमें ३०००) तीन हजार रुपये प्रदान किये। बालुचर-जीयागंजके श्रीआदीश्वर भगवानके मन्दिरमें वेदी निर्माणके लिये १०००) रु० प्रदान किये। पावापुरीके जल-मन्दिरमें तालावके चारों ओर कोट बनवाने के लिये १०००) रु० की सहायता दी है। दिनाज पुरके मन्दिरके जीर्णोद्धार में भी ५००) रुपये प्रदान किये हैं। संवत् १९९९ में जीयागंज हाईस्कूल (High School) में श्रीपतसिंह हॉल (Hall) के नामसे नई कक्षा (Class) खोलनेके लिये ४०००) चार हजार रुपये लगाकर भवन निर्माण करवाया है। मालदा जिलेमें आपकी जमींदारीका गाँव महानन्द टोला है, उसमें हाई-स्कूल बनानेके लिये एवं छात्रोंके खेल कूद करनेके लिये ५०००) पाँच हजार रुपये की जमीन प्रदान की है। इसके अलावा आपके रहनेका एक विशाल भवन है, उसमें हॉस्पिटल (Hospital) औषधालय बनवानेके लिये वचन दिया है।

राजगृह, पावापुरी, चम्पानगर, क्षत्रिय-कुण्ड आदि तीर्थ एवं अनेक जैनमन्दिर, धर्मशाला तथा भोजनालयोंमें भी हजारों रुपयोंका

दान प्रदान किया है। आत्मीय स्वजन भाई-बन्धुओंको भी आपने बहुतसी सहायता रुपयों से प्रदान की है। कठगोला बगीचा तथा मन्दिरके मरम्मत कार्यमें २००००) बीस हजार रू० लगाये हैं। इसके अतिरिक्त आपके पिताजीका निर्माण कराया हुआ श्रीविमल नाथजी भगवानका विशाल मन्दिर है। उसके अगल-बगल दक्षिण और पश्चिम दिशामें जमीन पड़ी थी, उसे १२,५००) साढ़े बारह हजार रुपयोंमें खरीदकर उस जगहमें नयी धर्मशाला और आयंबिल भवन बनवा दिया है। उसमें लगभग ६०,००० । ६५,०००) साठ-पैंसठ हजार रूपये लगाये हैं। आयंबिल भवनमें नियमित रूपसे साधु, साध्वी, श्रावक-श्राविकाऐं निरन्तर आयंबिल, अक्षय-निधी, एवं वर्धमान तपस्या आदिका लाभ उठाते रहते हैं।

इस कार्यमें मुख्यत: आपकी धर्मपत्नी रानी धन्नाकुमारी देवी अग्र-गण्य रहा करती हैं। वे स्वयं बड़ी ही आदर्श तपस्विनी हैं। निरन्तर एकासन, बियासन, उपवास आयंबिल, निवी, ओली आदिकी तपस्यायें करती रहती हैं। एवं सामायिक प्रतिक्रमण, पौषध आदि क्रियाएँ भी निरन्तर करती रहती हैं। कभी-कभी तो आप चौसठ प्रहरी पौषध-व्रत ग्रहण कर साध्वीकी भाँति उग्र तपस्या करती हैं। सत्तर वर्षकी आयु होते हुए भी इतनी उग्र तपस्या करना, यह एक बड़े ही महत्वपूर्ण गौरवका विषय है। और यही कारण है कि आयंबिल भवनमें आपकी आदर्श प्रवृत्ति देखकर अन्यान्य श्राविका वर्ग भी आपके साथ तपस्यायें करती रहती हैं। इसके फल स्वरूप सौ-सौके लगभग छोटे-मोटे तपस्वी हो जाया करते हैं। इधर कुछ समय से तो आपने अपना जीवन साध्वीकी भाँति बना डाला

है। गृह-संसारके व्यवसाय को त्याग कर अपनी पौषधशालामें निरन्तर रहना और एक तपस्विनी साध्वी की तरह कठिन तपस्या करते रहना ही अपना मुख्य ध्येय बना दिया है। जिनके पास लाखोंकी सम्पत्ति और सुख के साधन मौजूद हों, उनको त्यागकर यदि वे अपने अन्तिम समय को विशुद्ध मनसे धर्म-कार्य में लगा दें तो फिर उनके लिये कहना ही क्या है? वह एक देवी-देवता के समान बन जाते हैं और अपनी आत्माका कल्याण कर इहलोक और परलोक साधित कर लेते हैं।

जीयागंजमें कॉलेज स्थापित करनेके लिये
७,५२,०००) सात लाख बावन हजार रुपये का दान

सन् १९४९ में आपने कालेज स्थापित करवाया जिसमें अपने निजी निवासस्थानका विशाल भवन था, जिसकी लागत लगभग २५००००) ढाई लाख रुपये की है, उसे कॉलेजके लिये दिया है। एवं २५००००) ढाई लाख रुपये नगद तथा १५००००) डेढ़ लाख की जमींदारी भी कॉलेजके संचालन के लिये दी है एवं अभी गत जून मास में होस्टेल छात्रावास निर्माणके लिये भी १०,२०००) एक लाख दो हजार रुपये "गवर्नमेण्ट ओफ वेस्ट बंगाल" के शिक्षा विभाग मन्त्री महोदय को प्रदान किये हैं। और अब से इस कॉलेजके संचालन का सारा भार "गवर्नमेण्ट ओफ वेस्ट बंगाल" के जिम्मे रख दिया है।" और कॉलेजका नाम "श्रीपतसिंह कॉलेज" रखा गया है। इसके सिवा प्रसूती गृहके लिये सन् १९५० में जीयागंजके London Mission Society's Hospital में जैन महिलाओंके लिये रानी धन्नाकुमारी श्रीपतसिंह वार्डके नामसे

लगभग ६५,०००) पैंसठ हजार रूपये प्रदान कर एक पृथक् प्रसूति-गृह बनवा दिया है।

कलकत्तेके जैन-भवनके निर्माणार्थ एक लाख रूपये का दान

आपने जैन भवनमें "लछमीपतसिंह श्रीपतसिंह दूगड़" हाल बनवानेमें एक लाख रुपये प्रदान किये हैं। इसके पूर्व जैनभवनके चन्देमें भी २५००) रूपये दिये थे। इस हॉलको बनवा कर आपने बड़ाही उपकार कार्य किया है। जो चिरस्मरणीय बना रहेगा।

पुस्तकालय-भवन के लिये पचास हजार का दान

इधर गत २४ दिसम्बर १९५३ को "लक्ष्मीपतसिंह श्रीपतसिंह दूगड़ हॉल" का ऊद्घाटन समारोह माननीय डा० श्रीकैलाशनाथ काटजू "केन्द्रिय सरकार-गृहमन्त्री" के करकमलों द्वारा किया गया था। इस अवसरपर आपने अपनी धर्म-पत्नी रानी धन्नाकुमारीके नामपर उपरोक्त हॉलके ऊपर एक नया पुस्तकालय भवन निर्माणके लिए ५०,०००) पचास हजार रुपये प्रदान किये हैं। इसके अतिरिक्त इसी अवसरपर कलकत्तेके माननीय राज्यपाल ऐच० सी० मुखर्जी के द्वारा दार्जिलिङ्ग में दीन, अनाथ जनताके लिये स्थापित संस्था में २५५१ रु० प्रदान किये हैं।

मुर्शिदाबादके जैन-मन्दिरोंके जीर्णोद्धार करानेमें १०,०००) दस हजार रुपये प्रदान करनेका वचन दिया है एवं अभी आप यात्रार्थ पधारे उस समय अजमेर, आदि अन्यान्य स्थानोंमे मन्दिरोंके जीर्णोद्धारके लिये लगभग ५,०००) पांच हजार रुपये प्रदान किये हैं। पालीतानेमें राय बहादुर धनपतसिंह जी के धनवसी मन्दिरके

निकट नवीन जल मन्दिर बन रहा है, उसमें मूल नायकके अगल-बगल में पार्श्वनाथ भगवान की मूर्तियें प्रतिष्ठित करवाने के लिये श्रीपतसिंह जी एवं आपकी धर्मपत्नी श्रीमती रानी धन्नाकुमारीके नाम से १०,०००) दस हजार रुपये प्रदान किये हैं एवं बनारस में आपके पूर्वजों का बनाया हुआ विशाल मंदिर है। उसके जीर्णोद्धार में भी इस वर्ष लगभग ५००) पाँच सौ रुपये लगाये हैं। इसके अतिरिक्त —"आदिनाथ-हिन्दी-जैन-साहित्य-माला" को ५००१) पांच हजार एक रुपयेका पुरस्कार दिया है जिसका प्रकाशन काशीनाथ जैन करते रहते हैं। साहित्य-प्रचारकी इच्छा से पर्युषण आदि उत्सवोंके सुअवसर पर लगभग २५००) रुपये मूल्यकी पुस्तकें प्रभावनामें प्रदान कर ज्ञान-दानका अपूर्व लाभ प्राप्त किया है। और समय समय पर ज्ञान-प्रभावना करते रहते हैं। अज़ीम-गंजके श्रीपद्मप्रभु भगवानके मन्दिरके जीर्णोद्धार करवाने में १५००) तथा शान्तिनाथ भगवानके मन्दिरके जीर्णोद्धार में ५००) रुपये प्रदान किये हैं। इसके अलावा राजगिरीमें ६०००) रुपये की लागतसे विश्राम गृह बनवाया है जिसमें जैन बन्धु जलवायु परिवर्त्तनके लिये आते और ठहरते हैं। यह विश्राम गृह आपकी अनुपस्थिती में श्वे॰ जैन धर्मशालाके अन्तर्गत रहेगा। इसकेसिवा राजगिरी के मन्दिरका जीर्णोद्धार हो रहा है, उसमें भी आपने ५०००) रुपये प्रदान किये हैं, इधर गतवर्ष कलकत्तेमें दीक्षोत्सव हुआ था, उसमें उपकरणकी बोली में तीन हजार रुपये लगाये थे।

जीयागंज में आपकी संस्था—श्रीविमलनाथ भगवानका मन्दिर, पौषधशाला, आयंबिल खाता, अक्षय निधि खाता, तथा धर्मशाला

हैं। उनके निरन्तर निर्वाहके लिये आपने इस वर्षके जून मास १९५४ में एक लाख रुपये बेंकमें जमा करवा दिये है। जिनकी व्याजकी आमदनीसे उपरोक्त संस्थाओं का निर्वाह होता रहेगा। इन संस्थाओं के संचालनका सारा कार्यभार "कलकत्ता तुलापट्टी जैन श्वेताम्बर बड़े मन्दिर" के संचालकोंके जिम्मे रखा गया है। इसके अतिरिक्त पावापुरीके जल-मंदिर में मारवल पत्थर लगवाने के लिये ता १५-७-५४ को २५००) ढाई हजार रुपये दिये हैं। एवं ३५००) रुपये स्वामी वात्सल्यादि कार्योंमें भी व्यय किये हैं।

संवत् २००७ में आप की धर्मपत्नीने ओली की तपस्या की थी। उसके उपलक्ष्यमें वीस स्थानककी पूजा एवं नव पद महाराजके मण्डलकी पूजन करवाई। इसके सिवा आत्मीय स्वजन बन्धुओंको वेष-पोषाक आदि प्रदान किये। धर्मोपकरण,—चन्द्रवाँ पुठिया, साधु साध्वियोंके पात्र आदि उपकरणमें लगभग १२,०००) वारह हजार रुपये व्यय किये।

आज तक आपने धार्मिक कार्योंमें बड़े उत्साहसे दान दिया है। और देते रहते हैं। आप बड़े ही नम्र और मिलनसार प्रकृतिके हैं। इस समय आपकी उम्र ५६ वर्ष की है। अस्तु! शासनदेव आपको दीर्घजीवी करें। आपके चित्तमें सदैव धर्मकी सद्भावना उत्तरोत्तर बढ़ती रहे, यही हमारी आन्तरिक अभिलाषा है।

कलकत्ता
७, खेलात घोष लेन
१५—७—१९५६

निवेदक :—
काशीनाथ जैन।

नेमिनाथ चरित्रके अग्रिम ग्राहकोंकी
नामावली

श्रीआत्मकमल लब्धि लक्ष्मण सूरि जैन पुस्तकालय	बेंगलोर सिटी
„ ऋषि श्री अनूपचन्द्रजी महाराज	
अधिष्ठाता श्रीवर्धमान जैन ज्ञान मन्दिर	उदयपुर
„ यतिजी महाराजश्री पूनमचन्द्रजी	थामनवास
श्रीमती पानीबाई जैन	दोंडाइचा
„ हीराकुमारी जैन	कलकत्ता
„ सुन्दर कुमारी गधैया	सरदारशहर
श्री बस्तीमलजी भैराजी शाह जैन	कैसनए
„ चन्दनलाल जी जैन	नाभा
„ आर. जी. उदयराज जी जैन	मद्रास
„ माणिकलाल जी सम्पतलालजी जैन	नगरी
„ दुन्नाचन्दजी मोतीलालजी बम्भोरिया जैन	रठाञना
„ महावीर जैन पब्लिक लायब्रेरी	देहली
„ सूरजमलजी नेमिचन्दजी पारख जैन	जगदलपुर
„ उदयराजजी हरकचन्दजी रेदासणी जैन-	बीबी
„ अनोपचन्द्रजी मगेलालजी बरड़िया जैन	वेलिंगटन बाजार
„ पुखराजी जीवनलालजी बंगानी जैन	धमतरी
„ लालचन्दजी मोहनलालजी जैन	सिकन्द्राबाद
„ धोकलचन्दजी मुन्नालालजी एण्ड को०	रामनगरम्
„ जे० पी० मुलतानमलजी पृथ्वीराजजी गोलेच्छा जैन	आचारापाकम
„ घेवरचन्दजी डाकलिया जैन	राजनान्दगाँव
„ शिखरचन्दजी कँवरलालजी शांतिलालजी	बीकानेर

श्री भीखमचन्दजी छाजेड़ जैन — राजनान्दगाँव
„ जेठमलजी गोलेच्छा जैन — राजनान्दगाँव
„ बी. देवीलालजी लोढ़ा जैन — भीलवाड़ा
„ भीकमचन्दजी जैन — फिरोजाबाद
„ जैन मिशन लायब्रेरी — मद्रास
„ सागर मलजी शांतिलालजी बापना जैन — पीपल्यारावजीका
„ मथुरालालाजी भागचन्दजी कोठोफोड़ा जैन — पीपल्यारावजीका
„ केसरीमलजी गोर्धन सिंहजी जैन — पीपल्यारावजीका
„ शाह बी जो. नथमलजी जैन — मद्रास
„ शाह पन्नालालजी गंगारामजी देरासरिया जैन — भीम
„ शाह मोतीलालजी हंसराजजी जैन — जनापुर
„ सेठ सूरजमलजी कँवरलालजी कोठारी जैन — खैरागढ़राज
„ दौलतरामजी जैन — फिरोजाबाद
„ मूलचन्दजो भोमराजजी जैन — शहादा
„ सुगनचन्दजी डूंगरमलजी जैन — मोरारटाउन लश्कर
„ जी. सी. धाड़ीवाल जैन — कलकत्ता
„ पूरणचन्दजी शामसुखा जैन — कलकत्ता
„ राजवैद्य जसवन्तराजजी जैन — कलकत्ता
„ डी. आर. कुमार ब्रदर्स जैन पंजाबी — कलकत्ता
„ देवचन्दजी बोथरा जैन — कलकत्ता
„ चुन्नालालजी. बी. शाह जैन — कलकत्ता
„ छोटमलजी सुराना जैन — कलकत्ता
„ रतनमलजी बोथरा जैन — कलकत्ता
„ भुरमलजी रत्ताजी जैन शाह — नाई

श्री निहालचन्दजी बोहरा जैन	कलकत्ता
„ रावतमलजी भैरुदानजी हाकिम कोठारी	कलकत्ता
„ मोहनलालजी सुराना जैन	कलकत्ता
„ फूलचन्दजी रूपराजजी जैन	पूना
„ जे. बन्सीलालजी जैन	मद्रास
„ कनकमलजी रतनलालजी मुणोत जैन	रतलाम
„ कनकमलजी राजमलजी मुणोत जैन	रतलाम
„ तेजमालजी मेघराजजी जैन	अकलकुआ
„ मूलचन्दजी गणेशलालजी जैन	भद्रावती
„ गणेशमलजी बरड़िया जैन	सिलचर
„ लाभचन्दजी देवीचन्दजी वैद जैन	जालन्धर
„ केसरीमलजी महेता जैन	आकोदियामंडी
„ प्रेमराजजी गुलाबचन्दजी जैन	सटाणा
„ जवाहरलालजी रावयान जैन	देहली
„ उत्तमचन्दजी भण्डारी जैन	सिकन्द्राबाद
„ डी० सावन्त राजजी. जे. जैन	सिकन्द्राबाद
„ राजमलजी पारख जैन	भेलसा
„ रामलालजी धुरालालजी जैन	बड़ोद
„ मणिलालजी. एम. जैन	पिथापुरम
„ जैन सोड़ा वाटर फैक्टरी	जालंधर सिटी
„ मगन मलजी गजराजजी कानूगा जैन	तिनडीवनम
„ के. लालचन्दजी गोलेच्छा जैन	तिनड़ीवनम
„ राजमलजी हरखचन्दजी वैद जैन	तिनड़ीवनम
„ भँवरीलालजी कोचर	बीकानेर

श्री पूनम चन्दजी चम्पालालजी कानूगा जैन	तिनड़ीवनम
,, कालूरामजी अमरचन्दजी चोथरा जैन	नवापाराराजिम
,, रतिचन्दजी शोभालालजी बंबोरिया जैन	रठांजना
,, माणिकलालजी बम्बोरिया जैन	रठांजना
,, मोमराज जी प्रेमराज जी जैन	असलोद
,, शांन्तिनाथ लायब्रेरी	बस्सी
,, शाह सूरजमलजी समरथजी भनशाली जैन	उमेदाबाद
,, दीपचन्दजी चम्पालालजी ओसवाल जैन	सेलू
,, शाह नेमाजी नथमलजी जैन	वारंगल
,, हस्तीमलजी सूरजमलजी भण्डारी जैन	समदड़ी
,, जेठमलजी सुराना जैन	सिकन्द्राबाद
,, हीरालालजी बाफना जैन	सिकन्द्राबाद
,, पारसमलजी शाह जैन	लुणी
,, श्री सरस्वती वाचनालय'	रूण
,, शाह हजारीमलजी टेकचन्दजी जैन	मद्रास
,, मीखमचन्दजी नाहटा जैन	नेवारी
,, शाह सदनमलजी भण्डारी जैन	सिआणा
,, मदनचन्दजी मोहनलालजी जैन	जुगसलाइ
,, मूलचन्दजी भगवानदासजी जैन	खिड़की
,, चन्दनमलजी सुरतिंगजी जैन	सिआणा
,, ताराचन्दजी बोथरा	कलकत्ता
,, चन्दनमलजी रुगनाथमलजी जैन	कुंडसी
,, कमलसिहजी दुधोड़िया	कलकत्ता

नेमिनाथ-चरित्र

पहला परिच्छेद

पहला और दूसरा भव

इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें अचलपुर नामक एक सुन्दर नगर था। वहाँ विक्रमधन नामक एक प्रतापी और युद्धप्रिय राजा राज करता था। उस राजाके धारिणी नामक एक रानी थी, जो उसे बहुत ही प्रिय थी। एक दिन उसने पिछली रातमें एक स्वप्न देखा। उस स्वप्नमें उसे बौरोंसे लदा हुआ एक आम्रवृक्ष दिखायी दिया, जिस पर भौंरे चक्कर लगा रहे थे और कोयलें कूक रही थीं। उसे स्वप्नमें ही ऐसा मालूम हुआ, मानो कोई रूपवान पुरुष उस आम्रवृक्षको हाथमें लेकर उससे कह रहा है कि

"आज जो यह वृक्ष तुम्हारे आंगनमें लगाया जा रहा है, वह यथासमय नव वार अन्यान्य स्थानोंमें रोपित करने पर उत्तरोत्तर उत्कृष्ट फल प्रदान करेगा।"

यह स्वप्न देखते ही रानीकी नींद खुल गयी। उस समय सवेरा हो चला था। उसने उसी समय उस स्वप्नका हाल अपने पतिदेवसे निवेदन किया। उन्होंने स्वप्न-पाठकोंसे उसके फलाफल का निर्णय कराना स्थिर किया। निदान, राज-सभामें पहुँचते ही उन्होंने कई स्वप्न-पाठकोंको बुला भेजा और उनसे उस स्वप्नका फल पूछा। उन्होंने कहा :—"राजन्! रानीका यह स्वप्न बहुत ही अच्छा है। स्वप्नमें आम्र वृक्ष दिखायी देने पर सुन्दर पुत्रका जन्म होता है। परन्तु स्वप्नमें किसी पुरुषने रानीसे जो यह कहा है कि यथा समय नव बार अन्यान्य स्थानोंमें रोपित करने पर यह वृक्ष उत्तरोत्तर उत्कृष्ट फल प्रदान करेगा, इसका तात्पर्य हमारी समझमें नहीं आता। इसका रहस्य तो सिर्फ केवली ही बतला सकते हैं।

स्वप्न पाठकोंके यह वचन सुनकर राजा बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने वस्त्र-भूषण आदिसे पुरस्कृत कर

उन्हें सम्मानपूर्वक विदा किया। शीघ्र ही रानीने भी यह समाचार सुना। सुनते ही वे भी आनन्दित हो उठीं। जिस प्रकार पृथ्वी रत्न-भण्डारको धारण कर उसकी रक्षा करती है, उसी प्रकार उस दिनसे रानी अपने गर्भको धारण कर यत्न-पूर्वक उसकी रक्षा करने लगीं। यथा समय उन्होंने एक सुन्दर पुत्रको जन्म दिया। जिस प्रकार सूर्योदय होनेपर उसके उज्ज्वल प्रकाशसे दशों दिशायें प्रकाशित हो उठती हैं, उसी प्रकार उस पुत्र-रत्नके जन्मसे राजा विक्रमधनका राज-प्रासाद आलोकित हो उठा। राजाने बड़ी धूमके साथ इस पुत्रका जन्मोत्सव मनाया। सभी इष्ट-मित्र और आश्रित-जन भेंट तथा पुरस्कार द्वारा इस अवसर पर सम्मानित किये गये। राजाने ज्योतिषियोंके आदेशानुसार अपने इस पुत्रका नाम धन रक्खा।

धनका लालन-पालन करनेके लिये राजाने अनेक दाई-नौकरों को नियुक्त कर दिये। शुक्ल पक्षमें जिस प्रकार चन्द्रकी कलाएँ बढ़ती हैं, उसी प्रकार उनके यत्नसे राजकुमार बड़ा होने लगा। धीरे-धीरे जब उसकी

अवस्था आठ वर्षकी हुई, तब राजाने उसकी शिक्षा-दीक्षाके लिये कई अध्यापकोंको नियुक्त किया। राजकुमारकी बुद्धि बहुत ही प्रखर थी इसलिये उसने थोड़े ही समयमें समस्त विद्या-कलाओंमें पारदर्शिता प्राप्त कर ली। अन्तमें उसने किशोरावस्था अतिक्रमण कर यौवनावस्था—जीवनके वसन्तकालमें पदार्पण किया।

जिन दिनों अचलपुरमें यह सब बातें घटित हो रही थीं, उन्हीं दिनों कुसुमपुर नामक नगरमें सिंह नामक एक बलवान राजा राज करते थे। उनकी पटरानीका नाम विमला था। वह अपने नामानुसार गुण और रूपमें पूरी विमला ही थी। उसने धनवती नामक एक सुन्दर कन्याको जन्म दिया था। उसका सौन्दर्य रति, प्रीति और रम्भाके रूपको भी मात कर देता था। वह जैसी रूपवती थी, वैसी ही गुणवती भी थी। ऐसी एक भी विद्या या कला न थी, जिसका उसने ज्ञान न प्राप्त किया हो। इन्हीं कारणोंसे उसके मातापिता उसे पुत्रसे भी बढ़कर प्यार करते थे।

इस समय धनवतीकी किशोरावस्था व्यतीत हो रही

थी। यौवनावस्थामें उसने अभी पदार्पण न किया था, किन्तु उसकी सीमासे अब वह बहुत दूरी पर भी न थी। एक दिन वसन्त-ऋतुका सुहावना समय था। उसकी सखियोंने उपवनकी सैर करने पर जोर दिया। वह भी इसके लिये राजी हो गयी। शीघ्र ही मातापिताकी आज्ञा ले, वह अपनी सखियोंके साथ वसन्त-वाटिकामें जा पहुँची। वह वाटिका आम्र, अशोक, पारिजात, चम्पक आदि अनेक वृक्षोंसे सुशोभित हो रही थी। कहीं राजहंस और सारस पक्षी विचरण कर रहे थे, तो कहीं भ्रमर पंक्तियां गुञ्जार कर रही थीं। राजकुमारी इन मनोरम दृश्योंको देखती हुई एक अशोक वृक्षके पास जा पहुँची। उसने देखा कि उस वृक्षके नीचे एक चित्रकार बैठा हुआ है। उसके हाथमें किसी रूपवान पुरुषका एक चित्र था और उसे ही वह बड़े ध्यानसे देख रहा था।

राजकुमारी धनवती भी उस चित्रको देखनेके लिये उत्सुक हो उठी। उसकी यह इच्छा देखकर उसकी कम-लिनी नामक एक सखी उस चित्रकारके पास गयी और

उससे वह सुन्दर चित्र मांग लायी। राजकुमारीने बड़े उत्साहसे उसे देखा। देखकर वह प्रसन्न हो उठी। वह जिस पुरुषका चित्र था, उसके अंग प्रत्यङ्गसे मानो सौन्दर्य फूटा पड़ता था। उसने चित्रकारके पास जाकर पूछा :—"हे भद्र! यह किसका चित्र है? ऐसा रूप तो सुर, असुर या मनुष्यमें होना असम्भव है। मैं समझती हूँ कि शायद तुमने अपना कौशल दिखानेके लिये अपनी कल्पनासे यह चित्र तैयार किया है। वर्ना जरा-जर्जर विधातामें अब ऐसी शक्ति कहाँ कि वे ऐसे रूपवान पुरुषका निर्माण कर सकें।"

राजकुमारीके यह वचन सुनकर चित्रकारको हँसी आ गयी। उसने कहा :—"हे मृगलोचनी! इसे कल्पित चित्र समझनेमें तुम भूल करती हो। संसारमें अभी रूपवान पुरुषोंकी कमी नहीं। सच बात तो यह है कि जिस पुरुषका यह चित्र है, उसके वास्तविक रूपका शतांश भी इस चित्रमें मैं नहीं दिखा सका। यह अचलपुरके राजकुमार धनका चित्र है। मैंने अपनी अल्प बुद्धिके अनुसार इसे अंकित करनेकी चेष्टा की है, परन्तु

मेरा विश्वास है कि साक्षात् धनको देखनेके बाद जो इस चित्रको देखेगा, वह अवश्य ही मेरी निन्दा करेगा। तुमने उसे अपनी आंखोंसे नहीं देखा है, इसीलिये तुम कूप-मण्डूककी भांति विस्मित हो रही हो। राजकुमारका रूप देखकर मानव-स्त्रियाँ तो दूर रहीं, देवाङ्गनाएँ भी मोहित हुए बिना नहीं रह सकतीं। मैंने तो केवल अपने नेत्रोंको तृप्त करनेकेलिये ही यह चित्र अङ्कित किया है।"

धनवती खड़ी-खड़ी चित्रकारकी यह सब बातें सुनती रही। सच बात तो यह थी कि उस चित्रको देखकर वह मुग्ध हो गयी थी और स्वयं भी चित्रकी भांति गति हीन बन गयी थी। उसे वह चित्र हाथसे छोड़नेकी इच्छा ही न होती थी। उसकी यह अवस्था देखकर कमलिनीने उसका मनोभाव ताड़ लिया। उसने चित्रकारके निकट उसके कला-कौशल और उसकी निपुणताकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर, उससे उस चित्रकी याचना की। चित्रकार कमलिनीकी यह याचना अमान्य नहीं कर सका। राजकुमारीके विनोदार्थ उसने सहर्ष वह चित्र कमलिनीको दे दिया।

चित्रको लेकर राजकुमारी अपनी सखियोंके साथ अपने वासस्थानको लौट आयी। परन्तु उसका मन अब उसके अधिकारमें न था। जिस प्रकार हंसिनीको मरुभूमिमें सन्तोष नहीं होता, उसी प्रकार उसकी तबियत अब राजमहलमें न लगती थी। खाना, पीना और सोना उसके लिये हराम हो गया था। सारी रात बिछौनेमें करवटें बदलते ही बीत जाती थीं। दिनको, जब देखो तब, वह गाल पर हाथ रक्खे राजकुमार धनका ही ध्यान किया करती थी। इस व्यग्रताके कारण उसकी स्मरण शक्ति पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता था, फलतः वह जो कुछ कहती या करती थी, वह तुरन्त भूल जाती थी। जिस प्रकार योगिनी अपने इष्टदेवका और निर्धन मनुष्य धनका ही चिन्तन किया करता है, उसी प्रकार वह सदा राजकुमारका ही चिन्तन किया करती थी। उसके चेहरेकी प्रसन्नता मानो सदाके लिये लोप हो गयी थी और उसका स्थान उदासीनताने अधिकृत कर लिया था। उसका शरीर धीरे-धीरे-कृश हो गया और रूप-लावण्यमें भी बहुत कुछ कमी आ गयी

उसकी यह अवस्था देखकर एक दिन उसकी प्रिय सखी कमलिनीने उससे पूछा :—"बहिन! तुम्हें आज कल क्या हो गया है? न अब तुम पहलेकी भाँति हँसती हो न बोलती हो। चेहरा पीला पड़ गया है और शरीर दुबला हो गया है। रात दिन अपने मनमें न जाने क्या सोचा करती हो? क्या मैं जान सकती हूँ कि तुम्हारी ऐसी अवस्था क्यों हो रही है?"

राजकुमारीने कहा :—"हे सखी कमलिनी! तुम सर्वथा एक अपरिचित व्यक्तिकी भांति मुझसे यह प्रश्न क्यों करती हो? मैं तो समझती हूँ कि मेरी इस अवस्थाका कारण तुम्हें भली भांति मालूम है। तुम तो मेरे हृदय—मेरे जीवनके समान हो। मुझसे ऐसा प्रश्न-कर मुझे क्यों लज्जित करती हो?"

कमलिनीने कहा :—हे सखी! तुम्हारा कहना कुछ-कुछ ठीक है। तुम्हारी इस अवस्थाका कारण मुझसे सर्वथा छिपा नहीं है। मेरी धारणा है कि तुम राज-कुमार धनसे मिलनेके लिये व्याकुल हो रही हो। जबसे तुमने उस चित्रको देखा, तभीसे तुम्हारी इस अवस्थाका

सूत्रपात हुआ है। मैं यह बात उसी समय ताड़ गयी थी और इसीलिये मैंने उस चित्रकारसे तुम्हारे लिये वह चित्र मांग लिया था। अनजानकी तरह यह प्रश्न करना केवल मनोविनोद था। बाकी मैं तुम्हारा दुःख भलीभांति समझती हूँ और उसे दूर करनेके लिये चिन्ता भी किया करती हूँ। हालहीमें मैंने एक ज्ञानीसे पूछा था कि क्या मेरी सखीका मनोरथ पूर्ण होगा? क्या उसे अभीष्ट वरकी प्राप्ति होगी?" उसने कहा :—"उसका मनोरथ अवश्य और शीघ्र ही पूर्ण होगा।" उसके इस वचन पर अविश्वास करनेका कोई कारण नहीं। मैं समझती हूँ कि शीघ्र ही तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी और कोई ऐसा उपाय अवश्य निकल आयगा, जिससे यह कठिन कार्य भी सुगम बन जायगा।"

कमलिनीके यह वचन सुनकर धनवतीका चित्त कुछ शान्त हुआ। इसके बाद उन दोनोंमें बहुत देरतक इधर-उधरकी बातें होती रहीं। कमलिनी उसे प्रारब्ध पर भरोसा करनेका उपदेश देकर अन्तमें अपने वास-स्थानको चली गयी।

इस घटनाके कई दिन बाद, एक दिन धनवती दिव्य वस्त्रालङ्कार धारण कर अपने पिताको प्रणाम करने गयी। उसे देखकर राजाको बहुत ही आनन्द हुआ। उसे बिदा करनेके बाद वे अपने मनमें कहने लगे,—"मेरी पुत्रीकी अवस्था ब्याह करने योग्य हो गयी है। अतः शीघ्र ही इसके लिये मुझे उपयुक्त वरकी खोज करनी चाहिये।"

जिस दिन राजा सिंहको यह विचार आया, ठीक उसी दिन राजा विक्रमधनके यहाँसे उनका वह दूत वापस आया, जिसे उन्होंने किसी राज-काज वश अचल-पुर भेजा था। राज-काजकी सब बातें पूछनेके बाद राजाने उससे पूछा,—"तुमने अचलपुरमें और भी कोई आश्चर्य जनक वस्तु देखी है?"

दूतने कहा :—हाँ महाराज! मैंने वहां विक्रमधन-के धन नामक कुमारको देखा, जिसका रूप देखकर मनुष्योंकी कौन कहे, देव और विद्याधर भी लज्जित हो जाते हैं। उसे देखकर मुझे विचार आया, कि यह हमारी राजकुमारीके लिये उपयुक्त वर हो सकता है। विधाताने मानो उसे इसीलिये इस धरा-धाममें भेजा है। मेरी

धारणा है कि यदि यह सम्बन्ध ठीक हो जाय, तो मणि-काञ्चन-संयोगकी कहावत चरितार्थ हो सकती है।"

दूतके यह वचन सुनकर राजा बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा :—"तुम स्वयं मेरे कार्यकी इतनी चिन्ता रखते हो, यह देखकर मुझे बहुत ही आनन्द हो रहा है। आज सुबहसे ही मैं धनवतीके विवाहकी चिन्ता कर रहा था। ऐसे समयमें तुमने राजकुमार धनका पता बता कर मेरी बहुत कुछ चिन्ता दूर की है। मैं तुम्हारे विचारोंसे सहमत हूँ। तुम एकबार फिर अचलपुर जाओ और राजा विक्रमधनसे मिलकर उनके राजकुमारसे अपनी राजकुमारीके विवाहका प्रस्ताव करो। मेरी धारणा है तुम्हारी यह चेष्टा अवश्य ही सफल होगी।"

जिस समय दूतसे यह बातचीत हो रही थी, उस समय धनवतीकी छोटी बहिन चन्द्रवती भी राजसभामें मौजूद थी। वह इस समाचारसे मन-ही-मन प्रसन्न होती हुई अपनी बहिन धनवतीके पास पहुंची और उससे कहने लगी :—"बहिन! मैं तुम्हारे लिये एक आनन्द-संवाद लायी हूँ। शायद यह समाचार सुनकर तुम्हें बड़ी

प्रसन्नता होगी कि पिताजीने आज एक दूतको अचलपुर भेजा है और राजा विक्रमधनके राजकुमारसे तुम्हारा ब्याह ठीक करनेको कहा है।"

धनवतीने कहा :—"बहिन! मेरा ऐसा भाग्य कहाँ, कि पिताजीको यह विचार आये और वे इसके लिये कोई उद्योग करें। मुझे तुम्हारी इस बात पर विश्वास नहीं होता। उन्होंने शायद किसी दूसरे कामसे उसे कुसुमपुर भेजा होगा, किन्तु तुमने भ्रमवश मेरे ब्याह-की बात समझ ली होगी!"

चन्द्रवतीने कहा :—"नहीं बहिन! मैंने सारी बातें बड़े ध्यानसे सुनी थीं मुझे पूर्ण विश्वास है कि मैं भूल नहीं कर रही हूँ।

चन्द्रवतीकी यह बातें सुनकर धनवती कुछ विचारमें पड़ गयी। संयोगवश कमलिनी भी उस समय वहीं उपस्थित थी। उसने कहा :—"हे सखी! वह दूत तो अभी यहीं है। यदि कुछ सन्देह हो तो उससे पूछ-ताछ की जा सकती है। कहिये तो मैं उसे इसीवक्त बुला लाऊँ! हाथके कंगनको आरसी क्या?"

धनवतीने प्रकट रूपसे तो इसके लिये सम्मति न दी, परन्तु कमलिनी उसका मनोभाव तुरन्त समझ गयी और उसी क्षण उस दूतको धनवतीके पास लिवा लायी। उसके मुखसे यथार्थ समाचार सुनकर धनवतीको असीम आनन्द हुआ। उसने राजकुमारके नाम एक पत्र लिखकर उसे गुप्त रूपसे राजकुमारके पास पहुंचा देनेका उस दूतको आदेश दिया। साथ ही यह कार्य सुचारू रूपसे सम्पादित करने पर, उसने उस दूतको पुरस्कार देनेका भी प्रलोभन दिया। दूतने उसी दिन अचलपुरके लिये प्रस्थान किया।

अचलपुर पहुँचते ही वह सर्व प्रथम राज-सभामें उपस्थित हुआ। उसे तुरन्त वापस आया देखकर राजा विक्रमधन आश्चर्यमें पड़ गये। उन्होंने कुछ चिन्तित भावसे पूछा :—"कहिये, आपके महाराज प्रसन्न तो हैं? आप अपने नगर तक पहुँचे या नहीं? यदि पहुँचे, तो इतनी जल्दी वापस क्यों लौट आये? जो कुछ समाचार हो, जल्दी कहिये, मुझे बड़ी चिन्ता हो रही है।"

दूतने हाथ जोड़कर कहा :—"हे राजन्! चिन्ताकी

कोई बात नहीं। मैं अपने नगरसे ही वापस आ रहा हूँ। महाराजने एक खास कामके लिये मुझे आपकी सेवामें भेजा है। यह तो शायद आप जानते ही होंगे, कि हमारे महाराजके दो राजकुमारियाँ हैं, जिनमेंसे बड़ी का नाम धनवती है। महाराज उसका ब्याह आपके राजकुमारसे करना चाहते हैं। उसीकी मँगनी करनेके लिये उन्होंने इस पत्रके साथ मुझे आपके पास भेजा है। आपके राजकुमार जैसे रूपवान हैं, हमारी राजकुमारी भी वैसी ही रूपवती है। विद्या-कला और सद्गुणोंमें भी दोनों किसीसे कम नहीं हैं। ऐसी अवस्थामें, मैं जोरोंके साथ आपसे अनुरोध करता हूँ कि इस सम्बन्धके लिये आप अवश्य अपनी अनुमति प्रदान करें। मेरा यह भी विश्वास है कि इस सम्बन्धसे आप और हमारे महाराजाका प्रेमसम्बन्ध भी अधिक गाढ़ और सुदृढ़ हो जायगा।"

दूतकी यह प्रार्थना सुनकर राजा विक्रमधन पहले तो कुछ विचारमें पड़ गये, परन्तु बादको उन्होंने उसकी प्रार्थना सहर्ष स्वीकार कर ली। दूत भी इससे प्रसन्न

हो उठा। राजा विक्रमधनने उसका सत्कार कर उसे सम्मान पूर्वक बिदा किया।

इसके बाद उस दूतने राजकुमारका पता लगाना आरम्भ किया। उस समय राजकुमार उद्यानमें सैर करने गये थे। दूत भी शीघ्र ही वहाँ पहुँचा और द्वारपालकी आज्ञा प्राप्त कर उद्यानमें उनसे मिला। उसने पहले राजकुमारको प्रणाम कर उनसे अपने आगमनका कारण निवेदन किया, पश्चात् उन्हें वह पत्र दिया जो धनवतीने उनके नाम लिखा था। राजकुमारने बड़ी उत्सुकतासे उस पत्रको खोलकर पढ़ा। उसमें निम्न-लिखित श्लोक लिखा था :—

"विशेषित श्रीः शरदा यौवनेनेव पद्मिनी।
परिम्लान-मुखी वाञ्छ-त्यादित्य-कर-पीडनम्॥"

अर्थात्:—"शरद ऋतुके कारण विशेष शोभा प्राप्त पद्मिनी म्लान मुखी होकर सूर्यका कर पीड़न चाहती है। यानि नवयौवना पद्मिनी इस समय पतिका कर-पीड़न चाहती है—मिलना चाहती है।"

इससे राजकुमार तुरन्त ही समझ गये, कि धनवती

मुझपर आसक्त हो रही है। उन्होंने भी उस श्लोकके उत्तरमें एक श्लोक लिख दिया। साथ ही अपना रत्न-हार निकाल कर उस दूतको देते हुए कहा:—"मेरा यह प्रेमोपहार और पत्र राजकुमारी को दे देना। इससे वे सब-कुछ समझ जायँगी।"

इस प्रकार सिंह राजाका सब काम निपटा कर वह दूत कुसुमपुर लौट आया। राजाने जब यह समाचार सुना, कि विक्रमधनने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली है, तब उनके आनन्दका वारापार न रहा। उन्होंने दूतको पुरस्कार दे विदा किया। इसके बाद वह दूत धनवतीके पास गया और उसे प्रणाम कर वह हार तथा पत्र उसके हाथमें रक्खा। पत्रमें निम्नलिखित श्लोक लिखा था:—

"यत् प्रमोदयते सूर्यः, पद्मिनीं कर-पीडनात्।
सोऽर्थः स्वभाव-संसिद्धो, नहि याच्ञामपेक्षते॥"

अर्थात्:—"पद्मिनीका मनोरंजन करना—यह सूर्यके लिये स्वभाव सिद्ध बात है। इसके लिये याचना करने की आवश्यकता नहीं।"

राजकुमारका यह उत्तर पढ़ कर धनवतीको बड़ा ही

आनन्द हुआ। वह अपने मनमें कहने लगी :—"उनके इस उत्तरसे तो ऐसा मालूम होता है, कि वे मेरा मनोभाव समझ गये हैं। इसीलिये उन्होंने यह प्रेमोपहार—रत्न-हार भी भेजा है।"

यह सोचकर धनवतीने प्रेम पूर्वक वह रत्न-हार गलेमें पहन लिया और उस दूतको पुरस्कार देकर बिदा कर दिया।

इधर राजा सिंहने धनवतीके व्याहकी तैयारी करनी शुरू कर दी। कुछ ही दिनोंके बाद, एक दिन शुभ मुहूर्तमें, उन्होंने अपने मन्त्रियोंके साथ धनवती को अचलपुरके लिये बिदा किया। साथ ही अनेक दास-दासियाँ और धन धान्यादिक विपुल सामग्री भी भेज दी, जिससे विवाह कार्य बड़ी धूमसे सम्पादित हो सके। चलते समय धनवतीकी माताने उसे प्रसंगोचित उपदेश भी दिया। धनवती उस उपदेशको अपने हृदयमें धारण कर, वियोग दुःखसे दुःखित होती हुई, पालखीमें बैठ, छत्र और चमर आदिक राज-चिन्होंके साथ अचलपुरके लिये रवाना हो गयी।

अचलपुरमें उसके आगमनका समाचार पहले ही पहुँच चुका था। लोग उसे देखने और उसका स्वागत करनेके लिये बहुत उत्सुक हो रहे थे। नगरमें पहुँचते ही जन-सागर उमड़ पड़ा। लोगोंने पुष्पवृष्टि और हर्षनाद द्वारा उसका स्वागत किया। जो उसे देखता, वही कहता—यह तो मानो साक्षात् लक्ष्मी है! विधाताने यह अच्छी जोड़ी मिलाई है।

राजा विक्रमधनने सब लोगोंका बड़ा स्वागत किया और एक राजमहलमें उन्हें ठहराया। इसके बाद शुभ मुहूर्तमें बड़ी धूम-धामके साथ विवाह कार्य सम्पन्न हुआ। उस समय समूचा नगर ध्वजा और पताकाओंसे सजाया गया और घर-घरमें मङ्गलाचार किये गये। कई दिन तक नगरमें बड़ी धूम और चहल-पहल रही। देवेन्द्रोंने भी यह महोत्सव देखकर अपनेको धन्य समझा। धनवतीके मनोरथ भगवानने पूरे कर दिये। राजकुमार धन सदाके लिये उसके जीवनधन बन गये। जिस प्रकार नागलतासे सुपारी, बीजलीसे मेघ और रतिसे कामदेव शोभा प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार धन-

वतीको पाकर धनकुमार शोभा पाने लगा। वे दोनों अभिन्न हृदय बनकर एकप्राण दो देहकी कहावत चरितार्थ करने लगे।

क्रमशः धनवती और धनकुमारका ब्याह हुए बहुत दिन बीत गये। उन दोनोंने गार्हस्थ्य सुख उपभोग करते हुए बरसोंका समय क्षणकी तरह बिता दिया। ब्याह होनेके कई वर्ष बाद एकदिन धनकुमार घोड़ेपर सवार हो, नगरके बाहर अपने उपवनमें सैर करनेके लिये गये। वहां उन्होंने चतुर्ज्ञान धारी एक मुनिराजको धर्मोपदेश देते हुए देखा। वे उन्हें वन्दन कर उनके निकट बैठ गये और उनका अमृतके समान धर्मोपदेश सुनने लगे।

उधर राजा विक्रमधन भी मुनिराजके आगमनका समाचार सुनकर रानी धारिणी और धनवती आदिको साथ लेकर उन्हें वन्दन करने और उनका धर्मोपदेश सुननेके लिये आ पहुँचे। मुनिराजका उपदेश समाप्त होनेपर राजा विक्रमधनने उनसे पूछा :—"हे क्षमा श्रमण! जिस समय धन कुमार गर्भमें था, उस समय इसकी माताको स्वप्नमें एक आम्र-वृक्ष दिखायी दिया था। और

किसीने उससे कहा था कि यह वृक्ष यथा समय नव बार आन्यान्य स्थानोंमें रोपित करने पर उत्तरोत्तर उत्कृष्ट फल प्रदान करेगा। स्वप्न पाठकोंसे इसका तात्पर्य पूछने पर वे कुछ भी न बतला सके। यदि आप बतलाने की कृपा करेंगे तो हम अपने को कृत-कृत्य समझेंगे।"

राजा विक्रमधनके यह वचन सुनकर मुनिराजने सम्यक् ज्ञानके लाभार्थ अपनी मनः शक्ति द्वारा दूरस्थित एक केवली मुनिराजसे उसका तात्पर्य पूछा।

केवली मुनिने वहींसे उन्हें नेमिनाथ भगवानके नव भवोंका वृत्तान्त कह सुनाया। मनः पर्यव और अवधिज्ञानसे वही सब बातें मुनिराजने राजाको बतला दीं। अन्तमें उन्होंने कहा:—"हे राजन्! तुम्हारा यह पुत्र धनकुमार सब मिलाकर नव बार जन्म लेगा और उत्तरोत्तर उत्कृष्ट अवस्थाको प्राप्त करता जायगा। इसका नवाँ जन्म भरत-क्षेत्रके यदुवंशमें होगा और उस समय यह अरिष्टनेमि नामक बाईसवाँ तीर्थंकर होगा।"

मुनिराजके यह वचन सुनकर सब लोग बहुत प्रसन्न हुए और जैन-धर्म पर उनकी श्रद्धा दूनी हो गयी। इसके

बाद मुनिराजको नमस्कार कर राजा विक्रमधन सपरिवार अपने राज महलको लौट आये और मुनिराज भी वहाँसे विहार कर किसी दूसरे स्थानको चले गये। राजकुमार धन और धनवती पुनः अपने दिन पूर्ववत् निर्गमन करने लगे।

इस घटनाको भी धीरे-धीरे कई वर्ष बीत गये। धन और धनवतीकी जीवन नौका उसी प्रकार अब भी संसार-सागरको पार कर रही थी। एक दिन वे दोनों स्नान और जल-क्रीड़ा करनेके लिये एक सरोवर पर गये। संयोग-वश एक मुनि भी उसी समय वहाँ आ पहुँचे। वे धूप और तृषासे अत्यन्त व्याकुल हो रहे थे, इसलिये वहीं एक अशोक-वृक्षके नीचे बेहोश होकर गिर पड़े। धनवती-ने उन्हें गिरते देख कर अपने पतिका ध्यान उनकी ओर आकर्षित किया। धनकुमार तुरन्त उन्हें उठानेके लिये दौड़ पड़े। धनवती भी उनके पीछे वहाँ जा पहुँची। पति पत्नी दोनोंने समुचित उपचार कर मुनिराजकी मूर्च्छा दूर की। उन्हें होश आनेपर धनकुमारने वन्दना करके कहा:—"महात्मन्! आज हम लोगोंका अहोभाग्य है जो मरुभूमिमें कल्प वृक्षकी भाँति हमें आपके दर्शन हुए,

उपचार कर मुनिराजकी मूर्च्छा दूरकी। (पृष्ठ २२)

परन्तु आपकी अस्वस्थता देखकर हमलोग बहुत ही दुःखित हैं। यदि आपको आपत्ति न हो तो कृपया बतलाइये, कि आपकी यह अवस्था क्यों हुई ?"

मुनिराजने कहा:—"हे राजन् ! परमार्थकी दृष्टिसे तो इस संसारका वास ही दुःख रूप है, परन्तु मुझे तो यह दुःख विहारके कारण प्राप्त हुआ है, इसलिये इसका उद्देश्य अशुभ नहीं कहा जा सकता। मैं अपने गुरुदेव मुनिचन्द्र नामक एक साधु तथा अन्यान्य कई साधुओंके साथ विहार करने निकला था, परन्तु मार्गमें उन सबोंका साथ छूट गया और मैं भटकता हुआ इधर निकल आया। यहाँ रास्तेकी कड़ी धूप, थकावट और तृषाके कारण मुझे मूर्च्छा आ गयी। इसके बाद जो कुछ हुआ सो आप जानते ही हैं। हे राजन् ! आपने मेरे साथ बहुत ही भलाई की है, इसलिये मैं आपको धर्मलाभ देता हूँ। क्षण-मात्रमें जो मेरी अवस्था हुई थी, वही इस संसारमें सबकी होनेवाली है। इसलिये आत्म-कल्याण चाहनेवाले पुरुषको धर्म-साधन करना चाहिये।"

इसके बाद मुनिराजने धनकुमारको सम्यक्त्व मूलक

गार्हस्थ्य धर्म कह सुनाया। उसे सुनकर धनकुमारने अपनी पत्नी सहित सम्यक्त्वमूलक श्रावक-धर्म ग्रहण किया। इसके बाद वे मुनिराजको अपने वासस्थानमें लिवा लाये और भोजनादि द्वारा भलीभांति उनका आतिथ्य किया। उनका धर्मोपदेश सुननेके लिये और भी कई दिन तक धनकुमारने उन्हें अपने यहाँ रोक रक्खा। अन्तमें धनकुमारसे विदा ग्रहण कर मुनिराज अपने समुदायमें जा मिले।

धन और धनवतीके धार्मिक विचार एक समान होनेके कारण उनका दाम्पत्य-जीवन और भी मधुर बन गया। वे दोनों क्षणभरके लिये भी एक दूसरेसे अलग न होते थे। राजा विक्रमधन अपने पुत्र और पुत्र-वधूका यह गाढ़ प्रेम देखकर बहुतही प्रसन्न रहते थे। अन्तमें, अपना अन्तिम समय समीप आया जानकर, उन्होंने धनकुमारको राज्याभिषेक कर दिया और वे स्वयं तपस्या करने चले गये। धनकुमारने इस राज्य-भारको भी भली-भांति सम्हाल लिया।

कुछ वर्षोंके बाद एकदिन उद्यानके द्वारपालने धन-

कुमारके पास आकर कहा कि उद्यानमें वसुन्धर नामक मुनिराजका आगमन हुआ है। मुनिराज वसुन्धर पहले भी एकबार उस उद्यानमें पधार कर उसे पावन कर चुके थे। इसलिये धनकुमार उनसे भलीभांति परिचित था। वह उसी समय धनवतीको साथ लेकर उद्यानमें गया और उन्हें वन्दन कर उनका उपदेश सुननेके लिये उनके पास बैठ गया। मुनिराजने बहुत देरतक मर्मस्पर्शी धर्मोपदेश दिया, उसे सुनकर धनकुमारको वैराग्य आगया। उसने तुरन्त महलमें आकर सारा राज्य-भार अपने जयन्तकुमार नामक पुत्रको सौंप दिया। इसके बाद उसने उसी दिन दीक्षा ले ली। पतिव्रता धनवतीने भी उसीका अनुसरण किया।

धनकुमारके धनदत्त और धनदेव नामक दो भाई भी थे। धनकुमारके साथ उन्होंने भी चारित्र ले लिया। राजर्षि धनने गुरुके निकट रहकर घोर तपस्या और शास्त्राभ्यास करना आरम्भ किया, फलतः कुछ दिनोंके बाद वे गीतार्थ बन गये। गुरुदेवने यह देखकर आचार्य पदपर उनकी स्थापना की। धन सूरिने अनेक राजाओंको

धर्मोपदेश और दीक्षा दी। अन्तमें सती धनवतीके साथ उन्होंने अनशन व्रत ग्रहण कर एक महीनेमें अपने प्राण त्याग दिये। इसके बाद सौधर्म देवलोकमें उन दोनों को देवत्व प्राप्त हुआ, जहाँ वे इन्द्रके बराबरीके माने जाने लगे। धनकुमारके दोनों भाई तथा समस्त शिष्योंको भी सौधर्म देवलोकमें देवत्वकी प्राप्ति हुई।

दूसरा परिच्छेद

तीसरा और चौथा भव

इसी भरत-क्षेत्रमें वैताढ्य पर्वतकी उत्तर-श्रेणीमें सूरतेज नामक नगर था, वहाँ पर सूरनामक एक खेचर चक्रवर्ती राज्य करता था। उसके विद्युन्मती नामक एक रानी थी। सौधर्म देवलोकमें धनकुमारकी आयु पूर्ण होने पर उन्होंने इसी रानीके उदरसे पुत्र-रूपमें जन्म लिया। सूर-

राजाने बड़ी धूमसे उसका जन्मोत्सव मनाया और उसका नाम चित्र-गति रक्खा। बड़ा होनेपर उसकी शिक्षाका प्रबन्ध किया गया और कुछ ही दिनोंमें वह समस्त विद्या-कलाओंमें पारंगत हो गया।

उसी वैताढ्य पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें शिव-मन्दिर नामक एक नगर था, जिसमें अनंग सिंह नामक राजा राज्य करते थे। उनकी रानीका नाम शशिप्रभा था। धनवतीने इन्हींके यहाँ पुत्री रूपमें जन्म लिया। अबतक रानीके पुत्र तो कई हो चुके थे, परन्तु कन्या एक भी न हुई थी। इसलिये वह अपने माता-पिताके निकट बहुत ही प्रिय हो पड़ी। शुभ मुहूर्तमें पण्डितोंके आदेशानुसार उसका नाम रत्नवती रक्खा गया। जिस प्रकार जल सिंचने से लताकी वृद्धि होती है, उसी प्रकार माता-पिताके यत्नसे रत्नवती भी शीघ्रता-पूर्वक बढ़ने लगी। यथा समय उसके लिये स्त्रियोचित शिक्षाका प्रबन्ध किया गया और उसने भी अनेक विद्या-कलाओंमें पारदर्शिता प्राप्त कर ली।

समय बीतते देर नहीं लगती। देखते-ही-देखते रत्नवतीने किशोरावस्था अतिक्रमण कर यौवनकी सीमामें

पदार्पण किया। राजाने जब देखा कि, इसकी अवस्था विवाह करने योग्य हो चली है, तब वे मन-ही-मन कुछ चिन्तित हो उठे। एक दिन उन्होंने किसी ज्योतिषीसे पूछाः-"महाराज! क्या आप बतला सकते हैं, कि मेरी पुत्रीका विवाह किसके साथ होगा?"

ज्योतिषीने कुछ सोच-विचार कर कहा:—"हे राजन्! जो आपका खड्ग छीन लेगा और सिद्धायतन (सिद्ध-मन्दिर) की वन्दना करते समय जिस पर देवता-गण पुष्प-वृष्टि करेंगे, उसीसे आपकी पुत्रीका व्याह होगा। मेरा यह वचन झूठा नहीं पड़ सकता। यही विधाताका विधान है।"

ज्योतिषीके यह वचन सुनकर राजा बहुतही प्रसन्न हुए। वे अपने मनमें कहने लगेः-"जो मेरा खड्ग छीन लेगा वह अवश्य ही मुझसे अधिक बलवान होगा। मेरी पुत्री बड़ी भाग्यवान मालूम होती है। तभी तो ऐसे बलवान पुरुषसे उसके व्याहका योग पड़ा है। अस्तु।"

इसी भरत-क्षेत्रके चक्रपुर नामक नगरमें सुग्रीव नामक एक राजा राज्य करता था। उसके यशस्वती और भद्रा

नामक दो रानियाँ थीं। उन दोनोंके सुमित्र और पद्म नामक दो पुत्र थे। इनमेंसे सुमित्र गुणवान और पद्म गुणहीन था। एक दिन भद्राको कुबुद्धि सूझी। उसने अपने मनमें सोचा कि जब तक सुमित्र जीता रहेगा, तब तक मेरे पुत्रको राज्य न मिल सकेगा। यह सोचकर उसने सुमित्रको विष दे दिया। बेचारा सुमित्र विषके प्रभावसे मूर्छित होकर गिर पड़ा। यह समाचार पाते ही सुग्रीव राजा अपने मन्त्रियोंके साथ वहाँ दौड़ आये। विषको शान्त करनेके लिये मन्त्र-तन्त्रादिक अनेक उपाय किये गये, किन्तु कोई फल न हुआ। चारों ओर यह बात फैल गयी कि भद्राने सुमित्रको विष दिया है। भद्रा इससे डरकर कहीं भाग गयी।

परन्तु सुमित्रके जीवनकी कोई आशा न थी। ऐसा मालूम होता था, मानो उसका अन्तिम समय निकट आ पहुँचा है। राजाका जी बहुत दुःखी हो गया था। उन्होंने अपने पुत्रके जीवनके लिये जिनपूजा और शान्ति आदिककर्म कराये किन्तु इससे भी कोई लाभ न हुआ। अन्तमें राजा निराश होकर अपने पुत्रकी याद कर करके

रोने लगे। मन्त्री आदिक भी निराश हो गये। परन्तु सौभाग्यवश इसी समय क्रीड़ा निमित्त विचरण करते हुए चित्रगति वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने देखा कि समूचे नगर पर शोककी काली घटा छायी हुई है। जांच करने पर उन्हें राजकुमारको विप देनेका वृत्तान्त ज्ञात हुआ। वे तुरन्त अपने विमानसे नीचे उतर पड़े। उन्होंने कुमारके शरीर पर ज्योंही मन्त्रित जलके छींटे दिये, त्योंही वह इस प्रकार उठ बैठा, जिस प्रकार कोई मनुष्य गहरी निद्रासे उठ बैठता है। अपने आसपास राजा और मन्त्री आदिको एकत्रित देखकर सुमित्रने अपने पितासे इसका कारण पूछा। राजानेकहाः—"हे पुत्र! तुम्हारी विमाता ने तुम्हें विष दिया था। उसके प्रभावसे तुम मूर्छित हो गये थे। हम लोगोंने अनेक प्रकारके उपचार किये, किन्तु कोई फल न हुआ। अन्तमें, हमलोग तुम्हारे जीवनकी आशा छोड़ बैठे थे। इतनेमें ही यह महापुरुष आ पहुँचे। इन्होंने अपने मन्त्र-बलसे तुम्हारी मूर्च्छा दूर कर तुम्हें जीवन-दान दिया है।"

पिताके यह वचन सुनकर सुमित्रने हाथ जोड़कर

चित्रगतिसे कहाः—"हे महापुरुष! आपने अकारण मुझपर जो उपकार किया है, वही आपके उत्तम कुलका परिचय देनेके लिये पर्याप्त है, फिर भी यदि आप अपने नाम और कुलका पूरा परिचय देंगे, तो बड़ी कृपा होगी।"

चित्रगतिका मन्त्रीपुत्र भी चित्रगतिके साथही था। उसने चित्रगतिके वंशादिकका वर्णन कर सब लोगोंको उसका नामादिक बतलाया। चित्रगतिका प्रकृत परिचय पाकर सुमित्रको बहुतही आनन्द हुआ। उसने कहा:—"हे अकारण बन्धो! मेरी विमाताने आज मुझे विष देकर, मेरा अपकार नहीं, बल्कि उपकार किया है। यदि वह विष न देती, तो मुझे आपके दर्शन कैसे होते? आपने मुझे न केवल जीवन-दानही दिया है, बल्कि मुझे प्रत्याख्यान और नमस्कार हीनको दुर्गतिमें पड़नेसे भी बचाया है। बतलाइये, मैं इस उपकारका बदला आपको किस प्रकार दे सकता हूँ?"

चित्रगतिने कहा:—"मित्र! मैंने जो कुछ किया है, वह बदलेकी इच्छासे नहीं, बल्कि अपना कर्त्तव्य

समझकर ही किया है। आपके प्राण बच गये, यही मेरे लिये परम सन्तोषका विषय है। मुझे अब आज्ञा दीजिये, ताकि मैं अपने नगरको जा सकूँ।"

सुमित्रने कहा :—"हे बन्धो! मैं अकारण आपका समय नष्ट नहीं करना चाहता। परन्तु सुयशा नामक एक केवली समीपके ही प्रदेशमें विचरण कर रहे हैं और वे शीघ्रही यहाँ आनेवाले हैं। यदि उन्हें वन्दन करनेके बाद आप यहाँसे प्रस्थान करें तो बहुत अच्छा हो!"

सुमित्रका यह अनुरोध अमान्य करना चित्रगतिके लिये कठिन था। वे वहीं ठहर गये। सुमित्रको भी इस बहाने उनका आतिथ्य-सत्कार करनेका मौका मिल गया। कई दिन देखते-ही-देखते बीत गये। इस बीच उन दोनोंमें घनिष्ठ मित्रता हो गयी। सारा दिन क्रीड़ा-कौतुक और हास्य-विनोदमें ही व्यतीत होता था, इसलिये चित्रगतिको दिन जरा भी भारी न मालूम होते थे।

अन्तमें एक दिन केवली भगवान भी वहाँ आ पहुँचे। उनका आगमन-समाचार सुनकर राजा सुग्रीव

और वे दोनों उन्हें वन्दन करने गये। केवली भगवान उस समय धर्मोपदेश दे रहे थे, इसलिये वे उन्हें वन्दन कर, उनका उपदेश सुनने लगे। मुनिराज का उपदेश बहुतही मर्मग्राही और सारपूर्ण था, इसलिये श्रोताओंपर उसका बड़ाही अच्छा प्रभाव पड़ा।

धर्मोपदेश पूर्ण होनेपर चित्रगतिने मुनिराजसे कहाः—"हे भगवन्! आज आपका उपदेश सुनकर मुझे आर्हत धर्मका वास्तविक ज्ञान हुआ है। यह मेरा सौभाग्य ही था, जो सुमित्रसे मेरी भेट हो गयी, वर्ना मैं आपके दर्शनसे वञ्चितही रह जाता। मैं अब तक उस श्रावक-धर्मको भी न जान सका था, जो हमारे यहाँ कुल परम्परासे प्रचलित है।"

इतना कहकर चित्रगतिने केवली भगवानके निकट सम्यक्त्व मूलक श्रावक धर्म ग्रहण किया। इसके बाद राजाने केवली भगवानसे पूछा :—"भगवन्! संसारकी कोई भी बात आपसे छिपी नहीं है। आप सर्वज्ञाता हैं। दयाकर बतलाइये कि मेरे प्रिय पुत्रको विष देकर भद्रा कहाँ चली गयी? वह इस समय कहाँ है और क्या कर रही है?"

मुनिराजने कहा :—"वह यहाँसे भागकर एक जंगलमें गयी थी। वहाँपर भिल्लोंने उसके गहने-कपड़े छीनकर उसे अपने राजाके हाथोंमें सौंप दिया। उसने उसे एक वणिकके हाथ बेच दिया। किसी तरह वह उसके चंगुलसे भी भाग निकली, परन्तु उसके भाग्यमें अब सुख और शान्ति कहाँ? वह फिर एक जंगलमें पहुँची और वहाँ दावानलमें जलकर खाक हो गयी। इस प्रकार रौद्र ध्यानसे मृत्यु होनेपर इस समय वह प्रथम नरक भोग रही है। वहाँसे निकलने पर वह एक चाण्डालकी स्त्री होगी। वहाँ भी गर्भधारण करनेपर सौतसे उसका झगड़ा होगा, जिसमें सौत उसे छुरी मार देगी, जिससे उसकी मृत्यु हो जायगी। मृत्यु होने पर कुछ दिन वह तीसरा नरक भोग करेगी। इसके बाद उसे तिर्यञ्च गति प्राप्त होगी। इसी प्रकार वह जन्म-जन्मान्तरमें—अनन्तकाल तक दुःख भोग करेगी। आपके सम्यग्दृष्टि पुत्रको विष देनेके कारणही उसकी यह अवस्था होगी। उसने जो घोर पाप किया है, उसका यही प्रायश्चित होगा।"

केवली भगवानके यह वचन सुनकर सुग्रीव राजाके हृदयमें वैराग्य उत्पन्न हुआ। उन्होंने भगवानके निकट संयम लेनेकी इच्छा प्रकट की। उधर सुमित्रके हृदयमें भी उथल-पुथल मच रही थी। उसने कहा :—"मुझे धिक्कार है कि माताके इस दुष्कर्ममें मुझे कारण रूप बनना पड़ा। हे गुरुदेव! कृपाकर मुझे भी इस भव-सागरसे पार कीजिये। मुझे भी यह संसार अब विषवत् प्रतीत होता है।"

पुत्रके यह वचन सुनकर राजा सुग्रीवने कहा :—"हे पुत्र! जो कुछ होना था वह तो हो चुका। अब उन बातोंके लिये सोच करना व्यर्थ है। तुम्हारी अवस्था अभी संयम लेने योग्य नहीं है। मैं तुम्हारा पिता हूँ। मेरी आज्ञा मानना तुम्हारा कर्त्तव्य है। मैं अभी तुम्हें संसार-त्यागके लिये अनुमति नहीं दे सकता। इस समय तो तुम्हें राज्य-भार ग्रहण कर प्रजा-पालन करना होगा। यही इस समय मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ।"

सुमित्रको पिताकी यह आज्ञा शिरोधार्य करनी पड़ी। राजा सुग्रीवने उसे सिंहासन पर बैठाकर चारित्र

ले लिया। अब वे केवली भगवानके साथ विचरण करते हुए जप-तप और साधनामें अपना समय विताने लगे। सुमित्रने अपने सौतेले भाई पद्मको कई गाँव देकर उससे मेल रखनेकी चेष्टा की, परन्तु इसका कोई फल न हुआ। वह असन्तुष्ट होकर कहीं चला गया। चित्रगति अब तक सुमित्रके पास ही था। वह उसे किसी प्रकार भी जाने न देता था। अन्तमें बहुत कुछ कहने, सुननेपर सुमित्रने उसे विदा किया। उसे बहुत दिनोंके बाद वापस आया देखकर उसके मातापिताको असीम आनन्द हुआ। चित्रगति देवपूजादिक पुण्यकार्य करते हुए अपने दिन विताने लगा। उसकी इस जीवन-चर्यासे उसके माता पिता और गुरुजन उससे बहुत प्रसन्न रहने लगे।

हमारे पाठक राजा अनंगसिंह और उसकी पुत्री रत्नवतीको शायद अभी न भूले होंगे। उनका परिचय इसी परिच्छेदके आरम्भमें अंकित किया जा चुका है। रत्नवतीके कमल नामक एक भाई भी था। वह कुबुद्धिके कारण एक दिन सुमित्रकी बहिनको हरण कर ले गया। इस घटनासे सुमित्र बहुत उदास हो गया, क्यों-

यह भी पता न था कि यह कार्य किसने और किस उद्देशसे किया है। एक विद्याधरके मुहसे यह समाचार चित्रगतिने सुना, तो उसने इस विपत्ति कालमें अपने प्यारे मित्रकी सहायता करना अपना कर्त्तव्य समझा। उसने तुरन्त अपने विद्याधरों द्वारा सुमित्रको कहला भेजा, कि आपकी इस विपत्तिसे मैं बहुत दुःखी हूँ, परन्तु आप कोई चिन्ता न करें। आपकी बहिनका पता लगा कर उसे जिस प्रकार हो, आपके पास पहुँचा देनेका भार मैं अपने ऊपर लेता हूँ।

चित्रगतिकी इस सान्त्वनासे सुमित्रके व्यथित हृदय को बहुत शान्ति मिली। चित्रगतिकी यह सान्त्वना केवल मौखिक ही न थी। बल्कि उसने दूसरेही दिन उसका पता लगानेके लिये अपने नगरसे सदलबल प्रस्थान कर दिया। मार्गमें उसे अपने गुप्तचरोंद्वारा मालूम हुआ कि उसका हरण कमलने ही किया है। इसलिये उसने अपनी समस्त सेनाके साथ शिवमन्दिर नगर पर धावा बोल दिया। कमलमें इतनी शक्ति कहाँ, कि वह उसके सामने ठहर सके। जिस प्रकार गजेन्द्र कमल-नालको

उखाड़ फेंकता है, उसी प्रकार चित्रगतिने कमलकी सेना-को छिन्नभिन्न कर डाला। वह युद्धसे मुख मोड़कर मैदानसे भागनेकी तैयारी करने लगा।

अपने पुत्रकी पराजयका यह समाचार सुनकर राजा अनंगसिंह अपनी सेनाके साथ वहाँ दौड़ आया और चित्रगति से युद्ध करने लगा। दोनोंने अपनी शस्त्रविद्या और भुज-बलसे काम लेनेमें कोई बात उठा न रक्खी। घण्टों युद्ध होता रहा, परन्तु दोमेंसे कोई भी किसीको पराजित न कर सका। राजा अनंगसिंहने जब देखा, कि इस शत्रुको जीतनां बहुत ही कठिन है तब उसने उस खड्गका स्मरण किया जो उसके पूर्वजोंको किसी देवताकी कृपासे प्राप्त हुआ था। स्मरण करतेही वह खड्ग उसके हाथमें आ पहुँचा। वह खड्ग क्या था, मानो मूर्तिमान काल था उससे अग्निकी ज्वालाके समान भयंकर लपटें निकल रही थीं, जो बिजली की तरह चारों ओर लपक-लपक कर शत्रु-सेनाको झुलसाये देती थीं। उस दैवी खड्गके सामने ठहरना तो दूर रहा, उसकी ओर आंख उठाकर देखना भी कठिन था। वह खड्ग हाथमें आतेही

अनंगसिंहने चित्रगतिको ललकार कर कहा :—"हे बालक! यदि तुझे अपने प्राणोंका जरा भी मोह हो, तो इसी समय यहाँसे भाग जा, वर्ना मैं तेरा शिर धड़से अलग कर दूँगा।"

चित्रगतिने उपेक्षापूर्ण हास्य करते हुए कहा :—"हे मूढ़! एक लोहका टुकड़ा हाथमें आ जानेसे तुझे इतना गर्व हो गया, कि तू अपने उस प्रतिस्पर्धीको रणसे भाग जानेको कहता है, जो तुझे घंटोंसे हँफा रहा है? इस शस्त्रके बूते पर लड़ना कोई वीरता नहीं है। यदि तेरी भुजाओंमें बल हो, तो इसे दूर रख दे और जितनी देर इच्छा हो, मुझसे आकर लड़ले।"

चित्रगतिके यह वचन सुनकर राज अनंगसिंह क्रोधसे, कुचले हुए सर्पकी भांति झल्ला उठा। उसने चित्रगति पर उस दिव्य खड्गसे वार करनेकी तैयारी की, परन्तु चित्रगति भी असावधान न था। उसने अपनी विद्याके बलसे चारों ओर अन्धकार फैला कर दिनकी रात बना दी। जिसप्रकार श्रावणकी अंधेरी घटामें कुछ सूझ नहीं पड़ता, उसी प्रकार अन्धकारके

कारण सब लोग किंकर्त्तव्य विमूढ़ बन गये। उन्हें अपने पास खड़े हुए मनुष्य भी आंखोंसे दिखायी न देते थे। चित्रगतिने जान बूझकर यह माया-जाल फैलाया था। अन्धकार होते ही वह लपक कर राजा अनंगसिंहके पास पहुँचा और उसके हाथसे वह दैवी खड्ग छीन लाया। इसके बाद वह उस स्थानमें गया जहाँ सुमित्रकी बहिन रक्खी गयी थी। वह उसे एक घोड़ेपर बैठाकर अपने साथ ले आया। और उसी क्षण अपनी सेनाके साथ वहाँसे नौ दो ग्यारह हो गया।

उसके चले जाने पर, उसकी इच्छासे, वह अन्धकार दूर हो गया। अन्धकार दूर होने पर राजाने देखा कि उसका वह दैवी खड्ग गायब है। न कहीं उसके शत्रुका पता है, न कहीं उसकी सेनाका। इसी समय उसे समाचार मिला कि सुमित्रकी वह बहिन भी गायब है, जिसे कमल हरण कर लाया था। अपनी इस पराजयसे, वह बहुत लज्जित हुआ। वह दैवी खड्ग हाथसे निकल जानेके कारण भी उसे कम दुःख न था, परन्तु इतने ही में उसे उस ज्योतिषीकी बात याद आगयी। उसने

कहा था कि जो आपके हाथसे आपका खड्ग छीन लेगा, उसीसे आपकी कन्याका विवाह होगा। इस बातके स्मरणसे उसका दुःख हलका हो गया और वह एकबार चित्रगतिसे मिलनेके लिये उत्कंठित हो उठा। परन्तु अब उसका पता पाना सहज न था। राजा इससे निराश हो गया। परन्तु इतने ही में उसे उस ज्योतिषीकी दूसरी बात स्मरण आ गयी। उसने यह भी कहा था, कि "सिद्धायतनको वन्दन करते समय उसपर पुष्पवृष्टि होगी।" यही एक ऐसी बात थी, जिससे उसका पता लग सकता था। वह इसी बात पर विचार करता हुआ अपने राज-महलको लौट आया।

उधर चित्रगतिने सुमित्रकी बहिनको ले जाकर सुमित्रको सौंप दिया। इससे उसे बहुत ही आनन्द हुआ। उसने चित्रगतिकी प्रशंसा कर उसे धन्यवाद दिया। इसके बाद चित्रगति उससे विदा ग्रहण कर अपने नगरको लौट गया।

सुमित्रके हृदयमें वैराग्यके बीजने तो पहले ही जड़ जमा ली थी। इधर उसकी बहिनका हरण होने पर

कामदेवका विषम रूप उसकी आंखोंके सामने आ गया। इससे जलती हुए अग्निमें मानो घृतकी आहुति पड़ गयी। वैराग्यकी प्रबलताके कारण उसने अपने पुत्रको राज्य-भार सौंप कर, सुयशा केवलीके निकट जाकर दीक्षा लेली।

दीक्षा ग्रहण करनेके बाद पहले बहुत दिनोंतक सुमित्र अपने गुरुदेवके निकट शास्त्राभ्यास करता रहा। इसके बाद उनकी आज्ञा प्राप्त कर वह सर्वत्र अकेला विचरण करने लगा। कुछ दिनोंके बाद विचरण करता हुआ वह मगध देशमें जा पहुँचा। वहाँ एक नगरके बाहर उसने कायोत्सर्ग करना आरम्भ किया। इसी समय उसका सौतेला भाई पद्म कहींसे घूमता-घामता हुआ वहाँ आ पहुँचा। उसकी दृष्टि सुमित्र पर जा पड़ी। वह ध्यानावस्थामें पर्वतकी भांति स्थिर बैठा था। उसे देखते ही उसकी प्रतिहिंसा-वृत्ति जागृत हो उठी। उसने कानतक धनुष खींचकर इतने जोरसे एक बाण मारा, कि सुमित्र मुनिका हृदय छिन्न-भिन्न हो गया। वे अपने मनमें कहने लगे :—"यह बेचारा अपने आत्माको

नरकमें डालकर मुझे स्वर्ग भेज रहा है। इसलिये इससे बढ़ कर मेरा हितैषी और कौन हो सकता है ? मैंने इसकी इच्छानुसार इसे राज्य न दिया था, इसीलिये यह मुझसे असन्तुष्ट हो गया था, मुझे विश्वास है कि अब वह इसके लिये मुझे क्षमा कर देगा।" इस प्रकार धर्म-ध्यान करते हुए नमस्कार मन्त्रका स्मरण कर सुमित्र मुनि कालके कराल गालमें प्रवेश कर गये। मृत्युके बाद वे ब्रह्म देवलोकमें सामानिक देव हुए। पद्म उन्हें बाण मारकर ज्योंहीं वहाँसे भागने लगा, त्योंही उसे एक सर्पने डस लिया। इससे तुरन्त उसकी मृत्यु हो गयी और वह सातवें नरकमें पड़ कर अपना कर्म-फल भोगने लगा।

उधर सुमित्रकी मृत्युसे चित्रगतिको बहुत ही दुःख हुआ। उसने अपने अशान्त हृदयको शान्त करनेके लिये सिद्धायतनकी वन्दना करना स्थिर किया और वह सदल-बल शीघ्र ही वहाँ जा पहुँचा। उस समय वहाँ और भी अनेक विद्याधर एकत्र थे। राजा अनङ्गसिंह भी रत्नवतीको साथ लेकर उस महान तीर्थकी वन्दना करने आया था।

चित्रगतिने अत्यन्त भक्तिके साथ विविध प्रकारसे शाश्वत अरिहन्तकी पूजा की। अवधि-ज्ञानसे यह सब वृत्तान्त सुमित्रदेवको भी ज्ञात हुआ। इसलिये उसने अन्य देवताओंके साथ वहाँ आकर चित्रगति पर आकाशसे पुष्प-वृष्टि की। चित्रगतिकी यह महिमा देखकर विद्याधरोंको बहुत आनन्द हुआ और राजा अनंगसिंहको भी मालूम हो गया कि यही रत्नवतीका भावी पति है।

सुमित्रदेवने इस अवसर पर अपने प्रिय मित्रको अपना परिचय दे देना उचित समझा, इसलिये उसने प्रत्यक्ष होकर चित्रगतिसे पूछा :—"हे चित्रगति! क्या तुम मुझे पहचानते हो?"

चित्रगतिने कहा :—"हाँ, मैं आपके विषयमें इतना अवश्य जानता हूँ कि आप एक महान देव हैं।"

चित्रगतिका यह उत्तर सुन कर सुमित्र देवको हँसी आ गयी। उसने अपना वास्तविक परिचय देनेके लिये सुमित्रका रूप धारण किया, उसका यह रूप देखते ही चित्रगति उसे पहचान गया और दौड़ कर उसे हृदय से लगा लिया। साथ ही उसने कहा :—"हे मित्र!

मैं आपको कैसे भूल सकता हूँ! आपहीके प्रसादसे तो मुझे धर्मकी प्राप्ति हुई है।"

सुमित्रने भी विवेक दिखलाते हुए कहा :—"हे चित्रगति! आपने मुझ पर जो उपकार किया है, उसके सामने यह सब किसी हिसाबमें नहीं। यदि आपने मुझे जीवन-दान न दिया होता, तो मुझे धर्मप्राप्तिका अवसर ही न मिलता। उस अवस्थामें यह देवत्व तो दूर रहा, मैं प्रत्याख्यान और नमस्कार रहित मनुष्यत्वसे भी वञ्चित रह जाता।"

इस प्रकार वे दोनों मुक्त-कण्ठसे एक दूसरेकी प्रशंसा कर रहे थे। उनके इस अपूर्व मिलनका दृश्य वास्तवमें दर्शनीय था। वहाँ चक्रवर्ती सूर आदिक जो विद्याधर राजा उपस्थित थे, वे भी उन दोनोंकी मुक्त-कण्ठसे प्रशंसा करने लगे। चित्रगतिका अलौकिक रूप और गुण देख कर रत्नवती भी उसपर मुग्ध हो गयी और उसे अनुरागपूर्ण दृष्टिसे देखने लगी।

राजा अनंगसिंह पुत्रीकी यह अवस्था देखकर अपने मनमें कहने लगे :—"उस ज्योतिषीने जो कुछ कहा था,

यह अक्षरशः सत्य प्रमाणित हुआ, क्योंकि इसी चित्रगति ने मेरा खड्ग छीन लिया था, इसी पर आकाशसे पुष्प-वृष्टि हुई है और इसी पर मेरी पुत्रीको अनुराग उत्पन्न हुआ है। निःसन्देह, यही रत्नवतीका भावी पति है। मुझे अब शीघ्र ही इससे रत्नवतीका व्याह कर देना चाहिये, परन्तु यहाँ पर देवस्थानमें विवाह विषयक बातचीत करना ठीक नहीं। नगरमें पहुँचनेके बाद इसकी चर्चा करना उचित होगा।"

यह सोच कर राजा अनंग सिंह सपरिवार अपने नगरको लौट आये। सुमित्रदेव तथा अन्यान्य विद्यारोंका सत्कार कर, चित्रगति भी अपने पिताके साथ अपने नगरको वापस चला गया।

शीघ्र ही राजा अनंगसिंहने अपने प्रधान मन्त्रीको चित्रगतिके पिता राजा सूरकी सेवामें प्रेषित किया। उसने राज-सभामें उपस्थित हो, उन्हें प्रणाम करके कहाः—"हे स्वामिन्! आपके पुत्र चित्रगति और हमारी राज-कुमारी रत्नवती—दोनों रत्नके समान हैं। इनका विवाह कर देनेसे मणि-काञ्चन योगकी कहावत चरितार्थ हो

सकती है। हमारे महाराज इस सम्बन्धके लिये बहुत ही उत्सुक हैं। यदि आप भी अपनी सम्मति प्रदान करेंगे तो हमलोग अपनेको कृत-कृत्य समझेंगे।"

राजा सूरने अनंगसिंहके मन्त्रीकी यह प्रार्थना सहर्ष स्वीकार ली। कुछ दिनोंके बाद शुभ मुहूर्तमें उन दोनों-का विवाह कर दिया गया। रत्नवती चित्रगतिको पति-रूपमें पाकर बहुत ही प्रसन्न हुई। वे दोनों गार्हस्थ्य सुख उपभोग करते हुए आनन्दपूर्वक अपने दिन निर्गमन करने लगे।

उधर धनदेव और धनदत्तके जीव च्युत होकर सूरके यहाँ पुत्र-रूपमें उत्पन्न हुए थे। चित्रगति अपने इन छोटे भाइयोंको बहुत ही प्रेम करता था। उनके नाम मनोगति और चपलगति रक्खे गये थे। बड़े होनेपर उन्हें भी समुचित शिक्षा दी गयी थी। विवाहके कई वर्ष बाद चित्रगति अपनी पत्नी और लघु बन्धुओंके साथ नन्दी-श्वरादि महातीर्थोंकी यात्रा करने गये। वहाँसे वापस लौटने पर उसके पिता सूरने उसे सिंहासन पर बैठा कर स्वयं दीक्षा लेली। चित्रगति योग्य पिताका पुत्र था।

इसलिये उसने अनेक खेचर राजाओंको वशमें कर अपने राज्यका विस्तार किया। साथ ही अपने प्रजा-प्रेम और अपनी न्याय-प्रियताके कारण वह शीघ्र ही प्रजाका प्रिय-पात्र बन गया।

चित्रगतिके एक जागिरदारका नाम मणिचूड़ था। उसकी मृत्यु हो जानेपर उसके शशि और शूर नामके दोनों पुत्र राज्य प्राप्तिके लिये आपसमें युद्ध करने लगे। चित्रगतिने उनके राज्यका बंटवारा कर दिया, ताकि सदाके लिये उनके वैमनस्यका अन्त हो जाय। उन्होंने उन्हें समझा-बुझाकर भी राह पर लानेकी चेष्टा की। उस समय तो ऐसा मालूम हुआ कि इस व्यवस्थासे उन्हें सन्तोष हो गया है और अब वे एक दूसरेसे न लड़ेंगे, परन्तु शीघ्रही उन दोनोंमें फिर घोर युद्ध हो गया, जिससे उन दोनोंको अपने-अपने प्राणोंसे हाथ धोना पड़ा।

चित्रगतिके हृदय पर इस घटनाका अत्यधिक प्रभाव पड़ा। उनका हृदय वैराग्यसे पूर्ण हो गया। वे अपने मनमें कहने लगे :—"अहो! यह संसार बहुतही विषम है। इसमें कोई सुखी नहीं।" वे ज्यों-ज्यों विचार

करते गये, त्यों-त्यों उनका वैराग्य प्रबल होता गया। फलतः उन्होंने पुरन्दर नामक अपने बड़े पुत्रको राज्य-भार सौंपकर दमधर नामक आचार्यके निकट दीक्षा ले ली। रत्नवती तथा उनके दोनों लघु बन्धुओंने भी उनका अनुकरण किया। चित्रगतिने दीर्घकाल तक चारित्र पालन कर अन्तमें पादोपगमन अनशन किया, जिसके फलस्वरूप उनकी मृत्यु हो गयी। मृत्यु होनेपर माहेन्द्र देवलोकमें वे महान देव हुए। उनके दोनों छोटे भाई और रत्नवतीको भी देवत्व प्राप्त हुआ। वे सब वहाँ पर स्वर्गीय सुख उपभोग करने लगे।

तीसरा परिच्छेद

पाँचवाँ और छठा भव

पश्चिम महा विदेहके पद्म नामक विजयमें सिंहपुर नामक एक नगर था। वहाँ हरिनन्दी नामक राजा राज करता था। उसकी रानीका नाम प्रियदर्शना था।

स्वर्गसे च्युत होनेपर चित्रगतिके जीवने उसके उदरसे पुत्र रूपमें जन्म लिया। राजाने बड़े प्रेमसे उसका जन्मोत्सव मनाया और उसका नाम अपराजित रक्खा। बड़े होने-पर उन्होंने निपुण शिक्षा गुरुओं द्वारा उसे विवध विद्या और कलाओंकी शिक्षा दिलायी। क्रमशः वह किशोरा-वस्था अतिक्रमण कर यौवनकी वसन्त-वाटिकामें विचरण करने लगा।

राजकुमार अपराजितकी मन्त्री-पुत्र विमलबोधसे घनिष्ठ मित्रता थी, अतः एक दिन वे दोनों क्रीड़ा करनेके लिये घोड़ेपर सवार हो नगरके बाहर निकल गये। दुर्भाग्यवश उनके घोड़े अशिक्षित थे, इसलिये वे जंगलकी ओर भाग गये। अन्तमें, जब वे भागते-भागते थक गये, तब एक स्थानमें रुक गये। राजकुमार और मन्त्री-पुत्र भी श्रान्त और क्लान्त हो उठे थे, इसलिये शीघ्रही वे अपने-अपने घोड़े परसे उतर पड़े और एक वृक्षके नीचे बैठ कर विश्राम करने लगे। जब वे कुछ स्वस्थ हुए तब उनका ध्यान आसपासके रमणीय दृश्योंकी ओर आकर्षित हुआ। राजकुमारने उन दृश्योंको देखकर विमलबोधसे कहा :—

"हे मित्र ! यदि यह अश्व हमलोगोंको यहाँ न भगा लाये होते तो यह सुन्दर स्थान हमलोग कैसे देख पाते। यदि हमलोग इस स्थानमें आनेके लिये मातापिताकी आज्ञा लेने जाते, तो मेरा विश्वास है कि वे भी इसके लिये हमें कदापि आज्ञा न देते !"

मन्त्री-पुत्रने कहा :—"हाँ, राजकुमार ! आपका कहना बिलकुल ठीक है ! वास्तवमें यह स्थान बहुतही मनोरम और दर्शनीय है। यहाँ आतेही मानो सारी थकावट दूर हो गयी। मुझे तो इच्छा होती है कि मैं यहीं पड़ा रहूँ और नगर लौटनेका नाम तक न लूँ।"

जिस समय राजकुमार और मन्त्री-पुत्रमें इसी तरहकी बातचात हो रही थी, उसी समय एक अपरिचित पुरुष राजकुमारके पास आकर खड़ा हो गया। उसका समूचा शरीर भयसे कांप रहा था। राजकुमारको देखते ही वह गिड़गिड़ा कर उनसे अपनी रक्षाकी प्रार्थना करने लगा। राजकुमारने उसे आश्वासन देकर उससे शान्त होनेको कहा। यह देखकर मन्त्री-पुत्रने राजकुमारसे कहा :—"हे मित्र ! इसकी रक्षा करनेके पहले हमें एक बार विचार

कर लेना चाहिये। यदि यह अन्यान्यी होतो इसकी रक्षा करना उचित नहीं।"

अपराजितने कहा :—"यह अन्यायी हो या न्यायी, हमें इसका विचार न करना चाहिये। शरणागतकी रक्षा करना क्षत्रियोंका परम धर्म है।"

राजकुमारकी यह बात अभी पूरी भी न होने पायी थी कि "मारो मारो" पुकारते और उसका पीछा करते हुए कई राज कर्मचारी वहाँ आ पहुँचे। उनके हाथमें नंगी तलवारें थी। उन्होंने राजकुमार और मन्त्री-पुत्रसे कहा :—"आपलोग जरा दूर हट जाइये। हम इस डाकू-सरदारको मारना चाहते हैं। इसने हमारे समूचे नगरको लूटकर तबाह कर डाला है!"

उनके यह वचन सुनकर राजकुमारने हँसते हुए कहा :—"यह हमारी शरणमें आया है। अब इसे इन्द्र भी नहीं मार सकते। आप लोगोंका तो कहना ही क्या है?"

यह सुनकर राजकर्मचारी आग बबूला हो उठे। वे अपनी तलवार खींचकर उस डाकू सरदारकी ओर झपट

पड़े। परन्तु राजकुमार भी असावधान न थे। वे भी अपनी तलवार खींचकर उन राज-कर्मचारियोंपर टूट पड़े। राज-कर्मचारियोंमें इतना साहस कहाँ कि वे सिंह-शावकके सामने ठहर सकें। दो चार हाथ दिखाते ही सारा मैदान साफ हो गया। वे भागकर अपने स्वामी कोसल-राजके पास पहुँचे और उन्हें सारा हाल कह सुनाया। वे भी डाकूके रक्षकों पर वेहतर नाराज हुए। उन्होंने उन्हें पराजित करनेके लिये अपनी विशाल सेना रवाना की, परन्तु अपराजितने देखते-ही-देखते उसके भी दांत खट्टे कर दिये। अपनी सेनाका यह पराजय-समाचार सुनकर कोसलराज आग बबूला हो उठे। इसवार वे स्वयं वहुत बड़ी सेना लेकर उन युवकोंको दण्ड देनेके लिये उनके सामने आ उपस्थित हुए। राजकुमारने इसवार कठिन मोर्चा देखकर उस चोरको तो मन्त्री-पुत्रके सिपुर्द कर दिया और वह अकेला ही उस समुद्र समान सेनामें घुसकर उसका संहार करने लगा। शीघ्रही उसे कोसलराजकी सेनामें एक ऐसा हाथी दिखायी दिया, जिसपर एक महावतके सिवा और कोई सवार न था। वह सिंहकी

तरह तड़पकर उसी क्षण उस हाथीके दांतों पर चढ़ गया और एकही हाथमें उसके कन्धे पर बैठे हुए महावत का काम तमाम कर डाला। इसके बाद वह उसी हाथी पर बैठकर बड़ी निपुणताके साथ शत्रु-सेनासे युद्ध करने लगा।

इसी समय कोसलराजके एक मन्त्रीकी दृष्टि उस पर जा पड़ी। उसे देखते ही उसने राजासे कहा :—"हे राजन्! इस युवकको तो मैं पहचानता हूँ। यह राजा हरिनन्दी का पुत्र है!"

मन्त्रीके यह वचन सुनकर राजाको बड़ाही आश्चर्य हुआ। उन्होंने उसी समय संकेत कर अपनी सेनाको युद्ध करनेसे रोक दिया। इसके बाद सैनिकोंसे घिरे हुए राजकुमारके पास पहुँच कर उन्होंने कहा :—"हे कुमार! तुम तो हमारे मित्र हरिनन्दीके पुत्र हो। तुम्हारा बल और रण-कौशल देखकर मैं बहुत ही सन्तुष्ट हुआ हूँ। सिंह-शावकके सिवा गजराजका मस्तक और कौन विदीर्ण कर सकता है? हे महानुभाव! तुमसे युद्ध करना हमारे लिये शोभाप्रद नहीं है। तुम हमारे घर चलो और

हमारा आतिथ्य ग्रहण करो। मैं अपने पुत्र और अपने मित्रके पुत्रमें कोई अन्तर नहीं समझता !"

इतना कह, राजकुमारको गले लगा, हाथी पर बैठाकर कोसलराज उसे अपने महलमें लिवा ले गये। मन्त्री-पुत्र भी उस शरणागत डाकूको छोड़कर राजकुमारके साथ कोशलराजके महलमें आया। वहाँपर दोनोंने कई दिन-तक राजाका आतिथ्य ग्रहण किया। कोसलराजके कनक-माला नामक एक कन्या भी थी। उसकी अवस्था विवाह योग्य हो चुकी थी, इसलिये कोसलराजने इस अवसरसे लाभ उठाकर राजकुमार अपराजितसे उसका विवाह कर दिया। इससे उन सबोंके आनन्दमें सौगुनी वृद्धि हो गयी। नगरमें भी कई दिनों तक बड़ी धूमधामसे आनन्दोत्सव मनाया गया। राजकुमार अपराजित अपने मित्र मन्त्री-पुत्रके साथ दीर्घकाल तक विविध सुखोंका रसास्वादन करते रहे।

बीच बीचमें उन्होंने कई बार राजासे विदा माँगी, परन्तु स्नेहवश कोसलराजने इन्हें जानेकी आज्ञा न दी। दोनोंने जब देखा कि इस तरह कोसलराजसे विदा ग्रहण

करना सहज नहीं है, तब एक दिन वे चुप-चाप वहाँसे चल पड़े।

जिस समय राजकुमार अपराजित और मन्त्री-पुत्र कोसलराजके नगरसे बाहर निकले, उस समय रातके बारह बज चुके थे। चारों ओर घोर सन्नाटा था। नगर-निवासी निद्रादेवीकी गोदमें पड़े हुए आनन्दपूर्वक विश्राम कर रहे थे, इसलिये उन दोनोंको नगर-त्याग करनेमें किसी प्रकार की कठिनाईका सामना न करना पड़ा। दोनोंने सहर्ष वहाँसे अपने नगरकी राह ली।

रास्तेमें एक स्थानपर कालिदेवीका मन्दिर था। उसके निकट पहुंचने पर राजकुमारने किसीके रोनेकी आवाज सुनी। उन्हें ऐसा मालूम हुआ मानो कोई स्त्री यह कहकर रो रही है कि—"क्या यह भूमि पुरुष रहित हो गयी है? क्या इस पृथ्वीपर अब कोई ऐसा वीर नहीं, जो इस हत्यारेसे मेरी रक्षा कर सके?" वे शीघ्रही लपक कर उस स्थानमें पहुँचे। उन्होंने देखा कि मन्दिरके अन्दर एक अग्निकुण्डके पास एक स्त्री बैठी हुई है और उसीके सामने एक विद्याधर नंगी तलवार लिये खड़ा है।
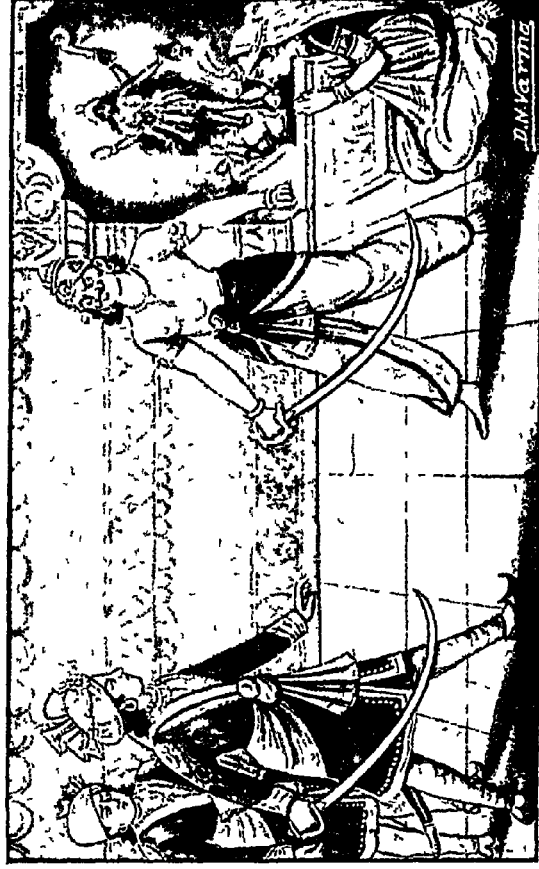
"हे नराधम ! इस अबलापर हाथ उठाते तुझे लज्जा नहीं आती ?

(पृष्ठ ५७)

सुन्दरी उसके भयसे थरथर काँप रही थी। राजकुमारको देखकर वह पुनः अपनी प्राण-रक्षाके लिये जोरसे चिल्ला उठी। राजकुमारने उसकी ओर आश्वासन भरी दृष्टिसे देखकर उस विद्याधरसे कहा :—"हे नराधम! अबलापर हाथ उठाते तुझे लज्जा नहीं आती? यदि तुझे अपने बलका कुछ भी घमण्ड हो तो मुझसे युद्ध करनेको तैयार हो जा! अब मैं तुझे कदापि जीता न छोड़ूँगा।"

राजकुमारकी यह ललकार सुनकर पहले तो वह विद्याधर कुछ लज्जित हुआ, किन्तु इसके बाद उसने कहा :—"हे युवक! मैं नहीं जानता कि तुम कौन हो, किन्तु मैं तुम्हारी चुनौती स्वीकार करता हूँ। मैं समझता हूँ कि तुम्हारी मृत्युही तुम्हें यहाँ खींच लायी है और इसीलिये तुमने मेरे कार्यमें बाधा देनेका साहस किया है।"

बस, फिर क्या था? दोनों एक दूसरेसे भिड़ पड़े। दोनों ही युद्ध विद्यामें निपुण थे, इसलिये एक दूसरेपर अस्त्र शस्त्रका प्रयोग करने लगे। यह युद्ध दीर्घकाल तक होता रहा, किन्तु कोई किसीको पराजित न कर सका। अन्तमें वे दोनों अस्त्र शस्त्र छोड़कर भुजा-युद्ध करने लगे।

उसके मुखसे एक भी शब्द न निकल सका। वह तो अपनी रक्षाके लिये कृतज्ञता प्रकट करना चाहती थी, परन्तु विधाताका विधान कुछ और ही था। राजकुमारका अलौकिक रूप देखतेही वह तन मनसे उसपर मुग्ध हो गयी। उसका हृदय उसके हाथसे निकल गया। वह अपनी आँखें सकुचाकर व्याकुलता पूर्वक जमीनकी ओर देखने लगी। उसे भी विद्याधरकी भाँति अपने तन-मनकी खबर न रही। परन्तु विद्याधर और उसमें यह अन्तर था कि विद्याधर चेतना रहित था, और वह चेतना होते हुए भी मूर्च्छित सी हो रही थी।

वीरता और क्रूरता भिन्न भिन्न चीजें हैं। राजकुमार अपराजित वीर होने परभी हृदयहीन न थे। उन्होंने शीघ्रही समुचित उपचार कर उस विद्याधरको स्वस्थ बनाया। उसे भलीभाँति होश आनेपर उन्होंने कहा :—"यदि अब भी तुम्हें युद्ध करनेका हौंसला हो, तो मैं तैयार हूँ ?"

विद्याधरने कहा :—"नहीं, अब मैं युद्ध करना नहीं चाहता। सच्चे वीर अपने विजेताका सम्मान करते हैं।

मुझे भी अब अपनी पराजय स्वीकार कर तुम्हारा आदर करना चाहिये। तुमने यहाँ आकर मुझे स्त्री-वधके पापसे बचाया है, इसलिये मैं तुम्हारा चिरऋणी रहूँगा। वास्तवमें तुमने मुझसे युद्ध कर मेरा अपकार नहीं, उपकारही किया है। परन्तु अब मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि मेरे वस्त्रमें एक मणि और कुछ जड़ी-बूटी बँधी हुई हैं, मणिको जलमें डुबोकर उसी जलसे उन जड़ी बूटियोंको घिस कर जख्मोंपर लगानेसे मैं पूर्ण रूपसे स्वस्थ हो जाऊँगा। दयाकर इतना उपकार और कीजिये, फिर मैं सहर्ष अपना रास्ता लूँगा।"

यह सुनकर राजकुमारने बड़ी खुशीके साथ विद्याधरका इलाज किया। जड़ीको घिसकर लगाते ही उसके सब जख्म अच्छे हो गये और ऐसा मालूम होने लगा मानो कुछ हुआ ही न था। उसे स्वस्थ देखकर राजकुमारने पूछा :—"क्या आप अपना और इस स्त्रीका परिचय देनेकी कृपा करेंगे?"

विद्याधरने कहा :—"मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं। यदि आप यह सब बातें सुनना चाहते हैं तो सहर्ष सुनिये।

मैं श्रीषेण नामक विद्याधरका पुत्र हूँ। मेरा नाम सुरकान्त है। यह स्त्री रथनूपुर नगरके राजा अमृतसेन की कन्या है। इसका नाम रत्नमाला है। एकबार एक ज्ञानीने बतलाया था कि हरिनन्दी राजाके अपराजित नामक राजकुमारसे इसका व्याह होगा। तबसे वह मन-ही-मन उसीको प्रेम करती थी। दूसरे की ओर आंख उठाकर देखती तक न थी। संयोगवश एकबार मैंने इसे देख लिया। मुझे इच्छा हुई कि इससे व्याह करना चाहिये, इसलिये मैंने इससे पाणिग्रहण की प्रार्थना की, किन्तु इसने मेरी प्रार्थनाको ठुकराते हुए कहा :—"या तो अपराजित ही मेरा पाणिग्रहण करेंगे या अग्निदेव ही अपनी गोदमें मुझे स्थान देंगे। इन दो के सिवा मेरे शरीरकी तीसरी गति नहीं हो सकती।" इसका यह उत्तर सुनकर मुझे क्रोध आ गया। और मैं यहाँ इस मन्दिरमें आकर दुःसाध्य विद्या की साधना करने लगा। इसके बाद मैंने फिर कई बार इससे प्रार्थना की, किन्तु जब इसने मेरी एक न सुनी, तब मैं इसका हरण कर इसे यहाँ उठा लाया। मैं कामान्ध हो गया था, मेरी विचार शक्ति नष्ट हो गयी.

थी। इसलिये मैं इसके टुकड़े कर अग्निकुण्डमें डाल देनेकी तैयारी कर रहा था। इतनेही में यहाँ आकर आपने इसकी प्राण-रक्षा की, साथ ही मुझे भी नरकमें जानेसे बचाया। सच पूछिये तो आपने हम दोनों पर बड़ाही उपकार किया है। हे महाभाग! यही मेरा और इस सुन्दरीका परिचय है। यदि आपत्ति न हो तो आप भी अब अपना परिचय देनेकी कृपा करें।"

विद्याधर की यह प्रार्थना सुनकर राजकुमारने एक मतलब भरी दृष्टिसे मन्त्री-पुत्रकी ओर देखा। मन्त्री-पुत्रने उनका तात्पर्य समझ कर विद्याधरको उनके नाम और कुलादिकका परिचय दिया। राजकुमारका प्रकृत परिचय पाकर रत्नमाला भी आनन्द से पुलकित हो उठी। उसे ऐसा मालूम होने लगा मानो परमात्माने ही उस-पर दया कर उसके इष्टको यहाँ भेज दिया है। वह इसके लिये उसे अनेकानेक धन्यवाद देने लगी।

इसी समय रत्नमालाको खोजते हुए उसकी माता कीर्तिमती और उसके पिता अमृतसेन भी वहाँ आ पहुँचे। उनके पूछने पर मन्त्री-पुत्रने उन्हें सारा हाल कह सुनाया।

उन्हें जब यह मालूम हुआ कि रत्नमालाके भावी पतिने ही संयोगवश वहाँ पहुँच कर उसकी रक्षा की है, तब उनके आनन्दका वारापार न रहा। उन्होंने उसी समय अपराजितके साथ रत्नमालाका व्याह कर दिया। सूर-कान्त पर राजा अमृतसेनको वड़ाही क्रोध आया, परन्तु अपराजितके कहनेसे उन्होंने उसका अपराध क्षमा कर दिया। इसके बाद राजा अमृतसेनने अपराजितसे अपने नगर चलने की प्रार्थना की, किन्तु अपराजितने इस बात-को अस्वीकार करते हुए कहा :—"इस समय आप मुझे क्षमा करिये। अपने नगर पहुँचने पर मैं आपको सूचना दूँगा, तब आप रत्नमालाको मेरे पास पहुँचा दीजियेगा। भविष्यमें यदि कभी इस तरफ आऊँगा, तो आपका आतिथ्य अवश्य ग्रहण करूँगा।"

इतना कह राजकुमारने राजा अमृतसेन, रत्नमाला और उसकी मातासे विदा ग्रहण की। विद्याधर सूरकान्त ने भी उसे प्रेम पूर्वक विदा किया। उसने चलते समय अपराजितको पूर्वोक्त मणि और जड़ी-बूटी तथा मन्त्री-पुत्र को वेष बदलने की गुटिका अपनी ओरसे भेट दीं।

राजकुमार और मन्त्री-पुत्रने उसकी यह भेट सहर्ष स्वीकार कर ली। इसके बाद सब लोगोंने एक दूसरेसे विदा हो अपने-अपने स्थानके लिये प्रस्थान किया।

राजकुमार अपराजित और मन्त्री-पुत्रको इस स्थानसे आगे बढ़ने पर एक बहुत बड़ा जंगल मिला। उसमें कुछ दूर जाने पर राजकुमारको प्यास मालूम हुई, इसलिये राजकुमारको एक आम्र वृक्षके नीचे बैठा कर मन्त्री-पुत्र जल लेने चला गया। परन्तु थोड़ी देरमें जब वह जल लेकर वापस आया, तब उसने देखा कि राजकुमारका कहीं पता नहीं है। वह अपने मनमें यह सोचकर कि शायद मैं भूलकर किसी दूसरे वृक्षके नीचे चला आया हूँ, अतः वह इधर-उधरके अन्य वृक्षोंके नीचे उन्हें खोजने लगा, पर कहीं भी राजकुमारका पता न चला। अन्तमें वह निराश होकर एक स्थानमें बैठ गया। मानसिक व्याकुलताके कारण उसे मूर्छा आ गयी। वायुके शीतल झकोरों के कारण कुछ देरमें होश आने पर मन्त्री-पुत्र पुनः राजकुमारके वियोगसे व्याकुल हो उठा। वह दोनों नेत्रोंसे अश्रुधारा बहाते हुए कहने लगा—"हे कुमार! तुम कहाँ

हो ? क्या इस प्रकार अदृश्य होकर तुम मेरी परीक्षा ले रहे हो ? हे मित्र ! मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि तुम जहाँ भी रहोगे, सुखी रहोगे। संसारमें कोई भी मनुष्य तुम्हारा अपकार नहीं कर सकता, किन्तु तुम्हारे वियोगसे मेरा हृदय विदीर्ण हुआ जाता है। हा ! राजकुमार ! तुम कहाँ हो ?"

इस प्रकार मन्त्री-पुत्र बहुत देर तक विलाप करता रहा, परन्तु इसका कोई फल न हुआ। वह पुनः उठ खड़ा हुआ और चारों ओर उसकी खोज करता हुआ नन्दीपुर नामक एक नगरके समीप पहुँचा। वह चलते-चलते थक गया था, इसलिये नगरके बाहर एक बगीचेमें बैठकर विश्राम करने लगा। इसी समय दो विद्याधरोंने उसके पास आकर कहा :—"हे मन्त्री-पुत्र ! भुवनभानु नामक एक विद्याधर राजा समीपके जंगलमें अपनी विद्याके बलसे एक महल खड़ाकर उसीमें सपरिवार रहता है। उसे कमलिनी और कुमुदिनी नामक दो कन्याएँ हैं। भुवनभानुको एक ज्ञानीने बतलाया, कि उनका विवाह आपके मित्र अपराजितके साथ होगा। उसका यह

वचन सुनकर उन्होंने हमें उसे ले आनेकी आज्ञा दी शीघ्रही हमलोग उसकी खोजमें निकल पड़े। जंगलमें पहुँचतेही तुम दोनोंपर हमारी दृष्टि पड़ी। इसके बाद जिस समय तुम जल लेने गये, उस समय मौका देखकर हमलोग उसे अपने स्वामीके पास उठा ले गये। हमारे स्वामी उसे देखतेही उठकर खड़े हो गये और अत्यन्त सम्मानपूर्वक उन्होंने उसे अपने आसनपर बैठाया। इसके बाद उन्होंने नाना प्रकारसे राजकुमारकी स्तुति कर उससे अपनी दोनों कन्याओंका पाणि-ग्रहण करनेकी प्रार्थना की। परन्तु राजकुमार तुम्हारे वियोगसे व्याकुल हो रहे थे, इसलिये उन्होंने उनकी प्रार्थनाका कोई उत्तर न दिया वे वारंवार तुम्हारा स्मरण करते थे, इसलिये हमारे स्वामीने तुम्हें भी लिवा लानेकी आज्ञा दी है। बड़ी खोजके बाद हमें तुम्हारा पता लगा है। हे महाभाग! अब आप उठिये और जल्दी हमारे साथ चलिये। आपके बिना राजकुमारका व्याह रुक गया है।"

विद्याधरोंके यह वचन सुनकर मन्त्री-पुत्रके आनन्दका वारापार न रहा। वह शीघ्र ही उन दोनोंके साथ चल

पड़ा और राजा भुवनभानुके यहाँ अपराजितसे जा मिला। उसे देखकर राजकुमारका सारा दुःख दूर हो गया और उसने सहर्ष भुवनभानुकी दोनों कन्याओंका पाणिग्रहण कर लिया। राजा भुवनभानुने अपने इन दोनों अतिथियोंको कई दिन अपने यहाँ रखकर उनका भलीभांति आतिथ्य किया। इसके बाद राजकुमार अपने मित्रके साथ उनसे विदा ग्रहण कर वहाँसे चल पड़े। मार्गमें उन्हें श्रीमन्दिर नामक एक मनोहर नगर मिला। उसकी रमणीयता देखकर उन दोनोंने कुछ दिनोंतक वहाँ रह जाना स्थिर किया। सूर्य्यकान्तके दिये हुए मणि द्वारा सभी आवश्यक पदार्थ प्राप्त कर वे दोनों वहाँ रहने लगे।

एक दिन राजकुमारने देखा कि उस नगरमें भयंकर हाहाकार मचा हुआ है। नगरके अधिकारीगण जनताको शान्त करनेकी चेष्टा कर रहे हैं, उसे समझा बुझा रहे हैं, किन्तु कोई उनकी बातों पर ध्यान नहीं देता। जिसे जिधर जगह मिलती है, वह उधर ही भाग रहा है। जनताकी यह अवस्था देखकर राजकुमारने अपने मित्रको

वास्तविक घटनाका समाचार लानेके लिये बाजारमें भेजा। उसने वापस आकर राजकुमारसे कहा,—"हे मित्र! इस नगरीके राजाका नाम सुप्रभ है। उसे किसीने छुरी मार दी है। लोग कहते हैं कि उसके बचनेकी कोई आशा नहीं। उस राजाका कोई उत्तराधिकारी ऐसा नहीं है, जो राज्यका समुचित प्रबन्ध करे। प्रायः ऐसे मौकोंपर राज्यके शत्रु नगर पर आक्रमण कर दिया करते हैं। इसीलिये नगर निवासी इधर-उधर भाग रहे हैं।" यह समाचार सुनकर राजकुमारको बहुत ही आश्चर्य और दुःख हुआ।

उधर उसी नगरमें कामलता नामक एक प्रसिद्ध गणिका रहती थी। उसके पास संरोहण औषधि थी। उसके द्वारा वह अनेक आहत व्यक्तियोंको आराम कर चुकी थी। राजा पर भी उसने अपनी यह औषधि आजमाई, परन्तु राजाका जख्म ऐसा भीषण था, कि उस औषधिने भी कोई काम न किया। उत्तरोत्तर राजाकी अवस्था बिगड़ते देखकर कामलताने प्रधान मन्त्रीसे कहा:—"हे मन्त्रीराज! इस नगरमें साक्षात देव

समान एक परदेशी आदमी आया हुआ है। वह अपने जीवन निर्वाहके लिये किसी प्रकारका व्यवसाय या उद्योग नहीं करता, फिर भी उसके दिन बड़े आनन्दमें कट रहे हैं। इसलिये वह बहुत ही प्रभावशाली मालूम होता है। मैं समझती हूँ कि उसके पास कोई औषधि या यन्त्र-मन्त्र अवश्य होगा। आप उसके पास जाइये शायद वह महाराजको आराम कर दे!"

कामलताके यह वचन सुनकर मन्त्रीजी उसी समय अपराजितके पास पहुँचे और अनेक प्रकारसे विनय अनुनय कर उन्हें महाराजके पास लिवा लाये। अपराजितने राजाको देखा। उनकी अवस्था अभी आशा जनक थी। इसलिये अपराजितने मौका देखकर उस मणिके जलमें जड़ीको घिसकर ज्योंही राजाके जख्म पर लगाया, त्योंही वे आराम होकर इस तरह उठ बैठे, मानो निद्रासे उठ रहे हों। भली-भाँति स्वस्थ होने पर राजाने अपराजित का परिचय पूछा। मन्त्री-पुत्रने तुरन्त राजाका सर्व हाल कह सुनाया। उसे सुनकर सुप्रभ राजा प्रसन्न हो उठे। उन्होंने अपराजितको गले लगा कर कहा,—"अहो!

आप तो मेरे मित्र राजा हरिनन्दीके पुत्र हैं। मुझे खेद है कि आप इतने दिनोंसे मेरे नगरमें हैं, फिर भी मैं आपका पता न पा सका। आपको साधारण प्रजाजन-की भाँति नगरमें न रह कर मेरे महलमें आकर रहना चाहिये था।"

इसके बाद सुप्रभ राजाने अपराजित और उनके मित्रको कई दिन तक अपने यहाँ रखकर उनका आतिथ्य-सत्कार किया। उनके रम्भा नामक एक परम रूपवती कन्या थी। उन्होंने अपराजितके साथ उसका विवाह भी कर दिया। कुछ दिन अपनी इस पत्नीके साथ मौज-कर अपराजित यहाँसे भी बिदा हो आगेके लिये चल पड़े।

श्रीमन्दिर छोड़नेके कई दिन बाद राजकुमार अप-राजित और मन्त्री-पुत्र कुण्डलपुर नामक एक नगरमें जा पहुँचे। यहाँ एक उद्यानमें उन्हें केवली भगवानके दर्शन हुए। उन्हें वन्दन कर उनका धर्मोपदेश सुननेके बाद राजकुमारने उनसे पूछा,—"हे भगवन्! मैं भव्य हूँ या अभव्य?"

केवली भगवानने कुछ विचार कर कहा :—"हे

राजकुमार! तुम भव्य हो। पाँचवे जन्ममें तुम बाईसवें तीर्थंकर होगे और यह तुम्हारा मित्र गणधर होगा।"

केवली भगवानके यह वचन सुनकर दोनों जन बहुत ही प्रसन्न हुए। वे कई दिन तक वहाँ रहे और मुनिराज की सेवा करते रहे। इसके बाद जब मुनिराज वहाँसे विहार कर गये, तब वे भी वहाँसे चल पड़े और स्थान-स्थान पर चैत्य-वन्दन करते हुए इधर-उधर विचरण करने लगे।

उधर जनानन्दपुरमें जितशत्रु नामक राजा राज्य करते थे। उनकी रानीका नाम धारिणी था। वह गर्भ-वती थी। यथा समय उसके उदरसे रत्नवतीने पुत्री रूप में जन्म लिया। उसके पिताने उसका नाम प्रीतिमती रक्खा। जब प्रीतिमतीकी अवस्था कुछ बड़ी हुई, तब उसकी शिक्षा-दीक्षाका प्रबन्ध किया गया। प्रीतिमतीकी बुद्धि बहुत ही तीव्र थी, इसलिये अल्पकालमें ही वह अनेक विद्या और कलाओंमें पारंगत हो गयी। इसके बाद क्रमशः जब उसने यौवनावस्थामें पदार्पण किया, तब राजा उसकी विवाह-चिन्तासे व्याकुल हो उठे। ऐसी रूपवती और गुणवती पुत्रीको हर किसीके गले मढ़ देना

उन्होंने उचित न समझा। उन्होंने स्थिर किया कि इसका विवाह इसकी इच्छानुसार किसी योग्य वरसे ही करूँगा। निदान, एक दिन उन्होंने उसे एकान्तमें बुलाकर पूछा,—"हे पुत्री! तुम्हें किसके साथ व्याह करना पसन्द है?"

प्रीतिमतीने सकुचाते हुए शिर झुकाकर कहा,—"हे पिताजी! मैं उसीसे व्याह करना पसन्द करती हूँ, जो कला-कौशलमें मुझसे अधिक निपुण हो। यदि कोई पुरुष इस विषयमें मुझे जीत लेगा तो मैं सदाके लिये उसकी दासी बन जाऊँगी।"

राजाने कहा:—"अच्छा, ऐसा ही होगा।"

धीरे-धीरे प्रीतिमतीकी इस प्रतिज्ञाका समाचार चारों ओर फैल गया। वह रूप और गुणमें देवकन्याओं को भी मात करती थी, इसलिये दूर-दूरके राजकुमार उसका पाणिग्रहण करनेके लिये लालायित हो रहे थे। उसकी इस प्रतिज्ञाका समाचार पाकर वे सब जोरोंसे कलाकौशलका अभ्यास करने लगे, जिससे इस कठिन परीक्षामें उन्हींकी विजय हो।

राजा जितशत्रुने यथासमय प्रीतिमतीके स्वयंवरकी तैयारी की। नगरमें बड़ी सजावटके साथ एक मण्डप बनाया गया और उसमें भिन्न-भिन्न राजाओंके लिये सुशोभित मञ्च और आसन सजाये गये। महाराजका निमन्त्रण पाकर दूर दूरके राजे महाराजे अपने-अपने राजकुमारोंके साथ स्वयंवरमें भाग लेनेके लिये आ उपस्थित हुए। केवल राजा हरिनन्दी न आये, क्योंकि वे पुत्र-वियोगके कारण सदैव दुःखित रहते थे।

राजकुमार अपराजितको इस स्वयंवरका कोई हाल मालूम न था, किन्तु दैवयोगसे घूमते-घामते वे भी अपने मित्रके साथ वहाँ आ पहुँचे। स्वयंवरकी चहल-पहल देखकर उन्होंने अपने मित्र विमलबोधसे कहा :—"हे मित्र! हमलोग बहुत अच्छे समय पर यहाँ आ पहुँचे हैं। यदि हमलोग यहाँ ठहर जायँगे, तो देश-देशान्तरके राजकुमारों का कौशल देखनेके अलावा हमलोग उस राजकुमारीको भी देख सकेंगे, जो कलासे इतना प्रेम रखती है।"

मन्त्री-पुत्रने भी राजकुमारके प्रस्तावका अनुमोदन किया, इसलिये वे दोनों वहीं ठहर गये। पाठकोंको

मालूम ही है कि सूरकान्तने मंत्री-पुत्रको वेश परिवर्तनकी एक गुटिका भेट दी थी। स्वयंवरके दिन अपराजितने उसके सहारे अपना वेश बदल डाला, जिससे उन्हें कोई पहचान न सके। इसके बाद वे दोनों दर्शकोंके मञ्चपर एक स्थानमें जा बैठे। उनके विकृत रूपके कारण किसीका ध्यान उनकी ओर आकर्षित न हुआ।

यथा समय राजकुमारी प्रीतिमतीने स्वयंवरवाले मण्डपमें प्रवेश किया। उसने दिव्य वस्त्रालङ्कार धारण किये थे। वह सखियोंके झुण्डसे घिरी हुई थी, किन्तु उसके दोनों ओर चमर ढल रहे थे, जिससे वह आसानीसे पहचानी जा सकती थी। राजाओंके सामने पहुँचनेपर उसकी प्रधान परिचारिका भिन्न-भिन्न राजाओंको दिखा-दिखाकर उनका परिचय प्रदान करने लगी। उसने कहा :—"देखो सखी! यहाँपर अनेक गुणवान, रूपवान और कलाकुशल राजकुमार तथा राजे महाराजे एकत्र हुए हैं। यह देखिये, कदम्ब देशके राजा भुवनचन्द्र हैं, जो पूर्व दिशाके भूषण रूप हैं। यह दक्षिण दिशाके अलङ्कार रूप समरकेतु राजा हैं। उत्तर दिशाके कुबेर समान यह

कुबेरराज हैं। जिनकी कीर्तिलता दूर दूर तक फैली हुई है, ऐसे यह सोमप्रभ राजा हैं। इनके अतिरिक्त धवल, शूर और भीम आदिक नरेश भी आये हुए हैं। यह विद्याधरोंके स्वामी राजा मणिचूड़ हैं। यह रत्नके समान कान्तिवाले राजा रत्नचूड़ हैं। यह दीर्घ बाहु मणिप्रभ राजा हैं। और यह सुमन, सूर, सोम आदिक खेचर राजा हैं। हे सखी! इन सब कलाविदोंको देखकर भलीभांति इनकी परीक्षा कर लो, फिर जिसे पसन्द करो उसे अपनी वरमाल अर्पण करो।"

इस प्रकार सखीने प्रीतिमतीको सभामण्डपके समस्त राजाओंका परिचय दिया। उस समय प्रीतिमती जिस राजाकी ओर देखती वही कामदेवके बाणसे घायल हो छट-पटाने लगता। अन्तमें उसने सरस्वतीकी भांति वीणा-विनिन्दित कण्ठस्वरसे पूर्व पक्ष ग्रहण कर वाद-विवाद करना आरम्भ किया। उसे सुनकर समस्त भूचर और खेचर राजा हतबुद्धि हो गये। किसीमें भी ऐसी शक्ति न थी, जो उसके प्रश्नोंका उत्तर दे सके। सब लोगोंने निराश हो, मन-ही-मन पराजय स्वीकार कर, अपना शिर झुका लिया।

सभाकी यह अवस्था देखकर राजा जितशत्रु बड़ी चिन्तामें पड़ गये। वे अपने मनमें कहने लगे :—"हा दैव! अब मैं क्या करूँ? सभामें एकसे एक विद्वान राजे महाराजे उपस्थित हैं, परन्तु इनमेंसे कोई भी प्रीतिमतीके प्रश्नोंका उत्तर नहीं देता। मानों सबोंके मुँहमें ताला लग गया है। यदि मैं जानता कि यह अवस्था होगी, तो इस स्वयंवरका आयोजन ही न करता। इसकी अपेक्षा तो किसीके साथ राज-कन्याका चुपचाप विवाह कर देना ही अच्छा था। इतना सब करनेके बाद अब वह भी नहीं हो सकता। क्या अब प्रीतिमती कुमारी ही रह जायगी? क्या विधाताने उसके लिये पतिकी सृष्टि ही नहीं की?"

राजाको इस प्रकार चिन्तित देखकर प्रधान मन्त्रीने उसे धैर्य देते हुए कहा :—"हे राजन्! आप इतनी चिन्ता क्यों कर रहे हैं? बहुरत्ना वसुन्धरा! "यदि आज प्रीतिमतीके लिये उपयुक्त वर नहीं मिलता, तो हमें यह न मान लेना चाहिये कि कभी मिलेगा नहीं। अब आप यह घोषणा कर दीजिये, कि कोई भी राजकुमार या

साधारण पुरुष, जो प्रीतिमतीको वाद-विवादमें जीत लेगा, उसीके साथ उसका व्याह कर दिया जायगा। मुझे विश्वास है कि इस घोषणासे स्वयंवरमें कोई-न-कोई उपयुक्त वर मिलही जायगा, साथही वर्तमान अवस्थामें जो हँसी होनेका डर है, वह भी इससे न रहेगा।"

मन्त्रीकी यह सलाह राजाको पसन्द आ गयी, इसलिये उन्होंने तुरन्त उपरोक्त प्रकारकी घोषणा करा दी। यह घोषणा सुनकर राजकुमार अपराजित अपने मनमें कहने लगे :—"यद्यपि वाद-विवादमें स्त्रीको जीतने पर भी पुरुषका गौरव नहीं बढ़ सकता, तथापि मैं उसे जीतनेकी चेष्टा अवश्य करूँगा। उसके प्रश्नोंका उत्तर न दे सकना पुरुषोंके लिये लज्जाकी बात है। इसमें उनका अपमान है, उनकी हीनता है। यह कलंक अवश्य दूर करूँगा।"

यह सोचकर अपराजित तुरन्त प्रीतिमतीके सामने आ खड़े हुए। इस समय उन्होंने बहुत ही साधारण कपड़े पहन रक्खे थे, साथ ही अपना रूप भी विकृत बना लिया था, इसलिये देखनेमें वे उतने सुन्दर न

मालूम होते थे, फिर भी पूर्वजन्मके स्नेहानुभावके कारण प्रीतिमती उन्हें देखते ही उनपर अनुरक्त हो गयी। इसके बाद यथाविधि वाद-विवाद आरम्भ हुआ। प्रीतिमतीने पूर्वपक्ष लिया, परन्तु अपराजित इससे विचलित न हुए। उन्होंने उसके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए इतनी सुन्दरतासे उसकी युक्तियोंका खण्डन किया, कि वह अवाक् बन गयी। उसने उसी क्षण अपनी पराजय स्वीकार कर राजकुमारके गलेमें जयमाल पहना दी।

परन्तु राजकुमारकी यह विजय देखकर समस्त भूचर और खेचर राजा ईर्ष्याग्निसे जल उठे। वे कहने लगे :— "क्या हमारे रहते हुए यह दरिद्री इस राजकन्याको ले जायगा? हम यह कदापि न होने देंगे। इतना कह वे सब शस्त्रास्त्रसे सज्जित हो राजकुमार पर आक्रमण करने लगे। उनकी सेना भी इधर-उधर दौड़धूप करने लगी। राजकुमार इस युद्धके लिये तैयार न थे किन्तु ज्योंही राजाओंने रंग बदला, त्योंही वे एक हाथीके सवारको मारकर उसपर चढ़ बैठे और उसके हौदेमें जो शस्त्रास्त्र रक्खे थे, उन्हींको लेकर वे युद्ध करने लगे। कुछ देर

बाद इसी तरह एक रथके सवारको मारकर उन्होंने उस रथपर कब्जा कर लिया और उसपर बैठकर वे युद्ध करने लगे। इस प्रकार कभी रथपर कभी हाथीपर और कभी जमीनपर रहकर युद्ध करनेसे वे एक होने पर भी ऐसे मालूम होने लगे मानो कई राजकुमार युद्ध कर रहे हैं। उन्होंने अपने विचित्र रण-कौशलसे थोड़ी ही देरमें शत्रु-सेनाको इस तरह छिन्न-भिन्न कर डाला कि उसमें वेतरह भगदड़ मच गयी।

परन्तु भूचर और खेचर राजाओंके लिये यह बड़ी लज्जाकी बात थी। एक तो राजकन्या द्वारा वे वाद-विवादमें पराजित हुए थे, दूसरे अब राजकुमार अपराजित, जिसे वे कोई साधारण व्यक्ति समझ रहे थे, अकेला ही उनका मान-भङ्ग कर रहा था। वे अपनी इस पराजयसे झल्ला उठे और बिखरी हुई सेनाको एकत्र कर फिरसे युद्ध करने लगे। इसबार राजकुमारने राजा सोमप्रभका हाथी छीन लिया और उसपर बैठकर वे शत्रुसेना का संहार करने लगे।

इस युद्धमें भी वे न जाने कितने सैनिकोंका काम

तमाम कर डालते, परन्तु सौभाग्यवश उनके कितनेही लक्षण और तिलक आदि देखकर राजा सोमप्रभने उनका पहचान लिया। उन्होंने राजकुमारको प्रेमपूर्वक गले लगाकर कहा :—"हे कुमार! मैंने तुम्हें पहचान लिया! तुम तो मेरे भानजे हो!"

राजा सोमप्रभके मुखसे राजकुमार अपराजितका परिचय पाकर सब राजाओंने युद्ध करना बन्द कर दिया। अब तक जो शत्रु बनकर युद्ध कर रहे थे, वही अब मित्र बनकर अपराजितके विवाहमें योग-दान करने लगे। राजा जितशत्रुने शुभमुहूर्त्तमें बड़ी धूमधामसे राजकुमार अपराजितके साथ प्रीतिमतीका विवाह कर दिया। विवाहके समय राजकुमारने अपना प्रकृत रूप प्रकट किया, जिसे देखकर राजा जितशत्रु तथा राजकन्या प्रीतिमती विशेषरूपसे आनंदित हुए।

विवाहकार्य सानन्द सम्पन्न हो जानेपर राजा जितशत्रुने समस्त राजाओंको सम्मानपूर्वक विदा किया। राजकुमार अपराजित अपने मित्र विमलबोधके साथ कुछ दिनोंके लिये वहीं ठहर गये और अपनी नव-विवाहिता

पत्नीके साथ आनन्दपूर्वक समय व्यतीत करने लगे। राजा जितशत्रुके मन्त्रीकी भी एक कन्या थी, जिसकी अवस्था विवाह करने योग्य हो चुकी थी। इस बीचमें उसने उसका व्याह विमलबोधके साथ कर दिया जिससे उसके जीवनमें भी आनन्द की बाढ़ आ गयी। दोनों मित्र दीर्घकाल तक अपने श्वसुरका आतिथ्य ग्रहण करते रहे।

राजकुमार अपराजितकी इस विजय और विवाहका समाचार धीरे धीरे राजा हरिनन्दीके कानों तक जा पहुँचा। उन्होंने राजकुमारका पता पाते ही उसके पास एक दूत भेजा। राजकुमारने उसका स्वागत कर अपने माता-पिताका कुशल-समाचार पूछा। उत्तरमें दूतने सजल नेत्रोंसे कहा :—"हे राजकुमार! वे किसी तरह जीते हैं यही कुशल समझिये। वैसे तो वे आपके वियोगसे मृत-प्राय हो रहे हैं। रात दिन वे खिन्न और दुःखित रहते हैं। किसी काममें उनका जी नहीं लगता। आनन्द जैसी वस्तु तो मानो अब उनके जीवनमें है ही नहीं। बीच बीचमें जब कभी आपके सम्बन्धकी कोई उड़ती हुई खबर

उनके कानों तक पहुँच जाती है, तब वे कुछ क्षणोंके लिये आनन्दित हो उठते हैं और उनका हृदय आशासे भर जाता है, परन्तु कुछ देरके बाद फिर उनकी आशा निराशामें परिणत हो जाती है और वे फिर उसी तरह निराश हो जाते हैं। इसबार आपका विश्वसनीय पता पाकर उन्होंने आपको बुला लानेके लिये मुझे भेजा है। आप मेरे साथ शीघ्रही चलिये और अपने माता-पिताकी वियोग व्यथा दूर कर उनके जीवनको सुखी बनाइये।"

दूतके यह वचन सुनकर राजकुमारके नेत्रोंसे आंसू आ गये। उन्होंने कहा :—"मेरे कारण मेरे माता-पिताको जो दुःख हुआ है, उसके लिये मुझे आन्तरिक खेद है। चलो, अब मैं शीघ्रही तुम्हारे साथ चलता हूँ।"

इतना कह राजकुमार अपराजित राजा जितशत्रुके पास गये और उनसे सारा हाल निवेदन किया। राजा जितशत्रुने उसी समय उन्हें जानेकी आज्ञा दे दी। वे उनसे बिदा ग्रहण कर अपने नगरकी ओर चल पड़े। इसी समय अपनी दोनों पुत्रियोंके साथ विद्याधर भुवनभानु तथा भिन्न-भिन्न वे राजे भी अपनी-अपनी

कन्याओंके साथ वहाँ आ पहुँचे, जिनके साथ राजकुमारने ब्याह किया था। विद्याधर सूरकान्त भी कहींसे घूमता-घामता वहाँ आ पहुँचा। राजकुमारने अपनी समस्त पत्नियों तथा भूचर और खेचर राजाओंके साथ सिंहपुरकी ओर प्रस्थान किया।

शीघ्रही यह सब दल सिंहपुर जा पहुँचा। वहाँ उसके आगमनका समाचार पहले ही पहुँच गया था, इसलिये नगर-निवासियोंने उनके स्वागतके लिये बड़ी-बड़ी तैयारियां कर रक्खी थीं। जिस समय राजकुमार अपराजित अपनी पत्नियोंके साथ अपने माता-पिताके सामने पहुँचे, उस समयका दृश्य बहुतही हृदयस्पर्शी था। सबकी आँखोंमें आनन्दाश्रु झलक रहे थे। राजा हरिनन्दी पुत्रको गले लगाकर उसके मस्तक पर बारंबार चुम्बन करने लगे। उनके नेत्र उसे देखकर मानो तृप्त ही न होते थे। माताने भी पुत्रकी पीठ पर हाथ फेरकर उसे आशीर्वाद दिया और उसे चुम्बनकर अपना प्रेम व्यक्त किया। इसके बाद प्रीतिमती आदिक पुत्रवधुओंने भी अपने सास-स्वसुरको प्रणाम किया और विमलबोधने उनसे उन

सबोंका परिचय कराया। राजकुमारके साथ जो भूचर और खेचर राजे आये थे, वे कई दिन तक राजा हरिनन्दी का आतिथ्य ग्रहण करते रहे। इसके बाद उन सबोंको सम्मानपूर्वक बिदा कर राजकुमार अपराजित अपने माता-पिताको आनन्दित करते हुए वहीं अपने दिन निर्गमन करने लगे।

उधर मनोगति और चपलगति दोनों महेन्द्र देव-लोकसे च्युत होकर अपराजितके सूर और सोम नामक लघु बन्धु हुए। कुछ दिनोंके बाद राजा हरिनन्दीने समस्त राज्य-भार अपराजितको सौंपकर स्वयं दीक्षा लेली और दीर्घकाल तक तपस्या कर अन्तमें उन्होंने परमपद प्राप्त किया। इधर राजा अपराजितने प्रीतिमतीको पटरानी, विमलबोधको मन्त्री और अपने दोनों लघु बंधुओंको माण्डलिक राजा बना दिया। वह राज्य-शासनमें सदा न्याय और नीतिसे काम लेता था, इसलिये प्रजाका प्रेम सम्पादन करनेमें भी उसे देरी न लगी। इस प्रकार प्रजापालन करते हुए राजा अपराजितके दिन आनन्दमें कटने लगे। उन्होंने दीर्घकाल तक शासन किया और

अपने शासनकालमें अनेक जिन-चैत्योंकी रचना करायी तथा अनेक बार तीर्थाटन कर अपना जीवन और धन सार्थक किया।

एकदिन राजा अपराजित उद्यानकी सैर करने गये। वहाँ उन्होंने एक धनीमानी सार्थवाहको देखा, जो अपने इष्ट-मित्र और स्त्रियोंके साथ वहाँ क्रीड़ा करने आया था। वह उस समय याचकोंको दान दे रहा था और वन्दीजन उसकी विरदावली गा रहे थे। उसका ठाट-बाट देखकर राजा अपराजित चकित हो गये। उन्होंने अपने एक सेवकसे उसका परिचय पूछा। उसने बतलाया—"महाराज! यह हमारे नगरके समुद्रपाल नामक सार्थवाहका पुत्र है। इसका नाम अनंगदेव है।"

राजा यह सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—"धन्य है मुझे, कि मेरे राज्यमें ऐसे उदार और धनीमानी व्यापारी निवास करते हैं।"

अस्तु। उस दिन तो राजा अपने वासस्थानको लौट गये। किन्तु दूसरे दिन वे जब फिर नगरमें घूमने निकले तो उन्होंने देखा कि नगरके किसी प्रतिष्ठित पुरुष

की मृत्यु हो गयी है और उसके शवको हजारों आदमी श्मशान लिये जा रहे हैं। शवके पीछे कई स्त्रियाँ बाल बिखेरे हृदय भेदक ध्वनिसे करुण क्रन्दन कर रही थीं। राजाने सेवकसे पूछा :—"यह कौन है?—किसकी मृत्यु हो गयी है?" सेवकने बतलाया—"महाराज! यह वही अनङ्गदेव सार्थवाह है, जिसे कल आपने बगीचेमें देखा था। आज विशूचिका—हैजेकी बीमारीसे इसकी मृत्यु हो गयी है!"

यह सुनकर राजाको बड़ाही दुःख हुआ। साथही मनुष्य जीवन की यह क्षणभंगुरता देखकर उनका हृदय वैराग्यसे भर गया। वे खिन्नतापूर्वक अपने वासस्थानको लौट आये और यथानियम अपने राजकाज देखने लगे, परन्तु इस दिनसे किसी भी काममें उनका जी न लग सका। उनकी आन्तरिक शान्ति नष्ट हो गयी और उसका स्थान सदाके लिये अशान्तिने अधिकृत कर लिया।

पाठकोंको स्मरण होगा, कि देशाटनके समय कुण्डल-पुरमें अपराजितको एक केवलीके दर्शन हुए थे। कुछ दिनोंके बाद वही केवली भगवान एक दिन सिंहपुर आ

पहुँचे। राजा अपराजितने बड़ी श्रद्धाके साथ उनकी सेवामें उपस्थित हो उनका धर्मोपदेश सुना। इसके बाद उन्होंने प्रीतिमतीके उदरसे उत्पन्न पद्म नामक अपने पुत्रको राज्यभार सौंप, उन्हींके निकट दीक्षा ले ली। रानी प्रीतिमती, लघु बन्धु सूर और सोम तथा मन्त्री विमलबोधने भी उनका अनुकरण कर उसी समय दीक्षा लेली। इन सब लोगोंने अपने जीवनका शेष समय तपस्या करनेमें बिताया, मृत्यु होने पर आरण देवलोकमें इन्हें इन्द्रके समान देवत्व प्राप्त हुआ और वे सब परस्पर प्रेम करते हुए स्वर्गीय सुख उपभोग करने लगे।

चौथा परिच्छेद

सातवाँ और आठवाँ भव

इस जम्बूद्वीपके भरत-क्षेत्रमें कुरु नामक एक देश था। उसके हस्तिनापुर नामक नगरमें श्रीषेण नामक एक राजा राज्य करते थे, उनकी रानीका नाम श्रीमती था।

उसने एक दिन पिछली रातमें स्वप्न देखा कि मानो उसके मुखमें पूर्णचन्द्र प्रवेश कर रहा है। सुबह राजाकी निन्द्रा भङ्ग होने पर उसने वह स्वप्न उन्हें कह सुनाया। उन्होंने उसी समय स्वप्न पाठकोंको बुलाकर इस स्वप्नका फल पूछा। स्वप्न पाठकोंने कहा :—"महाराज! यह स्वप्न बहुत ही उत्तम है। इसके प्रभावसे रानीको एक परम प्रतापी पुत्र होगा, जो शत्रुरूपी समस्त अन्धकार का नाश करेगा।"

यह स्वप्न फल सुनकर राजा और रानी अत्यन्त प्रसन्न हुए। कुछ दिनके बाद अपराजितका जीव देव-लोकसे च्युत होकर उस रानीके उदरमें आया और गर्भ-काल पूर्ण होने पर उसने यथासमय एक सुन्दर पुत्रको जन्म दिया। राजाने इस पुत्रका नाम शंख रक्खा। जब उसकी अवस्था कुछ बड़ी हुई, तब राजाने उसकी शिक्षा-दीक्षाका प्रबन्ध किया और उसने थोड़े ही दिनोंमें अनेक विद्या तथा कलाओंमें पारदर्शिता प्राप्त कर ली। धीरे धीरे किशोरावस्था अतिक्रमण कर वह यौवनके कुसुमित वनमें विचरण करने लगा।

उधर विमलबोधका जीव देवलोकसे च्युत होकर श्रीषेण राजाके मन्त्रीके यहाँ पुत्र रूपमें उत्पन्न हुआ और उसका नाम मतिप्रभ रक्खा गया। पूर्व सम्बन्धके कारण शंखकुमार और उसमें बाल्यावस्थासे ही मित्रता हो गयी। यह मैत्री-बन्धन दिन प्रतिदिन दृढ़ होता गया और बाल्यावस्थाकी भांति युवावस्थामें भी वे दोनों एक दूसरेके घनिष्ठ मित्र बने रहे।

एक दिन प्रजाके एक दलने श्रीषेण राजाकी सेवामें उपस्थित होकर प्रार्थना की कि :—"हे राजन्! आपके राज्यकी सीमा पर विशाल शृंग नामक एक बहुत ही विषम पर्वत है। उसमें शिशिरा नामक एक नदी भी बहती है। उसी पर्वतके कीलेमें समरकेतु नामक एक पल्लीपति रहता है। वह हमलोगों पर बड़ा ही अत्याचार करता है और हमलोगोंको दिन दहाड़े लूट लेता है। हे राजन्! यदि आप उसके अत्याचारसे हमारी रक्षा न करेंगे, तो हमलोग आपका राज्य छोड़ कर कहीं अन्यत्र जा बसेंगे।"

प्रजाके यह वचन सुनकर राजाने उसे आश्वासन दे

विदा किया और पल्लीपति पर आक्रमण करनेके लिये उसी समय सैन्यको तैयार होनेकी आज्ञा दी। रणभेरीका आवाज सुनकर नगरमें खलबली मच गयी। शंखकुमार उसका कारण जानकर पिताके पास दौड़ आये और उन्हें प्रणाम कर कहने लगे :—"हे पिताजी! एक साधारण पल्लीपति पर आप इतना क्रोध क्यों करते हैं? शृगाल पर सिंहको हाथ डालनेकी जरूरत नहीं। उसके लिये तो हमीं लोग काफी हैं। यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं शीघ्र ही उसे गिरफ्तार कर आपकी सेवामें हाजिर कर सकता हूँ।"

पुत्रके यह वचन सुनकर राजाको बड़ा ही आनन्द हुआ। उन्होंने पल्लीपतिको दण्ड देनेके लिये शंखकुमारकी अधिनायकतामें एक बड़ी सेना रवाना की। परन्तु पल्लीपति बड़ा ही धूर्त था। उसने ज्यों ही सुना कि शंखकुमार इस ओर आ रहे हैं, त्यों ही वह अपने किलेको खाली कर एक गुफामें जा छिपा। कुशाग्रबुद्धि शंख-कुमार उसकी यह चाल पहले ही समझ गये, इसलिये उन्होंने कुछ सेनाके साथ एक सामन्तको उस किलेमें भेज

दिया और वे स्वयं एक गुफामें छिप रहे। पल्लीपतिनें समझा कि शंखकुमार समस्त सेनाके साथ दुर्गमें चले गये हैं; इसलिये अब उन्हें घेर लेना चाहिये। यह सोच कर उसनें दुर्गको चारों ओरसे घेर लिया। शंखकुमारने यही समय उपयुक्त समझ कर बाहरसे उस पर आक्रमण कर दिया। अब उस पर दोनों ओरसे मार पड़ने लगी। एक ओरसे उस पर दुर्गकी सेना टूट पड़ी और दूसरी ओरसे शंखकुमारकी सेनाने धावा बोल दिया। दोनों सेनाओंके बीचमें वह बुरी तरह फँस गया। जब उसने देखा कि बचनेका कोई उपाय नहीं है, तब अत्यन्त दीनता पूर्वक कंठमें कुठार डाल कर, वह शंखकुमारकी शरणमें आया। उसने कहा :—"हे स्वामिन्! मैं अपनी पराजय स्वीकार कर आपकी शरणमें आया हूँ। अब मैं आपका दास होकर रहूँगा। आप मुझसे जो चाहे सो दण्ड ले लीजिये और मेरा यह अपाराध क्षमा कीजिये!"

पल्लीपतिकी यह प्रार्थना सुनकर शंखकुमारने उससे वह सब माल ले आनेको कहा, जो उसनें आसपासके

लोगोंको लूट-लूट कर एकत्र किया था। पल्लीपतिने उनकी यह आज्ञा तुरन्त शिरोधार्य की। शंखकुमारने वह सब माल उसी समय उनके असल मालिकोंको लौटा दिया। इसके बाद उन्होंने उससे समुचित दण्ड वसूल कर उसे अपने साथ चलनेकी आज्ञा दी। यथा समय सब सेनाने विजयका डंका बजाते हुए वहाँसे प्रस्थान किया।

मार्गमें सन्ध्या पड़ने पर सब लोगोंने एक स्थानमें पड़ाव डालकर वहीं रात बिताना स्थिर किया। मध्य-रात्रिके समय जब अपनी शैयामें पड़े हुए शंखकुमार मधुर निद्राका आस्वादन कर रहे थे, उस समय एक ओरसे उन्हें किसी अबलाका करुण क्रन्दन सुनायी दिया। उसे सुनकर वे तुरन्त उठ बैठे और हाथमें खड्ग लेकर उसी ओर चल पड़े। कुछ दूर जानेपर उन्हें एक प्रौढ़ा स्त्री दिखायी दी। शंखकुमारने उसके पास पहुँचकर पूछा :—"हे भद्रे! तुम्हें ऐसा कौन सा दुःख है, जिसके कारण तुम इसतरह विलाप कर रही हो?"

राजकुमारके इन वचनोंसे प्रौढ़ाको कुछ सान्त्वना मिली। उसने कहा :—"हे भद्र! अंगदेशमें चम्पा

नामक एक नगरी है। उसमें जितारि नामक राजा राज्य करता है। उसकी रानीका नाम प्रीतिमती है। उसने कई पुत्रोंके बाद यशोमती नामक एक कन्याको जन्म दिया है। उसकी अवस्था अब विवाह योग्य हो चुकी है, परन्तु उसे अपने अनुरूप कोई वर नहीं दिखायी देता, इसलिये वह रातदिन दुखी रहती है। हालहीमें उसने किसीके मुखसे राजा श्रीषेणके पुत्र शंखकुमारकी प्रशंसा सुनी है। उसे सुनकर वह उसपर तन-मनसे अनुरक्त हो गयी है और उसने प्रतिज्ञा कर ली है कि मैं शंखकुमारसे ही व्याह करूँगी। इस प्रतिज्ञाका हाल सुनकर उसके पिताको परम आनन्द हुआ और उसने यह सम्बन्ध ठीक करनेके लिये अपने आदमियोंको राजा श्रीषेणकेपास भेज दिया। परन्तु वहाँसे कोई उत्तर आनेके पहलेही मणिशेखर नामक एक विद्याधर राजाने उससे विवाह करनेकी इच्छा प्रकट कर उसकी मंगनी की।

इससे राजा जितारी चिन्तामें पड़ गये, किन्तु उन्होंने स्पष्ट कह दिया, कि वह शंखकुमारके सिवा और किसीसे व्याह करना नहीं चाहती। यह सुनकर वह

विद्याधर असन्तुष्ट हो गया और उसने उसका हरण कर लिया। मैं उसकी दाई थी। मुझे उससे बड़ा स्नेह था, इसलिये मैं भी उसके साथ आयी थी, परन्तु दुष्ट विद्याधर मुझे यहीं छोड़कर उसे न जाने कहाँ उठा ले गया है। "हे भद्र! मैं उसीके वियोगसे दुःखित होकर यहाँपर विलाप कर रही हूँ।"

यह सब समाचार सुनकर शंखकुमारने कहा :— "हे माता! तुम धैर्य धारण करो। मैं उस विद्याधरको पराजित कर कुमारीको शीघ्रही तुम्हारे पास ले आता हूँ।"

इतना कह शंखकुमार वहाँसे चल पड़े और जंगलमें चारों ओर घुम-घुम कर उस विद्याधरकी खोज करने लगे। खोजते-खोजते सवेरा हो गया और सूरज निकल आये, किन्तु कहीं उसका पता न चला। अन्तमें वे विशाल शृंग पर्वत पर जा पहुँचे। वहाँपर एक गुफामें उन्होंने उस विद्याधरको देखा। उस समय वह यशोमती को व्याह करनेके लिये मना रहा था और यशोमती दृढ़तापूर्वक इन्कार कर रही थी। वह उस विद्याधरसे कह

रही थी कि तुम्हारी यह याचना बिलकुल व्यर्थ है। मैं अपना तन-मन शंखकुमारको अर्पण कर चुकी हूँ। अब उनके सिवा और कोई पुरुष मेरे शरीरको हाथ नहीं लगा सकता।"

उसके यह वचन सुन, विद्याधरने असन्तुष्ट होकर कहा :—"तुम जिस शंखकुमारको इतना प्रेम करती हो, उसे तो मैंने अपने अधिकारमें कर रक्खा है। अब तुम उसे देख भी न सकोगी। तुम्हें आज नहीं तो कल, मेरे साथ अवश्य ही व्याह करना होगा। यदि तुम मेरी बात प्रसन्नतापूर्वक न मानोगी, तो मुझे लाचार होकर बलात्कार करना पड़ेगा।"

इधर शंखकुमार एक ओर-खड़े-खड़े सब बातें सुन रहे थे, जब उन्होंने उसकी यह धमकी सुनी तो वे गरज कर कहने लगे :—"हे नीच! हे पापी! अब तू तैयार हो जा! मैं तुझे कदापि जीता न छोड़ूँगा।"

इतना कह शंखकुमार मणिशेखर पर टूट पड़े। दोनों बड़ी देर तक घमासान युद्ध करते रहे। अन्तमें जब मणिशेखरने देखा कि वह भुजबलसे शंखकुमारको न जीत

सकेगा, तब वह अपनी मायासे आगके गोले आदि बनाकर उनसे युद्ध करने लगा, परन्तु पुण्य प्रभावके कारण कुमारकी कोई हानि न हुई। उसके अनेक अस्त्रोंको तो उसने अपने खड्गसे ही काट डाला। इससे मणिशेखर बहुत लज्जित हुआ और शिर पकड़ कर जमीन पर बैठ गया। इसी समय शंखकुमारने उसका धनुष खींच कर उसकी छातीमें इतने वेगसे एक बाण मारा, कि वह मूर्छित होकर वहीं भूमि पर गिर पड़ा।

मणिशेखरके मूर्छित हो जाने पर शंखकुमारने उसका उपचार किया और जब वह स्वस्थ हुआ तब पुनः उसे लड़नेके लिये चुनौती दी। किन्तु मणिशेखरने उसे हाथ जोड़ते हुए कहा—"हे कुमार! अब मैं तुमसे युद्ध करना नहीं चाहता। तुम वीरशिरोमणि हो। मनुष्य होते हुए भी तुमने मुझ विद्याधरको जीत लिया है। तुम्हारा बल देखकर मैं समझ गया हूँ, कि तुम साधारण मनुष्य नहीं हो। हे वीर! यह यशोमती जिस प्रकार तुम्हारे गुणोंसे तुम पर मुग्ध हो रही है, उसी तरह मैं भी तुम्हारे बलसे तुम पर मुग्ध हो रहा हूँ।

मैंने तुमसे लड़नेमें बड़ी ही भूल की है। कृपया अब मेरा अपराध क्षमा करो!"

शंखकुमारने कहा :—"हे मणिशेखर! मैं भी तुम्हारा बल और तुम्हारी नम्रता देखकर बहुत प्रसन्न हुआ हूं। हे महाभाग! अब तुम जो कहो, वह करनेके लिये मैं तैयार हूं।"

मणिशेखरने कहा :—"यदि आप प्रसन्न हैं तो मेरे साथ वैताढ्य पर्वत पर चलिये। वहाँपर चलनेसे एक तो सिद्धायतन तीर्थ की यात्रा हो जायगी, दूसरे मुझ पर भी बड़ा अनुग्रह होगा।"

शंखकुमारने उसकी यह प्रार्थना सहर्ष स्वीकार कर ली। यशोमतीको भी इससे बहुतही आनन्द हुआ। इसी समय मणिशेखरके कुछ अनुचर वहाँ पहुँचे। उन्होंने सब वृत्तान्त सुनकर शंखकुमारको प्रणाम किया। शंखकुमारने उन्हींमेंसे दो विद्याधरोंको अपनी सेनाके पास भेजकर उसे हस्तिनापुर जानेको आदेश दिया। वहाँसे लौटते समय वही विद्याधर यशोमती की उस धात्रीको भी अपने साथ लेते आये, जिसे शंखकुमार आश्वासन

देकर मार्गमें छोड़ आये थे। इसके बाद वे मणिशेखरके साथ वताढ्य पर्वत पर गये और वहाँपर सिद्धायतन की यात्रा की। यशोमती और उसकी दाईने भी इस यात्रामें शंखकुमार का साथ दिया।

सिद्धायतन की यात्रा करानेके बाद मणिशेखर, शंखकुमार और यशोमती आदिको कनकपुर ले गया और वहाँ उसने बड़े प्रेमसे उनका स्वागत-सत्कार किया। शंखकुमारके वीरत्व और सद्गुणोंपर मुग्ध हो, वहाँके अन्यान्य विद्याधरोंने उनकी दासता स्वीकार की और उनसे अपनी कन्याओंका विवाह करने की भी प्रार्थना की, परन्तु शंखकुमारने कहा कि यशोमतीके साथ विवाह करनेके बाद ही मैं इन कन्याओंसे विवाह कर सकता हूँ, उसके पहले नहीं।

शंखकुमारने मणिशेखरके यहाँ रहकर बहुत दिनों तक उसका आतिथ्य ग्रहण किया। इसके बाद जब उन्होंने वहाँसे प्रस्थान करने की इच्छा प्रकट की, तब मणिशेखर आदि अनेक विद्याधर अपनी-अपनी कन्याओं को साथ लेकर उन्हें चम्पा नगरी तक पहुँचाने आये।

चम्पा नगरीमें जब राजा जितारीने यह सब हाल सुना, तो वे आनन्दसे फूल उठे। उन्हें स्वप्नमें भी अब आशा न थी कि वे अपनी प्राणाधिक पुत्रीको पुनः देख सकेंगे। वे अपने मुख्य राजकर्मचारियोंको साथ ले, नगरके बाहर पहुँचे और बड़ी धूमके साथ शंखकुमार तथा यशोमती आदिको नगरमें ले आये। शीघ्रही शुभ-मुहूर्त्तमें उन्होंने आनन्दपूर्वक उन दोनोंका विवाह कर दिया। इसके बाद अन्यान्य विद्याधरोंकी कन्याओंसे भी शंखकुमारने विवाह किया। विवाहोत्सव पूर्ण होने पर श्रीवासुपूज्य भगवानके चैत्यकी भक्तिपूर्वक यात्रा कर शंखकुमार हस्तिनापुर लौट आये।

इधर आरण देवलोकसे च्युत हो कर पूर्व जन्मके सूर और सोम नामक दोनों भाई इस जन्ममें भी शंखकुमारके यशोधर और गुणधर नामक दो लघु बन्धु हुए। कुछ दिनोंके बाद राजा श्रीषेणने शंखकुमारको अपने राज-सिंहासन पर बैठा कर, गुणधर नामक गणधरके पास जाकर दीक्षा ले ली। दीक्षा लेनेके बाद उन्होंने बहुत दिनोंतक उग्र तपस्या की। अन्तमें जब उन्हें केवलज्ञान

प्राप्त हुआ, तब एक दिन देवताओंके साथ विहार करते हुए वे हस्तिनापुर आ पहुँचे। वनपालके मुखसे केवली भगवानका आगमन सुनकर शंखराजाने उनकी सेवामें उपस्थित हो उन्हें भक्ति-पूर्वक वन्दन कर, उनका धर्मोपदेश सुना। धर्मोपदेश सुननेके बाद उन्होंने कहा :—"हे भगवन्! जैन धर्मके प्रभावसे यह बात मैं भली-भाँति समझ गया हूँ कि इस संसारमें कोई किसीका सगा या सम्बन्धी नहीं है। फिर भी मुझे इस यशोमती पर इतना ममत्व क्यों है, यह मैं जाननेके लिये बहुत उत्सुक हो रहा हूँ।"

केवली भगवानने कहा :—"हे राजन्! यशोमती पहले जन्ममें तुम्हारी धनवती नामक स्त्री थी। इसके बाद सौधर्म देवलोकमें तुम दोनोंको देवत्वकी प्राप्ति हुई और वहाँ भी तुम दोनोंमें बड़ा प्रेम रहा। फिर चित्रगतिके जन्ममें वह रत्नवतीके नामसे तुम्हारा पत्नी हुई। वहाँसे माहेन्द्र देवलोकमें पहुँच कर तुम दोनों देवता हुए। उसके बाद जब तुमने अपराजितके नामसे जन्म लिया, तब वह प्रीतिमतीके नामसे तुम्हारी स्त्री हुई।

वहाँसे तुम दोनों आरण देवलोकमें पहुँचे और वहाँ एक दूसरेके मित्र हुए। वहाँसे च्युत होनेपर सातवें जन्ममें तुम शंखकुमार हुए और वह यशोमतीके नामसे तुम्हारी पत्नी हुई। इन्हीं सब पूर्व सम्बन्धोंके कारण उसपर तुम्हारा अधिक प्रेम है।"

"अब तुम यहाँसे अपराजित नामक अनुत्तर विमानमें जाओगे, वहाँसे च्युत होनेपर तुम भरत-क्षेत्रमें नेमिनाथ नामक बाईसवें तीर्थंकर होगे और यह यशोमती राजीमतीके नामसे जन्म लेगी। उस जन्ममें तुम इससे विवाह नहीं करोगे, फिर भी वह तुमपर अनुराग रक्खेगी और तुम्हारे पास दीक्षा ग्रहणकर परमपद प्राप्त करेगी।"

केवली भगवानके यह वचन सुनकर शंखकुमारको वैराग्य आ गया और उन्होंने अपने पुण्डरीक नामक पुत्रको अपना राज्य सौंपकर केवली भगवानके निकट दीक्षा ले ली। उनके दोनों लघु बन्धु, मन्त्री और रानी यशोमतीने भी उनका अनुकरण किया, यानी उन लोगोंने भी दीक्षा ग्रहण कर ली।

दीर्घकाल तक जपतप करनेके बाद शंखकुमार

गीतार्थ हुए। इसके बाद अरिहन्त भक्ति तथा बीस स्थानकोंकी आराधना करनेसे उन्होंने तीर्थङ्कर नामकर्म उपार्जन किया। अन्तमें पादोपगमन अनशन कर प्रतापी शंखमुनिने अपराजित विमान प्राप्त किया। यथा विधि जपतप करनेके बाद यशोमती आदि भी उसी विमानके अधिकारी हुए।

पाँचवाँ परिच्छेद

नवाँ जन्म और हरिवंश

इस भरतक्षेत्रके वत्स नामक देशमें कौशाम्बी नामक एक नगरी थी। उसमें सुमुख नामक राजा राज्य करता था। उसने वीर नामक एक वस्त्र बुननेवालेकी स्त्रीका अपहरण कर उसे अपनी रानी बना लिया था। वीरके लिये अपनी पत्नीका वियोग असह्य हो गया और वह उसीके दुःखसे पागल हो, चारों ओर इधर-उधर भटकने लगा। एक

दिन राजा सुमुख और उनकी उस रानीकी दृष्टि उसपर जा पड़ी। इससे वे दोनों संवेगको प्राप्त हुए। इतनेहीमें अचानक बिजली गिरनेसे उन दोनोंकी मृत्यु हो गयी। मृत्युके बाद वे दोनों हरिवर्ष क्षेत्रमें जोड़ बच्चोंके रूपमें उत्पन्न हुए और एक दूसरेके भाई बहन कहलाये।

उधर वीर भी अज्ञानतापूर्वक कष्ट सहन कर सौधर्म देवलोकमें किल्विष देव हुआ। पूर्व जन्मके वैरसे वह उन दोनोंका हरणकर चम्पा नगरीमें ले गया। वहाँपर राजा चन्द्रकीर्तिकी मृत्यु हो गयी थी। उसके कोई उत्तराधिकारी न था, इसलिये उसने उन दोनोंको उसका राज्य दे दिया। साथ ही उसने अपनी देवशक्तिसे उनकी आयु घटा दी, उनके शीरर पाँच सौ धनुष परिमाण बना दिये, उनके नाम हरि और हरिणी रख दिये और उन्हें मद्यमांसादिक भक्षण करना सिखा दिया। इतना करनेके बाद वह किल्विष देव अपने वासस्थानको चला गया। कालान्तरमें उन्हीं दोनोंसे हरिवंशकी उत्पत्ति हुई।

सौवीर देशमें यमुना नदीके तटपर मथुरा नामक एक नगरी थी। वहाँपर किसी समय हरिवंश कुलोद्भव

वसुराजाके पुत्र राजा बृहद्ध्वज राज्य करते थे। बृहद्ध्वज के बहुत दिन बाद उसी कुलमें यदु नामक एक राजा हुआ। उसके शूर नामक एक पुत्र था। शूरके शौरि और सुवीर नामक दो पुत्र हुए। यथा समय शौरिको अपना राज्यासन और सुवीरको युवराज पद देकर शूर राजाने दीक्षा ले ली। कुछ दिनोंके बाद मथुराका राज्य सुवीरको देकर शौरि कुशार्त्त देशको चला गया और वहाँपर उसने शौर्यपुर नामक एक नगर बसाया।

शौरी राजाके अन्धकवृष्णी और सुवीरके भोजवृष्णी आदि कई भाग्यशाली पुत्र हुए, जिन्होंने संसारमें बड़ी नामना प्राप्त की। कुछ दिनोंके बाद मथुराका राज्य भोजवृष्णीको देकर सुवीर सिन्धु देशको चला गया और वहाँ शौवीरपुर नामक नगर बसाकर वहीं उसने निवास किया। शौरी राजाने अन्धकवृष्णीको अपना राज्य देकर सुप्रतिष्ठ मुनिके पास दीक्षा ले ली और बहुत दिनों-तक जपतप कर वह मोक्षका अधिकारी हुआ।

यथासमय भोजवृष्णीके उग्रसेन नामक पुत्र हुआ और अन्धकवृष्णीके सुभद्रादेवीसे दस पुत्र हुए जो समुद्र-

विजय, अक्षोभ्य, स्तिमित, सागर, हिमवान, अचल, धरण, पूरण, अभिचन्द्र और वसुदेव आदि नामसे प्रसिद्ध हुए। यह दस भाई संसारमें दशार्ह नामसे भी सम्बोधित किये जाते थे। उनके कुन्ती और माद्री नामक दो छोटी बहनें थीं। कुन्तीका विवाह राजा पाण्डु और माद्रीका विवाह राजा दमघोषके साथ हुआ।

एक दिन राजा अन्धकवृष्णीने सुप्रतिष्ठ नामक अवधि ज्ञानी मुनिसे पूछा :—"हे स्वामिन्! मेरा दसवाँ पुत्र वसुदेव इतना रूपवान, गुणवान और भाग्यशाली क्यों है? यही सब बातें उसके दूसरे भाइयोंमें क्यों नहीं पायी जातीं?

सुप्रतिष्ठ मुनिने कहा :—"हे राजन्! इसका एक कारण है जो मैं तुझे बतलाता हूँ। सुनो, एक समय मगध देशके नन्दी ग्राममें एक दरिद्र ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्रीका नाम सोमिला और उसके पुत्रका नाम नन्दिषेण था। नन्दिषेणका भाग्य बहुत ही मन्द था, इसलिये बाल्यावस्थामें ही उसके माता-पिताका देहान्त हो गया। नन्दिषेण कुरूप था, और उसके राशी-ग्रह

भी खराव थे ; इसलिये अन्यान्य रिश्तेदारोंने भी उसका त्याग कर दिया। लाचार, नन्दिषेण, मेहनत मजदूरी कर किसी तरह अपना पेट भरने लगा। उसकी यह दुरावस्था देखकर एक दिन उसके मामाको उस पर दया आ गयी और वह उसे अपने घर लिवा ले गया। उसके सात कन्याएँ थी, जिनकी अवस्था विवाह करने योग्य हो चुकी थी। उसने नन्दीषेणसे कहा :—"इनमेंसे सबसे बड़ी कन्याका विवाह मैं तुम्हारे साथ कर दूँगा। तुम आनन्दसे घरमें रहो और घरका काम-धन्धा देखो!"

विवाहके इस प्रलोभनसे नन्दिषेण प्रसन्न हो उठा और घरके छोटे-बड़े सभी काम बड़े चावसे करने लगा। परन्तु उसके मामाकी बड़ी कन्याको जब यह बात मालूम हुई, तो वह कहने लगी कि यदि पिताजी मेरा विवाह नन्दिषेणसे करेंगे, तो मैं आत्महत्या कर अपना प्राण दे दूँगी। उसकी इस प्रतिज्ञासे नन्दिषेण की आशा पर पानी फिर गया। फलतः वह बहुत उदास रहने लगा। उसकी यह अवस्था देखकर उसके मामाने कहा :—"हे नन्दिषेण! तुझे उदास होनेकी जरूरत नहीं। यदि मेरी

पहली कन्या तुझसे विवाह नहीं करेगी तो मैं दूसरी कन्यासे तेरा विवाह कर दूँगा।" परन्तु एकके बाद एक—सभी कन्याओंने इसी तरह की प्रतिज्ञा कर ली। किसीको भी कुरूप नन्दिषेणसे विवाह करना मंजूर न था। यह देखकर उसके मामाने कहा :—"हे नन्दि-षेण! मेरी कन्याएँ तुझसे विवाह नहीं करना चाहतीं तो कोई हर्ज नहीं, मैं किसी दूसरे की कन्यासे तेरा विवाह कर दूँगा।"

इस प्रकार नन्दिषेणके मामाने तो उसे बहुत सान्त्वना दी, परन्तु नन्दिषेण अपने मनमें कहने लगा कि "जब मेरी कुरूपताके कारण मामाकी ही कन्याएँ मुझे नहीं चाहतीं और मुझसे दूर भागती हैं, तब दूसरे की कन्याओंका क्या भरोसा? मुझे अब वैवाहिक सुखकी आशा ही न करनी चाहिये। यदि यह सुख मेरे भाग्यमें बदा होता तो भगवानने मुझे सुन्दरता और सौभाग्य भी दिया होता।"

इस तरहके विचार करते-करते नन्दिषेणको वैराग्य आ गया और वह अपने मामाका काम छोड़कर रत्नपुर

चला गया। वहाँपर स्त्री-पुरुषोंको क्रीड़ा करते देख वह पुनः अपनी निन्दा करने लगा। उसे अब अपना जीवन दुःखमय और असार मालूम होता था। वह आत्महत्या करनेके विचारसे एक उपवनमें गया, किन्तु आत्महत्या करनेके पहले ही वहाँ उसकी दृष्टि एक साधु पर जा पड़ी। उसने उनके पास जाकर उन्हें प्रणाम किया। उन मुनिराजका नाम सुस्थित था। उन्होंने अपने ज्ञानसे उसकी आन्तरिक भावना समझ कर कहा :—"हे भद्र! तुम्हें आत्महत्या न करनी चाहिये। दुःखका कारण तो अधर्म है, इसलिये यदि तुम सुख चाहते हो, तो तुम्हें धर्मकी आराधना करनी चाहिये। आत्महत्या करनेसे सुख की प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती।"

मुनिराजके यह वचन सुनकर नन्दिषेणको अपने कर्त्तव्यका ज्ञान हुआ और उसने आत्महत्याके विचारको जलाञ्जलि दे दी, उसने उसी समय उनके पास दीक्षा ले ली। कुछ दिनोंके बाद जप तपके प्रभावसे वह गीतार्थ हो गया और उसने साधुओंकी वैयावच्च—सेवा करने का अभिग्रह ग्रहण किया।

नन्दिषेण अपने इस अभिग्रहके अनुसार सभी तरहके साधुओंकी वैयावच्च करता था और किसी भी कारणसे कभी खिन्न या विचलित न होता था। उसकी यह कर्त्तव्यनिष्ठा देखकर एक दिन इन्द्रने अपनी सभामें मुक्त-कण्ठसे उसकी प्रशंसा की, परन्तु एक देवताको उनकी बातोंपर विश्वास न हुआ और उसने नन्दिषेणकी परीक्षा लेना स्थिर किया। निदान, वह एक ग्लान साधुका वेश धारण कर रत्नपुरके बाहर पड़ा रहा और एक दूसरा देवता साधुके ही वेशमें नन्दीषेणके पास पहुँचा। उस समय नन्दिषेण पारणा कर रहा था। उसने ज्योंही पहला ग्रास उठाया त्योंही साधु वेशधारी उस देवताने उसे पुकार कर कहा :—"हे नन्दिषेण! तू वैयावच्चकी प्रतिज्ञा कर इस समय भोजन कैसे कर सकता है? नगरके बाहर क्षुधा और तृषासे पीड़ित तथा अतिसार रोगसे ग्रसित एक मुनिराज बैठे हुए कष्ट पा रहे हैं।"

साधुके यह वचन सुनकर नन्दिषेणने भोजनको छोड़, उसी समय मुनिराजकी वैयावच्चके लिये प्रस्थान किया। मार्गमें वह उनके लिये शुद्ध जलकी खोज करने

लगा, परन्तु उसके इस कार्यमें बाधा देनेके लिये वह जहाँ जाता, वहींका जल वह देवता अनेषणीय (अशुद्ध) बना देता। इससे शुद्ध जलके प्राप्त करनेमें उसे बड़ी कठिनाई हुई ; परन्तु अन्तमें उसके तपोबलके कारण उस देवताका उद्योग निष्फल प्रमाणित हुआ और वह शुद्ध जल प्राप्त कर किसी तरह मुनिराजकी सेवामें पहुँचा।

परन्तु मुनिराज तो उसकी परीक्षा ले रहे थे। इसलिये वे उसे देखतेही आगबबूला हो उठे। उन्होंने क्रुद्ध होकर कहा :—"मैं इस अवस्थामें यहाँपर पड़ा हूँ और तूने भोजनके फेरमें पड़कर मेरी खबर तक न ली। जब तू शीघ्रही नहीं आ सकता, तब तूने यह व्रत क्यों ले रक्खा है? धिक्कार है, तुझे और तेरे इस वैयावच्च अभिग्रहको! क्या तू इसी तरह सबकी वैयावच्च करता है?"

नन्दिषेणने हाथ जोड़ कर नम्रतापूर्वक कहा :— "हे मुनिराज! मेरा यह अपराध क्षमा कीजिये। अब मैं आपकी सेवा-शुश्रुषामें कोई कसर न रक्खूँगा। लीजिये, यह शुद्ध जल ग्रहण कीजिये।"

"तू इतनी तेजीसे क्यों चलता है ? तेरी इस कठिन चालसे मेरे शरीरमे धमक लगती है

(पृष्ठ १११)

इतना कह नन्दिषेणने उस मायावी मुनिको जलपान कराया। जलपान करानेके बाद उसने जब मुनिराजसे उठनेको कहा, तब मुनिराजने उसकी भर्त्सना करते हुए कहा :—"हे मूर्ख! क्या तुझे दिखायी नहीं देता कि मैं चलने-फिरनेमें असमर्थ हूँ?"

मायावी मुनिके यह वचन सुनकर नन्दिषेणने उसे अपने कन्धेपर बैठा लिया। परन्तु कन्धेपर बैठनेके बाद आगे चलते समय मायावी मुनि पद-पद पर उसकी भर्त्सना करने लगे। वे कहने लगे :—"तू इतनी तेजी से क्यों चलता है? तेरी इस कठिन चालसे मेरे शरीरमें धमक लगती है, फलतः मुझे कष्ट होता है। यदि तू मेरी वैयावच्च करना चाहता है, तो धीरे-धीरे चल, वर्ना मुझे यहीं पर उतार दे।"

यह सुनकर नन्दिषेण बहुत धीरे-धीरे चलने लगा, परन्तु कुछ दूर आगे बढ़तेही मायावी मुनिने उसके शरीर पर मलत्याग कर दिया। नन्दिषेणको इससे जरा भी दुःख न हुआ। वह पूर्ववत् उन्हें अपने कन्धे पर लिये-ही-लिये आगे बढ़ा और रास्तेमें केवल इसी बात पर विचार करता

रहा कि किसप्रकार इनकी सेवा-शुश्रुषा कर इन्हें रोग मुक्त करना चाहिये।

नन्दिषेणकी यह कर्त्तव्यनिष्ठा देखकर वह देवता उसपर प्रसन्न हो उठा। उसने नन्दिषेणकी शरीरकी विष्ठा दूरकर उनपर पुष्प-वृष्टि की। इसके बाद उसने तीन बार नन्दिषेणकी प्रदक्षिणा कर उन्हें प्रणाम किया और इन्द्र-सभामें उनकी जो प्रशंसा सुनी थी, वह उन्हें कह सुनायी, अन्तमें उसने नन्दिषेण मुनिके निकट क्षमा-प्रार्थना करते हुए कहा :—"हे मुनिराज! आप मेरा अपराध क्षमा कीजिये और बतलाइये, कि आप मुझसे क्या चाहते हैं? आप जो चाहें वह मैं आपको दे सकता हूँ।"

मुनिने उत्तर दिया :—"हे देव! संसारमें धर्मही परम दुर्लभ है, किन्तु मैं उसे प्राप्त कर चुका हूँ। धर्मके सिवा अब और कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसकी मैं याचना करूँ और आप मुझे दें।"

नन्दिषेण मुनिके यह वचन सुन, वह देवता अत्यन्त प्रसन्न हुआ और मन-ही-मन उनकी प्रशंसा कर अपने बासस्थानको चला गया। इस घटनाके बाद नन्दिषेण

मुनिने बारह हजार वर्ष तक कठिन तप किया और अन्तमें अनशन कर उन्होंने अपना प्राण त्याग दिया। मृत्युके समय उन्होंने यह सोचा कि इस तपके प्रभावसे दूसरे जन्ममें मैं स्त्रियोंका प्यारा बन सकूं। मृत्युके बाद वे महाशुक्र देवलोकमें देवता हुए और वहाँसे च्युत होकर वे ही वसुदेव नामक तुम्हारे पुत्र हुए हैं। अपनी अन्तिम इच्छाके कारण उन्होंने इस जन्ममें रूप, गुण और सौभाग्य प्राप्त किया है। वे अपने इन गुणोंके कारण स्त्रियोंका हृदय अनायास जीत सकते हैं और उनके वल्लभ बन सकते हैं।"

सुप्रतिष्ठ मुनिके यह वचन सुनकर राजा अन्धकवृष्णीको बहुत ही आनन्द हुआ। उन्होंने समुद्रविजयको अपना समूचा राज्यभार सौंपकर मुनिराजके निकट दीक्षा ले ली। अन्तमें वे मोक्षके अधिकारी हुए। राजा भोजवृष्णीने भी उनका अनुकरण किया। उनके बाद उग्रसेन मथुराका राजा और धारिणी उनकी पटरानी हुई।

छठा परिच्छेद

कंसका जन्म

एक दिन राजा उग्रसेन बगीचेकी सैर करने जा रहे थे। उस समय उन्होंने मार्गमें एक मासोपवासी मुनिको देखा। उस मुनिने यह व्रत ले रक्खा था कि मैं पारण के दिन केवल एक ही घरकी भिक्षा ग्रहण करूँगा, दूसरे घरकी नहीं। इस नियमानुसार वह प्रतिमास केवल एक ही बार भिक्षा माँगने निकलता और एक घरमें जो कुछ मिल जाता, उसीसे पारण कर वह पुनः अपने वासस्थान को लौट जाता। दूसरे घरमें वह कभी भिक्षा नहीं मांगता था।

राजा उग्रसेनने उस तापसको देखकर उसे अपने यहाँ भोजन करनेका निमन्त्रण दे दिया। तापस निमन्त्रण स्वीकार कर यथासमय राजाके यहाँ आया, परन्तु राजा निमन्त्रणकी बात बिल्कुल ही भूल गये थे, इसलिये

राज-मन्दिरमें किसीने उसका भाव भी न पूछा और वह विना भोजन किये ही अपने वासस्थानको लौट गया। वहाँ पहुँचने पर उसने पारण किये विना ही दूसरे मासका उपवास आरम्भ कर दिया।

दूसरे महीनेमें पुनः राजा उग्रसेन एक दिन उधरसे जा निकले। तापसको देखकर उन्हें उसके निमन्त्रणकी बात याद आ गयी। उन्होंने उसके पास जाकर अपनी इस भूलके लिये बहुत ही नम्र शब्दोंमें उससे क्षमा-प्रार्थना की और पुनः पारणके दिन अपने यहाँ भोजनके लिये उसे निमन्त्रित किया। परन्तु पहलेकी भाँति वे फिर यह बात भूल गये और तापसको विना भोजन किये ही वापस लौट जाना पड़ा। ज्योंही राजाको अपनी यह भूल मालूम हुई, त्यों ही वे फिर उस तापसके पास गये और अपनी भूलके लिये क्षमा प्रार्थना की। इसके बाद उन्होंने फिर पारणके दिन अपने यहाँ भोजन करनेके लिये उस तापसको निमन्त्रण दिया, किन्तु इसबार निमन्त्रणकी बात सुनकर तापसको उसपर क्रोध आ गया। उसने निमन्त्रण अस्वीकार कर यह नियाणा किया.

कि—"इस तपके प्रभावसे जन्म जन्मान्तरमें मेरे ही हाथोंसे इसकी मृत्यु हो !"

इसके बाद अनशन कर उस तापसने प्राण त्याग दिया और राजा उग्रसेनके यहाँ रानी धारिणीके उदरसे पुत्ररूपमें उत्पन्न हुआ। गर्भकालमें गर्भके प्रभावसे रानी धारिणीको अपने पतिका माँस खानेकी इच्छा उत्पन्न हुई; परन्तु यह दोहद ऐसा था, जिसे प्रकट करना भी कठिन था। निदान, दिन प्रतिदिन उसका शरीर क्षीण होने लगा। उसकी यह अवस्था देखकर राजा उग्रसेनने जब उससे अत्यन्त आग्रह पूर्वक पूछताछ की, तब उसने उन्हें अपने इस दोहदका हाल कह सुनाया।

राजा उग्रसेन उसे सुनकर बड़ी चिन्तामें पड़ गये। उन्होंने यह समाचार अपने मन्त्रियोंसे कहा। मन्त्रियोंने इसके लिये एक उपाय सोच निकाला। उन्होंने राजाको अंधेरेमें बिठाकर उनके पेटपर खरगोशका माँस बांध दिया और बादको वही माँस रानीके सामने काट-काट कर उसको खानेके लिये दिया गया। यह माँस खानेसे जब रानीका दोहद पूर्ण हो गया तब वह अपने मूल

स्वभावमें आ गयी और पश्चात्ताप करती हुई कहने लगी कि :—"हा दैव! मैंने यह क्या किया? पतिके विना मेरा यह जीवन ही व्यर्थ है। उनके विना यह गर्भ भी बेकार है। अब मैं अवश्य ही अपना प्राण दे दूँगी।"

इतना कह रानी धारिणीने चिता रूढ़ हो प्राण त्याग करनेकी तैयारी की, किन्तु इसी समय मन्त्रियोंने उसके पास आकर कहा :—"हे रानीजी! आप धैर्य धारण करें। हम सात दिनमें किसी-न-किसी तरह महाराजको स्वस्थ कर आपको दिखा देंगे।"

मन्त्रियोंकी इस सान्त्वनासे रानी ठहर गयी। सातवें दिन उन्होंने अपने वचनानुसार राजा उग्रसेनसे उसकी भेट करा दी। राजाको जीवित देखकर उसे बहुत ही आनन्द हुआ और उसने इसी उपलक्षमें एक उत्सव भी मनाया।

इसके बाद गर्भकाल पूर्ण होनेपर पौष कृष्ण चतुर्दशी को चन्द्रके मूल नक्षत्रमें रात्रिके समय रानीने एक पुत्रको जन्म दिया। परन्तु गर्भकालके अपने विचित्र दोहदके कारण रानी पहलेसे ही उस पुत्रसे डर गयी थी, इसलिये

उसका जन्म होते ही उसने उसे काँसेकी एक सन्दूकमें बन्द करा, उसमें राजा तथा अपने नामकी मुद्रिकाएँ तथा पत्र रख, उसे एक दासी द्वारा यमुना नदीमें फिकवा दिया। यह समाचार राजा उग्रसेनको मालूम न हो सका। रानीने उनसे कहला दिया कि पुत्र का जन्म होते ही उसकी मृत्यु हो गयी और राजाने भी इसे सच मान लिया।

उधर वह सन्दूक पानीमें बहती हुई शौर्यपुरके निकट जा पहुँची। वहाँ सुभद्र नामक एक व्यापारीने, जो शौचकर्मके लिये वहाँ गया था, उस सन्दूकको देखा। उसने तुरन्त उसे बाहर निकाल, उसे खोल कर देखा तो उसमेंसे राजा रानीके नामकी दो मुद्रिकाएं, वह पत्र और बालचन्द्रके समान उस बालकको पाया। उस वणिककी पत्नी मृतवत्सा थी। उसके बच्चे न जीते थे, इसलिये उस बच्चेको वह आनन्द पूर्वक अपने घर ले गया। वणिक-पत्नी भी उस रूपवान बालकको देखकर प्रसन्न हो उठी। उन दोनोंने बड़े प्रेमसे बच्चेको रख लिया और उसका नाम कंस रक्खा।

कंस जब बड़ा हुआ तो वह बड़ा ही उत्पाती निकला। वह महल्लेके समस्त बालकोंसे झगड़ा और मारपीट करता। उससे आये दिन सुभद्रको उलाहने मिलने लगे। धीरे-धीरे कंसकी अवस्था दस वर्षकी हुई, परन्तु इतने ही समयमें उसके उत्पातोंके कारण उसके पालक मातापिताकी नाकोंमें दम आ गया। अन्तमें उससे आजिज आकर सुभद्रने वसुदेव कुमारके यहाँ उसे नौकर रखवा दिया। यहाँपर कंसका सितारा चमका। वह वसुदेव कुमारका प्रिय पात्र बन गया। वसुदेवके साथ वह भी अनेक विद्या और कलाओंमें पारंगत बन गया। धीरे-धीरे वसुदेवके साथ ही खेलते वह यौवनावस्थाको प्राप्त हुआ। वे दोनों एक राशिमें स्थित सोम और मंगलकी भाँति शोभा देने लगे।

उधर शुक्तिमती नगरीमें वसुराजाके पुत्र सुवसुराज राज्य करते थे, परन्तु किसी कारणवश वहाँसे भागकर वे नागपुरमें जा बसे। वहाँ पर उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम बृहद्रथ रक्खा गया। वह बड़ा होने पर राजगृहमें जा बसा। वहाँ उसके वंशमें जयद्रथ नामक

एक राजा हुआ। उसके जरासंध नामक एक प्रति-वासुदेव पुत्र था। वह तीनों खण्डका स्वामी और परम प्रतापी था। एक दिन उसने किसी दूत द्वारा राजा समुद्रविजयको कहला भेजा कि वैताढ्य पर्वतके पास सिंहपुर नगरमें सिंहरथ नामक एक राजा राज करता है। वह बड़ा अभिमानी है, इसलिये जो कोई उसे बन्दी बना कर यहाँ ले आयेगा, उसे मैं अपनी जीवयशा नामक पुत्री और एक अच्छासा नगर जागीरमें दूँगा।

जरासन्धका आदेश अमान्य करना कोई सहज काम न था, इसलिये दूतके मुखसे यह सुनते ही समुद्रविजयकी राज-सभामें खलबली मच गयी। सिंहरथको बन्दी बनाना उतना ही कठिन था, जितना एक जहरीले सांपको वश करना। फिर भी वसुदेवने इसका बीड़ा उठा कर पितासे सिंहपुर जानेकी आज्ञा मांगी। समुद्र-विजयने कहा :—"हे भाई! तुम अभी सुकुमार हो। रणक्षेत्र अभी तुमने आँखोंसे भी नहीं देखा। वहाँ तो खूनकी नदी बहानी पड़ेगी। ऐसी अवस्थामें तुम्हारा वहाँ जाना उचित नहीं।"

परन्तु वसुदेवको तो अपना बाहुबल और रणकौशल दिखानेका हौंसला था, इसलिये उसने बारंबार पितासे आग्रहपूर्वक अनुरोध किया। उसके इस उत्साहके सामने अन्तमें समुद्रविजयको झुकना ही पड़ा। उन्होंने एक बहुत बड़ी सेनाके साथ उसे प्रस्थान करने की आज्ञा दे दी। बस, फिर क्या था, तुरन्त रणभेरी बज उठी और कंसके साथ वसुदेव सिंहपुरकी ओर चल पड़े।

थोड़े ही दिनोंमें यह सब दल सिंहपुर जा पहुँचा। शत्रुसेनाके आगमनका समाचार मिलते ही राजा सिंहरथ भी सिंहकी भाँति सिंहपुरसे बाहर निकल आया। वहाँ दोनों दलोंमें घमासान युद्ध हुआ। सिंहरथकी सेना वसुदेवकी सेनासे अधिक बलवान थी, इसलिये थोड़ी ही देरमें वसुदेवकी सेनाके पैर उखड़ गये। वसुदेवने रंग बदलते देखकर कंसको अपना सारथी बना कर बड़े जोरसे युद्ध करना आरम्भ किया। सिंहरथने भी दृढ़ता-पूर्वक उठ कर उससे लोहा लिया। दोनों एक दूसरेसे बढ़कर बलवान थे, इसलिये इस युद्धमें विजय-लक्ष्मी किसको वरण करेगी, यह कहना कठिन हो गया।

परन्तु कंसकी नसोंमें भी क्षत्रियका खून जोश मार रहा था। वसुदेवका सारथी बनकर केवल रथ हांकना और युद्धमें भाग न लेना वह भला कब पसन्द कर सकता था? मौका मिलेते ही रथसे कूद एक मुद्गर द्वारा उसने सिंहरथका रथ चूर चूर कर डाला। सिंहरथने भी कंसको मारनेके लिये तलवार खींच ली, किन्तु उसी समय वसुदेवने एक ऐसा भाला मारा कि वह तलवार तुरन्त मूठसे अलग हो गयी। अब सिंहरथको बन्दी बनाना सहज हो गया। कंसने छल और बल द्वारा उसे पकड़कर तुरन्त उसके हाथ पैर बांध दिये और उसे उठाकर वसुदेवके रथमें डाल दिया। सिंहरथकी यह अवस्था होते ही उसकी सेना भी भाग खड़ी हुई। वसुदेव और कंस विजयका डंका बजाते हुए सिंहरथके साथ अपने नगरको लौट आये।

राजा समुद्रविजय अपने भाईका यह पराक्रम देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए। किन्तु उन्होंने वसुदेवको एकान्तमें बुलाकर कहा कि :—"क्रोष्टुकी नामक एक ज्ञानीने मुझसे कहा है कि जरासन्धने सिंहरथको बन्दी बनाने-

वालेसे अपनी कन्याका विवाह कर देना घोषित किया है, परन्तु उसके लक्षण अच्छे नहीं हैं। वह पति और पिता दोनों कुलोंका क्षय करेगी। इसलिये यदि जरासन्ध तुमसे उसका विवाह करना चाहे, तो तुम वह भूलकर भी स्वीकार न करना।

भाईके यह वचन सुनकर वसुदेवने कहा :—"सिंहरथको वन्दी बनानेका श्रेय वास्तवमें कंसको ही है, इसलिये जीवयशासे उसीका व्याह करा देना चाहिये। जरासन्ध देहजमें जो वस्तु दे वह भी उसीको दे देना चाहिये।"

वसुदेवका यह विचार राजाको पसन्द आ गया, परन्तु उन्होंने कहा कि कंस तो जातिका वणिक है, इसलिये जरासन्ध उससे अपनी कन्याका विवाह न करेगा।

वसुदेवने कहा :—"आपका कहना ठीक है, परन्तु मुझे तो कंस वणिक नहीं प्रतीत होता। अपने कार्योंसे तो वह क्षत्रिय ही मालूम होता है।"

अन्तमें राजाने उसके पालक पिताको बुलाकर उससे

कंसका हाल पूछा। उसने कंसके सामने ही सब सच्चा हाल कह सुनाया और प्रमाण स्वरूप वह दो मुद्रिकाएं तथा पत्र भी लाकर राजाको दिखाया। उस पत्रमें कंसके जन्मका सब हाल लिखा हुआ था। उसे पढ़कर सबको विश्वास हो गया कि कंस वणिक नहीं, बल्कि यदुवंशी राजा उग्रसेनका पुत्र है।

इसके बाद राजा समुद्रविजयने सिंहरथको जरासंधके हाथोंमें सौंप दिया। साथही उसे कंसकी वीरताका सारा वृत्तान्त भी कह सुनाया। जरासन्ध उसे सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुआ और उसने जीवयशाका विवाह कंसके साथ कर दिया। पाठकोंको स्मरण होगा कि जरासंधने विजेताको मन पसन्द एक नगरी भी देनेको कहा था। कंस अपने पितासे असन्तुष्ट हो गया था। इसलिये उसने जरासंधसे मथुरा नगरी की याचना की। जरासंधने उसकी यह इच्छा भी पूर्ण कर दी। कंसका मनोरथ पूर्ण हो गया। अब वह वणिक पुत्र मिटकर राजवंशी बन गया।

मथुरानगरी पुरस्कारमें पानेके बाद कंसने जरासंधसे

सेना लेकर उसपर आक्रमण कर दिया और अपने पिता उग्रसेनको गिरफ्तार कर एक पींजड़ेमें बन्द कर दिया। उग्रसेनके अतिमुक्त नामक और भी एक पुत्र था, किन्तु उसे पिताकी दुर्गति देखकर वैराग्य आ गया, अतः उसने दीक्षा ले ली। इसके बाद कंसने शौर्यपुरसे अपने पालक पिता सुभद्रको बुलाकर उसके निकट बड़ी कृतज्ञता प्रकट की और उसे स्वर्णादिक देकर बहुत सम्मानित किया।

एकदिन धारिणी रानीने अपने पतिको छोड़ देनेके लिये कंससे बड़ी विनय-अनुनय की, परन्तु उसका कोई फल न हुआ। जब कंसने किसी तरह उग्रसेनको न छोड़ा तब रानी धारिणी कंसके मित्रोंके यहाँ जा जाकर कहने लगी कि मैंने ही कंसको काँसेकी सन्दूकमें बन्दकर नदीमें फिकवा दिया था। राजा उग्रसेनको तो यह बात मालूम भी न थी। वे सर्वथा निरपराध थे। वास्तविक अपराधिनी तो मैं ही हूँ, इसलिये कंससे कहिये कि जो दण्ड देना हो, वह मुझे दे और महाराजको बन्धन-मुक्त कर दें!"

कंसके मित्रोंने यह सब बातें कंसको बतला कर उग्रसेनको बन्धन-मुक्त कर देनेके लिये उसपर बहुत जोर डाला ; परन्तु पूर्वजन्मके संकल्पके कारण उसका कोई फल न हुआ। कंसके निकट जो कोई राजा उग्रसेनका नाम लेता, उससे भी कंस असन्तुष्ट हो जाता, इसलिये धीरे-धीरे लोगोंने उस विषयकी चर्चा भी करनी बन्द कर दी।

उधर सिंहरथको बन्दी बनानेमें यथेष्ट सहायता करनेके कारण जरासन्धने समुद्रविजयको भी खूब सम्मानित किया। वह जरासन्धका आतिथ्य ग्रहण कर अपने नगरको लौट गया। इस विजयसे वसुदेवकी अच्छी ख्याति हो गयी। अब वह शौर्यपुरमें जब-जब घूमने निकलता, तब-तब नगरकी ललनाएँ सब काम छोड़कर उसे देखनेके लिये दौड़ पड़तीं और उसका अलौकिक रूप देखकर उसपर मुग्ध हो जातीं—मन-ही-मन अपना तनमन उसपर न्यौछावर कर देतीं। कुछ दिनोंके बाद चारों ओर इसके लिये कानाफूसी होने लगी। एक दिन नगरके महाजनोंने आकर राजासे

एकान्तमें कहा :—"हे स्वामिन्! वसुदेवका रूप देखकर नगरकी बहु बेटियोंने मान-मर्यादा छोड़ दी है। जो स्त्री उसे एकबार देख लेती है, वह मानों उसके वश हो जाती है। फिर किसी काममें उसका जी नहीं लगता और वह उसीके पीछे पागल हो जाती है।"

महाजनोंके यह वचन सुनकर राजाने कहा :—"हे महाजनों! आपलोग धैर्य धारण करें। मैं शीघ्रही इसका कोई उपाय करूँगा।"

इस प्रकार महाजनोंको सान्त्वना देकर राजाने उन्हें विदा कर दिया और वसुदेवसे इस बातका जिक्र तक न किया। कुछ दिनोंके बाद, एकदिन जब वसुदेव उन्हें प्रणाम करने आया तो उन्होंने बड़े प्रेमसे उसे अपने पास बैठाकर कहा :—"प्रिय भाई! आजकल तुम्हारा शरीर बहुत ही दुर्बल हो गया है। मैं समझता हूँ कि तुम सारा दिन नगरमें घूमा करते हो, इसीलिये ऐसा हुआ है। तुम अपना सारा समय राजमहल और राजसभामें ही बिताया करो तो अच्छा हो। मैं कुछ ऐसे कलाविद् मनुष्योंका प्रबन्ध कर दूँगा, जो तुम्हें

कलाकी शिक्षा भी देंगे और अवकाशके समय तुम्हारा मनोरंजन भी करेंगे।"

वसुदेव बहुत ही नम्र और विवेकी था। उसने तुरन्त यह बात मान ली और दूसरे दिनसे सङ्गीत, नृत्य और विद्या-कलाकी चर्चामें अपना समय बिताने लगा। अपनी सरलताके कारण वह बिलकुल न समझ सका, कि उसपर यह प्रतिबन्ध क्यों लगाया गया है।

परन्तु यह रहस्य अधिक दिनोंतक छिपा न रह सका। महलके कई दास-दासियोंको महाजनोंकी शिकायतका हाल मालूम था। और उन्हींसे इस गुप्त भेदका भंडाफोड़ हो गया। बात यह हुई कि एक दिन कुब्जा नामक एक दासी कुछ गन्ध-द्रव्य लिये आ रही थी। उस समय वसुदेवने उसे रोक कर पूछा, कि—"यह गन्ध-द्रव्य किसके लिये लायी हो? कुब्जाने उत्तर दिया:—"हे कुमार! यह गन्ध शिवादेवीने समुद्र-विजयके लिये भेजा है।"

"तब तो यह मेरे भी काम आयगा।" यह कहते हुए दिल्लगीके साथ वसुदेवने उसे छीन लिया। छीनते

ही वह दासी नाराज हो गयी। उसने घुड़क कर कहा—"तुममें यह कुलक्षण है, इसीलिये तो तुम बन्धनमें पड़े हो!"

वसुदेवने चौंककर पूछा:—"बन्धन कैसा? क्या मैं किसी बन्धनमें पड़ा हूँ?"

दासी पहले तो कुछ भयभीत हुई, किन्तु बादको वसुदेवकी बातोंमें आकर उसने महाजनोंकी शिकायतका सारा हाल उसे कह सुनाया। स्त्रियोंके हृदयमें छिपी बात अधिक समय तक रह ही कैसे सकती है?

वसुदेवने उसे तो गन्ध-द्रव्य देकर विदा कर दिया; किन्तु वह स्वयं गहरी चिन्तामें पड़ गया। वह अपने मनमें कहने लगा,—"मेरे बड़े भाईको शायद यह सन्देह हो गया है कि मैं स्त्रियोंका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करनेके लिये ही नगरमें घुमा करता हूँ। और इसीलिये उन्होंने मुझे बाहर न जानेकी सलाह दी है। यह बहुत ही बुरी बात है। ऐसी अवस्थामें यहाँ रहना भी मेरे लिये अपमान जनक है!"

इस प्रकार विचार कर शामके समय गुटिका द्वारा

वेश बदल कर वसुदेव नगरके बाहर निकल गया। नगरके बाहर एक श्मशान था। वहाँ चिता तैयार कर उसने किसी अनाथकी लाश उसमें जला दी। इसके बाद स्वजनोंको शान्त करनेके उद्देशसे एक कागजमें दो श्लोक लिखकर उसे पासके खंभेमें लटका दिया। वे श्लोक यह थे :—

"दोषत्वेनाभ्यधीयन्त, गुरूणां यद्गुणा जनैः।
इति जीवन् मृतं मन्यो, वसुदेवोऽनलेऽविशत् ॥ १ ॥
ततः सन्तमसन्तं वा, दोषं मे स्ववितर्कितम्।
सर्वे सहध्वं गुरवः, पौरलोकाश्च मूलतः ॥ २ ॥

अर्थात् :—"गुरुजनोंके समक्ष महाजनोंने गुणोंको दोष रूपमें प्रकट किये इसलिये मैंने अपनेको जीवन्मृत मानकर अग्निमें प्रवेश कर लिया है। अपनी धारणानुसार, मेरा दोष हो या न हो, किन्तु गुरुजन और नगर-वासियोंसे मेरी यही प्रार्थना है, कि वे मेरा अपराध क्षमा करें और मुझे भूल जायें।"

इतनी कारवाई करनेके बाद वसुदेव ब्राह्मणका वेश धारणकर वहाँसे एक ओर चल पड़े। मार्गमें उन्हें एक

रथ मिला। उसमें कोई स्त्री बैठकर अपने मायके जा रही थी। उसने वसुदेवको देखकर अपने आदमियोंसे कहा:—"मालूम होता है कि यह प्रवासी ब्राह्मण थक गया है। इसे अपने रथमें बैठा लो!" उसके यह वचन सुनकर उसके आदमियोंने वसुदेवको रथपर बैठा लिया। इससे वसुदेव अनायास एक नगरमें पहुँच गये। वहाँ भोजन और स्नानादिसे निवृत्त हो, वे एक यक्षके मन्दिरमें चले गये और वहीं उन्होंने सुखपूर्वक वह रात्रि व्यतीत की।

इधर शौर्यपुरमें चारों ओर यह बात फैल गयी कि, वसुदेवने अग्निप्रवेश कर अपना प्राण दे दिया है। यादवों को इस घटनासे बहुतही दुःख हुआ किन्तु इसे दैवेच्छा मानकर उन्होंने वसुदेवकी उत्तरक्रिया कर दी। वसुदेव यह समाचार सुनकर निश्चिन्त हो गये। उन्हें विश्वास हो गया कि अब कोई उनकी खोज न करेगा। दो एक दिनके बाद वे उस नगरसे विजयखेट नामक नगरको चले गये।

विजयखेटके राजाका नाम सुग्रीव था। उसके श्यामा और विजयसेना नामक दो कन्याएँ थी। वसु-

देवने कलाकौशलमें उन्हें पराजित कर उनसे विवाह कर लिया। विवाहके बाद वे बहुत दिन तक ससुरालमें मौज करते रहे। इसी समय विजयसेनाके उदरसे उन्हें अक्रूर नामक एक पुत्र भी हुआ। वह बहुत ही रूपवान् बालक था। कुछदिन उसकी भी बालक्रीड़ा देखनेके बाद वसुदेवने वहाँसे दूसरे नगरके लिये प्रस्थान किया।

मार्गमें वसुदेवको एक बड़ा भारी जंगल मिला। वहाँ उन्हें प्यास लगी। इसलिये वे जलकी तलाश करते हुए जलावर्त्त नामक एक सोरव के तटपर जा पहुँचे। उस समय एक जंगली हाथीने उनपर आक्रमण कर दिया, किन्तु वसुदेवने विचलित न होकर मृगेन्द्रकी भाँति उससे युद्ध कर उसपर विजय प्राप्त की। इसके बाद मौका मिलते ही वे उसपर सवार हो गये। इसी समय कहींसे अर्चिमालि और पवनजय नामक विद्याधर उधर आ निकले। वे वसुदेवको हाथी पर बैठे देखकर उन्हें कुञ्जरावर्त्त उद्यानमें उठा ले गये। वहाँ विद्याधरोंके राजा अशनिवेगने अपनी श्यामा नामक कन्यासे उनका विवाह

कर दिया। वसुदेव अब वहींपर आनन्दपूर्वक अपने दिन व्यतीत करने लगे।

वसुदेवकी यह पत्नी वीणा बजानेमें बहुतही निपुण थी। एक दिन उसकी इस कलासे प्रसन्न हो वसुदेवने उसे वर मांगनेको कहा। इसपर श्यामाने कहा :—"यदि आप वास्तवमें प्रसन्न हैं और मुझे मनवाँछित वर देना चाहते हैं, तो मुझे ऐसा वर दीजिये कि आपका और मेरा कभी वियोग न हो।"

वसुदेवने कहा :—"तथास्तु—ऐसा ही होगा, किन्तु हे सुन्दरी! यह तो बताओ कि तुमने क्या सोच-कर यह वर माँगा है? तुम इससे अच्छा कोई और वर भी मांग सकती थी।"

श्यामाने कहा :—"नाथ! अवश्य ही यह वर मांगनेका एक खास कारण है। वह मैं आपको बतलाती हूँ, सुनिये। अर्चिमाली नामक एक राजा था। उसके ज्वलनवेग और अशनिवेग नामक दो पुत्र थे। ज्वलन-वेगको अपना राज्यभार सौंपकर अर्चिमालीने दीक्षा ले ली। कुछ दिनोंके बाद ज्वलनवेगकी विमला नामक

रानीने एक पुत्रको जन्म दिया। उसका नाम अंगारक रक्खा गया। मैं अशनिवेगकी पुत्री हूँ। मेरी माताका नाम सुप्रभा था। कुछ दिनोंके बाद ज्वलनवेग अपने भाई अशनिवेगको अपना राज्य देकर स्वर्ग चले गये। अंगारकको यह अच्छा न लगा और उसने अपनी विद्याके बलसे अशनिवेगको बाहर निकाल कर राज्यपर अधिकार जमा लिया।

इस घटनासे खिन्न हो मेरे पिता अष्टापद पर्वत पर चले गये। वहाँपर अंगिरस नामक एक चारण मुनिसे उनकी भेट हो गयी। उन्होंने उससे पूछा :—"हे मुनिराज! मेरा राज्य मुझे कभी वापस मिलेगा या नहीं?"

मुनिराजने कहा :—"तुम्हारा राज्य तुम्हें अवश्य वापस मिलेगा, किन्तु वह तुम्हारे दामाद की सहायतासे मिलेगा।"

इसपर मेरे पिताने पुनः पूछा :—"हे मुनिराज! क्या आप दया कर यह भी बतला सकते हैं कि मेरा दामाद कौन होगा?"

मुनिराजने कहा:--"जो जलावर्त्तके हाथीको जीतेगा, वही तुम्हारा दामाद होगा। यही उसकी पहचान है।"

मुनिराजके इन वचनों पर विश्वास कर मेरे पिता यहाँपर चले आये। उसी समयसे यह नगर वसाकर वे यहाँपर निवास करते हैं। आपकी खोजमें वे प्रतिदिन जलावर्त्त पर दो विद्याधरोंको भेजा करते थे। जिस दिन आपने उसे पराजित कर उस पर सवारी की, उसीदिन वे आपको पहचान कर यहाँपर ले आये और इसीलिये मेरे पिताने आपके साथ मेरा विवाह कर दिया। मैं जानती हूँ कि अँगारक आपको यहाँ चैनसे न बैठने देगा। साथ ही मुझे यह भी मालूम है कि धरणेन्द्र और विद्याधरोंने मिलकर यह निर्णय किया है कि आर्हत चैत्यके निकट और साधुके समीप अवस्थित स्त्री सहित इन्हें जो मारेगा, वह विद्या रहित हो जायगा। हे स्वामिन्! इन्हीं सब कारणोंसे मैंने यह वर माँगा है। मेरी धारणा है कि इससे अँगारक अब आपको अकेला न मार सकेगा।"

श्यामाके यह वचन सुनकर वसुदेवको बड़ाही आनन्द हुआ। अब वे सुखपूर्वक वहीं रहते हुए अपने

दिन निर्गमन करने लगे। एक दिन रात्रिके समय जब वे अपनी पत्नीके साथ सो रहे थे, तब अचानक वहाँ अँगारक आया और उन्हें उठाकर वहाँसे चल पड़ा। इससे तुरन्त वसुदेवकी निद्रा भङ्ग हो गयी। वे अपने मनमें सोचने लगे कि मुझे यह कौन उठाये लिये जा रहा है? इतनेही में उन्हें हाथमें खड्ग लिये श्यामा दिखायी दी। अँगारकने उसे देखते ही अपनी तलवारसे उसके दो टुकड़े कर डाले। यह हृदय विदारक दृश्य देखकर वसुदेव काँप उठे और उनके मुखसे एक चीख निकल पड़ी। किन्तु दूसरे ही क्षण उन्होंने देखा कि दो श्यामाएँ दोनों ओर से अँगारकके साथ युद्ध कर रही हैं। यह देखकर वसुदेवने समझा कि यह सब झूठी माया है। उन्होंने उसी समय अँगारकके शिर पर एक ऐसा घूँसा जमाया कि वह पीड़ासे तिल-मिला उठा। उसने तुरन्त वसुदेवको छोड़ दिया। वसुदेव चम्पानगरीके बाहर एक सरोवरमें जा गिरे, किन्तु सौभाग्यवश उन्हें कोई चोट न आयी। वे तैरकर उसके बाहर निकल आये। समीपमें ही एक उपवन था। उसमें श्री वासुपूज्य भगवंतका चैत्य था। उसीमें प्रवेश कर

वसुदेवने भगवंतकी वन्दना की और वहीं पर वह रात वितायी।

सुबह एक ब्राह्मणसे वसुदेव की भेंट हो गयी। वे उसके साथ चम्पानगरीमें गये। वहाँपर बाजारमें वे जहाँ देखते वहीं उन्हें युवकगण वीणा बजाते हुए दिखाई देते थे। इसलिये उन्होंने ब्राह्मणसे इसका कारण पूछा। उसने बतलाया कि यहाँ चारुदत्त नामक एक सेठ है। उसके गन्धर्वसेना नामक एक कन्या है जो रूप और गुण में अपना सानी नहीं रखती। उसने प्रतिज्ञा की है कि जो सङ्गीत-कलामें और खासकर वीणा-वादनमें मुझे पराजित करेगा, उसीसे मैं व्याह करूँगी। इसीलिये यह सब युवक वीणा बजाने का अभ्यास कर रहे हैं। सुग्रीव और यशोग्रीव नामक दो प्रसिद्ध संगीताचार्य नियमित रूपसे इन युवकोंको संगीत की शिक्षा देते हैं और प्रतिमास परीक्षा लेकर योग्यताकी जाँच भी करते हैं।"

ब्राह्मणके यह वचन सुनकर वसुदेव ब्राह्मणका वेश धारण कर सुग्रीवके पास गये। उन्होंने उससे कहा :—
"हे गुरुदेव! मैं बहुत दूरसे आपका नाम सुनकर आपके

पास आया हूँ। मेरा नाम स्कन्दिल, जाति ब्राह्मण और गोत्र गौतम है। गन्धर्वसेनाको जीतने के लिये मैं आपके निकट संगीत सीखना चाहता हूँ। दयाकर मुझे भी आप अपनी शिष्य-मण्डलीमें स्थान दीजिये !"

ब्राह्मण वेशधारी वसुदेवके यह वचन सुनकर संगीताचार्य सुग्रीवने एकवार नीचेसे ऊपरतक उसे देखा। उसका वेश देख कर उन्होंने मोटी बुद्धिसे उसे मूर्ख समझ लिया और बड़े अनादरसे उसे अपने पास रक्खा। परन्तु वसुदेवने इन सब बातोंकी कोई परवाह न की। वे ग्राम्य भाषा बोल-बोल कर सारा दिन लोगोंको हँसाते। अपना प्रकृत परिचय तो उन्होंने किसीको दिया ही नहीं। सब लोग उन्हें ग्रामीण और गँवार समझ कर सदा उनकी दिल्लगी करते और उन्हें उपेक्षा की दृष्टिसे देखते।

कुछ दिनोंके बाद वाद-विवादका दिन आ पहुँचा। समस्त युवकोंने उत्तमोत्तम गहने-कपड़े पहन कर सभास्थान की ओर जानेकी तैयारी की। वसुदेवके पास श्यामाका दिया हुआ केवल एकही वस्त्र था। सुग्रीवकी पत्नीको यह बात मालूम थी, इसलिये उसने वसुदेवको अपने पास

बुलाकर बड़े प्रेमसे उसे दो वस्त्र प्रदान किये। वसुदेव भी इन वस्त्रोंको पहनकर सभामें जानेको तैयार हुए। उनका विचित्र वेश देखकर उनके सहपाठियोंने कहा :—"आप हमारे साथ जरूर चलिये! गन्धर्वसेना बहुत करके तो आपके रूप पर ही मुग्ध हो जायगी और यदि वैसा न हो तो आप उसे अपनी संगीत-कलासे जीत लीजियेगा!"

वसुदेव सहपाठियोंकी दिल्लगी पर ध्यान न दे, वे उन्हें हँसाते हुए उनके साथ सभास्थानमें पहुँचे। वहाँ भी उनके सहपाठियोंने उनकी दिल्लगी कर उन्हें एक ऊँचे स्थानमें बैठा दिया। यथासमय गन्धर्वसेना सभामें उपस्थित हुई। वाद-विवाद आरम्भ हुआ। सभामें देश-विदेशके धुरन्धर संगीत शास्त्री उपस्थित थे। परन्तु गन्धर्वसेनाने सबको मात कर दिया। गाने, बजाने या संगीत विषयक वाद-विवाद करनेमें कोई भी उसके सामने न ठहर सका।

अन्तमें वसुदेवकी बारी आयी। गन्धर्वसेना ज्योंहीं उनके सामने पहुँची, त्योंहीं उन्होंने अपना असली रूप प्रकट कर दिया। उनका यह रूप देखते ही गन्धर्वसेना उनपर मुग्ध हो गयी। यह देख उनके सहपाठियों पर

तो मानों घड़ों पानी पड़ गया। जिसने वसुदेवका वह अलौकिक रूप देखा, उसीने दाँतोंतले उँगली दबाली। गन्धर्वसेनाने उनसे वीणा बजानेको कहा, किन्तु वसुदेवके पास वीणा न थी, इसलिये सभाके अनेक लोगोंने उन्हें अपनी वीणा दी, परन्तु वसुदेवने उन वीणाओंमें दोष दिखा-दिखा कर उन्हें वापस दे दी। अन्तमें गन्धर्वसेनाने स्वयं अपनी वीणा दी। वसुदेवने उसे निर्दोष बतलाकर गन्धर्वसेनासे पूछा—"हे सुन्दरि! अब कहो, तुम किस विषयका संगीत सुनना चाहती हो?"

गन्धर्वसेनाने कहा:—"हे संगीतज्ञ! इस समय महापद्म चक्रवर्तीके ज्येष्ठबन्धु विष्णुकुमारके त्रिविक्रम विषयक संगीत सुननेकी मेरी इच्छा है।"

बस, उसके कहनेकी ही देर थी। उसीक्षण वीणाकी मधुर झंकार और संगीतकी सुन्दर-ध्वनिसे सभास्थान गूँज उठा। लोग मन्त्र-मुग्ध की भाँति शिर हिला-हिला कर वसुदेवका गायन, वादन, सुनते रहे। किसी भी छिद्रा-न्वेषीको उसमें कोई दोष न दिखायी दिया। परीक्षकोंने उसे निर्दोष और अद्वितीय बतलाया। गन्धर्वसेनाकी

कौन कहे, बड़े-बड़े संगीताचार्यों ने भी उनके सामने हार मान ली।

जब वसुदेवकी विजयमें कोई सन्देह न रहा, तब चारुदत्त सभा विसर्जन कर उन्हें सम्मानपूर्वक अपने मकान पर लिवा ले गया। वहाँ पर गन्धर्वसेना और उनके विवाहका आयोजन किया गया। ब्याहके समय चारुदत्तने पूछा—"हे वत्स! तुम्हारा कौन गोत्र है?" वसुदेवने हँसकर कहा:—"आप जो समझ लें वही गोत्र है!" चारुदत्तने इसे उपहास समझ कर कहा:—"गन्धर्वसेनाको वणिक पुत्री मानकर आप उपहास कर रहे हैं, किन्तु इसके कुलादिकका वास्तविक वृत्तान्त मैं फिर किसी समय आपको सुनाऊँगा।"

खैर, किसी तरह उन दोनोंका विवाह निपट गया। चारुदत्तने इस समय बड़ा उत्सव मनाया और दानादिक में प्रचुर धन व्यय किया। सुग्रीव और यशोग्रीवने भी वसुदेवके गुणोंपर मुग्ध हो, अपनी श्यामा और विजया नामक दो कन्याओंका उनसे विवाह कर दिया। वसुदेव अपनी इन नव-विवाहित पत्नियोंके साथ अपने दिन सुखपूर्वक व्यतीत करने लगे।

एक दिन अवकाशके समय चारुदत्तने वसुदेवसे कहा,—"हे वत्स! मैंने तुमसे व्याहके समय कहा था कि गन्धर्वसेनाके प्रकृत कुलका परिचय मैं तुम्हें फिर किसी समय दूँगा।" आज तुम्हें वह वृत्तान्त सुनाता हूँ, ध्यान देकर सुनो :—

एक समय इसी नगरीमें भानु नामक एक बड़ाही धनवान व्यापारी रहता था। उसके सुभद्रा नामक एक स्त्री भी थी, किन्तु सन्तान न होनेके कारण वे दोनों बहुत दुःखित रहते थे। एकबार उन्होंने एक चारण मुनिसे पूछा कि हे महाराज! क्या हम भी कभी पुत्रका मुख देखकर अपनेको धन्य समझेंगे? मुनिराजने कहा,—"हाँ, तुम्हारे पुत्र अवश्य होगा, किन्तु अभी कुछ समय की देरी है।" मुनिराजके इन वचनोंसे उन्हें आशा बँध गयी। कुछ दिनोंके बाद वास्तवमें उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इससे उन दोनोंके जीवनमें एक नयाही आनन्द आगया।

एकदिन मैं सिन्धु नदीके तटपर घूमने गया था। वहाँपर किसी आकाशगामी पुरुषके सुन्दर चरण-चिन्ह

मुझे दिखायी दिये। ध्यानपूर्वक देखने पर मुझे मालूम हुआ कि उन चरण-चिन्होंमें किसी स्त्रीके भी चरण-चिन्ह सम्मिलित हैं। इससे मैं समझ गया कि उस पुरुषके साथ कोई स्त्री भी होगी। वहाँसे आगे बढ़ने पर एक स्थानमें मुझे एक कदली-गृह, पुष्पशय्या, ढाल और तलवार आदि चीजें दिखायी दीं। उसके पास ही एक वृक्षमें कोई विद्याधर जकड़ा हुआ था। मैंने देखा कि उसके हाथ पैरोंमें लोहे की कांटियाँ जड़ दी गयी हैं, इसलिये मैं बड़ी चिन्तामें पड़ गया। इधर-उधर खोज करने पर उसकी तलवारके म्यानमें मुझे तीन औषधियाँ दिखायी दीं। उनमेंसे एक औषधिका प्रयोग कर मैंने उसे बन्धन मुक्त किया। दूसरी औषधि लगानेसे उसके जख्म अच्छे हो गये और तीसरी औषधि देने पर वह पूर्ण स्वस्थ हो गया। उसे स्वस्थ देखकर मैंने पूछा,—"हे युवक! तुम कौन हो और तुम्हारी यह अवस्था किसने की?"

युवकने अपना परिचय देते हुए कहा,—"हे भद्र! वैताढ्य पर्वत पर शिवमन्दिर नामक एक नगर है। उसमें महेन्द्र विक्रम नामक राजा राज करते हैं। उन्हींका मैं

पुत्र हूँ। मेरा नाम अमितगति है। एकदिन धूमशिख और गौरमुण्ड नामक दो मित्रोंकेसाथ क्रीड़ा करता हुआ मैं हिमन्त पर्वत पर जा पहुँचा। वहाँ पर मैंने अपने मामा हिरण्यरोम तपस्वीकी सुकुमालिका नामक रमणीय कुमारी को देखा। उसे देखकर मैं उस पर मोहित हो गया और चुपचाप अपने वासस्थानको लौट आया। परन्तु मेरी हालत उसी दिनसे खराब होने लगी। न मुझे भोजन अच्छा लगता था, न रातमें नींद ही आती थी। मेरे एक मित्र द्वारा मेरे पिताको यह हाल मालूम होने पर उन्होंने उस कुमारिकाको बुलाकर उससे मेरा व्याह कर दिया। फलतः मैं उसके साथ आनन्दपूर्वक अपने दिन व्यतीत करने लगा।"

कुछ दिनोंके बाद मुझे मालूम हुआ कि मेरा मित्र धूमशिख मेरी स्त्रीको कुदृष्टिसे देखता है। और भी कई बातोंसे मुझे विश्वास हो गया कि वह उस पर आसक्त है। किन्तु इसके लिये मैंने न तो उसे उलाहना ही दिया, न मैंने उसका अपने यहाँ आना-जाना ही बन्द किया। मेरी इस सज्जनताका फल आज मुझे यह मिला, कि वह

हमारे साथ यहाँ घूमने आया और मुझे इस वृक्षसे जकड़ कर मेरी प्रियतमाको उठा ले गया। खैर, अब जो कुछ होगा, देखा जायगा। इस समय तो आपने मुझ पर उपकार कर मेरा प्राण बचाया है, इसलिये बतलाइये कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ? आपके इस उपकारका क्या बदला दूँ?"

मैंने कहा:—"हे अमितगति! मैंने किसी बदलेकी आशासे यह उपकार नहीं किया। तुम्हें ऐसी अवस्थामें सहायता करना मैंने अपना कर्त्तव्य समझा। मैं तुम्हारे दर्शनसे ही अपने को कृतकृत्य मानता हूँ।"

मेरे यह वचन सुनकर वह विद्याधर अपने वासस्थान को चला गया और मैं इस घटना पर विचार करता हुआ अपने घर लौट आया।

यह उस समयकी बात है, जिस समय मैं किशोरा-वस्था अतिक्रमण कर रहा था। धीरे-धीरे जब मैंने यौवन की सीमामें पदार्पण किया, तब मेरे पिताने मेरे सर्वार्थ नामक मामाकी मित्रवती नामक कन्यासे मेरा विवाह कर दिया। परन्तु उन दिनों मैं कलाओंके पीछे

पागल हो रहा था, इसलिये मैंने अपनी उस पत्नीकी ओर आँख उठाकर देखा भी नहीं। मेरी यह अवस्था देख-कर मेरे पिताने मेरे लिये ललित गोष्ठीका प्रबन्ध कर दिया। उन्होंने सोचा होगा कि इससे मेरी कामुकता बढ़ेगी और मेरा ध्यान अपनी स्त्रीकी ओर आकर्षित होगा।

परन्तु उनके इस कार्यका फल उनकी इच्छानुसार न हुआ। मैं अपने प्यारे मित्रोंके साथ बगीचों की सैर करने लगा और अन्तमें कलिङ्गसेना नामक वेश्याकी पुत्री वसन्त सेनाके प्रेम-जालमें उलझ गया। मैं उसके पीछे बारह वर्ष तक पागल रहा। मैं रात दिन वहीं रहता और वहीं खाता-पीता। मैंने सब मिलाकर उसे सोलह करोड़ रुपये खिलाये। इसके बाद जब मैं उसे अधिक धन देनेमें असमर्थ हो गया, तब उसने मुझे अपने घरसे निकाल दिया। लाचार, मुझे फिर अपने घर आना पड़ा।

घर आने पर मुझे मालूम हुआ कि मेरे माता-पिता का देहान्त हो गया है। घरकी सारी सम्पदा तो मैंने

पहले ही नष्ट कर दी थी। केवल मेरी स्त्रीके पास कुछ आभूषण थे। उन्हें लेकर मैं व्यापार निमित्त अपने मामाके साथ उशीरवर्ति नगरकी ओर चल पड़ा। वहाँ मैंने उन आभूषणोंसे कपास खरीद ली, क्योंकि उसमें मुझे अच्छा मुनाफा होनेकी उम्मीद थी।

यह कपास लेकर मैंने अपने मामाके साथ ताम्रलिप्ति नगरकी ओर प्रस्थान किया। परन्तु मार्गमें मेरी कपासमें आग लग जानेसे वह देखते ही देखते खाक हो गयी। अब मेरे पास कोई ऐसा धन भी न था, जिससे मैं कोई व्यापार कर सकूँ। मेरे मामाने भी मुझे अभागा समझ कर मेरा साथ छोड़ दिया। मैं इससे निराश न हुआ और अकेला ही घोड़े पर बैठ पश्चिम की ओर आगे बढ़ा। दुर्भाग्यवश रास्तेमें मेरा वह घोड़ा भी मर गया। अब पैदल चलनेके सिवा कोई दूसरा उपाय न था। इसलिये कुछ दिनोंके बाद मैं धीरे-धीरे चलकर प्रियंगुपुर नामक एक नगरमें जा पहुँचा।

प्रियंगुपुरमें वणिकोंकी अच्छी बस्ती थी, वे तरह-तरहका व्यवसाय करते थे। वहाँ सुरेन्द्रदत्त नामक मेरे पिताका

एक मित्र भी रहता था। मैंने उसीके यहाँ जाकर आश्रय ग्रहण किया। वह मेरी दुरावस्था देखकर बहुतही दुःखी हुआ। समुचित स्वागत-सत्कार करनेके बाद उसने मुझे वहीं व्यवसाय करने की सलाह दी। मैंने उसकी आर्थिक सहायतासे उसकी इच्छानुसार कार्य शुरू किया और थोड़े ही दिनमें सब खर्च बाद देकर मुझे लाख रुपयेका मुनाफा हुआ।

यह रुपये हाथमें आने पर मुझे किराना लेकर समुद्र यात्रा करने की सूझी। सुरेन्द्रको यह बात पसन्द न आयी और उसने मुझे बहुत मना किया, किन्तु मैंने उसकी एक न सुनी। शीघ्रही मैंने किरानेसे एक जहाज भरकर समुद्रमार्ग द्वारा विदेशके लिये प्रस्थान करदिया। कुछ दिनोंके बाद मैं यमुना नामक द्वीपमें जा पहुँचा। उस द्वीपके कई नगरोंमें घूम-घूम कर मैंने वह किराना बेच दिया। इसमें मुझे बहुत अधिक लाभ हुआ। थोड़े दिन इसी तरह उलट फेर करने पर मेरे पास आठ करोड़ रुपये इकट्ठे हो गये। यह कोई साधारण रकम न थी। मैंने सोचा कि अब अपने देशको चलना चाहिये और

वहीं कोई व्यवसाय कर जीवनके शेष दिन शान्तिपूर्वक व्यतीत करने चाहिये।

यह विचार कर मैंने स्वदेशके लिये प्रस्थान किया, परन्तु दैवदुर्विपाकसे मेरा जहाज टूट गया। इससे न केवल मेरा वह धन ही नष्ट हो गया, बल्कि मेरी जानके भी लाले पड़ गये। खैर, अभी जिन्दगी बाकी थी, इसलिये लकड़ीका एक तख्ता मेरे हाथ लग गया और मैं उसीके सहारे तैरता हुआ सात दिनमें उदम्बरावतीवेल नामक स्थानमें किनारे आ लगा।

उदम्बरावतीवेलसे मैं किसी तरह राजपुर नगरमें गया। वहाँ नगरके बाहर एक आश्रममें मुझे दिनकर-प्रभ नामक एक त्रिदण्डी स्वामीके दर्शन हुए। उसे मैंने अपना सारा हाल कह सुनाया। उसने मुझ पर दया कर मुझे खानेके लिये अन्न और सोनेके लिये स्थान दिया। मैं उसीके यहाँ रहकर अपना सारा समय उसीकी सेवामें बिताने लगा।

एक दिन उस त्रिदण्डीने कहा :—"हे वत्स! मालूम होता है कि तुम धनार्थी हो—तुम्हें धनकी

अत्यन्त आवश्यकता है। यदि यह बात ठीक हो, तो तुम मेरे साथ एक पर्वत पर चलो। मैं वहाँपर तुम्हें एक ऐसा रस दूँगा, जिससे तुम जितना चाहो, उतना सोना बना सकोगे।"

धनकी आवश्यकता तो मुझे थी ही, इसलिये मैं उसी समय उसके साथ चल पड़ा। एक भयंकर जंगलके रास्ते हमलोग उस पर्वत पर पहुँचे। इसके मध्य भागमें दुर्गपाताल नामक एक भयानक गुफा थी। इस गुफाका द्वार एक बड़े भारी पत्थरसे बन्द था। त्रिदण्डीने मन्त्र-बलसे उसे खोलकर उसमें प्रवेश किया। मैं भी उसके साथ ही था। इधर-उधर भटकनेके बाद हमलोग उस कूपके पास जा पहुँचे, जिसमें वह सोना बनानेवाला रस भरा था। वह कूप चार हाथ चौड़ा काफी गहरा और देखनेमें बहुत ही भयङ्कर था। वहाँ पहुँचने पर त्रिदण्डीने मुझसे कहा :—"तुम इस कूपमें उतर कर इस कमण्डलमें रस भर लाओ! नीचेसे ज्योंही तुम रस्सी हिलाओगे, त्योंही मैं तुम्हें ऊपर खींच लूँगा।"

त्रिदण्डीके आदेशानुसार मैं एक मचिया पर बैठ,

उस कूएँमें उतरने लगा। त्रिदण्डीने ऊपरसे उसकी रस्सी पकड़ रक्खी थी। बीस पचीस हाथ नीचे जाने पर मुझे चमकता हुआ रस दिखायी दिया। मैं ज्योंही वह रस कमण्डलमें भरनेको तैयार हुआ, त्योंही किसीने मुझे वैसा करनेसे मना किया। मैंने कहा :—"भाई! तुम मना क्यों करते हो? मैं चारुदत्त नामक वणिक हूँ और त्रिदण्डी स्वामीके आदेशसे यह रस लेने यहाँ आया हूँ।"

उस आदमीने कहा :—"भाई! मैं भी तुम्हारी ही तरह धनका लोभी एक वणिक हूँ और वह त्रिदण्डी ही मुझे यहाँ लाया था। इस कूएँमें उतारनेके बाद वह पापी मुझे यहीं छोड़ कर चला गया। यह रस बड़ा तेज है। यदि तुम इसमें उतरोगे तो तुम्हारी भी यही अवस्था होगी। यदि तुम रस लिये बिना वापस नहीं जाना चाहते तो, अपना कमण्डल मुझे दो, मैं उसमें रस भर दूँगा।"

उसकी यह बात सुनकर मैंने वह कमण्डल उसे दे दिया और उसने उसमें रस भरकर उसे मेरी मचियाके

नीचे लटका दिया। रस मिलतेही मैंने रस्सी हिला दी और उस त्रिदण्डीने मुझे ऊपर खींचना आरम्भ कर दिया। अब मैं उस कूपके मुखके पास आ पहुँचा, तब त्रिदण्डीने खींचना बन्द कर, मुझसे पहले वह रस दे देनेको कहा। मैंने कहा :—"भगवन्! पहले मुझे बाहर निकालिये, रस मचियाके नीचे बँधा हुआ है।"

त्रिदण्डीने मेरी इस बात पर ध्यान न दिया। वह बारंबार रस दे देनेका आग्रह करता था। इससे मैं समझ गया कि वह केवल रसका भूखा है। रस मिल जाने पर वह मुझे धोखा देकर इसी कुएँमें छोड़ देगा और आप यहाँसे चलता बनेगा। निदान जब मैंने उसे रसका कमण्डल न दिया, तो उसने वह रस्सी छोड़ दी और मैं उस मचिया तथा रस्सीके साथ उस कुएँमें जा गिरा।

परन्तु आनन्दकी बात इतनी ही थी कि, मैं उस रसमें न गिरकर उसके चारोंओर बँधी हुई कुएँकी वेदिका पर गिरा था। कूप स्थित मेरे उस अकारण बन्धुने मेरी यह अवस्था देख, मुझे सान्त्वना देते हुए कहा :—

"हे मित्र! तुम्हें खेद करनेकी जरूरत नहीं, क्योंकि सौभाग्यवश तुम रसमें न गिरकर कूएँकी वेदिका पर गिरे हो। खैर, इस रसको पीनेके लिए एक गोह इस कूएँमें आया करती है। तुम उसकी प्रतीक्षा करो। जब वह यहाँ आये तब तुम उसकी पूछ पकड़ लेना। इस प्रकार तुम अनायास इस कूएँसे बाहर निकल जाओगे। यदि मेरे पैर गल न गये होते तो मैंने भी अपने उद्धारके लिये इसी उपायसे काम लिया होता।"

उसकी यह बात सुनकर मुझे बहुत ही सन्तोष हुआ और मैं कई दिन तक उस कुएँमें पड़ा रहा। एक दिन मेरे सामने ही मेरे उस मित्रकी मृत्यु हो गयी। अब मुझे कोई सान्त्वना देनेवाला भी न रहा। इतनेमें एक दिन मुझे एक प्रकारका भयंकर शब्द सुनायी दिया। उसे सुनकर मैं बहुत डर गया, किन्तु फिर मुझे खयाल आया कि शायद वही गोह आ रही होगी। मेरा यह अनुमान सत्य निकला। शीघ्रही वहाँ एक गोहने आकर उस रसका पान किया। इसके बाद ज्योंहीं वह बाहर निकलने लगी, त्योंही मैं उसकी पूछ दोनों हाथसे

पकड़कर उसमें लटक गया। इस प्रकार मैं बाहर तो आया, परन्तु बाहर निकलते ही मैं मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर पड़ा।

कुछ देरके बाद जब मुझे होश आया, तो मैंने कालके समान एक जंगली भैंसेको अपनी ओर आते देखा। उसकी लाल-लाल आँखें, बड़े-बड़े सींग और विकराल रूप देखकर मैं बेतरह डर गया और एक शिला पर चढ़ बैठा। वह भैंसा मुझे देखकर उस शिलाके पास दौड़ आया और बड़े वेगसे उसे ठोकरें मारने लगा। यदि मैं शिला पर न चढ़ गया होता और उसकी एक भी ठोकर मेरे लग जाती, तो मैं निःसन्देह वहीं ढेर हो जाता।

इसी समय एक और आश्चर्यजनक घटना इसप्रकार घटित हुई कि, उस शिलापर ठोकरें मारते हुए उस भैंसेका पैर पीछेसे एक अजगरने पकड़ लिया। इससे भैंसेका ध्यान मेरी ओरसे हटकर उसकी ओर चला गया। इसके बाद ज्योंही उन दोनोंमें खींचातानी होने लगी, त्योंहीं मैं उस शिलासे कूदकर एक तरफ भागा।

भागते-भागते मैं जंगलके उस पार एक गाँवमें जा पहुँचा। वहाँपर मेरे मामाका रुद्रदत्त नामक एक मित्र रहता था। उसने मुझे आश्रय देकर मेरी सेवा-सुश्रूषा की। जब मैं पूर्ण रूपसे स्वस्थ हुआ, तब रुद्रदत्तके साथ व्यापार करना स्थिर हुआ। हमलोगोंने करीब एक लाख रुपये अपने साथ लेकर सुवर्णभूमिके लिये प्रस्थान किया। मार्गमें हमें इषुवेगवती नामक एक नदी मिली। उसे पारकर हमलोग गिरिकूट (पर्वतके शिखर) पर पहुँचे। वहाँ से वेत्रवनमें होकर हमलोगोंने टङ्कणप्रदेशमें पदार्पण किया। यहाँ का मार्ग ऐसा था कि जिस पर केवल बकरे ही चल सकते थे, इसलिये हमलोगोंको दो बकरे खरीद कर उन्हीं पर सवारी करनी पड़ी। यह बकरोंका रास्ता पारकर हमलोग और भी विकट स्थानमें जा पहुँचे। वहाँपर रुद्रदत्तने कहा :—"यहाँसे आगे बढ़नेके लिये कोई रास्ता नहीं है। चारों ओर विकट पहाड़ियाँ और नदी नालोंकी भरमार है। अब हमें इन बकरोंको मारकर इनकी खाल अपने शरीर पर लपेट लेनी होगी। ऐसा करने पर भारण्ड पक्षी हमलोगोंको

मांसके धोखे सुवर्णभूमिमें उठा ले जायेंगे। वहाँ पहुँचनेका यही तरीका है और इसी तरीकेसे सब लोग काम लेते हैं।"

बकरोंको मारनेकी बात सुनकर मेरा तो कलेजा ही काँप उठा। मैंने कहा :—"इन बेचारोंने हमलगोंको कठिन मार्ग पार करनेमें अमूल्य सहायता दी है। मुझे तो यह बन्धु समान प्रिय मालूम देते हैं। क्या इन्हें मारना उचित होगा?"

मेरी यह बात सुनकर रुद्रदत्तको क्रोध आ गया। उसने मुझे झिड़क कर कहा :—"इन्हें मारे बिना हमलोग आगे नहीं बढ़ सकते। उस हालतमें हमें यहीं प्राण दे देना होगा। मैं इसके लिये तैयार नहीं हूँ। अपना प्राण बचानेके लिये इनका प्राण लेना ही होगा।"

इतना कह उसने अपने बकरेको उसी क्षण मार डाला। उसकी यह अवस्था देखकर मेरा बकरा दीन और कातर दृष्टिसे मेरी ओर ताकने लगा। मैंने उससे कहा :—"मैं तेरी रक्षा करनेमें असमर्थ हूँ, इसलिये

"संकटके समय धर्म ही बन्धु, धर्म ही माता और धर्म ही पिता होता है।"
(पृष्ट १५७)

मुझे बड़ा दुःख है, लेकिन जैन धर्म तेरा सहायक हो सकता है। तू उसीकी शरण स्वीकार कर। संकटके समय धर्म ही बन्धु, धर्म ही माता और धर्म ही पिता होता है।"

मेरी यह बात सुन, उस बकरेने शिर झुकाकर जैन धर्म स्वीकार किया। मैंने उसे नवकार मन्त्र सुनाया और वह उसने बड़ी शान्तिसे सुना। इतनेमें रुद्रदत्तने उसे भी मार डाला। मर कर वह तो देवलोक गया और हमलोग एक-एक छुरी हाथमें लेकर उनकी खालोंमें छिप रहे। उसी समय वहाँ दो भारण्डपक्षी आ पहुँचे और हमें चंगुलमें पकड़ कर एक ओरको ले उड़े।

मार्गमें, जो भारण्ड पक्षी मुझे लिये जा रहा था, उस पर एक दूसरे भारण्डने आक्रमण कर दिया। शायद वह भूखा था इसलिये उस भारण्डसे वह मुझे छीन लेना चाहता था। दोनोंकी छीना झपटीमें मैं उसके चंगुलसे छूटकर एक सरोवरमें जा गिरा। मैं तुरन्त अपनी छुरीसे उस खालको चीर कर बन्धन मुक्त हुआ और सरोवरसे बाहर निकल कर एक तरफ चल पड़ा।

कुछ दूर आगे बढ़ने पर मुझे एक जंगल मिला। उस जंगलमें एक पर्वत था। कौतूहल वश मैं उसके ऊपर चढ़ गया। वहाँ पर कायोत्सर्ग करते हुए एक मुनिराज मुझे दिखायी दिये। मैं उन्हें वन्दन कर उनके पास बैठ गया। उन्होंने मुझे धर्मोपदेश देनेके बाद पूछा :—"हे चारुदत्त! आप इस विषम भूमिमें किस प्रकार आ पहुँचे? यहाँ देवता और विद्याधरोंके सिवा दूसरोंके लिये आना बहुत ही कठिन है।"

मुनिराजके यह वचन सुनकर मैं बड़े आश्चर्यमें पड़ गया; क्योंकि मैं तो उन्हें पहचानता न था और वे एक परिचित की भाँति मुझसे बातें करते थे। यह देख, मैं उनकी ओर बार-बार देखने लगा। मेरी यह उलझन शीघ्र ही मुनिराजकी समझमें आ गयी। उन्होंने कहा :— "मेरा नाम अमितगति है। आपने एकबार मुझे बन्धन-मुक्त किया था। आपके पाससे रवाना हो, अष्टापद पर्वतके पास मैंने अपने उस शत्रुको पकड़ लिया। मुझे देखते ही वह मेरी स्त्रीको छोड़कर पर्वतके किसी अगम्य स्थानमें भाग गया।

उसके भाग जाने पर मैं अपनी स्त्रीको लेकर अपने वासस्थानको चला गया। इस घटनाके कुछ दिन बाद मेरे पिताने मुझे अपना राज्य-भार सौंप, हिरण्यकुंभ और सुवर्णकुम्भ नामक मुनियोंके निकट दीक्षा ले ली। अब मेरे दिन आनन्दमें कटने लगे। मैंने दीर्घकाल तक राज्य-शासन किया। इस बीचमें मेरी मनोरमा नामक स्त्रीने सिंहयशा और वराहग्रीव नामक दो पुत्रोंको जन्म दिया, जो मेरे ही समान पराक्रमी और गुणवान हैं। दूसरी स्त्री विजयसेनाने गन्धर्वसेना नामक एक पुत्रीको जन्म दिया, जो गायन-वादन और सङ्गीतकी कलामें परम निपुण है। पुत्र-पुत्रियोंका सब सुख देखनेके बाद अन्तमें मैंने अपना राज्य अपने दोनों पुत्रोंको सौंपकर पिताजीके निकट दीक्षा ले ली। तबसे मैं यहीं रहता हूँ और धर्माराधनमें अपना समय व्यतीत करता हूँ। यह द्वीप कुम्भकंठके नामसे प्रसिद्ध है और लवण समुद्रमें अवस्थित है। इस पर्वतको कर्कोटक कहते हैं। आशा है कि मेरे इस परिचयसे आपकी उलझन दूर हो गयी होगी। अब आपका यहाँ आना किस प्रकार हुआ सो बतलाइये।"

मुनिराजका यह प्रश्न सुनकर मैंने अपना सब हाल उन्हें कह सुनाया। इतनेहीमें उन्हींके समान दो विद्याधर वहाँ आ पहुँचे और मुनिराजको प्रणाम कर उनके पास बैठ गये। उनकी मुखाकृति और आकार-प्रकार देखकर मैं तुरन्त समझ गया कि यह दोनों मुनिराजके पुत्र होंगे। मेरा यह अनुमान ठीक भी निकला। मुनिराजके परिचय कराने पर उन दोनोंने मुझे भी बड़े प्रेमसे प्रणाम किया। इसी समय वहाँ पर आकाशसे एक विमान उतरा। उसमें से एक देवने उतर कर सबसे पहले तीन बार प्रदक्षिणा कर मुझे प्रणाम किया, और मेरे बाद मुनिराजकी वन्दना की। यह वन्दन-विपर्यय देखकर उन दोनों विद्याधरोंने उस देवसे इसका कारण पूछा। उत्तरमें उसने कहा कि यह चारुदत्त मेरे धर्माचार्य हैं। विद्याधरोंने चकित होकर पूछा :—"क्या? यह आपके धर्माचार्य हैं? यह कैसे हुआ?"

उस देवने कहा :—"काशी नगरीमें वेदको जानने-वाली सुभद्रा और सुलसा नामक दो बहिनें रहती थीं। वे परिव्राजिकाएँ थीं और उन्होंने शास्त्रार्थमें अनेक

विद्वानोंपर विजय प्राप्त की थी। एक दिन याज्ञवल्क्य नामक एक परम विद्वान तपस्वी उनके वासस्थानमें आ पहुँचे। सुभद्रा और सुलसाने उनसे भी शास्त्रार्थ किया, किन्तु उसमें उन दोनोंकी पराजय हुई, इसलिये अपनी प्रतिज्ञानुसार वे दोनों उनकी दासी बन गयीं। इनमेंसे सुलसा अभी युवती थी। उधर याज्ञवल्क्य भी युवक थे। इसलिये नित्यके समागमसे उन दोनोंके हृदयमें विकार उत्पन्न हो गया और वे पति-पत्नीकी भाँति दाम्पत्य जीवन व्यतीत करने लगे। इससे सुलसा शीघ्रही गर्भवती हो गयी। गर्भकाल पूर्ण होनेपर उसने एक पुत्रको जन्म दिया।"

संसारमें पाप करना जितना सहज होता है, उतना उसे छिपाना सहज नहीं होता। बच्चा हो जानेपर सुलसा और याज्ञवल्क्य लोकनिन्दाके भयसे काँप उठे। उन्हें जल्दीमें कुछ भी सूझ न पड़ा, इसलिये वे उस बालकको एक पीपलके नीचे छोड़कर कहीं भाग गये। इधर कुछही समयके बाद सुलसाकी बड़ी बहिन सुभद्राने उस बालकको पीपलके नीचे देखा। देखतेही

वह उसे अपने वासस्थानमें उठा लायी और पुत्रवत् उसका लालन-पालन कर उसे वेदादिक पढ़ाने लगी। जिस समय सुभद्रा उस बालकको उठा रही थी, उस समय वह बालक अपने मुँहमें गिरा हुआ पीपलका एक फल खा रहा था। इसीलिये सुभद्राने उसका नाम पिप्पलाद् रक्खा।

पिप्पलाद् जब बड़ा हुआ, तो वह परम बुद्धिमान और बड़ाही विद्वान निकला। उसकी कीर्ति सुनकर सुलसा और याज्ञवल्क्य उसे देखने आये। पिप्पलाद्ने उनसे शास्त्रार्थ कर उन्हें पराजित कर दिया। पश्चात् सुभद्रा द्वारा जब उसे मालूम हुआ, कि यही मेरे असली मातापिता हैं और इन्होंने जन्मतेही मुझे त्याग दिया था, तब उसे उनपर बड़ाही क्रोध आया। उसने मातृमेध और पितृमेध आदि यज्ञोंका अनुष्ठानकर उन दोनोंको मार डाला। मैं उस जन्ममें पिप्पलाद्का शिष्य था और मेरा नाम वाग्वली था। मैंने भी यत्रतत्र पशु-मेधादि यज्ञोंका अनुष्ठान कराया था, इसलिये मृत्युके बाद मैं घोर नरकका अधिकारी हुआ।

नरकसे उद्धार पानेपर मैं पाँचवार पशु हुआ और क्रूर ब्राह्मणों द्वारा प्रत्येक वार यज्ञमें मेरा वध किया गया। अन्तिम वार टङ्कण प्रदेशमें मैंने बकरेके रूपमें जन्म लिया और वहाँपर रुद्रद्वारा मेरा वध हुआ। वधके समय चारुदत्तने मुझे धर्मोपदेश दिया, इसलिये मुझे सौधर्म देवलोककी प्राप्ति हुई। इसीलिये चारुदत्तको मैं अपना धर्माचार्य मानता हूँ और यही कारण है, कि मैंने इन्हें सबसे पहले प्रणाम किया है। ऐसा करना मेरे लिये उचित भी था।"

उस देवकी यह बातें सुनकर दोनों विद्याधरोंको परम सन्तोष और आनन्द हुआ। उन्होंने कहा :— "चारुदत्तने जिसप्रकार आप पर यह उपकार किया है, उसीप्रकार एक समय इन्होंने हमारे पिताजीको भी जीवन-दान दिया था। वास्तवमें यह बड़े सज्जन और परोपकारी जीव हैं।"

इसके बाद उस देवने मुझसे कहा :—"हे गुरुदेव! कहिये, अब मैं आपकी क्या सेवा करूँ? आप जो आज्ञा दें, वह मैं शिरोधार्य करनेको तैयार हूँ।"

मैंने कहा :—"इस समय मुझे कुछ भी नहीं कहना है। जब मुझे आवश्यकता होगी, मैं तुम्हें याद करूँगा। उस समय तुम मुझे यथेष्ट सहायता कर सकते हो।"

मेरी यह बात सुनकर वह देव तो अपने वास-स्थानको चला गया। इधर वे दोनों विद्याधर मुझे अपने नगर (शिवमन्दिर) में ले गये। वहाँपर उन विद्या-धरोंने, उनकी माताने, उनके बन्धुओंने तथा अन्यान्य विद्याधरोंने मेरा बड़ाही सम्मान किया। मैं जितने दिन वहाँ रहा, उतने दिन एक समान मेरा स्वागत-सत्कार होता रहा। अन्तमें जब मैं वहाँसे चलनेको तैयार हुआ, तब उन्होंने मुझे गन्धर्वसेनाको दिखाकर कहा :—"हमारे पिताजीने दीक्षा लेते समय हमसे कहा था, कि एक ज्ञानीके कथनानुसार गन्धर्वसेनाको वसुदेव कुमार संगीत कलामें पराजित करेंगे, और उन्हींके साथ इसका विवाह होगा। वसुदेव कुमार भूमिचर हैं, इसलिये मेरे परम बन्धु चारुदत्तके यहाँ तुम इस कन्याको भेज देना। ऐसा करनेसे इसका विवाह आसानीसे हो जायगा और

तुम्हें किसी कठिनाईका सामना न करना पड़ेगा।" इस-लिये अब आप इसे अपने साथ लेते जाइये। यथा समय इसे अपनीही कन्या समझकर आप इसके व्याहका प्रबन्ध कर दीजियेगा।"

विद्याधरोंकी यह प्रार्थना सुन, मैं उस कन्याके साथ अपने नगर आनेको तैयार हुआ। इसी समय वह देव भी वहाँ आ पहुँचा। उसने हम दोनोंको एक विमानमें बैठाकर, हमारे नगरमें पहुँचा दिया। उसने मुझे बहुतसा सुवर्ण और मणिमुक्तादिक अनेक रत्न भी भेट दिये। इस धनराशिसे मेरा दरिद्र सदाके लिये दूर हो गया और मेरी गणना नगरके धनीमानी व्यापा-रियोंमें होने लगी। सुबह मैं अपने मामा सर्वार्थ और उनकी स्त्री रत्नवतीसे मिला। वे मेरी सम्पन्नावस्था देख-कर परम प्रसन्न हुए। तबसे मैं आनन्दपूर्वक यहीं अपने दिन व्यतीत करता हूँ। इस प्रकार हे वसुदेव! यह गन्धर्वसेना मेरी नहीं, किन्तु एक विद्याधरकी कन्या है। इसे वणिक पुत्री समझकर आप इसकी अवज्ञा न कीजियेगा।"

चारुदत्तके मुखसे गन्धर्वसेनाका यह वृत्तान्त सुनकर वसुदेवको बड़ाही आनन्द हुआ और वे पहले की अपेक्षा अव उससे अधिक प्रेम करने लगे।

एक दिन चैत मासमें वसुदेव और गन्धर्वसेना रथमें बैठकर उद्यानकी सैर करने जा रहे थे। उस समय मार्गमें उन्हें मातंग लोगोंका एक दल मिला। उनके साथ परम रूपवती एक मातंग कन्या भी थी। उसकी और वसुदेवकी चार आँख होतेही दोनोंके मनमें कुछ विकार उत्पन्न हो गया। चतुर गन्धर्वसेनासे यह वात छिपी न रह सकी। उसने सारथीको शीघ्रतापूर्वक रथ हाँकनेकी आज्ञा दी, फलतः रथ आगे बढ़ गया और वह मामला जहाँका तहाँ रह गया। वसुदेव और गन्धर्वसेना उपवनमें पहुँचे और वहाँ जलक्रीड़ादिक कर वे दोनों चम्पापुरी लौट आये।

घर आने पर एक वृद्धा मातङ्गिनी वसुदेवके पास आयी और उन्हें आशीष दे, उनके पास बैठ गयी। उसने कहा—"वसुदेव कुमार! मैं तुम्हें एक लम्बी और बहुत पुरानी कहानी सुनाने आयी हूँ, वह सुनिये। पूर्वकालमें

जिस समय श्रीऋषभदेवने अपना राज्य अपने पुत्रोंमें बाँटा, उस समय दैवयोगसे उनके नमि और विनमि नामक दो पुत्र वहाँ उपस्थित न थे। फलतः वे दोनों राज्यसे वञ्चित रह गये। बादको वे राज्य प्राप्त करने के लिये संयमी प्रभुकी सेवा करने लगे। उनकी सेवासे सन्तुष्ट हो धरणेन्द्रने वैताढ्य पर्वतकी दो श्रेणियोंका राज्य उन्हें प्रदान किया। दीर्घ कालतक इस राज्यका सुख उपभोगकर, उन दोनोंने अपने-अपने पुत्रोंको राज्य दे, प्रभुके निकट दीक्षा ले ली और कालान्तरमें मोक्षके अधिकारी हुए।

उनके बाद नमि सुतने मातङ्ग दीक्षा ग्रहण की और इस प्रकार वे भी स्वर्गके अधिकारी हुए। उसका वंशधर इस समय प्रहसित नामक एक विद्याधरपति है। मैं उसीकी स्त्री हूँ। और मेरा नाम हिरण्यवती है। मेरे पुत्रका नाम सिंहदंष्ट्र है। सिंहदंष्ट्रके एक पुत्री है, जिसका नाम नीलयशा है। उसीको आपने उसदिन उद्यान जाते समय देखा था। वह तन-मनसे आप पर अनुरक्त है और मन-ही-मन अपना हृदय आपको अर्पण कर चुकी है।

आज विवाहका मुहूर्त्त बहुत ही अच्छा है। आप इसी समय मेरे साथ चलिये, और उसका पाणिग्रहण कर उसकी मनोकामना पूरी कीजिये।"

बुढ़ियाका यह प्रस्ताव सुनकर वसुदेव चिन्तामें पड़ गये। उन्होंने कुछ अनिच्छापूर्वक कहा :—"इस समय तो मैं तुम्हारी बातका कोई उत्तर नहीं दे सकता। सुवह तुम मेरे पास आना, उस समय मैं तुम्हें अपना निश्चय सूचित करूँगा।"

वसुदेवके इस उत्तरसे वह बुढ़िया तुरन्त समझ गयी, कि वे इस प्रसंगको टालना चाहते हैं। परन्तु वह आसानीसे उनका पीछा छोड़ना न चाहती थी। उसने कुछ रोषपूर्वक कहा :—"अच्छी बात है, मैं जाती हूँ। अब या तो मैं ही आपके पास आऊँगी या आपही मेरे पास आयेंगे।"

इतना कह वह बुढ़िया वहाँसे चली गयी। वसुदेवने भी बुढ़ियाकी उपेक्षा कर उसकी बातको अपने मस्तिष्कसे निकाल दिया। किन्तु कुछ दिनोंके बाद ग्रीष्म ऋतुमें, जब एक दिन वसुदेव जल-क्रीड़ा कर गन्धर्वसेनाके साथ

एक लताकुञ्जमें सो रहे थे, तब एक भूत उन्हें एक चिता के पास उठा ले गया। वहाँपर आँख खोलते ही वसुदेवने देखा कि एक भयंकर चिता धधक रही है और वह बुढ़िया भयानक रूप बनाये सामने खड़ी है। वह भूत वसुदेवको उसके हाथोंमें सौंपकर अन्तर्धान हो गया। इसके बाद बुढ़ियाने विलक्षण हँसी करते हुए कहा :—"हे कुमार! तुमने फिर क्या विचार किया? अब भी कुछ बिगड़ा नहीं है। मैं चाहती हूँ कि तुम सहर्ष मेरी प्रार्थना स्वीकार कर लो, जिससे मुझे किसी दूसरे उपाय से काम न लेना पड़े।"

इसी समय अपनी सखियोंके साथ वहाँ नीलयशा भी आ पहुँची। उसे देखकर बुढ़ियाने कहा :—"हे नीलयशा! यही तेरा भावी पति वसुदेव कुमार है!" यह सुनते ही नीलयशा वसुदेवको लेकर आकाश मार्गमें चली गयी।

दूसरे दिन सुबह बुढ़ियाने वसुदेवके पास पहुँच कर कहा :—"हे कुमार! मेघप्रभ वनसे घीरा हुआ यह ह्रीमान पर्वत है। इस पर्वत पर ज्वलनका पुत्र अंगारक,

जो चारणमुनिओंका आश्रम रूप है, वह अपनी विद्याओं को फिरसे सिद्ध कर रहा है। उसे अभी इस कार्यमें बहुत समय लगेगा, किन्तु यदि आप उसे दर्शन दे दें, तो उसका यह कार्य शीघ्र सिद्ध हो जानेकी सम्भावना है। क्या आप उस पर इतना उपकार न करेंगे?"

वसुदेवने कहा :—"नहीं, उसके पास जानेकी मेरी इच्छा नहीं है।"

इसके बाद वह बुढ़िया उन्हें वैताढ्य पर्वत पर शिव-मन्दिर नामक नगरमें ले गयी। वहाँपर सिंहदंष्ट्र राजाने सन्मानपूर्वक उन्हें अपने महलमें ले जाकर उनके साथ अपनी कन्या नीलयशाका विवाह कर दिया।

इसी समय नगरमें घोर कोलाहल मचा। यह देख वसुदेवने दरवानसे पूछा, क्या मामला है? द्वारपालने कहा :—"महाराज! शकटमुख नामक एक नगर है, वहाँके राजाका नाम नीलवान और रानीका नाम नील-वती था। उनके नीलाञ्जना नामक एक कन्या और नील नामक एक पुत्र था। उन दोनोंने बाल्यावस्थामें स्थिर किया था, कि यदि हममेंसे किसी एकके पुत्री और

दूसरेके पुत्र होगा, तो उन दोनोंका व्याह आपसमें ही कर देंगे।

इसके बाद नीलाञ्जनाका व्याह हमारे राजाके साथ हुआ और उसके उदरसे नीलयशा नामक पुत्री हुई, जिसका विवाह आपके साथ किया गया है। ऐसा करनेका कारण यह था कि हमारे महाराजको एकबार बृहस्पति नामक मुनिने बतलाया था कि नीलयशाका विवाह अर्ध भरतके स्वामी, विष्णुके पिता, यदुकुलोत्पन्न परम रूपवान वसुदेव कुमारके साथ होगा। इसीलिये महाराजने विद्याके बल आपको यहाँ बुलाकर आपके साथ उसका विवाह कर दिया है। उधर नीलकुमारके एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम उसने नीलकण्ठ रक्खा। नीलने उसके लिये नीलयशाकी मंगनी की, किन्तु उसका विवाह आपके साथ हो जानेके कारण उसे निराश होना पड़ा। आज उसीने नीलकण्ठके साथ यहाँ आकर बड़ा उत्पात मचाया है, किन्तु महाराजकी आज्ञासे वह बाहर निकाल दिया गया है। यह कोलाहल इसीलिये मचा हुआ है, किन्तु अब डरकी कोई बात नहीं है।"

वसुदेव यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और अपनी नव विवाहिता पत्नीके साथ आनन्दपूर्वक अपने दिन बिताने लगे। एक दिन शरद् ऋतुमें अनेक विद्याधर औषधियाँ लेने और विद्याकी साधना करनेके लिये ह्रीमान पर्वतकी ओर जा रहे थे। उन्हें देखकर वसुदेवने नीलयशासे कहा :—"मैं भी विद्याधरोंकी सी कुछ विद्याएँ सीखना चाहता हूँ। क्या तुम इस विषयमें मुझे अपना शिष्य मानकर कुछ सिखा सकती हो?"

नीलयशाने कहा :—"क्यों नहीं? चलो, हमलोग इसी समय ह्रीमान पर्वत पर चलें। मैं वहाँ तुम्हें बहुतसी बातें बतलाऊँगी।"

इतना कह वह वसुदेवको अपने साथ ह्रीमान पर्वत पर ले गयी। किन्तु वहाँका रमणीय दृश्य देख कर वसुदेवका चित्त चञ्चल हो उठा। उनकी यह अवस्था देखकर नीलयशाने एक कदली-वृक्ष उत्पन्न किया और उसीकी शीतल छायामें वे दोनों क्रीड़ा करने लगे। इसी समय वहाँ एक माया-मयूर आ पहुँचा। उसका सुन्दर रूप देखकर नीलयशा उस पर मुग्ध हो गयी और उसको

पकड़नेकी चेष्टा करने लगी। माया-मयूर कभी नजदीक आता और कभी दूर भाग जाता, कभी झाडियोंमें छिप जाता और कभी मैदानमें निकल जाता। नीलयशा उसको पकड़नेकी इच्छासे कुछ दूर निकल गयी और अन्तमें जब वह उसके पास पहुँची, तब उस मयूरने अपने कन्धे पर नीलयशाको बैठालिया। इसके बाद वह मयूर आकाशमार्ग द्वारा न जाने कहाँ चला गया।

वसुदेव उस मयूरकी यह लीला देख कर पहले तो दंग रह गये, किन्तु बादको वे भी उसके पीछे दौड़े। उन्होंने बहुत दूर तक उसका पीछा किया और बड़ा हो-हल्ला मचाया, किन्तु जब वह आँखोंसे ओझल हो गया, तब वे लाचार होकर वहीं खड़े हो गये। उस समय शाम हो चली थी इस लिये अब कहीं ठहरनेका प्रबन्ध करना आवश्यक था। इसलिये वसुदेवने इधर-उधर देखा, तो उन्हें मालूम हुआ कि वे एक व्रज (गायोंके रहनेका स्थान) के निकट आ पहुँचे हैं। वहाँ जाने पर गोपियोंने उनका बड़ाही सत्कार किया और उनके सोनेके लिये शैय्यादिकका प्रबन्ध कर दिया। वसुदेवने

वह रात वहीं व्यतीत की। सुबह सूर्योदयके पहले ही वे उठ बैठे और हाथ-मुँह धो, दक्षिण दिशाकी ओर चल पड़े।

कुछ दूर आगे बढ़ने पर उन्हें गिरितट नामक एक गाँव मिला। उसमें जोरोंके साथ वेदध्वनि हो रही थी। एक ब्राह्मणसे इसका कारण पूछने पर उसने कहा :—"हे कुमार! राजा रावणके समयमें दिवाकर नामक एक विद्याधरने अपनी पुत्रीका विवाह नारद ऋषिके साथ किया था। उन्हींके वंशका सुरदेव नामक एक ब्राह्मण इस समय इस गाँवका स्वामी है। उसकी क्षत्रिया नामक पत्नीसे उसे सोमश्री नामक एक कन्या उत्पन्न हुई है, जो वेदोंकी अच्छी जानकार मानी जाती है। इसके व्याहके सम्बन्धमें कराल नामक एक ज्ञानीसे प्रश्न करने पर उसने बतलाया, कि जो वेदपाठमें इसे जीतेगा, उसीसे इसका विवाह होगा। उनका यह वचन सुनकर सुरदेवने इसी आशयकी घोषणा कर दी है। इसीलिये अनेक युवक, जो उससे व्याह करने के लिये लालायित हैं, रात दिन वेदका अभ्यास करते रहते हैं। और ब्रह्मदत्त नामक

एक उपाध्याय उन्हें नियमित रूपसे वेदोंकी शिक्षा देरहे हैं।"

वसुदेव कुमार कौतूहल प्रेमी तो थे ही, इसलिये ब्राह्मणके यह वचन सुनकर पहलेकी भाँति यहाँ भी उन्हें दिल्लगी सूझी। वे तुरन्त एक ब्राह्मणका वेश धारण कर ब्रह्मदत्तके पास पहुंचे और उससे कहने लगे, कि मैं गौतम गोत्रीय स्कन्दिल नामक ब्राह्मण हूँ और आपके निकट वेद पढ़ने आया हूँ। ब्रह्मदत्तने इसके लिये सहर्ष अनुमति दे दी। बस, फिर क्या था, बातकी-बातमें उन्होंने उसके समस्त शिष्योंसे बाजी मार ली और अन्तमें सोमश्रीको पराजितकर उससे ब्याह कर लिया।

वसुदेव कुमार अपनी इस ससुरालमें भी बहुत दिनों तक आनन्द करते रहे। अन्तमें एकदिन एक उद्यानमें इन्द्रशर्मा नामक ऐन्द्रजालिकसे उनकी भेट हो गयी। उसने उनको इन्द्रजालके अनेक अद्भुत चमत्कार कर दिखलाये। देखकर वसुदेवको भी वह विद्या सीखनेकी इच्छा हुई। इसलिये उन्होंने इन्द्रशर्मासे कहा :—"यदि यह विद्या मुझे भी सिखायेंगे तो बड़ी कृपा होगी।"

इन्द्रशर्माने कहा :—"बेशक, यह विद्या सीखने योग्य है। इसे सीखनेमें अधिक परिश्रम भी नहीं पड़ता। शामसे इसकी साधना आरम्भ की जाय, तो सुबह सूर्योदय के पहले-ही-पहले यह विद्या सिद्ध हो जाती है। परन्तु साधनाके समय इसमें अनेक प्रकारके विघ्न और बाधाएँ आ पड़ती हैं। कभी कोई डराता है, कभी मारता है, कभी हँसता है और कभी ऐसा मालूम होता है, मानो हम किसी सवारीमें बैठे हुए कहीं चले जा रहे हैं। इसी-लिये इसकी साधनाके समय एक सहायककी जरूरत रहती है।"

वसुदेवने निराश होकर कहा :—"यहाँ पर विदेशमें मेरे पास सहायक कहाँ? क्या मैं अकेला इसे सिद्ध न कर सकूँगा?"

इन्द्रशर्माने कहा :—"कोई चिन्ताकी बात नहीं, आप अकेले ही सिद्ध करिये। मैं आपकी सहायताके लिये हरवक्त यहाँपर मौजूद रहूँगा। काम पड़ने पर मेरी यह स्त्री—वनमाला भी हमें सहायता कर सकती है।"

इन्द्रशर्माके यह वचन सुनकर वसुदेव यथाविधि उस

विद्याकी साधना करने लगे। रातके समय जब वे उस कपटीके आदेशानुसार जप तपमें लीन हो गये, तब वह उन्हें एक पालकीमें बैठाकर वहाँसे भाग चला। उसने वसुदेवको पहले ही समझा दिया था, कि साधनाके समय इस तरहका भ्रम हुआ करता है, इसलिये वे समझे कि वास्तवमें मुझे भ्रम हो रहा है। इस प्रकार इन्द्रशर्मा रात भरमें उन्हें गिरितटसे बहुत दूर उड़ा ले गया। सुबह सूर्योदय होने पर वसुदेव विशेषरूपसे सजग हुए तब यह बात उनकी समझमें आ गयी कि उन्हें वह कपटी विद्याधर पालकीमें बैठाकर कहीं उड़ाये लिये जा रहा है।

अब और अधिक समय उस पालकीमें बैठना वसुदेवके लिये कठिन हो गया। वे तुरन्त उस पालकीसे कूदकर एक ओरको भगे। यह देख, इन्द्रशर्माने उनका पीछा किया। वे जहाँ जाते, वहीं पर वह जा पहुँचता। दिन भर यह दौड़ होती रही। न तो वसुदेवने ही हिंमत छोड़ी, न इन्द्रशर्माने ही उनका पीछा छोड़ा। अन्तमें शामके समय न जाने किस तरह उसे धोखा देकर

वसुदेव तृणशोषक नामक एक गाँवमें घुस गये और वहाँके देवकुलमें जाकर चुपचाप सो रहे।

परन्तु बुरे समयमें दीन दुःखीको कहीं भी शान्ति नहीं मिलती। उस देवकुलमें भी रातके समय एक राक्षसने आकर वसुदेव पर आक्रमण कर दिया। लाचार, वसुदेवको उससे भी युद्ध करना पड़ा। राक्षस बड़ाही बलवान था इसलिये उसने वसुदेवको कई बार धर पटका, किन्तु अन्तमें वसुदेवने मोका पाकर उसके हाथ पैर बाँध दिये और जिस तरह धोबी शिला पर कपड़े पटकता है, उसी तरह उसे जमीन पर पटक कर मार डाला।

सुबह जब गाँवके लोगोंने देखा कि वह राक्षस, जो नित्य उन्हें सताया करता था, देवकुलके पास मरा पड़ा है, तब उनके आनन्दका वारापार न रहा। उन्होंने वसुदेवको एक रथमें बैठाकर सारे गाँवमें घुमाया और इस उपकारके बदले उनसे अपनी पाँच सौ कन्याओंका विवाह कर देनेकी इच्छा प्रकट की। इसपर वसुदेवने कहा :—"पहले मुझसे इस राक्षसका हाल कह सुनाइये, फिर मैं तुम्हारे इस प्रस्तावर पर विचार करूँगा।"

वसुदेवका यह प्रश्न सुनकर एक बुड्ढे आदमीने कहा :—"हे कुमार! कलिङ्गदेशमें काँचनपुर नामक एक नगर है। वहाँपर जितशत्रु नामक राजा राज्य करता है। उसीका यह सोदास नामक पुत्र है। यह बचपनसे ही माँसका लोलुप है, किन्तु राजाने समस्त जीवोंको अभय-दान दे रक्खा है। इसलिये एकदिन इसने अपने पितासे कहा :—"मुझे प्रतिदिन एक मयूरका माँस अवश्य मिलना चाहिये।" पिताको यह बात बिलकुल पसन्द न थी, फिर भी पुत्रस्नेहके कारण उसने उसकी बात मान ली। उसी दिनसे उसका रसोइया मंशगिरिसे प्रतिदिन एक मयूर ले आने लगा। एकदिन मारे हुए मयूरको बिल्ली उठा ले गयी, इससे रसोइयेने एक मरे हुए बालकका माँस पकाकर उसे खानेको दे दिया। उस माँसको खाते समय सोदासने पूछा :—"आज यह माँस अधिक स्वादिष्ट क्यों है?"

यह सुनतेही रसोइया पहले तो डर गया, किन्तु बादको उसने सारा हाल उससे कह सुनाया। सुनकर सोदासने आज्ञा दी कि आजसे मनुष्यका ही माँस

पकाया जाय। परन्तु रसोइयेके लिये प्रतिदिन मनुष्यका माँस लाना संभव न था, इसलिये सोदासने स्वयं इसका भार उठा लिया। वह रोज नगरसे एक बालक मारकर उठा लाता था और रसोइया उसीका मांस उसे पका देता था। परन्तु इससे शीघ्रही नगरमें हाहाकार मच गया। जब यह बात उसके पिताको मालूम हुई तो उन्होंने उसकी बड़ी फजीहत की और उसे सदाके लिये अपने देशसे निकाल दिया। उसी दिनसे यह सोदास यहाँपर चला आया था। और हमेशा किसी न किसीको मारकर खा जाता था। आज इसके मर जानेसे हमलोग सदाके लिये निश्चिन्त हो गये। इस कार्यके लिये हमलोग आपको जितना धन्यवाद दें उतना ही कम है।"

वसुदेव यह वृत्तान्त सुनकर परम आनन्दित हुए और उन समस्त कन्याओंसे उन्होंने सहर्ष ब्याह कर लिया। पश्चात् एक रात्रि वहाँपर रहनेके बाद वे दूसरे दिन सुबह अचल नामक गाँवमें चले गये। वहाँपर एक सार्थवाहकी मित्रश्री नामक पुत्रीसे उन्होंने ब्याह किया। किसी ज्ञानीने पहलेसे ही उस सार्थवाहको बतलाया था

कि मित्रश्रीका विवाह वसुदेवके साथ होगा। उसका वह वचन आज सत्य प्रमाणित हुआ।

वहाँसे वेदसाम नगरकी ओर जाने पर इन्द्रशर्माकी पत्नी वनमालासे उनकी भेट हो गयी। वसुदेव उसे देखते ही चौकन्ने हो गये, किन्तु उसने उन्हें 'देवर' शब्दसे सम्बोधित कर उन्हें मीठी-मीठी बातोंसे बड़ी सान्त्वना दी और उन्हें समझा बुझाकर अपने घर लिवा ले गयी। वहाँपर उसने अपने पितासे उनका परिचय कराया। उसने वसुदेवसे कहा :—"हे कुमार! इस नगरके राजाका नाम कपिल है। उनके कपिला नामक एक कन्या है। कुछ दिन पहले उसके विवाहके सम्बन्धमें पूछताछ करने पर एक ज्ञानीने बतलाया था कि 'इसका विवाह वसुदेव कुमारके साथ होगा; जो इस समय गिरितट नामक नगरमें रहते हैं। वे यहाँ आने पर स्फुलिङ्ग वदन नामक अश्वका दमन करेंगे। यही उनकी पहचान होगी।' तबसे हे कुमार! राजा तुम्हारी खोजमें रहते हैं। बीचमें उन्होंने मेरे जामाता इन्द्रशर्माको तुम्हें ले आनेके लिये भेजा था, किन्तु तुम कहीं बीचहीसे गायब हो गये।

अब संयोगवश यदि तुम यहाँ आ गये हो, तो उस अश्वको दमनकर कपिलासे विवाह कर लो। यह तुम्हारे ही हितकी बात है।"

वनमालाके पिताकी यह सलाह वसुदेवने सहर्ष मान ली। उन्होंने उस अश्वका दमन कर कपिलासे विवाह कर लिया। इसके बाद वे अपने श्वसुर और अपने साले अंशुमानके आग्रहसे कुछ दिन वहाँ ठहर गये और उनका आतिथ्य ग्रहण करते रहे। इस बीच कपिलासे उन्हें एक पुत्र हुआ, जिसका नाम उन्होंने कपिल रक्खा।

एकदिन वसुदेवकुमार अपने श्वसुरकी गजशालामें गये। वहाँपर कौतूहल वश वे एक हाथीकी पीठ पर चढ़ बैठे। किन्तु वह हाथी जमीन पर चलनेके बदले उन्हें आकाशमार्गमें ले उड़ा। उसकी यह कपट-लीला देख वसुदेवने उसे एक मुक्का जमाया। मुक्का लगते ही वह एक सरोवरके तट पर जा गिरा और नीलकंठ नामक विद्याधर बन गया। यह वही विद्याधर था जो नीलयशाके विवाहके समय युद्ध करने आया था।

यहाँसे वसुदेवकुमार सालगुह नामक नगरमें गये।

वहाँपर उन्होंने राजा भाग्यसेनको धनुर्वेद की शिक्षा दी। एकदिन भाग्यसेनके साथ युद्ध करनेके लिये उसका बड़ा भाई मेघसेन नगर पर चढ़ आया, किन्तु वसुदेवकुमारने उसे बुरी तरह मार भगाया। इस युद्धमें वसुदेवका पराक्रम देखकर दोनों राजा प्रसन्न हो उठे, भाग्यसेनने प्रसन्न हो, अपनी पुत्री पद्मावतीसे और मेघसेनने अपनी पुत्री अश्व-सेनासे वसुदेवका विवाह कर दिया। कुछ दिनों तक उन दोनोंके साथ दाम्पत्य-जीवन व्यतीत कर कुमारने वहाँसे भी विदा ग्रहण की।

आगे बढ़ने पर वसुदेवको भद्दिलपुर नामक नगर मिला। वहाँके राजा पुंढ्राजकी मृत्यु हो गयी थी। पुंढ्राजके एक कन्या थी, किन्तु पुत्र एक भी न था। उस कन्याका नाम पुंढ्रा था। वह औषधियोंके प्रयोगसे पुरुषका रूप धारण कर पिताका राज्य चलाती थी। वसुदेवने बुद्धिबलसे तुरन्त जान लिया कि यह पुरुष नहीं, बल्कि स्त्री है। वसुदेवको देखकर पुंढ्राके हृदयमें भी अनु-राग उत्पन्न हो गया था, इसलिये उसने वसुदेवके साथ ब्याह कर लिया। पश्चात् उसके उदरसे पुंढ्र नामक पुत्र

उत्पन्न हुआ जो आगे चल कर उसी राज्यका अधिकारी हुआ।

एक दिन रात्रिके समय हँसका रूप धारण कर अंगारक विद्याधरने कपटपूर्वक वसुदेवको गंगा नदीमें फेंक दिया, किन्तु वसुदेव किसी तरह तैरकर उससे बाहर निकल आये। वहाँसे वे इलावर्धन नामक नगरमें गये। वहाँ पर वे एक सार्थवाहकी दूकानपर बैठकर विश्राम करने लगे। इतनेमें कुमारके प्रभावसे उस दिन दुकानदारको लाख रूपयेका मुनाफा हुआ। इससे वह दुकानदार उन्हें सोनेके रथमें बैठाकर अत्यन्त सम्मानपूर्वक अपने घर लिवा ले गया। वहाँपर उसने अपनी रत्नवती नामक कन्यासे उनका विवाह कर दिया। तदनन्तर वसुदेव अपने इस श्वसुरके आग्रहसे कुछ दिनोंके लिये वहीं ठहर गये।

एक दिन महापुर नामक नगरमें इन्द्र-महोत्सव था, इसलिये वसुदेव अपने श्वसुरके साथ एक दिव्य रथपर बैठ कर उसे देखने गये। वहाँपर नगरके बाहर एक समान नये मकानोंको देखकर वसुदेवने पूछा :—"यहाँपर यह सब नये-ही-नये मकान क्यों दिखायी देते हैं?"

सार्थवाहने कहाः—"यहाँके राजा सोमदत्तके सोमश्री नामक एक कन्या है। उसके स्वयंवरके लिये यह सब मकान बनाये गये थे। स्वयंवरमें अनेक राजा आये थे, परन्तु उनमें कोई विशेष चतुर न होनेके कारण वे सब ज्योंके त्यों लौटा दिये गये। सोमश्री अब तक अविवाहिता ही है।"

इस तरहकी बातचीत करते हुए वे दोनोंजन शक्रस्तम्भके पास पहुंचे और उसे वन्दनकर एक ओर खड़े हो गये। उसी समय राजपरिवारकी महिलाएँ भी रथमें बैठकर वहाँ आयीं और शक्रस्तम्भको वन्दनकर महलकी ओर लौट पड़ीं। इतनेहीमें एक मदोन्मत्त हाथी जंजीरको तोड़कर वहाँ आ पहुँचा और भीड़में इधर-उधर चक्कर काटने लगा। यह देखते ही चारों ओर भगदड़ मच गयी। किसीको सूँढमें लपेटकर इधर-उधर फेंक देता और किसीको पैरके नीचे कुचल डालता। अचानक एक बार वह राजकुमारीके रथके पास जा पहुँचा और उसे उसने रथसे गिरा दिया। सब लोगोंको तो उस समय अपने-अपने प्राणोंकी पड़ी थी, इसलिये किसीका भी

ध्यान उसकी ओर आकर्षित न हुआ। बेचारी राजकुमारीको असहाय और संकटावस्थामें देखकर वसुदेव वहाँ दौड़ आये और उस हाथीको वहाँसे खदेड़ने लगे। वह इससे और भी उत्तेजित हो उठा और राजकुमारीको छोड़कर वसुदेवकी ओर झपट पड़ा। वसुदेवने युक्तिसे काम लेकर उस हाथीको तुरन्त अपने वशमें कर लिया। पश्चात् हाथीसे अलग होनेपर वसुदेवकुमारने राजकुमारीको उठा लिया और उपचार करनेके लिये उसे पासके एक मकानमें रख दिया। उस समय वह भय और आघात से मूर्च्छित हो गयी थी। पर जब उसे होश आया और वह स्वस्थ हुई तब उसकी दासियाँ उसे वासस्थान को लिवा ले गयीं।

इसी नगरमें रत्नवतीकी एक बहिन कुबेर सार्थवाहको व्याही गयी थी। उससे भेट हो जाने पर वह अपने श्वसुर तथा वसुदेवको बड़े सम्मान-पूर्वक अपने मकान पर लिवा ले गया। वहाँ पर उसने भोजनादिक द्वारा उनका बड़ा ही सत्कार किया। पश्चात् भोजनादिकसे निवृत्त हो वे ज्योंहीं एक कमरेमें बैठे, त्योंही सोमदत्त राजाका मन्त्री

वहाँ आ पहुँचा। उसने वसुदेवको प्रणाम कर नम्रता-पूर्वक कहा :—"हे कुमार ! यह तो आप जानते ही होंगे, कि हमारे राजाके सोमश्री नामक एक कन्या है। पहले उसने स्वयंवर द्वारा अपना विवाह स्थिर किया था। परन्तु बीचमें सर्वाण साधुके केवल ज्ञान महोत्सवमें पधारे हुए देवताओंको देखकर जातिस्मरण-ज्ञान उत्पन्न हो गया और तबसे अपना वह विचार छोड़कर उसने मौनाव-लम्बन कर लिया है।

उसकी यह अवस्था देखकर हमारे महाराज बहुत चिन्तित हो उठे, किन्तु मैं उन्हें सान्त्वना दे, एक दिन राजकुमारीसे एकान्तमें मिला। राजकुमारी मुझे पिताके समान ही आदरकी दृष्टिसे देखती है। उसने मुझसे बतलाया कि :—"पूर्वजन्ममें मेरा पति एक देव था। और देवलोकमें हम दोनोंके दिन बड़े आनन्दमें कटते थे। एक दिन हमलोग अहिरन्तका जन्म-महोत्सव देखनेके लिये नन्दीश्वरादिककी यात्रा करने गये। वहाँसे वापस आने पर मेरा वह पति देवलोकसे च्युत हो गया। इससे मैं शोकविह्वल हो, उसे खोजती हुई भरतक्षेत्रके

कुरुदेशमें जा पहुँची। वहाँपर दो केवलियोंसे मेरी भेट हो गयी। मैंने उनसे पूछा :—"हे भगवन्! क्या आप बतला सकते हैं कि मेरा पति स्वर्गसे च्युत होकर कहाँ उत्पन्न हुआ है?"

केवलीने कहा :—"तुम्हारे पतिने हरिवंशके राजाके यहाँ जन्म लिया है। तुम भी देवलोकसे च्युत होकर एक राजपुत्रीके रूपमें जन्म लोगी। तुम्हारे नगरमें एक वार इन्द्र-महोत्सव होगा, उसमें हाथीके आक्रमणसे तुम्हें बचाकर फिर वही तुम्हारा पाणिग्रहण करेगा।"

केवलीके यह वचन सुनकर मैं आनन्दपूर्वक उन्हें वन्दनकर अपने वासस्थानको चली गयी। इसके बाद स्वर्गसे च्युत होकर मैं सोमदत्त राजाके यहाँ पुत्री रूपमें उत्पन्न हुई हूँ। पहले यह सब बातें मुझे मालूम न थीं, किन्तु सर्वाण साधुके केवल महोत्सवमें देवताओंको देखकर मुझे जातिस्मरण-ज्ञान उत्पन्न हुआ और यह सब बातें मुझे ज्ञात हो गयीं। यही कारण है कि मैंने अब स्वयंवरका विचार छोड़कर विवाहके सम्बन्धमें मौनावलम्बन कर लिया है।"

यह सब वृत्तान्त वसुदेवको सुनाकर सोमदत्तके मन्त्रीने उनसे कहा :—"हे वसुदेव कुमार! यह सब बातें मैंने महाराजसे बतला दी थीं और उस दिनसे वे भी शान्त हो गये थे। आज राजकुमारीको आपने हाथी से बचाया है, इसलिये राजकुमारी और महाराज आदि आपको पहचान गये हैं। उन्हींके आदेशसे मैं आपको बुलाने आया हूँ। कृपा कर आप मेरे साथ चलिये और राजकन्याका पाणिग्रहण कर उसका जीवन सार्थक कीजिये।" मन्त्रीकी यह प्रार्थना सुनकर, वसुदेवकुमार उसके साथ राजा सोमदत्तके पास गये और वहाँपर राज-कुमारीका पाणिग्रहण कर वे उसका आतिथ्य ग्रहण करने लगे।

एकदिन रात्रिके समय वसुदेवने देखा कि शैय्या पर उनकी पत्नीका पता नहीं है। इससे वे बहुतही दुःखित हो गये और उसकी खोज करने लगे। तीसरे दिन एक उपवनमें उसे देखा तो उन्होंने कहा :—"प्रिये! मुझसे ऐसा कौनसा अपराध हुआ है, जिसके कारण तुम इस तरह रुष्ट होकर मुझे परेशान कर रही हो।"

कुमारीने कहा :—"हे प्राणेश ! आपके कल्याणार्थ मैंने एक व्रत लिया था। जिसमें तीन दिन तक मौन रहकर वह व्रत पूर्ण किया है। अब उसकी पूर्णाहुतिमें केवल एक ही बातकी कसर है। वह यह कि, आपको देवीका पूजन कर मुझसे पुनः पाणिग्रहण करना पड़ेगा। ऐसा करनेसे हमलोगोंका जीवन और भी प्रेममय बन जायगा।"

उसकी यह बात सुनकर वसुदेव बहुतही प्रसन्न हुए। उन्होंने उसके कथनानुसार फिरसे उसका पाणिग्रहण भी किया। यह सब काम निपटनेके बाद उसने देवीका प्रसाद कह कर वसुदेवको मदिरा भी पिला दी। इससे वसुदेवने उन्मत्त हो वह रात आनन्दपूर्वक व्यतीत की। सुबह नींद खुलनेपर वसुदेवने देखा, कि सोमश्रीके बदले उनकी शैय्यापर कोई दूसरी ही सुन्दरी लेटी हुई है। यह देख, उन्होंने उससे पूछा :—"हे सुन्दरि ! तुम कौन हो ? मेरी सोमश्री कहाँ है।"

उस सुन्दरीने मुस्कुरा कर कहा :—"प्राणनाथ ! दक्षिण श्रेणीमें सुवर्णाभ नामक एक नगर है। वहाँके

राजाका नाम चित्राङ्ग और रानीका नाम अंगारवती है। उन्हींकी मैं कन्या हूँ। मेरा नाम वेगवती है। मेरे एक भाई भी है, जिसका नाम मानसवेग है। मानसवेगको राज्यभार सौंपकर मेरे पिताने दीक्षा लेली है। मेरा भाई दुराचारी है और उसीने आपकी स्त्रीका हरण किया है। उसने मेरे द्वारा उसे फुसलानेकी बड़ी चेष्टा की, किन्तु उसने एक न सुनी। उलटे उसीने मुझको अपनी सखी बनाकर आपको लिवा लानेके लिये यहाँपर भेजा। तदनुसार मैं यहाँ आयी, किन्तु आपको देखकर मैं आपपर मुग्ध हो गयी, इसलिये मैंने सोमश्रीका सन्देश आपसे न कहकर, उसका रूप धारणकर छलपूर्वक आपसे व्याह कर लिया है। हे नाथ! यही सच्चा वृत्तान्त है। मुझे आशा है कि आप मेरी यह धृष्टता क्षमा करेंगे।"

वसुदेवने अब और कोई उपाय न देख, उसका अपराध क्षमा कर दिया। सुबह वेगवतीको देखकर लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। वसुदेवकी आज्ञासे उसने सोमश्रीके हरणका समाचार लोगोंको कह सुनाया।

एकदिन वसुदेव जब अपनी इस पत्नीके साथ सो रहे

थे, तब उन्हें ऐसा मालूम हुआ, मानो मानसवेग खेचर उन्हें उठाये लिया जा रहा है। शीघ्र ही उन्होंने सावधान होकर उसके एक ऐसा मुक्का जमाया, कि वह उसकी चोटसे तिलमिला उठा और वसुदेवको उसने गंगाकी धारामें फेंक दिया। संयोग वश वसुदेव चण्डवेग नामक एक विद्याधरके कन्धेपर जा गिरे। उस समय वह विद्याधर गंगामें खड़ा-खड़ा कोई विद्या सिद्ध कर रहा था। वसुदेव ज्यों हीं उसके कन्धेपर गिरे त्यों हीं वह विद्या सिद्ध हो गयी। यह देख कर उस विद्याधरने कहा :—"हे महात्मन्! आप मेरी विद्यासिद्धिमें कारणरूप हुए हैं, इसलिये कहिये, मैं अब आपकी क्या सेवा करूँ? आपको क्या दूँ?"

कुमारने कहा :—हे विद्याधर! यदि तुम वास्तवमें प्रसन्न हो और मुझे कुछ देना ही चाहते हो तो, मुझे आकाश-गामिनी विद्या दो। उसकी मुझे बड़ी जरूरत है।

विद्याधर "तथास्तु" कह, अपने वासस्थानको चला गया। पश्चात् वसुदेव कनखल पुरके द्वारके निकट साधना कर उस विद्याको सिद्ध करने लगे। उसी समय कहींसे राजा

विद्युद्वेगकी मदनवेगा नामक पुत्री वहाँपर आ पहुँची। वह वसुदेवको देखतेही उनपर अनुरक्त हो गयी और उन्हें वैताढ्य पर्वत पर उठा ले गयी। वहाँपर वह उन्हें पुष्पशयन नामक उद्यानमें छोड़कर स्वयं अमृतधारा नामक नगरमें चली गयी। दूसरे दिन, सुबह दधिवेग, दण्डवेग और चण्डवेग (जिसने वसुदेवको आकाश-गामिनी विद्या दी थी) नामक उसके तीनों भाई वसु-देवके पास आये और उन्हें सम्मान पूर्वक अपने नगरमें ले जाकर मदनवेगाके साथ उनका विवाह कर दिया। इसके बाद वसुदेव बहुत दिनोंतक उसके साथ मौज करते रहे। इसी बीचमें वसुदेवको प्रसन्न कर मदनवेगाने एक वर मांगा जो उन्होंने उसे देना स्वीकार कर लिया।

एकदिन दधिमुखने वसुदेवके पास आकर कहा:—"दिवस्तिलक नामक नगरमें त्रिशिखर नामक राजा राज्य करता है। उसके सूर्पक नामक एक पुत्र है। उसके साथ ब्याह करनेके लिये उसने हमारे पिताके निकट मदनवेगाकी मँगनी की, परन्तु हमारे पिताजीने इसके लिये इन्कार कर दिया। ऐसा करनेका कारण यह

था कि मदनवेगाके व्याहके सम्बन्धमें एक चारण मुनिने पिताजी को बतलाया था कि मदनवेगा का विवाह हरिवंशोत्पन्न वसुदेव कुमारके साथ होगा। वे विद्याकी साधना करते हुए चण्डवेगके कन्धेपर रात्रिके समय गिरेंगे और उनके गिरते ही चण्डवेगकी विद्या सिद्ध हो जायगी। इसलिये पिताजीने उसकी बातपर ध्यान न दिया। किन्तु इससे त्रिशिखर राजा रुष्ट हो गया और हमारे नगरपर आक्रमण कर हमारे पिताजीको कैद कर ले गया है। अतएव निवेदन है, कि आपने हमारी बहिन मदनवेगाको जो वर देना स्वीकार किया है। उसके अनुसार आप हमारे पिताजीको छुड़ानेमें सहायता कीजिये। इससे हमलोग सदाके लिये आपके ऋणी बने रहेंगे।"

इतना कह, दधिमुखने कई दिव्य शस्त्र वसुदेवकेसामने रखते हुए कहा :—"हमारे वंशके मूल पुरुष नमि थे। उनके पुत्र पुलस्त्य और पुलस्त्यके वंशमें मेघनाद उत्पन्न हुए। मेघनादपर प्रसन्न हो सुभुम चक्रवर्तीने उन्हें दो श्रेणियाँ और ब्राह्म तथा आग्नेयादिक शस्त्र प्रदान किये

थे। इसी वंशमें रावण और विभीषण भी उत्पन्न हुए। मेरे पिता विद्युद्वेग विभीषणके ही वंशज हैं। इसलिये ये सब शस्त्र उसी समयसे हमलोग अपने काममें लाते चले आ रहे हैं। अब मैं इन्हें आपको अर्पण करता हूँ। आशा है, यह आपको बड़ा काम देंगे। हमारे जैसे मन्द भाग्योंके लिये ये बेकार हैं।"

वसुदेवने वे सब शस्त्र सहर्ष स्वीकार कर लिये। किन्तु सिद्ध किये बिना वे सब व्यर्थ थे, इसलिये वसुदेवने साधना कर शीघ्र ही उन्हें सिद्ध कर लिया।

उधर त्रिशिखरको ज्योंही यह मलूम हुआ, कि मदनवेगाका विवाह एक भूचर (मनुष्य) से कर दिया गया है, त्योंही वह आग बबूला हो अमृतधारा नगर पर आक्रमण करनेके लिये आ धमका। इधर वसुदेव तो उससे युद्ध करनेके लिये पहलेसे ही तैयार थे, इसलिये तुण्ड विद्याधरके दिये हुए मायामय सुवर्ण रथ पर बैठ, दधिमुखादिकको साथ ले, वे उसके सामने जा डटे और वीरतापूर्वक उससे युद्ध करने लगे। थोड़ी ही देरमें उन्होंने इन्द्रास्त्र द्वारा उसका शिर धड़से अलग कर

दिया। इसके बाद दिव्रतिलक नगरमें जाकर उन्होंने अपने श्वसुरको बन्धन मुक्त किया। वहाँसे विजयका डंका बजाते हुए वे अमृतधारा लौट आये। वहाँपर और भी कई दिनोंतक उन्होंने निवास किया। इस बीच मदनवेगाने एक सुन्दर पुत्रको जन्म दिया। उसका नाम अनाधृष्टि रक्खा गया।

वसुदेवके रूप और गुणोंपर समस्त विद्याधर और विद्याधरियाँ मुग्ध रहा करती थीं। वे जिधर निकलते, उधर ही लोगोंकी आँखें उनपर गड़ जाया करती थीं। एकबार उन्होंने सिद्धायतनकी यात्रा की, वहाँसे वापस आने पर उन्होंने एकदिन मदनवेगाको अपने पास बुलाया, किन्तु भूलसे मदनवेगाके बदले उनके मुखसे कहीं वेगवतीका नाम निकल गया। इससे मदनवेगा रुष्ट होकर अपने शयनागारमें चली गयी, क्योंकि स्त्रियाँ स्वभावसे ही सौतका नाम सुनना पसन्द नहीं करतीं। खैर, वसुदेवने इसपर कोई ध्यान भी न दिया।

परन्तु त्रिशिखरकी पत्नी सूर्पणखा वसुदेवसे अपने पतिका बदला चुकानेके लिये व्याकुल हो रही थी। इस-

लिये वह इसी समय मदनवेगाका रूप धारण कर वहाँ आ पहुँची और मन्त्रबलसे मकानमें आग लगा कर वसुदेवको हरण कर ले गयी। उसने उन्हें मार डालनेकी इच्छासे आकाशमें खूब ऊँचे ले जाकर वहाँसे उन्हें छोड़ दिया, किन्तु जिसपर भगवानकी दया होती है, उसे कौन मार सकता है? वसुदेव राजगृहके निकट घासकी एक ढेरीपर आ गिरे, जिससे उनका बाल भी बाँका न हुआ।

आसपासके लोगोंके मुँहसे जरासन्धका नाम सुनकर वसुदेव समझ गये कि यह राजगृह है। वे वहाँसे उठकर जुवारियोंके एक अड्डेमें गये और वहाँ द्यातकी बातमें एक करोड़ रुपये जीतकर, उन्होंने वह धन याचकोंको दान दे दिया। उनका यह कार्य देखकर राज-कर्मचारियोंने उन्हें बन्दी बनाकर, राजाके पास ले जानेकी तैयारी की। यह देख, वसुदेवने कहा :—"भाई! मैंने तो कोई अपराध किया ही नहीं है, फिर तुम लोग मुझे क्यों कैद कर रहे हो?"

राज-कर्मचारियोंने कहा :—"एक ज्ञानीने हमारे राजा जरासन्ध को बतलाया है, कि प्रातःकालमें करोड़ रुपये जीतकर जो याचकोंको दान देगा, उसीके पुत्र द्वारा

तुम्हारी मृत्यु होगी। इसीसे हम लोगोंने आपको क़ैद किया है। अब राजाके आदेशानुसार आपको प्राणदण्ड दिया जायगा।"

इतना कह वे लोग वसुदेवको चमड़ेके थैलेमें बन्द-कर एक पर्वत पर ले गये और वहाँसे उन्होंने उन्हें नीचे ढकेल दिया। किन्तु वेगवतीकी धात्रीने उन्हें बीच ही में गोंच कर उनके प्राण बचा लिये। इसके बाद वह उन्हें वेगवतीके पास ले जाने लगी। किन्तु वसुदेव तो चमड़ेके थैलेमें बन्द थे, इसलिये उन्हें यह न मालूम हो सका कि मुझे कौन लिये जा रहा है। वे अपने मनमें कहने लगे कि शायद चारुदत्तकी तरह मुझे भी भारण्डने पकड़ लिया है और वही मुझे कहीं लिये जा रहा है।

थोड़ीही देरमें वह धात्री पर्वत पर जा पहुँची और वहाँपर उसने वसुदेवको जमीन पर रख दिया। इतने ही में वसुदेवने थैलेके एक छिद्रसे देखा तो उन्हें वेगवतीके पैर दिखायी दिये। वह छुरीसे थैलेको काट रही थी। थैला कटते ही वसुदेव उसमेंसे बाहर निकल आये और वेग-वती :—"हे नाथ! हे नाथ! कहती हुई लताकी

भाँति उनके कंठमें लिपट आयी। वसुदेव भी उसे आलिङ्गन कर नाना प्रकारके, मधुर वचनों द्वारा उसे सान्त्वना देने लगे। जब वह शान्त हुई तब उन्होंने उससे पूछा :—"प्रिये! तुम्हें मेरा पता किस प्रकार मिला?" तुमने मुझे कैसे खोज निकाला?"

वेगवतीने कहा :—"हे नाथ! शैय्यासे उठने पर जब मैंने आपको न देखा तब मैं व्याकुल हो उठी और आपके वियोगसे दुःखित हो, करुण-क्रन्दन करने लगी। इतनेमें प्रज्ञप्ति विद्याने मुझसे आपके हरण और पतनका हाल बतलाया। इसके बाद आपका क्या हुआ, या आप कहाँ गये—यह मुझे किसी तरह मालूम न हो सका। मैंने सोचा कि शायद आप किसी ऋषिके पास गये होंगे और उसीके प्रभावसे प्रज्ञप्ति विद्या आपका हाल बतलानेमें असमर्थ है।

इसके बाद मैं बहुत दिनों तक आपकी राह देखती रही किन्तु जब आप वापस न आये, तब मैं राजाकी आज्ञा लेकर आपको खोजनेके लिये निकल पड़ी। थोड़े ही दिनोंके अन्दर मैंने न जाने कहाँ कहाँकी खाक छान

डाली। अन्तमें मदनवेगाके साथ सिद्धायतनकी यात्रा करते हुए मैंने आपको देखा। और उसी समयसे अदृश्य रहकर मैंने आपका पीछा किया। सिद्धायतनसे लौटने पर जिस समय आपके मुखसे मेरा नाम निकला, उस समय भी मैं वहीं उपस्थित थी। उस समय आपका प्रेम देखकर आपके मुखसे अपना नाम सुनकर मेरा कलेजा बल्लियों उछलने लगा। मैं उस समय अपने आपको भूल गयी। मैं उसी समय अपनेको प्रकट भी कर देती, किन्तु इसी समय सूर्पणखाने मकानमें आग लगाकर आपका हरण कर लिया।

अब उसका पीछा करनेके सिवा मेरे लिये और कोई चारा न था। मैंने मानसवेगका रूप धारणकर उसका पीछा किया, किन्तु वह विद्या और औषधियोंमें मुझसे चढ़ी बढ़ी थी, इसलिये मुझे देख, उसने अपने पीछे न आनेका संकेत किया। अपनी निर्बलताके कारण उसके मुकाबलेमें मुझे दब जाना पड़ा। मैं घबड़ा कर वहाँसे एक चैत्यकी ओर भगी और असावधानीके कारण एक साधुको लांघ गयी। इस पातकसे मेरी विद्याएँ भी नष्ट

हो गयीं और मैं बहुत निराश हो गयी। इतनेहीमें मुझे मेरी धाय माता मिल गयी। मैंने उसे आपकी खोज करनेका काम सौंपा और वही आपको पर्वतसे गिरते समय खींचकर मेरे पास ले आयी है। हे नाथ! इस समय जहाँ हम लोग खड़े हैं। और जहाँ हमलोगोंका यह पुनर्मिलन हुआ है, वह स्थान पञ्चनद हीमन्त तीर्थके नामसे प्रसिद्ध है। इसका नाम तो आपने पहले भी सुना होगा।"

वेगवतीकी यह बातें सुनकर वसुदेवको परम सन्तोष हुआ। उन्होंने वेगवतीको बारंबार गले लगाकर अपने आन्तरिक प्रेमका परिचय दिया। इसके बाद वे दोनों जन एक तापसके आश्रममें गये। और उसकी आज्ञा प्राप्त कर वहीं पर निवास करने लगे।

एकदिन वसुदेव और वेगवती नदीके तटपर बैठे हुए प्रकृतिके अपूर्व दृश्योंका रसास्वादन कर रहे थे। उसी समय उन्हें नदीमें एक कन्या दिखायी दी, जो नागपाससे बँधी हुई थी और उन्हीं की ओर बहती हुई चली आ रही थी। यह देख, वेगवतीने वसुदेवसे उसे

बचानेकी प्रार्थना की, अतः वे उसे बाहर निकाल लाये और बन्धनमुक्त कर उसकी मूर्च्छा दूर की। स्वस्थ होने-पर कन्याने तीन प्रदक्षिणाएँ देकर वसुदेवसे कहा :—"हे महापुरुष! आपके प्रभावसे मेरी विद्याएँ सिद्ध हुई हैं, इसलिये मैं आपको अनेकानेक धन्यवाद देती हूँ। शायद आप मेरा परिचय जाननेके लिये उत्सुक होंगे, इसलिये मैं आपको अपना वृत्तान्त सुनाती हूँ, सुनिये—

वैताढ्य पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें गगनवल्लभपुर नामक एक नगर था। उसमें नमिवंशोत्पन्न विद्युद्दंष्ट्र नामक एक राजा राज्य करता था। एकबार वह पश्चिम महा विदेहमें गया। वहाँपर एक प्रतिमाधारी मुनिको देखकर उसने अपने विद्याधरोंसे कहा:—"यह मुनि तो बड़ा ही उपद्रवी मालूम होता है, इसलिये इसे वरुण पर्वतपर ले जाकर मार डालो। उसकी यह बात सुनकर विद्याधरोंने उसे बहुत मारा, किन्तु शुक्लध्यानके योगसे उस मुनिको केवल ज्ञान उत्पन्न हो गया। फलतः केवलज्ञानकी महिमा करनेके लिये धरणेन्द्र वहाँपर उपस्थित हुए। उन्होंने मुनि के विरोधियों पर क्रोध कर उन्हें विद्याभ्रष्ट बना दिया।

अपनी यह अवस्था देखकर सब विद्याधर गिड़-गिड़ाने लगे। उन्होंने दीनतापूर्वक कहा :—"हे स्वामिन्! हम नहीं जानते कि यह कौन हैं? हमने इनपर जो कुछ अत्याचार किया है, वह विद्युदंष्ट्रके आदेशसे ही किया है। आप हमारा यह अपराध क्षमा कीजिये।"

धरणेन्द्रने कहा :—"मैं इन मुनिराजके केवलज्ञानका महोत्सव करने आया हूँ। तुम लोगोंने बड़ा ही बुरा काम किया है। वास्तवमें तुम बड़े पापी हो—बड़े अज्ञानी हो। मैंने तुम्हें जो दण्ड दिया है, वह सर्वथा उचित ही है, किन्तु तुम्हारी विनय-अनुनय सुनकर मुझे फिर तुम पर दया आती है। खैर, तुम्हारी विद्याएँ फिर सिद्ध हो सकेंगी, किन्तु इसके लिये तुम्हें बड़ी चेष्टा करनी पड़ेगी। साथही यदि तुमलोग भूलकर भी कभी तीर्थ-कर, साधु और श्रावकोंसे द्वेष करोगे, तो क्षणमात्रमें तुम्हारी विद्याएँ नष्ट हो जायँगी। पापी विद्युदंष्ट्रका अपराध तो बड़ा ही भयंकर और अक्षम्य है। उसे रोहिणी आदि विद्याएँ किसी भी अवस्थामें सिद्ध न होंगी।

उसके वंशवालोंको भी इन विद्याओंसे वंचित रहना पड़ेगा। हाँ, यदि उन्हें किसी साधु या महापुरुषके दर्शन हो जायँगे, तो उसके प्रभावसे यह अभिशाप नष्ट हो जायगा और उस अवस्थामें वे इन विद्याओंको प्राप्त कर सकेंगे।"

इतना कह धरणेन्द्र अपने वासस्थानको चले गये। विद्युदंष्ट्रके वंशमें आगे चलकर केतुमती नामक एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसका व्याह पुंडरीक वासुदेवके साथ हुआ। उसने विद्याएँ सिद्ध करनेके लिये बड़ी चेष्टा की, किन्तु धरणेन्द्रके अभिशापसे कोई फ़ल न हुआ। उसी वंशमें मेरा जन्म हुआ और मैंने भी विद्याएँ सिद्ध करनेके लिये बड़ा उद्योग किया। किन्तु यदि सौभाग्य वश आपके दर्शन न मिलते, तो मेरा भी वह उद्योग कदापि सफल न होता। मेरा नाम बालचन्द्रा है। आपकी ही कृपासे मेरी विद्या सिद्ध हुई है, इसलिये मैं आपसे व्याह-कर सदाके लिये आपकी दासी बनना चाहती हूँ। इसके अलावा आप मुझसे जो माँगें, वह भी मैं देनेके लिये तैयार हूँ।"

यह सुनकर वसुदेवने कहा :—"हे सुन्दरि ! क्या तुम मुझे वेगवती विद्या दे सकती हो ? मुझे उसकी आवश्यकता है।"

बालचन्द्राने सहर्ष वह विद्या वसुदेवको दे दी। इसके बाद वह गगनवल्लभपुरको चली गयी और वसुदेव अपने वासस्थान–तापस आश्रमको लौट आये। वहाँ आनेपर वसुदेवने दो राजाओंको देखा, जिन्होंने उसी समय व्रत ग्रहण किया था और जो अपने पौरुषकी निन्दा कर रहे थे। उनसे उद्वेगका कारण पूछनेपर उन्होंने वसुदेवसे कहा :—

श्रावस्ती नगरीमें एणीपुत्र नामक एक राजा है, जो बहुत ही पवित्रात्मा है। उसने अपनी पुत्री प्रियंगुमञ्जरी के स्वयंवरके लिये अनेक राजाओंको निमन्त्रित किया था, परन्तु उसकी पुत्रीने उनमेंसे किसीको भी पसन्द न किया। इससे उन राजाओंने रुष्ट होकर युद्ध करना आरम्भ किया परन्तु प्रियंगुमंजरीके पिता एणीपुत्रने अकेले ही सबको पराजित कर दिया। उनके भयसे न जाने कितने राजा भाग गये, न जाने कितने पर्वतोंमें जा

छिपे और न जाने कितने जलमें समा गये। हम दोनों भी वहाँसे भागकर यहाँ चले आये और अपना प्राण बचानेके लिये हमने यह तापस वेश धारण कर लिया है। "हे महापुरुष! हमें अपनी इस कायरताके लिये बड़ा ही अफसोस हो रहा है।"

यह सुनकर वसुदेवने पहले तो उन्हें सान्त्वना दी और बाद को जब वे शान्त हुए तब उन्हें जैन धर्मका उपदेश दिया। इससे उन्होंने जैनधर्मकी दीक्षा ले ली। इसके बाद वसुदेव श्रावस्ती नगरमें गये। वहाँपर एक उद्यानमें उन्होंने एक ऐसा देवमन्दिर देखा, जिसके तीन दरवाजे थे, मुख्य द्वारमें बत्तीस ताले जड़े हुए थे, इसलिये वे दूसरे द्वारसे प्रवेश कर उसके अन्दर पहुँचे। वहाँपर देवगृहमें उन्होंने तीन मूर्तियाँ देखीं। जिनमें से एक किसी ऋषिकी, एक किसी गृहस्थकी और एक तीन पैरके भैंसे की थी। इन मूर्तियोंको देखकर उन्होंने एक ब्राह्मणसे इसके सम्बन्धमें पूछताछ की। उसने कहा :—

यहाँ पर जितशत्रु नामक एक राजा थे, जिनके मृगध्वज नामक एक पुत्र था। उन्हींके जमानेमें यहाँ

पर कामदेव नामक एक वणिक भी रहता था। वह एक बार अपनी पशुशालामें गया। वहाँपर दण्डक नामक गोपालने एक भैंसको दिखलाते हुए उससे कहा:— "अब तक इस भैंसके पाँच बच्चोंको मैं मार चुका हूँ। यह इसका छठां बच्चा है। यह देखनेमें बहुत ही मनोहर है। यह जन्मते ही भयसे कॉपने लगा और दीनतापूर्वक मेरे पैरों पर गिर पड़ा। इससे मुझे इस पर दया आ गयी और मैंने इसे जीता छोड़ दिया। अब आप भी इसे अभयदान दीजिये। मालूम होता है कि यह कोई जातिस्मरण ज्ञान वाला जीव है।"

यह सुनकर कामदेव उस महिषको श्रावस्तीमें ले गया और वहाँपर राजासे भी प्रार्थना कर उसने उसे अभयदान दिलाया। तबसे वह महिष निर्भय होकर नगरमें विचरण करने लगा। एकदिन राजकुमार मृग-ध्वजने उसका एक पैर काट डाला। राजाको यह हाल मालूम होनेपर वे सख्त नाराज हुए और उन्होंने कुमार को बहुत कुछ भला-बुरा कहा। इससे कुमारको वैराग्य सा आ गया और उसने उसीदिन दीक्षा ले ली। इसके

अठारहवें दिन उस महिषकी मृत्यु हो गयी। तत्पश्चात बाइसवें दिन मृगध्वजको केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ। इस अवसर पर अनेक सुर, असुर, विद्याधर और राजाओंने उनकी सेवामें उपस्थित हो उन्हें वन्दन किया और उन्होंने सबको धर्मोपदेश दिया। उपदेश समाप्त होनेपर राजा जितशत्रुने पूछा :—"हे प्रभो! उस महिषके साथ आपका कौन ऐसा वैर था, जिससे आपने उसका पैर काट डाला था?"

केवलीने इस प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा :—"एक समय इस देशमें अश्वग्रीव नामक एक अर्ध चक्रवर्ती राजा था। उसके मन्त्रीका नाम हरिश्मश्रु था। वह नास्तिक था, इसलिये सदा धर्मकी निन्दा किया करता था और राजा आस्तिक था, इसलिये वह सदा धार्मिक कार्योंका आयोजन किया करता था। इस प्रकारके विरोधी कार्योंसे उन दोनोंका विरोध उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। अन्तमें वे दोनों त्रिपृष्ठ और अचल द्वारा मारे गये और सातवें नरकके अधिकारी हुए। वहाँसे निकलकर वे दोनों न जाने कितनी योनियोंमें भटकते रहे।

अन्तमें अश्वग्रीवका जीव मैं अर्थात् आपका पुत्र हुआ और हरिश्मश्रुका जीव भैंसेके रूपमें उत्पन्न हुआ। पूर्व जन्मके वैरके कारण मैंने उसका पैर काट डाला। मृत्युके बाद वही लोहिताक्ष नामक असुर हुआ है, जो इस समय मुझे वन्दन करने आया है। इस प्रकार हे राजन्! यह संसार बहुत ही विचित्र है। यहाँ पर कोई भी काम विना कारणके नहीं होता। मनुष्य अज्ञानके कारण इन बातोंको समझ नहीं सकता, इसीलिये वह कुछका कुछ मान बैठता है।"

उसके बाद लोहिताक्ष नामक उस असुरने मुनिको वन्दनकर मृगध्वज ऋषि, कामदेव सेठ और तीन पैरके उस भैंसेकी रत्नमय मूर्तियाँ निर्माण कराकर उनकी इस मन्दिरमें स्थापना कर दी। कामदेव सेठके वंशमें इस समय कामदत्त नामक एक सेठ है और उसके बन्धुमती नामक पुत्री है। किसी ज्ञानीने कामदत्तको बतलाया है, कि इस मन्दिरका मुख्य द्वार जो खोलेगा, वही बन्धुमतीका पति होगा। इसलिये बन्धुमती अबतक कुमारी ही बैठी है।"

ब्राह्मणके मुखसे उस मन्दिर और उससे सम्बन्ध रखनेवाले व्यक्तियोंका वृत्तान्त सुनकर वसुदेवने सन्तोष प्रकट किया। इसके बाद उन्होंने उस मन्दिरके मुख्य द्वारको जाकर देखा और उसे बिना किसी परिश्रमके ही खोल डाला। यह समाचार सुनकर कामदत्तने उनके साथ अपनी पुत्रीका विवाह कर दिया।

विवाहके समय वरको देखनेके लिये राजपुत्री प्रियंगु-मञ्जरी भी अपने पिताके साथ वहाँ आयी। उसने वसुदेवको देखा और देखतेही वह उनपर मुग्ध हो गयी। उसने गुप्तरूपसे एक द्वारपालको वसुदेवके पास भेजा और उन्हें पिछली रातमें अपने मकान पर आनेके लिये निमन्त्रित किया। वसुदेव शायद उसका अनुरोध मान लेते, किन्तु उन्होंने नाटक देखते हुए उसी समय सुना कि—"नमिपुत्र वासव विद्याधर था। उसके वंशमें और भी वासव हुए, जिनमें एक पुरूहुत भी था। एकदिन वह हाथीपर चढ़कर सैर करने निकला और गौतम ऋषिके आश्रममें जा पहुँचा। वहाँपर गौतम पत्नी अहिल्याको देखकर वह कामान्ध हो गया और उसके साथ उसने

छलपूर्वक विहार किया। विद्याहीन पुरुहूतका यह कार्य देखकर गौतम ऋषि आगवबूला हो उठे और उन्होंने उसे नपुंसक बना दिया। यह वृत्तान्त सुनकर वसुदेव सम्हल गये और उन्होंने प्रियंगुमञ्जरीके यहाँ जानेका विचार छोड़ दिया।

इसके बाद रात्रिके समय जिस समय वे बन्धुमतीके साथ शयन-गृहमें सो रहे थे, उस समय अर्ध निद्रित अवस्थामें उन्होंने एक देवीको अपने सामने खड़ी देखा। देखते ही चौंककर उठ बैठे और वे अपने मनमें कहने लगे कि मैं यह सत्य देख रहा हूँ या स्वप्न? इतने ही में उस देवीने कहा :—"हे वत्स! तू क्या सोच रहा है?"

वसुदेव इसके उत्तरमें कुछ कहने ही वाले थे, कि वह उनका हाथ पकड़ कर उन्हें अशोक-वाटिकामें लिवा ले गयी। वहाँ पर उसने कहा :—

"इस भरतक्षेत्रके चन्दनपुर नामक नगरमें अमोघ-रेतस नामक एक राजा राज्य करता था। उसके चारु-मती नामक एक रानी और चारुचन्द्र नामक एक पुत्र था। उसी नगरमें अनंगसेना नामक एक वेश्या और

कामपताका नामक उसकी एक पुत्री भी रहती थी। एकबार राजाने यज्ञ किया। उसमें अनेक तापसों को निमन्त्रित किया था, जिनमें कौशिक और तृणविन्दु नामक दो उपाध्याय भी थे। उन दोनोंने राजाको कुछ फल दिये। उन फलोंको देखकर राजाने पूछा :—"यह सुन्दर फल आप कहाँसे लाये हैं ?"

इस प्रश्नके उत्तरमें उपाध्यायोंने हरिवंशकी उत्पत्तिसे लेकर कल्पवृक्ष ले आने तक की कथा उन्हें कह सुनायी। उसी समय कामपताकाको छुरी पर नृत्य करते देखकर कुमार चारुचन्द्र और कौशिक मुनि उसपर मुग्ध हो गये। यज्ञ समाप्त होनेपर एक ओर तो चारुचन्द्रने उसे अधिकारमें कर लिया, दूसरी ओर कौशिक मुनिने राजासे उसकी याचना की। राजाने कहा :—"हे मुनिराज ! कुमारने उसे स्वीकार कर लिया है। साथ ही वह श्राविका धर्म पालन करती है, इसलिये एक पतिको स्वीकार करने के बाद वह अब दूसरा पति स्वीकार न करेगी।"

राजाका यह उत्तर सुनकर कौशिक मुनि क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने चारुचन्द्रको शाप देते हुए कहा :—

'हे चारुचन्द्र! तू इस रमणी से ज्यों ही भोग करेगा, त्योंही तेरी मृत्यु हो जायगी।"

इस घटनाके कुछ ही दिन बाद राजा अपना समूचा राज्य चारुचन्द्रको देकर जंगलमें चले गये और वहाँ पर एक तापसकी भाँति जीवन व्यतीत करने लगे। उनकी रानी उस समय गर्भवती थी किन्तु यह बात राजाको मालूम न थी। एकदिन जब रानी अपने पतिके साथ उपवनमें गयी तब वहाँपर उसने राजासे अपने गर्भकी बात कह सुनायी। तदनन्तर गर्भकाल पूर्ण होने पर उसने एक पुत्रीको जन्म दिया और उसका नाम ऋषिदत्ता रक्खा।

ऋषिदत्ता जब बड़ी हुई, तब वह चारण-श्रमणके पास श्राविका बन गयी। धीरे-धीरे वह युवती हुई, किन्तु उसे किसीका सहारा न रहा। क्योंकि उसकी माता और धाय पहले ही मर चुकी थी। एकदिन राजा शिलायुध शिकारकी खोजमें वहाँपर आ पहुँचे। उस समय ऋषिदत्ताका रूप देख कर वे उस पर मुग्ध हो गये। ऋषिदत्ताने अतिथि समझ कर उनका स्वागत-

सत्कार किया। किन्तु उनका ध्यान तो दूसरी ही ओर था, अतः उन्होंने उसे एकान्तमें बुलाकर उससे क्रीड़ाका प्रस्ताव किया। ऋषिदत्ता इसके लिये राजी हो गयी, फलतः शिलायुद्धने उसके साथ भोग कर अपनी काम-पिपासा तृप्त की।

ऋषिदत्ताको यह कार्य करवाते समय पहले तो कोई विचार न आया, किन्तु बादको वह इस चिन्तासे व्याकुल हो उठी, कि कहीं मेरे गर्भ न रह जाय। इसलिये उसने राजा शिलायुधसे कहा:—"राजन्! मैं ऋतुस्नाता हूँ, यदि मुझे गर्भ रह जायगा तो मेरी क्या अवस्था होगी? यह तो आप जानते ही हैं कि मैं अभी अविवाहिता हूँ!"

शिलायुधने कहा:—"यदि तुम्हें गर्भ रह जाय और पुत्र उत्पन्न हो, तो तुम उसे मेरे पास ले आना। मैं इक्ष्वाकु वंशके शतायुध राजाका पुत्र शिलायुध हूँ। श्रावस्ती नगरीमें मेरी राजधानी है। मैं वचन देता हूँ कि यदि तुम अपने पुत्रको मेरे पास लाओगी तो मैं उसीको अपना उत्तराधिकारी बनाऊँगा।"

उन दोनोंमें इस तरहकी बातचीत हो ही रही थी,

कि इतनेहीमें शिलायुधकी बिछुड़ी हुई सेना वहाँ आ पहुँची। इसलिये शिलायुध ऋषिदत्तासे विदा ग्रहण कर, घोड़े पर सवार हो, अपनी राजधानीमें लौट आये।

शिलायुधके चले जाने पर ऋषिदत्ताने सारा हाल अपने पितासे कह सुनाया, सुनकर वे चुप हो गये। न तो उन्होंने कुछ भला ही कहा, न बुरा ही। ऋषिदत्ताने यथा समय एक पुत्रको जन्म दिया। किन्तु इस बालक के भाग्यमें माताकी प्रेममयी गोदमें खेलना बदा न था। अतएव प्रसूती रोगसे ऋषिदत्ताकी शीघ्रही मृत्यु हो गयी। मृत्युके बाद ऋषिदत्ता एक देवीके रूपमें उत्पन्न हुई और ज्वलन प्रभ नामक नागकुमारकी पटरानी हुई। हे वसु-देव कुमार! मैं वही देवी हूँ और आज एक खास कार्यके लिये तुम्हारे पास आयी हूँ।"

इतना कहनेके बाद उस देवीने फिर वही कथा कहनी आरम्भ की। उसने कहा :—"ऋषिदत्ताकी मृत्युके बाद उसके पिता अमोघरेतस उस बालकको लेकर साधारण मनुष्यकी भाँति विलाप करने लगे। वात्सल्य भावके कारण मैं भी अधिक समय तक उससे

दूर न रह सकी और ज्वलनप्रभकी भार्या होने पर भी एक हरिणी का रूप धारण कर मैं उसका लालन-पालन करने लगी। इसी कारणसे उस बालकका नाम एणीपुत्र पड़ा।

उधर कौशिककी मृत्यु होने पर वह मेरे पिताके आश्रममें दृष्टि विष सर्प हुआ। उसने एकबार मेरे पिताको डस लिया, किन्तु मैंने वह विष हरण कर उनके प्राण बचा दिये। इसके बाद उस सर्पको प्रतिबोधकी प्राप्ति हुई, फलतः मृत्युके बाद वह बल नामक देव हुआ।

एकबार ऋषिदत्ताका रूप धारण कर मैं श्रावस्ती नगरीमें गयी और वहाँपर मैंने उस बालकको राजाके सामने उपस्थित किया, किन्तु वे उस बातको भूल गये थे, इसलिये उन्होंने उसको लेनेसे इन्कार कर दिया।

अब मैं चिन्तामें पड़ गयी। कोई दूसरा उपाय न देखकर मैंने उस बालको वहीं राजाके पास छोड़ दिया। इसके बाद आकाशमें जाकर मैंने कहा :—"हे राजन्! मैं वही ऋषिदत्ता हूँ, जिसकेसाथ आपने तपोवनमें भोग किया था। यह बालक आपहीका पुत्र है। इसका जन्म

होते ही मेरी मृत्यु हो गयी थी। मृत्युके बाद मैं देवी हुई। मोहके कारण उस अवस्थामें भी हरिणी बनकर मैंने इसका लालन-पालन किया है। इसीलिये इसका नाम एणीपुत्र पड़ा है। हे राजन्! इसे आप स्वीकार कीजिये और अपने वचनानुसार अपना उत्तराधिकारी बनाइये।"

मेरी यह आकाशवाणी सुनकर राजा शिलायुधने उस बालकको अपने पास रख लिया और कुछ दिनोंके बाद उसे अपना राज्य देकर उन्होंने दीक्षा ले ली। इसके बाद एक दिन एणीपुत्रने सन्तानके निमित्त अट्ठमतप कर मेरी आराधना की, फलतः मैंने उसे एक पुत्री दी। उसीका नाम प्रियंगुमंजरी रक्खा गया है।

प्रियंगुमंजरीके स्वयंवरमें एणीपुत्रने अनेक राजाओंको निमन्त्रित किया, परन्तु प्रियंगुमंजरीने उनमेंसे एकको भी पसन्द न किया। इससे वे सब असन्तुष्ट हो, युद्ध करने पर उतारू हुए किन्तु मेरी सहायतासे अकेले एणीपुत्रने ही उन सबोंको मार भगाया। अब मुझे मालूम हुआ है कि प्रियंगुमंजरी तुम्हारे साथ व्याह करना चाहती है।

उसने इसके लिये अट्ठमतप कर मेरी आराधना की थी। कल उसकी ओरसे जो द्वारपाल तुम्हें बुलाने आया था, वह मेरी ही सलाहसे आया था, किन्तु अज्ञानताके कारण तुमने उसकी उपेक्षा की। अब मेरे हुक्मसे वह द्वारपाल पुनः तुम्हारे पास आये, तो प्रियंगुमंजरीके पास जानेमें तुम किसी प्रकारका संकोच मत करना और उससे व्याह कर लेना। अब तुम अपनी इच्छानुसार मुझसे भी एक वर माँग सकते हो।"

देवीके यह वचन सुनकर वसुदेवने कहा:—"माताजी! अच्छी बात है, मैं अब आपके आदेशानुसार ही कार्य करूँगा और प्रियंगुमंजरीसे व्याह भी कर लूँगा। रह गयी वरदान की बात, सो मैं आपसे यही वर माँगता हूँ कि मैं आपको जब और जहाँ स्मरण करूँ, वहींपर आप मेरी सहायता करें। बस, इतना ही मेरे लिये काफी है।"

देवीने कहा:—"तथास्तु।" इसके बाद वह कुमार को बन्धुमतीके घर पहुँचा कर अपने वासस्थानको चली गयीं। दूसरे दिन वह द्वारपाल फिर वसुदेवको बुलाने

आया। आज वसुदेवने उसके साथ जानेमें कोई आपत्ति न की। इधर प्रियंगुमंजरी अपने मन्दिरमें बैठी हुई पहले ही से उनकी बाट जोह रही थी। इसलिये वसुदेवने आतेही उसकी इच्छानुसार उसके साथ गन्धर्व विवाह कर लिया। अठारहवें दिन उसी द्वारपालने राजाको इस विवाहका समाचार दिया। साथही उसने कहा कि यह सब कार्य देवीके ही आदेश और संकेतसे हुए हैं। यह सुनकर राजा परम प्रसन्न हुए और वसुदेवका समुचित आतिथ्य करने के लिये उन्हें सम्मानपूर्वक अपने घर लिवा ले गये।

इधर वैताढ्य पर्वत पर गन्ध समृद्धि नामक एक नगर था। वहाँ पर गन्धार पिङ्गल नामक एक राजा राज्य करते थे। उनके प्रभावती नामक एक पुत्री थी। वह एकबार घूमती-घामती सुवर्णाभपुर नगरमें जा पहुँची। वहाँ पर सोमश्रीसे भेट होने पर वह उसकी सखी बन गयी। कुछ दिनोंके बाद प्रभावतीको मालूम हुआ कि सोमश्री पति-विरहसे सदा दुःखित रहती है, इसलिये उसने उससे कहा :—"हे सखी! तुम खेद मत

करो। मैं जैसे भी होगा, तुम्हारे पतिको तुम्हारे पास ले आऊँगी।"

सोमश्रीने एक ठंढी साँस लेकर कहा :—"वेगवती ने भी तो ऐसाही कहा था पर उससे कुछ हुआ नहीं। मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ कि फिर पतिदेवसे मेरी भेट हो सके।"

प्रभावतीने मुस्कुराकर कहा :—"विश्वास रक्खें, मैं वेगवती की तरह तुम्हें धोखा न दूँगी।"

इतना कह प्रभावती वसुदेवकी खोजमें निकल पड़ी और अपनी अद्भुत विद्याओंके प्रभावसे श्रावस्तीमें जाकर वहाँसे तुरन्त वसुदेवको सोमश्रीके पास ले आयी। सोमश्री उन्हें पाकर उसी तरह प्रसन्न हो उठी, जिस प्रकार कंजूस खोया हुआ धन या अन्ध मनुष्य आँखे पाकर प्रसन्न होता है। वसुदेवको भी कम आनन्द न हुआ, किन्तु यहाँ रहनेमें मानसवेगके उपद्रवका भय था, इसलिये वे गुप्त रूपसे वहाँपर रहने लगे।

परन्तु यह समाचार अधिक दिनों तक छिपा न रह सका। मानसवेगको इसका पता चलते ही उसने वहाँ

आकर वसुदेवको गिरफ्तार कर लिया। इससे बड़ाही कोलाहल मचा। चारों ओरसे अनेक विद्याधर दौड़ आये और उन्होंने वसुदेवको छुड़ा दिया। किन्तु मानस-वेगने इतनेहीसे वसुदेवका पीछा न छोड़ा। वह उनसे झगड़ा करने लगा। अन्तमें वह विवाद यहाँ तक बढ़ गया, कि उसका निराकरण करानेके लिये उन दोनोंको वैजयन्ती नगरीके राजा वलसिंहके पास जाना पड़ा। उस समय कुमारके शत्रु सूर्पकादिक भी वहाँ आ पहुँचे थे। मानसवेगने कहा :—"पहले मेरा विवाह सोमश्री से होना स्थिर हुआ था, किन्तु इसने छलपूर्वक उससे ब्याह कर लिया, इसीलिये मैं उसे हरण कर लाया था। अब यह फिर गुप्तरूपसे उसके पास आकर रहता है। ऐसा न होना चाहिये और सोमश्री मेरे ही अधिकारमें रहनी चाहिये। वेगवतीका विवाह मैंने खुशीसे इसके साथ कर दिया है, इसलिये उस विषयमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है।"

वसुदेवने कहा :—"मानसवेग की बातें बिलकुल झूठी हैं। सोमश्रीका विवाह उसके पिताने स्वेच्छापूर्वक

मेरे साथ किया है, मैंने उसमें किसी प्रकारका छल नहीं किया। उसका हरण कर इसीने अन्याय किया है। वेगवतीका विवाह भी इसकी इच्छा या अनुमतिसे नहीं हुआ। उसने स्वयं छलपूर्वक मुझसे विवाह किया था। यह सब बातें अनेक लोगोंको मालूम हैं और इनके समर्थनमें यथेष्ट प्रमाण भी दिये जा सकते हैं।"

वसुदेवकी इन बातोंसे मानसवेगकी असत्यता स्पष्ट रूपसे प्रमाणित हो गयी। उसने जब देखा कि इस प्रकार मैं वसुदेवको नीचा न दिखा सकूँगा, तब वह नीलकंठ और सूर्पकादिक खेचरोंको अपने साथ ले, उनसे युद्ध करनेको तैयार हुआ। उसका यह अन्याय देखकर वेगवतीकी माता अंगारवतीने वसुदेवको एक दिव्य धनुष और दो भाले दिये, साथही प्रभावतीने उन्हें प्रज्ञप्ति विद्या दी। इस प्रकार विद्या और दिव्य शस्त्रोंको पाकर वसुदेव परम आनन्दित हो उठे और उन्होंने थोड़ीही देरमें अपने शत्रुओंको पराजित कर दिया। मानसवेगको जीता ही बाँधकर वे सोमश्रीके पास ले आये। वहाँपर उसकी माता अंगारवतीने दयाकर उसे छुड़ा दिया।

मानसवेग तथा उसके संगी-साथियोंने अब दीनतापूर्वक उनकी दासता स्वीकार कर ली। पश्चात् वसुदेव सोमश्री के साथ विमानमें बैठकर वहाँसे महापुर चले आये और वहींपर आनन्दपूर्वक अपने दिन व्यतीत करने लगे।

इस प्रकार मानसवेगके दाँत तो खट्टे हो गये, किन्तु कपटी सूर्पकका हौंसला अभी पस्त न हुआ था। वह एकदिन चुपचाप महापुरमें आया और अश्वका रूप धारणकर वसुदेवकुमारको उठा ले चला। वसुदेवको यह बात मालूम होते ही उन्होंने उसके शिरपर एक ऐसा मुक्का मारा, कि उसने तुरन्त उन्हें छोड़ दिया। इससे वसुदेव गंगा नदीकी धारामें जा गिरे। किसी तरह वहाँसे निकलकर वे एक तपस्वीके आश्रममें जा पहुँचे। वहाँपर एक कन्या खड़ी थी, जिसके गलेमें हड्डियोंकी माला पड़ी हुई थी। उसे देख, वसुदेवने तपस्वीसे पूछा :—"महाराज! यह कन्या किसकी है? और यह ऐसी अवस्था में क्यों खड़ी है?"

तपस्वीने कहा :—"हे कुमार! यह राजा जितशत्रुकी पत्नी और जरासन्धकी नन्दिषेणा नामक पुत्री है।

इसे एक परिव्राजकने वश कर लिया था, इसलिये राजाने उसे मरवा डाला। किन्तु उसके वशीकरणका प्रभाव इसपर इतना अधिक पड़ा कि यह अबतक उसकी हड्डियाँ धारण किये रहती है।"

यह सुनकर वसुदेवने अपने मन्त्रबलसे उसके वशीकरणका प्रभाव नष्ट कर दिया। इससे वह फिर अपने पति राजा जितशत्रुके पास चली गयी। राजा जितशत्रुने इस उपकारके बदलेमें वसुदेवके साथ अपनी केतुमती नामक बहिनका विवाह कर दिया। वसुदेव वहीं ठहर गये और उसका आतिथ्य ग्रहण करने लगे।

धीरे-धीरे यह समाचार राजा जरासन्धके कानों तक जा पहुँचा। उसने डिम्भ नामक द्वारपालको राजा जितशत्रुके पास भेजकर वसुदेवको बुला भेजा। डिम्भ सवारीके लिये एक रथ भी लाया था। वसुदेव उसीमें बैठ उसके साथ राजगृह नगरमें गये। परन्तु वहाँ पहुँचते ही राजकर्मचारियोंने उन्हें कैद कर लिया। इस अकारण दण्डका कारण पूछनेपर उन्होंने बतलाया कि एक ज्ञानीने जरासन्धसे कहा है कि जो नन्दिषेणाको वशीकरणके

प्रभावसे मुक्त करेगा, उसीके पुत्र द्वारा जरासन्धकी मृत्यु होगी। इसलिये हमलोगोंने आपको कैद किया है।"

इतना कह वे लोग वसुदेवको वध-स्थानमें ले गये। वहाँपर वधिक पहलेसे ही तैयार बैठे थे। ज्यों ही वे उन्हें मारनेको उठे त्योंही भगीरथी नामक एक धात्री वहाँ आयी और वसुदेवको उनके हाथोंसे छीनकर आकाशमार्ग द्वारा उन्हें गन्धसमृद्धपुर नामक नगरमें उठा ले गयी। बात यह हुई कि वहाँके राजा गन्धार-पिङ्गलके प्रभावती नामक एक कन्या थी। किसी ज्ञानीसे पूछने पर उसे मालूम हुआ कि उसका विवाह वसुदेवके साथ होगा। इसलिये उन्होंने भगीरथीको उन्हें ले आनेके लिये भेजा था। वह ठीक उसी समय राजगृहमें पहुँची, जिस समय वधिकगण वसुदेवको मारनेकी तैयारी कर रहे थे। वसुदेवको उनके हाथोंसे छीन लेने पर वे सब अवाक् बन गये और अपनासा मुँह लेकर अपने-अपने घर चले गये। उधर गन्धपिङ्गलने वसुदेवके साथ प्रभावतीका विवाह कर दिया, इसलिये वे वहीं सुखपूर्वक दिन बिताने लगे।

इस प्रकार सुकोशला तथा अनेक विद्याधर और भूचर राजाओंकी कन्याओंसे विवाह कर वसुदेव अब सुकोशलाके घरमें रहने लगे और वहींपर आनन्दपूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगे।

सातवाँ परिच्छेद

कनकवतीसे वसुदेवका ब्याह

इसी भरत-क्षेत्रमें विद्याधरोंके भी नगरोंको लज्जित करनेवाला पेढालपुर नामक एक नगर था। वहाँपर महा-ऋद्धिवान और ऐश्वर्यमें इन्द्रके समान हरिश्चन्द्र नामक राजा राज्य करते थे। उनकी पटरानीका नाम लक्ष्मी-वती था। वह जैसी गुणवती थी, वैसी ही रूपवती और पति-परायणा भी थी। राजा हरिश्चन्द्रको वह प्राणके समान प्रिय थी।

कुछ दिनके बाद रानीने एक सुन्दर पुत्रीको जन्म दिया। वह रूपमें साक्षात् लक्ष्मीके समान थी, इसलिये उसके माता-पिता उसे देखकर बहुत ही आनन्दित हुए। उसके पूर्वजन्मके पति कुबेरने उस समय प्रसन्नतापूर्वक सुवर्ण-की वृष्टि की, इसलिये उसका नाम कनकवती रक्खा गया। उसके लालन-पालनके लिये कई धात्रियाँ नियुक्त कर दी गयी। जब कनकवती धीरे-धीरे बड़ी हुई तब राजाने शीघ्र ही उसकी शिक्षा-दीक्षाका प्रबन्ध किया। उसकी बुद्धि बहुत ही तीव्र थी, इसलिये उसने थोड़े ही दिनोंमें अनेक विद्या-कला तथा व्याकरण, न्याय, छन्द, अलंकार और काव्यादिक शास्त्रोंमें निपुणता प्राप्त कर ली। वाणीमें तो वह मानो साक्षात् सरस्वती ही थी। गायन-वादन तथा अन्यान्य कलाओंमें भी वह अपना सानी न रखती थी।

कनकवतीने क्रमशः किशोरावस्था अतिक्रमण कर युवावस्थामें पदार्पण किया। राजा हरिश्चन्द्रको अब उसके व्याहकीफिक्र हुई। इसलिये उन्होंने उसके अनुरूप वरकी बहुत खोज कर ली। किन्तु वे जैसा चाहते थे, वैसा वर

कहीं भी दिखायी न दिया। अन्तमें उन्होंने स्वयंवर करना स्थिर किया। उनके आदेशसे शीघ्र ही एक सुशोभित और विशाल सभामण्डप तैयार किया गया और स्वयंवरमें भाग लेनेके लिये भिन्न-भिन्न देशके राजाओंको निमन्त्रण-पत्र भी दे दिये गये।

एक दिन कनकवती अपने कमरेमें आरामसे बैठी हुई थी। इतने ही में कहींसे एक राजहँस आकर उसकी खिड़कीमें बैठ गया। उसका वर्ण कपूरके समान उज्ज्वल और चंचु, चरण तथा लोचन अशोक वृक्षके नूतन पत्रोंकी भाँति अरुण थे। विधाताने मानो श्वेत परमाणुओंका सार संग्रह कर उसके पंखोंकी रचना की थी। उसके कंठमें सोनेके घुंघरू बंधे हुए थे और उसका स्वर बहुत ही मधुर था। वह जिस समय ठुमक-ठुमक कर चलता था, उस समय ऐसा मालूम होता था, मानो वह नृत्य कर रहा है।

राजकुमारी कनकवती इस मनोहर हँसको देखकर अपने मनमें कहने लगी :—"मालूम होता है कि यह किसीका पलाऊ हँस है। यदि ऐसा न होता तो इसके

कंठमें यह घुंघरू क्यों बंधे होते ? ओह ! कितना सुन्दर पक्षी है ! मुझे तो यह बहुत ही प्यारा मालूम होता है। मैं इसे पकड़े बिना न रहूँगी। यह चाहे जिसका हो, किन्तु मैं अब इसे अपने ही पास रक्खूंगी।"

इस प्रकार विचार कर उस हँस-गामिनी कन्याने गवाक्षमें बैठे हुए उस हँसको पकड़ लिया। इसके बाद वह अपना कमल समान कोमल हाथ उसके बदन पर फिरा-फिरा कर उसे बड़े प्रेमसे दुलारने लगी। इतनेही में उसकी एक सखी आ पहुँची। उसने उससे कहा :— "देखो सखी ! मैंने यह कैसा बढ़िया हँस पकड़ा है ! तुम शीघ्र ही इसके लिये सोनेका एक पींजड़ा ले आओ। मैं उसमें इसे बन्द कर दूँगी, वर्ना यह जैसे दूसरे स्थानसे उड़कर यहाँ आया है, वैसेही यहाँसे किसी दूसरे स्थानको उड़ जायगा।"

कनकवतीकी यह बात सुनकर उसकी सखी पींजड़ा लेने चली गयी। इधर उस हँसने मनुष्यकी भाषामें बोलते हुए राजकुमारीसे कहा :—"हे राजपुत्री ! तुम बड़ी समझदार हो, इसलिये मैं तुमसे तुम्हारे हितकी एक

वात कहने आया हूँ। मुझे पींजड़ेमें बन्द करनेकी जरूरत नहीं। तुम भी मुझे छोड़ दो। मैं तुमसे बातचीत किये विना यहाँसे कदापि न जाऊँगा।"

हँसकी यह बातें सुनकर कनकवती चकित हो गयी। उसने कभी भी किसी पक्षीको इस तरह मनुष्यकी बोलीमें बातें करते देखा सुना न था। इसलिये उसने उसे छोड़ते हुए कहा :—"हे हँस! तुम वास्तवमें एक रत्न हो। लो, मैं छोड़े देती हूँ। तुम्हें जो कहना हो, वह सहर्ष कहो।"

हँसने कहा :—"हे राजकुमारी! सुनो, वैताढ्य पर्वतपर कोशला नामक एक नगरी है। उसमें कोशल नामक एक विद्याधर राज करता है। उसके देवी समान सुकोशला नामक एक पुत्री है। उसका पति परम गुणवान और युवा है। रूपमें तो मानो उसके जोड़ेका दूसरा पुरुष विधाताने बनाया ही नहीं। पुरुषोंमें जिस प्रकार वह सुन्दर है, उसी प्रकार तुम स्त्रियोंमें सुन्दरी हो। तुम दोनोंको देखकर मुझे ऐसा मालूम हुआ, मानो एक सूत्रमें बान्धने के लिये ही विधाताने इस

जोड़ीकी सृष्टि की है। मैंने यह सोचकर कि तुम दोनों का विवाह मणिकाञ्चनका योग हो सकता है इसीलिये यह चेष्टा आरम्भ की है। आशा है कि इससे तुम अप्रसन्न न होगी।

तुम्हें देखनेके बाद कुमारके सामने मैंने तुम्हारे रूप का वर्णन किया था। इससे उनके हृदयमें भी तुम्हारे प्रति प्रेमभाव उत्पन्न हो गया है। वे तुम्हारे स्वयंवरमें अवश्यही पधारेंगे। आकाशमें अगणित नक्षत्र होनेपर भी जिस प्रकार चन्द्रको पहचाननेमें कोई कठिनाई नहीं पड़ती, उसी प्रकार उनको पहचाननेमें भी तुम्हें कोई कठिनाई न पड़ेगी। अपने रूप, यौवन और अपनी तेजस्विताके कारण, हजार राजकुमारोंके बीचमें होनेपर भी वे सबसे पहले तुम्हारा ध्यान आकर्षित कर लेंगे। हे राजकुमारी! यदि तुम उनसे विवाह करोगी, अपनी जयमाल उनके गलेमें डालोगी, तो अवश्य ही तुम्हारा जीवन सुखमय बन जायगा। तुम अपनेको धन्य समझने लगोगी।"

इतना कह उस हँसने राजकुमारीसे विदा माँगी।

किन्तु राजकुमारी उसकी बातें सुनकर मन्त्र-मुग्धकी भाँति एक दृष्टिसे उसकी ओर देख रही थी। उसे मानो अपने तन-मनकी भी सुधि न थी। जब हँस वहाँसे उड़ने लगा, तब उसे होश आया। वह अपने दोनों हाथ फैला-कर उसकी ओर इस प्रकार देखने लगी, मानो उसे बुला रही हो। हँसने आकाशसे उसके उन फैलाये हुए हाथोंमें एक चित्र डालते हुए कहा :—"हे भद्रे! यह उसी युवकका चित्र है, जिसके रूपका वर्णन मैंने तुम्हारे सामने किया है। चित्र चित्र ही है। यह मेरी कृति है। इसमें दोष हो सकता है, किन्तु कुमारमें कोई दोष नहीं है। इस चित्रको तुम अपने पास रखना। इससे स्वयं-वरके समय कुमारको पहचानमें तुम्हें कठिनाई न होगी।"

राजकुमारी उस चित्रको देखकर प्रसन्न हो उठी। उसने हँसकी ओर पुकार कर कहा :—"हे भद्र! क्या तुम यह न बतलाओगे कि वास्तवमें तुम कौन हो? मुझे तो तुम्हारा यह रूप कृत्रिम मालूम पड़ता है!"

कुमारीकी यह बात सुनकर हँस रूपधारी उस विद्या-धरने अपना असली रूप प्रकट करते हुए कहा :—"हे

कुमारी !" मैं चन्द्रातप नामक विद्याधर हूँ। तुम्हारी और तुम्हारे भावी पतिकी सेवा करने के लिये ही मैंने यह रूप धारण किया था। हाँ, तुमसे मैं एक बात और बतला देना चाहता हूँ कि स्वयंवरके दिन तुम्हारे पतिदेव शायद दूसरे के दूत बनकर यहाँ आयेंगे। इसलिये तुम उन्हें पहचाननेमें भूल न करना।"

इतना कह, कनकवतीको आशीर्वाद दे, वह विद्याधर वहाँसे चला गया। उसके चले जाने पर कनकवती उस चित्रको बारंबार देखने लगी। वह अपने मनमें कहने लगी :—"जिसका चित्र इतना सुन्दर है तो वह पुरुष न जाने कितना सुन्दर होगा।" वह तनमनसे उस पर अनुरक्त हो उसे कभी कंठ, कभी शिर और कभी हृदयसे लगाने लगी। उसके नेत्र मानो उसके दर्शन से तृप्त ही न होते थे। वह मन-ही-मन उसीको पतिरूपमें पानेके लिये ईश्वरसे प्रार्थना करने लगी।

उधर चन्द्रातप विद्याधरको यह धुन लगी थी, कि कनकवतीका विवाह वसुदेवके ही साथ होना चाहिये। इसलिये वह कनकवतीके हृदयमें वसुदेवका अनुराग उत्पन्न

कर, उसी समय कोशला नगरीमें गया। उस समय रात्रिका समय था और वसुदेव अपनी प्रियतमाके साथ अपने शयनगृहमें सो रहे थे। फिर भी चन्द्रातप अपनी विद्याओंके बलसे वहाँ जा पहुँचा। उसने वसुदेवकी चरण सेवाकर उनको जगा दिया। वसुदेव तुरन्त उठ बैठे।

वसुदेवकी आँख ज्योंहीं खुली, त्योंही उनकी दृष्टि चन्द्रातप पर जा पड़ी। किन्तु अपने शयनगृहमें रात्रिके समय किसी अपरिचित पुरुषको देखकर वे न तो भयभीत हुए, न उन्हें क्रोध ही आया। वे अपने मनमें कहने लगे—"क्या यह पुरुष मेरा शत्रु होगा? नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। यदि शत्रु होता तो मेरी चरण-सेवा क्यों करता? या तो यह कोई शरणार्थी होगा या मेरा कोई शुभचिन्तक होगा और किसी आवश्यक कार्यसे यहाँ आया होगा। किन्तु मैं अब इससे बातचीत किस प्रकार करूँ? यदि मैं बोलूँगा तो प्रियाकी निद्रामें व्याघात होगा और यदि नहीं बोलूँगा, तो इस पुरुषका जी दुःखी हो जायगा। ऐसी अवस्थामें मुझे क्या करना चाहिये?"

अन्तमें कुछ सोचकर वसुदेव धीरे-धीरे इस प्रकार

उठ खड़े हुए, कि जिसमें उनकी प्रियाकी निद्रा भंग न हो। जब वे पलङ्गसे उतर कर उससे कुछ दूरी पर पहुँचे, तब चन्द्रातपने भी उनके पास जाकर उनको प्रणाम किया। वसुदेवने अब उसे अच्छी तरह देखा। देखते ही वे पहचान गये, कि यह तो वही विद्याधर है, जिसने कनकवतीका परिचय दिया था। उन्होंने उसका स्वागत कर उसके आगमनका कारण पूछा। चन्द्रातपने चन्द्र समान शीतल वाणीसे कहा :—"हे वसुदेव कुमार! मैंने जिसप्रकार आपको कनकवतीका परिचय दिया था, उसी-प्रकार मैं कनकवतीको अब आपका परिचय दे आया हूँ। साथही अपनी विद्याके बलसे आपका एक चित्र भी अंकित कर मैं उसे दे आया हूँ। आपका वह मनोहर चित्र देखकर उसका चेहरा आनन्दसे खिल उठा है और उसे उसने अपने हृदयसे लगा लिया है। अतएव अब मैं कह सकता हूँ स्वयंवरमें वह आपके सिवा और किसीको वरण न करेगी। उसकी बातों और भावभंगीसे भी यही प्रकट होता था, इसलिये हे प्रभो! अब आप स्वयं-वरके लिये प्रस्थान कीजिये। स्वयंवरमें अब केवल दस

ही दिनकी देरी है। यदि आप समय पर न पहुँचेंगे, तो वह निराश हो जायगी और आपके वियोगमें शायद प्राण तक दे देगी।"

वसुदेवने चन्द्रातपको धन्यवाद देकर कहा :—"अच्छी बात है। मैं सुबह स्वजनोंकी अनुमति लेकर यहाँसे प्रस्थान करूँगा। तुम प्रमोदवनमें मेरी राह देखना। वहीं मैं तुमसे आ मिलूँगा। तुम्हें अपनी चेष्टामें कहाँ तक सफलता मिली है, यह तो तुम्हें स्वयंवरसे ही मालूम हो सकेगा।"

वसुदेवकी यह बात सुनकर वह विद्याधर अदृश्य हो गया और वसुदेव फिर अपनी हृदयेश्वरीके पास जाकर सो रहे। सुबह स्वजनोंकी अनुमति और स्त्रियोंकी सम्मति ले, वसुदेव पेढालपुरमें जा पहुँचे। वहाँपर राजा हरिश्चन्द्रने उनका स्वागत कर, उन्हें लक्ष्मीरमण नामक उद्यानमें ठहराया। वह उद्यान बहुत ही बड़ा था और तरह-तरहके वृक्ष, लता, पुष्प तथा महलोंसे सुशोभित हो रहा था। इसके नामके सम्बन्धमें किसीने वसुदेवसे बतलाया कि प्राचीनकालमें श्रीनमिनाथ भगवानका समवसरण इस

उद्यानमें हुआ था। उस समय देवाङ्गनाओंके साथ स्वयं लक्ष्मीजीने श्रीनमिनाथ भगवानके सामने रासक्रीड़ा की थी। उसी समयसे यह उद्यान लक्ष्मीरमण कहलाने लगा।

उसी उद्यानमें एक चैत्य भी था। वसुदेवने वहाँ जाकर दिव्य उपहार द्वारा जिन प्रतिमाओंकी पूजा कर उन्हें वन्दन किया। इसी समय कुमारने देखा कि लाखों ध्वजा पताकाओंसे युक्त जंगम मेरु पर्वतकी भाँति आकाश से एक विमान उतर रहा है। उसमें मंगल बाजे बज रहे थे और बन्दीजन कोलाहल कर रहे थे। वसुदेवने उसका अद्भुत ठाठ-बाठ देखकर एक देवसे, जो उस विमानके आगे-आगे चल रहा था, पूछा :—"इन्द्रके समान यह विमान किस देवताका है।"

यह सुनकर उसने उत्तर दिया कि,—"हे महापुरुष! यह विमान कुबेरका है। किसी विशेष कारणवश वे इस पर बैठ कर इस धराधाम पर अवतीर्ण हो रहे हैं। वे इस चैत्यमें जिन प्रतिमाओंका पूजन कर सबसे पहले कनकवतीका स्वयंवर देखने जायंगे!

वसुदेवने अपने मनमें कहा :—"अहो! धन्य है

कनकवतीको, जिसके स्वयंवरमें देवता भी पधार रहे हैं!"

थोड़ीही देरमें कुबेर विमानसे उतरकर जिन चैत्यमें गये और वहाँपर प्रतिमाओंके समक्ष पूजन, वन्दन और संगीत करने लगे। यह देख, वसुदेव अपने मनमें कहने लगे :—"अहो! यह देव तो परम श्रावक मालूम होता है। तभी तो यह पुण्य-कार्यमें तत्पर रहता है। किन्तु यह सब जिन शासनका ही प्रभाव है, इसलिये वही सराहनीय है। आज यह आश्चर्य देखकर मैं भी धन्य हो गया हूँ।"

पूजनसे निवृत्त हो, कुबेर ज्योंही चैत्यसे बाहर निकले, त्योंही उनकी दृष्टि उस दिव्य रूपधारी वसुदेव कुमार पर जा पड़ी। वे उनका अद्भुत रूप देखकर मन-ही-मन उसकी सराहना करने लगे। वे अपने मनमें कहने लगे, कि धन्य है इस पुरुषको, जिसे विधाताने ऐसा रूप दिया है, जो सुर-असुर और विद्याधरोंको भी नसीब नहीं है। इसी तरहका विचार करते हुए वे अपने विमानमें जा बैठे, किन्तु इसी समय उनके मस्तिष्कमें एक और विचार

आया, जिससे वे वहीं ठहर गये। पश्चात् उन्होंने उँगली से इशारा कर वसुदेवको अपने पास बुलाया। वसुदेव भी निर्भीकतापूर्वक उनके पास जा खड़े हुए। कुबेरने आदर पूर्वक उन्हें अपने पास बैठाकर उनका बड़ाही सत्कार किया। अब वे मित्रकी भाँति प्रेमपूर्वक उनसे बातें करने लगे।

वसुदेव विनयी तो थे ही, कुबेरका यह आदर-सत्कार देखकर वे और भी पानी-पानी हो गये। उन्होंने हाथ जोड़कर कुबेरसे कहा :—"मैं आपका दास हूँ। मेरे योग्य जो कार्यसेवा हो, वह सहर्ष सूचित कीजिये।"

कुबेरने नम्रतापूर्वक कहा :—"क्या सचमुच आप हमारा कोई कार्य करना चाहते हैं? यदि ऐसाही है, तो आप मेरे लिये दूतका कार्य कीजिये। यह आपके लिये बाँये हाथका खेल है। शायद आप जानते होंगे कि राजा हरिश्चन्द्रके कनकवती नामक एक कन्या है। इस समय उसके स्वयंवरकी तैयारी हो रही है। इसलिये आप उससे जाकर कहिये कि इन्द्रका उत्तर दिक्पाल कुबेर तुम्हारे साथ ब्याह करना चाहता है। उनसे ब्याह

करनेसे तुम मानुषी होनेपर भी देवी कहलाओगी। आजतक ऐसा सौभाग्य किसीको भी प्राप्त नहीं हुआ है।"

यह सुनकर वसुदेवने कहा :—"भगवन्! आपका कार्य करनेके लिये मैं तैयार हूँ, किन्तु आपने इस बात पर भी विचार किया है, कि कनकवतीके निकट मेरा पहुँचना कितना कठिन है? मैं तो इसे कठिनही नहीं, बल्कि असम्भव मानता हूँ।"

कुबेरने कहा :—"आपका कहना ठीक है। साधारण अवस्थामें आपको इस कठिनाईका सामना अवश्य करना पड़ता, किन्तु मेरे आशीर्वादके प्रभावसे अब तुम्हें इसमें कोई भी कठिनाई न होगी। आप वायुकी भाँति बिना किसी विघ्न-बाधाके कनकवतीके पास पहुँच जायँगे।"

यह सुनकर वसुदेव अपने वासस्थानको लौट आये। वहाँपर उन्होंने अपने दिव्य वस्त्रालङ्कार उतार डाले और उनके बदलेमें सेवकके समान मलीन वस्त्र पहन लिये। उन्हें इस वेशमें कनकवतीके पास जाते देखकर कुबेरने कहा :—"हे कुमार! आपने उत्तम वेश क्यों त्याग दिया? संसारमें तो सर्वत्र आडम्बरकी ही पूजा होती है।"

कुमारने हँसकर कहा :—"मलीन या उज्ज्वल वेश क्या होता है? वाणी ही दूतका भूषण है और वह तो मेरे पास है ही।"

कुबेरने कहा :—"अच्छा जाइये, आपका कल्याण हो।"

तदनुसार वसुदेवकुमार राजा हरिश्चन्द्रके राज-भवनमें जा पहुँचे। वहाँ पर हाथी, घोड़े, रथ और सुभटादिकके कारण कहीं पैर रखनेकी भी जगह न थी, परन्तु कुबेरके आशीर्वादसे वे अदृश्य भावसे बिना किसी विघ्न-बाधाके इस तरह आगे बढ़ते गये, मानो वहाँ कोई है ही नहीं। धीरे-धीरे वे राजमन्दिरके पहले दरवाजे पर पहुँचे। यहाँ पर पहरेदारोंका कड़ा पहरा था, इसलिये वे इधर-उधर ताक-झाँक करने लगे। इतनेहीमें उन्हें सुन्दर और समान उम्रवाली स्त्रियोंका एक दल तथा इन्द्र-नीलमणि द्वारा निर्मित एक ऐसा स्थान दिखायी दिया, जिसे देखकर वे आश्चर्य-चकित हो गये।

इस स्थानसे आगे बढ़ने पर वसुदेव राजमन्दिरके दूसरे दरवाजे पर पहुँचे। यहाँपर ध्वजदण्डयुक्त सोनेका

एक ऐसा स्तम्भ था, जिसपर रत्ननिर्मित पुतलियाँ फुदक रही थीं। यहाँसे आगे बढ़ने पर वसुदेव राजमन्दिरके तीसरे दरवाजे पर पहुँचे। यहाँपर दिव्य वस्त्राभूषणोंसे विभूषित अप्सराके समान स्त्रियाँ उन्हें दिखायी दीं। उन्हें देखकर ऐसा ज्ञात होता था, मानो स्थानाभावसे स्वर्गकी सुर-सुन्दरियाँ यहाँ चली आयी हों, यहाँसे चौथे दरवाजे पहुँचने पर वसुदेवको ऐसी भूमि दिखायी दी, जिसे देखनेसे वहाँपर जलका भ्रम होता था। वह स्थान तरंगोंसे चंचल और राजहंस तथा सारसादिकसे सेवित मालूम होता था। यहाँकी दीवालोंमें इतनी चमक थी, कि ललनाओंको श्रृंगार करते समय दर्पणकी आवश्यकता न पड़ती थी। यहाँपर सुचतुर दासियोंका एक दल भी उन्हें दिखायी दिया, जो गायन-वादन तथा नृत्यादिक कलाओंमें पूर्णरूपसे निपुण था।

पाँचवें द्वारकी भूमि मरकत मणिमय बनी हुई थी। यहाँपर मूँगा और मोतियोंसे सजे हुए चमर काममें लाये जाते थे और दासियोंके हाथमें सोने-चाँदीके बने हुए रत्न जड़ित पात्र दिखायी देते थे। यहाँकी दासियाँ भी अन्य

द्वारोंकी अपेक्षा अधिक सुन्दर और सुशील प्रतीत होती थीं। यहाँसे आगे बढ़ने पर वसुदेव छठें द्वारमें पहुँचे। यहाँपर उन्होंने दिव्य सरोवरकी भाँति चारों ओरसे पद्म विभूषित पद्मभूमि देखी। यहाँ की रमणियाँ कृमि रंगके वस्त्रोंसे सज्जित साक्षात् देव सुन्दरीसी प्रतीत होती थीं।

आगे बढ़ने पर वसुदेवकुमार सातवें द्वार पर पहुँचे। यहाँपर दासियोंका ही पहरा था, किन्तु वह इतना कड़ा था, कि उनकी नजर बचाकर निकलना किसीके लिये भी सम्भव न था।

यहाँका ठाठ-बाठ देखकर कुमार अपने मनमें कहने लगे—"यही रानियोंका रनवास मालूम होता है। किन्तु यहाँ तो कनकवती दिखायी नहीं देती। अब मैं उसे कहाँ खोजूँ?"

जिस समय वसुदेवकुमार इस प्रकारकी चिन्ता कर रहे थे, उसी समय पासके एक द्वारसे एक सुन्दरी रमणी निकल कर यहाँ आ पहुँची। वह प्रधान दासी थी। उसे देखते ही अन्य दासियोंने उत्सुकतापूर्वक पूछा:—

बहिनजी ! कुमारी कनकवती इस समय कहाँ हैं और क्या कर रही हैं ?"

उस रमणीने उत्तर दिया :—"वे दिव्य वेश धारण कर प्रमोदवनके राजमन्दिरमें अकेली बैठी हुई हैं। उन्हें इस समय किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है।"

उसके यह वचन सुनते ही वसुदेव उस द्वारसे निकल कर प्रमोदवनमें जा पहुँचे। वहाँपर उन्होंने उसमें प्रवेश कर कनकवतीको खोजना आरम्भ किया। खोजते-खोजते जब महलके सातवें खण्ड पर पहुँचे। तब एक भद्रासन पर बैठी हुई, दिव्य वस्त्रालङ्कारोंसे युक्त, साक्षात् वनलक्ष्मी के समान पुष्पाभरणोंसे सुशोभित कनकवती उन्हें दिखायी दी। उसे देखते ही वे पहचान गये। वह उन्हींका चित्र हाथमें लिये बैठी। उसे स्थिर दृष्टिसे देखना और देखनेके बाद हृदय से लगा लेना—यही उसका काम हो रहा था।

दूसरे ही क्षण कनकवतीकी दृष्टि वसुदेव पर जा पड़ी। उनको देखते ही उसका मुख-कमल आनन्दसे प्रफुल्लित हो उठा। वह तुरन्त अपने आसनसे उठकर

खड़ी हो गयी और हाथ जोड़कर वसुदेवसे कहने लगी—"हे सुभग! हे रूपमन्मथ! मेरे ही पुण्यसे आज आपका यहाँ आगमन हुआ है। हे सुन्दर! मैं आपकी दासी हूँ।"

इतना कह वह कुमारके सामने झुककर उन्हें प्रणाम करने लगी किन्तु वसुदेवने उसके इस कार्यमें बाधा देते हुए कहा:—"हे सुन्दरि! मुझे प्रणाम करनेकी आवश्यकता नहीं। मैं तो किसीका दास हूँ। जो पुरुष तुम्हारे निकट वन्दनीय हो, उसीको तुम्हें प्रणाम करना चाहिये।"

कनकवतीने कहा:—"हे कुमार! मैं किसी प्रकारकी भूल नहीं कर रही हूँ। आपको मैं भली-भाँति पहचानती हूँ। उस विद्याधरने मुझे न केवल आपका परिचय ही दिया था, बल्कि आपका एक चित्र भी दिया था। मैं उसीको देखकर अब तक जीवित रही हूँ। अब आप मुझे भ्रममें डालनेकी चेष्टा न कीजिये। आपही मेरे जीवनधन हैं, आपही मेरे प्राणनाथ हैं।"

वसुदेवने कहा:—"हे भद्रे! तुम वास्तवमें भूल कर रही हो। विद्याधरने तुम्हें जिनका परिचय दिया

था, उनका नाम कुबेर है। मैं उन्हींका नौकर हूँ और उन्हींकी ओरसे तुम्हारी याचना करने आया हूँ। वे तुमसे विवाह कर अपनेको धन्य समझेंगे और तुम्हें अपनी पटरानी बनायेंगे। उस अवस्थामें देवियाँ तुम्हारी सेवा करेंगी और तुम्हारी गणना देवियोंमें होने लगेगी। हे सुन्दरि! क्या तुमने कुबेरका नाम नहीं सुना है? क्या उनके ऐश्वर्य और अतुल धन-भण्डारकी बात तुमसे छिपी हुई है?"

कनकवतीने उपेक्षा पूर्वक कहा :—"हे सुन्दर! मैं कुबेरको जानती हूँ। संसारमें उन्हें कौन नहीं जानता? मैं उन्हें हाथ जोड़कर हजारोंवार प्रणाम करती हूँ। किन्तु मेरा और उनका व्याह कैसा? वे ठहरे इन्द्रके दिक्पाल और मैं ठहरी मानुषी कीटिका! उन्होंने मुझे जो सन्देश भेजा है, वह केवल क्रीड़ा है, उपहास है, साथ ही सर्वथा अनुचित है। मनुष्य और देवताओंका वैवाहिक सम्बन्ध न कभी हुआ है न भविष्यमें ही होना सम्भव है।"

वसुदेवने कहा :—"परन्तु हे सुन्दरि! तुम्हें यह

भी न भूलना चाहिये कि देवताओंकी बात न माननेसे दमयन्तीको अनेक कष्टोंका सामना करना पड़ा था।"

कनकवतीने कहा :—"कुबेरका नाम सुनतेही पूर्व-जन्मके किसी सम्बन्धके कारण मेरा चित्त बहुत ही उत्कंठित और आनन्दित होता है, परन्तु हमलोगोंका विवाह-सम्बन्ध ठीक नहीं। जिन भगवानका भी कथन है कि दुर्गन्धयुक्त औदारिक शरीरकी गन्ध सहन करनेमें सुधाहारी (देव) असमर्थ होते हैं। मैं तो आपही को अपना पति मानती हूँ। आप कुबेरसे जाकर कह दीजिये, कि मैं उनका दर्शन करने योग्य भी नही हूँ, क्योंकि मैं एक साधारण स्त्री—मानुषी मात्र हूँ।

इसप्रकार वसुदेवने कनकवतीको बहुतही समझाया, किन्तु जब वह टससे मस न हुई और उन्हीं पर अपना अनुराग प्रकट करती रही, तब वे प्रसन्न हो उठे। वे जिस प्रकार गुप्तरूपसे यहाँ आये थे, उसी प्रकार कुबेरके पास वापस लौट गये। वहाँपर उन्होंने कुबेरसे ज्योंही यह सब हाल निवेदन करनेकी इच्छा की, त्योंही कुबेरने उनको रोककर कहा :—"मुझसे वह सब बातें बतलानेकी

आवश्यकता नहीं। देवताओंको सब बातें अपने आप मालूम हो जाया करती हैं।"

इतना कह कुवेरने समस्त देवताओंके समक्ष वसुदेवके निर्विकार आचरण की बड़ी प्रशंसा की। इसके बाद उन्होंने वसुदेवको दो देवदूष्य वस्त्र तथा उत्तमोत्तम आभूषण भी प्रदान किये। इससे वसुदेव साक्षात् कुवेरके समान बन गये। उस समय वहाँपर वसुदेवके साथ आये हुए उनके साले आदि उपस्थित थे, वे भी वसुदेवका यह सम्मान देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

उधर कनकवतीके पिता राजा हरिश्चन्द्रको जब मालूम हुआ, कि राजकुमारीका स्वयंवर देखनेके लिये साक्षात् कुवेर पधारे हुए हैं, तब उन्होंने सभामण्डपको विविध रूपसे सजा कर उनके लिये एक खास आसन बनवा दिया। इसके बाद वे कुवेरके पास गये और मधुर वचनों द्वारा उनका स्वागत कर, उन्हें स्वयंवर देखनेके लिये लिवा लाये। जिस समय कुवेर मण्डपकी ओर आ रहे थे, उस समय उनकी शोभा दर्शनीय हो रही थी। एक ओर दिव्य वस्त्राभूषणोंसे विभूषित देवाङ्गनाएं दोनों

ओरसे उनपर चमर ढाल रही थीं, दूसरी ओर बन्दीजनों का दल उनका गुणकीर्तन करता हुआ उनके आगे-आगे चल रहा था। कुवेर हँस पर सवार थे और उनके पीछे-पीछे अन्यान्य देवताओंका दल चलता था।

जिस समय कुवेर अपने दलबलके साथ सभा-मण्डपमें पहुँचे, उस समय सारा मण्डप जग मगा उठा। देव और देवाङ्गनाओंसे घिरे हुए कुवेरकी उपस्थितिके कारण वहाँपर साक्षात् स्वर्गका दृश्य उपस्थित हो गया।

कुवेर और वसुदेवके आसन ग्रहण करने पर अन्यान्य राजा तथा विद्याधरोंने भी अपना-अपना आसन ग्रहण किया। इसी समय कुवेरने वसुदेवको कुवेर-कान्ता नामक एक अंगूठी पहननेको दी। वह अंगूठी अर्जुन सुवर्णकी बनी हुई थी और उसपर कुवेरका नाम लिखा हुआ था। उसे कनिष्ठिका उंगलीमें पहनते ही वसुदेव भी कुवेरके समान दिखायी देने लगे। यह एक बड़े ही आश्चर्यका विषय बन गया। सब लोग कहने लगे—"अहो! कुवेर यहाँपर दो रूप धारण कर पधारे हैं।" चारों ओर बड़ी देर तक इसीकी चर्चा होती रही।

यथासमय दिव्य वस्त्रालङ्कारोंसे सज्जित, हाथमें पुष्पोंकी जयमाल लिये हुए, सखियोंसे घिरीं हुई कनकवतीने राज हँसिनीकी भाँति मन्दगतिसे स्वयंवरके मण्डपमें पदार्पण किया। पदार्पण करते ही चारों ओरसे सौ—सौ दृष्टियाँ एक साथ ही उस पर जा पड़ी। एकबार कनकवतीने भी आँख उठाकर चारों ओर देखा। उसकी दृष्टि उन राजा महाराजा और राजकुमारोंके समूहमें वसुदेव कुमारको खोज रही थी। उसने उन्हें चित्र और दूतके वेशमें देखा था, इसलिये वह उन्हें भली भाँति पहचानती थी, किन्तु आज स्वयंवर मण्डपमें वे उसे दिखायी न देते थे। अतः उसने चञ्चल नेत्रों द्वारा वह स्थान दो तीन बार देख डाला, किन्तु कहीं भी उनका पता न चला। इससे उसका मुख-कमल मुरझा गया और उसके चेहरे पर विषादकी श्याम छाया स्पष्ट रूपसे दिखायी देने लगी। वह इस प्रकार उदास हो गयी, मानो किसीने उसका सर्वस्व छीन लिया हो। मण्डपमें अन्यान्य राजे महाराजे पर्याप्त संख्यामें उपस्थित थे, किन्तु उसने उनकी ओर आँख उठाकर देखा भी नहीं। इससे चिन्ता उत्पन्न हो

गयी, कि उनके वेशविन्यासमें कहीं कोई त्रुटि तो नहीं है, फलतः वे वारंवार अपने वस्त्राभूषणोंकी ओर देखने लगे, किन्तु कनकवती टससे मस न हुई। उसकी यह अवस्था देखकर एक सखीने कहा :—"हे सुन्दरि! यही उपयुक्त समय है। इन राजाओंमें से जिसे तुम पसन्द करती हो, उसे अब जयमाल पहनानेमें विलम्ब मत करो!"

कनकवतीने कुण्ठित होकर कहा :—"हे सखी! मैं जयमाल किसे पहनाऊँ? मैंने जिसे पसन्द किया था, अपना हृदय-हार बनाना स्थिर किया था, वह खोजने पर भी इस समय कहीं दिखलायी नहीं देता।"

यह कहते-कहते कनकवतीकी आँखोंमें आँसू भर आये। वह अपने मनमें कहने लगी :—"हा दैव! अब मैं क्या करूं और कहाँ जाऊं? यदि मुझे वसुदेव कुमार न मिलेंगे, तो मेरी क्या अवस्था होगी? हा दैव! वे कहाँ चले गये?"

इसी समय कनकवतीकी दृष्टि कुवेर पर जा पड़ी। वे उसे देखकर मुस्कुराने लगे। उनकी उस मुस्कुराहटमें

व्यंग छिपा हुआ था। इसलिये चतुरा कनकवती तुरन्त समझ गयी, कि उसकी इस विडम्बनामें अवश्य कुबेरका कुछ हाथ है। इसलिये वह उनके सामने जा खड़ी हुई और हाथ जोड़कर दीनतापूर्वक कहने लगी :—"हे देव! पूर्व-जन्मकी पत्नी समझ कर आप मुझसे दिल्लगी न कीजिये। मुझे सन्देह होता है कि मेरे प्राणनाथको आपहीने कहीं छिपा दिया है। हे भगवन्! क्या आप मेरा यह सन्देह दूर न करेंगे?"

कनकवतीकी यह प्रार्थना सुनकर कुबेर हँस पड़े। उन्होंने वसुदेवकी ओर देखकर कहा :—"हे महाभाग! मेरी दी हुई उस अंगुठीको अब अपनी उंगलीसे निकाल दीजिये।"

कुबेरकी यह आज्ञा सुनकर वसुदेवने उंगलीसे वह अंगूठी निकाल दी। निकालते ही वे पुनः अपने स्वाभाविक रूपमें दिखायी देने लगे। कनकवती उन्हें देखते ही आनन्दसे पुलकित हो उठी। उसने तुरन्त अपनी जयमाल उनके गलेमें डाल दी। कुबेर भी इस मणिकाञ्चन योगसे प्रसन्न हो उठे। उनकी आज्ञासे देवताओंने आकाशमें

दुंदुभीनाद और अप्सराओंने मंगल गान किया। चारों ओरसे यही आवाज सुनायी देने लगी कि धन्य है राजा हरिश्चन्द्रको कि जिनकी पुत्रीको ऐसा श्रेष्ठ वर प्राप्त हुआ। तदनन्तर राजा हरिश्चन्द्रने शीघ्र ही बड़ी धूमके साथ उन दोनोंका विवाह कर दिया। कुबेर तथा अन्यान्य राजाओंने भी इस उत्सवमें भाग लेते हुए कई दिन तक राजा हरिश्चन्द्रका आतिथ्य ग्रहण किया।

विवाह कार्यसे निवृत्त होने पर एकदिन वसुदेव कुमारने कुबेरको प्रणाम कर नम्रतासे पूछा :—"हे देव! मुझे यह जानने की बड़ी इच्छा है, कि आपने यहाँ आनेका कष्ट क्यों उठाया था?"

यह सुनकर कुबेरने कहा :—"इसी भरत-क्षेत्रमें अष्टापदके पास संगर नामक एक नगर है। वहाँपर मम्मन नामक राजा राज्य करता था। उसकी रानीका नाम वीरमती था। एकदिन वह राजा अपनी रानीके साथ शिकार खेलने निकला। संयोगवश उसी समय एक मलीन वेशधारी साधु अपने समुदायके साथ सामनेसे आते हुए उसे दिखायी दिये। राजाके विचार बहुत ही नीच थे,

इसलिये उसने समझा कि यह बहुत ही बुरा अपशकुन हुआ और इसके कारण अवश्य ही मेरे शिकारमें बाधा पड़ेगी।"

यह सोचकर राजाने मुनिराजको समुदायसे अलग कर लिया और उन्हें अपने साथ लेकर वह अपने राज-मन्दिरको लौट आया। वहाँपर उसने तथा उसकी रानीने बारह घण्टे तक उस साधुको नाना प्रकारके कष्ट दिये। इसके बाद कुछ दया आ गयी इसलिये उन्होंने मुनि-राजसे पूछा :—तुम कहाँसे आ रहे थे और कहाँ जा रहे थे?"

यह सुनकर मुनिराजने कहा :—"हे भद्र! मैं जिन प्रतिमाओंकी वन्दना करनेके लिये अपने समुदायके साथ रोहतक पुरसे अष्टापदकी ओर जा रहा था। आपने मुझे उन लोगोंसे अलग कर लिया, फलतः धर्म-कर्मके बन्धे हुए अन्तरायके कारण मैं अष्टापद पर न जा सका।"

राजा और रानी लघुकर्मी थे, इसलिये मुनिसे बात-चीत करने पर कुस्वप्नकी भाँति वे क्रोधको भूल गये। मुनिराज तो स्वभावसे ही परोपकारी थे, इसलिये उन्होंने

जब देखा कि इनका हृदय कोमल है, तब उन्होंने उन्हें जीवदया प्रधान जिनधर्म कह सुनाया। इससे उन दोनोंको धर्म पर कुछ श्रद्धा उत्पन्न हुई और उन्होंने शुद्ध भोजनादिक द्वारा मुनिराजका आतिथ्य-सत्कार किया। इसके बाद कर्मरोगसे पीड़ित उन दोनोंको धर्मज्ञान रूपी महौपधि दे, मुनिराजने अष्टापदके लिये प्रस्थान किया। तदनन्तर वे दोनों श्रावक-व्रत ग्रहण कर जिस प्रकार कृपण धनकी रक्षा करता है, उसी प्रकार दोनों जन व्रतादिकका पालन करने लगे।

संसारमें ऐसी कोई भी वस्तु नहीं, जो धर्मनिष्ठ मनुष्यों को धर्म द्वारा प्राप्त न होती हो। एक दिन धर्मभाव स्थिर करनेके लिये शासनदेवी वीरमतीको अष्टापद पर्वतपर लिवा ले गयी। वहाँपर सुरासुर द्वारा पूजित जिन प्रतिमाओंको देखकर उसे बड़ाही आनन्द हुआ। वह चौबीस जिन प्रतिमाओंको भक्ति-पूर्वक वन्दन कर दैवी शक्तिसे अपने नगरको लौट आयी।

इस तीर्थयात्रासे उसकी बुद्धि धर्ममें स्थिर हो गयी। कुछ दिनोंके बाद उसने प्रत्येक तीर्थंकरको उद्देश कर

बीस-बीस आम्बिल किये। साथ ही उसने भक्तिपूर्वक चौवीस जिनोंके लिये सुवर्णके रत्नजड़ित तिलक भी कराये। इसके बाद उसने सपरिवार अष्टापद पर जाकर विधि-पूर्वक चौवीसों जिनकी पूजा की और सभी प्रतिमाओंके ललाट पर तिलक स्थापित किये। साथ ही चारण-श्रमण प्रभृति वहाँपर जितने महामुनि थे, उन्हें यथोचित दान दे, उसने अपनी तपश्चर्याके उपलक्षमें उत्सव मनाया। इन कार्योंसे उसका मन प्रफुल्लित हो उठा। वह अपनेको कृत-कृत्य मानती हुई अपने नगरको लौट आयी।

अब राजा और रानीके शरीर भिन्न होने पर भी उनके मन अभिन्न बन गये थे। अपना अधिकांश समय वे धर्म कार्यमें व्यतीत करते थे। कुछ दिनोंके बाद आयु पूर्ण होने पर समाधि द्वारा उन दोनोंने अपने मानुषी शरीर त्याग दिये। इसके बाद वे देवलोकमें देव और देवीके रूपमें दम्पति हुए। वहाँसे च्युत होने पर मम्मन का जीव बहली देशके पोतनपुरमें धम्मिल नामक एक गोपालके यहाँ पुत्र रूपमें उत्पन्न हुआ। वहाँपर उसका नाम धन्य रक्खा गया।

उधर वीरमतीका जीव देवलोकसे च्युत होकर एक कन्याके रूपमें उत्पन्न हुआ और उसका नाम धुसरी पड़ा। यही धुसरी यथा समय धन्यकी पत्नी हुई। धन्य जंगलमें भैंसें चराया करता था, क्योंकि वह गोपालोंका प्रथम कुलकार्य है। एक वार वर्षाके दिन थे और रिमझिम-रिमझिम पानी वरस रहा था। जमीनपर कीचड़ हो रहा था और आकाशमें विजली चमक रही थी। घरसे निकलने लायक दिन न था, फिर भी धन्य वर्षासे बचने के लिये एक बड़ा सा छाता लेकर भैंसोंको चरानेके लिये निकल पड़ा।

जंगलमें भैंसे चराते समय धन्यने एक पैरसे खड़े हुए प्रतिमाधारी एक साधुको देखा। तपस्याके कारण उनका शरीर बहुत कृश हो गया था और इस समय वर्षाके कारण काँप रहा था। मुनिराजकी यह कठिन तपस्या देखकर धन्यका हृदय द्रवित हो उठा। उसने अपना छाता मुनिराजके शिर पर लगा दिया, फलतः मुनिराजको बड़ा ही आराम मिला। इस प्रकार जब तक पानी वरसता रहा, तब तक वह बराबर उनके शिरपर छाता लगाये

रहा। इधर मुनिराजने वर्षा होने तक ध्यानका अभिग्रह किया था, इसलिये जब वर्षा बन्द हुई, तब वे भी ध्यानसे निवृत्त हुए। इसके बाद धन्यने उनकी चरणसेवा कर नम्रता-पूर्वक पूछा :—"हे मुनिराज! आज बड़ा ही दुर्दिन है। चारों ओर जल और कीचड़-ही-कीचड़ नजर आता है। ऐसे विषम समयमें आपका आगमन यहाँपर कैसे हुआ?"

मुनिराजने उत्तर दिया :—"हे भाई! मैं पाण्डु देशसे आ रहा हूँ। मुझे लङ्का नगरी जाना है, क्योंकि वह गुरुचरणसे पावन हो चुकी है। परन्तु वर्षाके कारण मेरी इस यात्रामें बाधा पड़ गयी क्योंकि वर्षामें साधुके लिये मार्गमें चलना मना है। उसी कारणसे मैं वृष्टिका अभिग्रह लेकर यहाँ रह गया। आज सातवें दिन वृष्टि बन्द होने पर मेरा वह अभिग्रह पूर्ण हुआ है। अब मैं यहाँसे किसी बस्तीमें चला जाऊँगा।"

धन्यने हाथ जोड़ कर कहा :—"हे प्रभो! रास्तेमें बड़ाही कीचड़ है। आप मेरे भैंसे पर बैठ जाइये। ऐसा करने पर आप आसानीसे पासकी बस्तीमें पहुँच जायेंगे।"

मुनिराजने उत्तर दिया :—"हे गोपाल! साधु

किसी जीव पर सवारी नहीं करते। वे ऐसा कोई भी काम नहीं कर सकते, जिससे दूसरोंको पीड़ा या कष्ट हो। साधु तो सदा पैदल ही चलते हैं।

धन्यने कहा :—"अच्छा, महाराज! आप मेरे साथ चलिये। क्या आप मेरे नगरको पवित्र न करेंगे?"

मुनिराज धन्यका अनुरोध मानकर उसके साथ चल पड़े। धन्य बड़े प्रेमसे उनको अपने घरपर लिवा ले गया। वहाँपर उसने मुनिराजको वन्दन करके कहा :—"हे भगवन्! आप जरासी देर यहाँ ठहरिये। मैं भैंसोंको दोह कर अभी आपके पास आता हूँ!"

मुनिराज ठहर गये। धन्य भैंसें दोह कर सारा दूध मुनिराजके पास ले आया और अपने आत्माको धन्य मान कर उसी दूधसे मुनिराजको पारण कराया। इसके बाद मुनिराज सारी रात्रि वहींपर बीताकर दूसरे दिन वहाँसे अपने इष्ट स्थानको चले गये।

मुनिराजके संसर्गसे धन्यने अपनी स्त्रीके साथ सम्यक्त्व धारण कर दीर्घकालतक श्रावक-धर्मका पालन किया। इसके बाद यथा समय उन्होंने दीक्षा ले ली

और सात वर्ष तक दीक्षा पालन कर समाधि द्वारा दोनों ने अपने शरीर त्याग दिये। क्षीर-दान द्वारा उपार्जित पुण्यके कारण वे दोनों हैमवन्तमें जोड़ बालक हुए और वहाँसे मृत्यु होनेपर वे क्षीरडिंडीराके नामसे देव और देवीके रूपमें दम्पति हुए।

आठवाँ परिच्छेद

दमयन्ती-चरित्र

देवलोकसे च्युत होने पर वह देव कोशल देशकी अयोध्या नामक नगरीमें इक्ष्वाकु वंशोत्पन्न राजा निषधराजकी सुन्दरा नामक रानीके उदरसे पुत्र रूपमें उत्पन्न हुआ और उसका नाम नल पड़ा। दूसरी ओर विदर्भदेशके कुंडिनपुर नामक नगरमें भीमरथ नामक राजा राज्य करते थे। उनकी रानीका नाम पुष्पदन्ती था।

देवलोकसे च्युत होने पर क्षीरडिंडीरा देवीने उसीके उदर से पुत्री रूपमें जन्म लिया।

क्षीरडिंडीराका जन्म होनेके पहले एक विचित्र घटना इस प्रकार घटित हुई कि—रानी पुष्पदन्तीको एक दिन प्रातःकालके स्वप्नमें ऐसा मालूम हुआ मानो दावाग्निसे भय-भीत होकर एक सफेद हाथी उनके राज-भवनमें घुस आया है। रानीने सुबह इस स्वप्नका हाल अपने पतिसे कहा। राजा भीमरथ अनेक शास्त्रोंके अच्छे ज्ञाता थे। इसलिये उन्होंने कहा :—"हे सुन्दरि! इस स्वप्नका फल बहुत ही अच्छा है। मुझे ऐसा मालूम होता है कि कोई पुण्यवान जीव आज तुम्हारे गर्भमें आया है।"

राजा रानी इस तरहकी बातें कर ही रहे थे, कि इतनेमें सचमुच एक विशाल हाथी वहाँ आ पहुँचा। राजा और रानी ज्योंहीं कौतूहलवश उसके पास गये, त्योंहीं उसने उन दोनोंको अपने कन्धे पर बैठा लिया। इसके बाद उन्हें लिये ही लिये वह समूचे नगरमें भ्रमण करने लगा। वह जिधर जाता, उधर ही लोग उसका

पूजन कर उसे पुष्पमालाएँ पहनाते। समूचा नगर घूमने के बाद वह राज-भवनको वापस लौट आया और वहाँपर उसने राजा रानीको अपने कन्धेसे नीचे उतार दिया। देवताओंने भी इस समय उन दोनोंपर पुष्प वृष्टि की। राजा भीमरथ इस घटनासे बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने उस हाथीके मस्तक पर सुगन्धित लेप लगा, उसकी पूजा और आरती की। इसके बाद उन्होंने उसे गजशालामें भेज दिया।

गर्भकाल पूर्ण होने पर रानीने शुभ मुहूर्तमें एक सुन्दर कन्याको जन्म दिया। उसके ललाट पर सूर्यके समान एक स्वाभाविक तिलक था, इससे वह और भी सुन्दर मालूम होने लगी। उसका जन्म होनेके बाद राजा भीमरथका प्रताप अधिक बढ़ गया और बड़े-बड़े राजा भी उसकी आज्ञा मानने लगे। गर्भ-धारणके समय रानीने दावानलसे पीड़ित हाथीको अपने महलकी ओर आते देखा था, इसलिये एक मास पूर्ण होने पर राजाने उसका नाम दवदन्ती (दमयन्ती) रक्खा।

राजा रानी और दास-दासियोंके लालन-पालनसे

दवदन्ती कुछ बड़ी हुई और ठुमुक-ठुमुक कर अपने पैरोंसे चलने लगी। जिस समय वह राजमहलके आँगनमें खेलती, उस समय ऐसा मालूम होता, मानो साक्षात् लक्ष्मी खेल रही है। उसके प्रभावसे राज्यकी आमदनी बढ़ गयी और राजाका खजाना भी सदा भरापुरा रहने लगा।

धीरे-धीरे दवदन्तीकी अवस्था जब आठ वर्षकी हुई, तब राजाने उसे विविध विद्या और कलाओंकी शिक्षा देनेके लिये एक आचार्य नियुक्त कर दिया। किन्तु दमयन्तीकी बुद्धि बहुत ही तीव्र थी, इसलिये आचार्य तो केवल साक्षी मात्र सिद्ध हुए। जिस प्रकार दर्पणमें अपने आप प्रतिविम्ब पड़ता है, उसी प्रकार समस्त कलाएँ अपने आप उसके मस्तिष्कमें प्रविष्ट हो गयी।

दमयन्तीने कर्म प्रकृति आदिका भी भलीभाँति अध्ययन किया। उस समय किसी भी विद्वानमें क्षमता न थी, जो उसके सामने स्याद्वाद् मतका खण्डन कर सके। इस प्रकार दमयन्तीने जब समस्त कलाओंमें पार-दर्शिता प्राप्त कर ली, तब उसके आचार्य उसे राजा

भीमरथके पास लिवा ले गये। राजाने उसकी परीक्षा ली, तो वह समस्त विद्या और कलाओंमें अद्वितीय प्रमाणित हुई। अन्तमें राजाने धार्मिक शास्त्रार्थ करनेका आयोजन किया। उसमें भी उसीकी विजय हुई। अनन्तर उसने अपनी चतुराईसे ऐसी बातें सिद्ध कर दिखायीं, जिससे सम्यक्त्वधारी मनुष्योंमें उसके पिता दृष्टान्त स्वरूप माने जाने लगे।

दमयन्तीकी यह निपुणता देखकर राजा भीमरथ प्रसन्न हो उठे। उन्होंने आचार्यको एक लाख स्वर्ण-मुद्राएँ दक्षिणा स्वरूप देकर सम्मानित किया। दमयन्ती की शिक्षा पूर्ण हो गयी।

इसके कुछ ही दिन बाद दमयन्तीके पुण्य-प्रभावके कारण शासनदेवीने प्रकट हो, उसे सोनेकी चमकती हुई एक जिन प्रतिमा दी और कहा :—"हे पुत्री! यह प्रतिमा शान्तिनाथ भगवानकी है। यदि तू नियमित रुपसे इसकी नित्य पूजा करेगी, तो तेरा कल्याण हो जायगा।" इतना कह शासनदेवी अन्तर्धान हो गयी और वह नियमित रुपसे श्रद्धापूर्वक उस प्रतिमाकी पूजा करने लगी।

कुछ दिनोंके वाद उसने युवावस्थामें पदार्पण किया। वह सुन्दर तो थी ही, युवावस्थाके कारण अव और भी सुन्दर दिखायी देने लगी। राजा रानीको उसका विवाहोत्सव देखनेका वड़ा हौंसला था, किन्तु उसके उपयुक्त वर खोज निकालना कोई सहज काम न था। धीरे-धीरे उसकी अवस्था अठारह वर्षकी हो गयी, किन्तु उसके उपयुक्त कोई वर न मिला। राजाने सोचा,—"अव इसकी अवस्था वड़ी हो गयी है। यह भला बुरा समझ सकती है। इसलिये अव इसका स्वयंवर करना अनुचित न होगा।" मन्त्रियोंकी सम्मति लेनेके वाद अन्तमें उन्होंने यही करना स्थिर किया।

राजाकी आज्ञासे शीघ्र ही स्वयंवरकी तैयारी होने लगी। भिन्न-भिन्न देशके राजाओंको निमन्त्रित करने के लिये निमन्त्रण-पत्र देकर दूत विदा किये गये। लाखों रुपये खर्च कर स्वयंवरके लिये एक दर्शनीय मण्डप तैयार किया गया। धीरे-धीरे जब स्वयंवरका समय करीब आ पहुँचा, तब भिन्न-भिन्न देशके राजा और राजकुमार कुंडिनपुरमें आकर एकत्र होने लगे। राजा भीमरथने

उनको ठहरानेके लिये नगरके बाहर रम्य राजमन्दिर बनवाये थे, उन्हींमें वे सब ठहराये गये। उस समय उन सब राजाओंके हाथियोंकी भीड़से वह स्थान विन्ध्याचल पर्वतके समान प्रतीत होने लगा।

स्वयंवरमें भाग लेनेके लिये नल और कुबेर नामक अपने दोनों पुत्रोंके साथ निषध राजा भी कुंडिनपुर पधारे थे। राजा भीमरथ उनके सामने जाकर सम्मान-पूर्वक अपने नगरमें लिवा लाये थे। उनके ठहरनेके लिये भी उन्होंने दूसरे राजाओंकी अपेक्षा अधिक सुन्दर और सुविधा जनक स्थान प्रदान किया था।

स्वयंवरके दिन अपने राज-कुमारोंके साथ दिव्य वस्त्राभूषण धारण कर राजाओंने मण्डपके स्वर्ण-सिंहासनोंपर स्थान ग्रहण किया। उस समय उनकी शोभा देखते ही बनती थी। कोई कौशल पूर्वक सोनेका कमल घुमा रहा था, कोई भ्रमरकी भाँति सुगन्धित पुष्पोंकी गन्ध ले रहा था, तो कोई फूलोंका गेंद उछाल रहा था। सभी अपने-अपने वेशपर मुग्ध हो रहे थे। सभी अपने मनमें समझते थे कि मैं दूसरोंकी

अपेक्षा अधिक सुन्दर हूँ, इसलिये राजकुमारी मुझे ही वरण करेगी।

यथा समय सखियोंसे घिरी हुई दमयन्तीने रम्भाकी भाँति स्वयंवर मण्डपमें प्रवेश किया। उसे देखकर नृपति-गण अपना चातुर्य विशेष रूपसे प्रकट करने लगे। सबके नेत्र उधर ही जाकर अटक गये। अनेक राजा सफल मनोरथ होनेके लिये अपनी कुलदेवीका स्मरण करने लगे। सभी उसकी गतिविधि, उसका वर-निर्वाचन देखने के लिये अधीर हो उठे।

अन्तमें राजाका संकेत होते ही दमयन्तीकी प्रधान परिचारिका उसे भिन्न-भिन्न राजाओंको दिखाकर उनका परिचय प्रदान करने लगी। उसने कहा :—"हे स्वामिनी! यह शिशुमारपुरके स्वामी राजा जितशत्रुके पुत्र राजा ऋतुपर्ण हैं। यह इक्ष्वाकु वंशके तिलक समान श्रीचन्द्र राजाके पुत्र चन्द्रराज हैं। क्या इन्हें वरण करनेकी तुम्हारी इच्छा है? यह चम्पानगरीके स्वामी भोगवंशोत्पन्न धरणेन्द्र राजाके पुत्र सुबाहु राजा हैं। इनसे व्याह करने पर गङ्गाके सुगन्धित जलकणोंसे युक्त वायु तुम्हारी

सेवा करेगी। यह रोहितकपुरके स्वामी पवनके पुत्र राजा चन्द्रशेखर हैं। इनके अधिकारमें बत्तीस लाख ग्राम हैं। क्या तुम इन्हें पसन्द करती हो? यह जयकेसरी राजाके पुत्र सन्मथ रूप शशलक्ष्माको देखो। यह सूर्यवंशके मुकुट समान भृगुकच्छके स्वामी जन्हु राजाके पुत्र यज्ञदेव हैं। हे सुन्दरि! क्या तुम इन्हें जयमाल पहनाओगी? यह भरतचक्रवर्तीके कुलतिलक राजा मानवर्धन हैं। इनकी कीर्ति सारे संसारमें फैली हुई है, यह कुसुमायुधके पुत्र मुकुटेश्वर हैं। इनसे व्याह करने पर चन्द्र और रोहिणी की भाँति तुम दोनों शोभा पा सकते हो। यह कोशालाधिपति निषध नामक राजा हैं, जो ऋषभ स्वामीके कुलमें उत्पन्न हुए हैं। यह तीनों भवनमें विख्यात हैं। और यह दोनों कुमार इन्हींके महाबलवान पुत्र हैं। इनके नाम नल और कुबेर हैं। इनमेंसे जिसे तुम पसन्द करती हो, उसे जयमाल पहना सकती हो।"

नलको देखते ही उनके रूप और जन्मान्तरके स्नेहके कारण दमयन्ती उनपर मोहित हो गयी। उसने साक्षात् लक्ष्मीकी भाँति नलकुमारके कंठमें वरमाल पहना दी।

गुरुजनोंने उसकी यह पसंदगी देखकर आनन्द प्रकट किया। आकाशसे देव और विद्याधरोंने भी जय-जयकारकी ध्वनि की। किन्तु उस मण्डपमें ऐसे भी कुछ राजे और राजकुमार उपस्थित थे, जो अपनी निष्फलताके कारण बेतरह बिगड़ उठे। उन्हींमें एक कृष्णराज भी था। वह शीघ्रतापूर्वक सिंहासनसे उठकर खड़ा हो गया और तलवार खींचकर कहने लगा :—"हे नल! दमयन्तीने तुम्हें जयमाल पहना दी है, इससे तुम यह मत समझना, कि वह तुम्हारी हो जायगी। मेरे जीते जी किसकी मजाल है जो उससे ब्याह कर ले। तुम उसकी आशा छोड़ दो या शस्त्र लेकर युद्ध करनेके लिये तैयार हो जाओ। कृष्णराजको जीते बिना तुम्हारा मनोरथ सफल नहीं हो सकता।"

उसकी यह ललकार सुनते ही नलके बदनमें मानों आग सी लग गयी। क्रोधके कारण उनका चेहरा तमतमा उठा और दोनों होंठ फड़क उठे। वे भी अपनी तलवार खींचकर चारों ओर बिजली की तरह चमकाने लगे। अपने स्वामियोंकी यह युद्ध तत्परता

देखकर दोनों ओरकी सेनाएँ भी तैयार हो गयीं। भयंकर मार-काट की तैयारी होने लगी। ऐसा मालूम होने लगा, मानो स्वयंवर भूमि समरस्थलीके रूपमें परिणत हो जायगी और कुछ ही क्षणोंमें वहाँ खूनकी नदी बहने लगेगी। एकक्षण पहले जिस वायुमण्डलमें हँसी-खुशी और कौतूहल भरा हुआ था, वही अब युद्धकी भावनासे गंभीर और भयंकर बन गया।

इस प्रकार रंगमें-भंग होते देखकर दमयन्ती अपने मनमें कहने लगी :—"ओह! क्या मेरे लिये यह प्रलय उपस्थित होगा? क्या मैं पुण्यहीन हूँ? हे शासनदेवी! हे माता! यदि मैं वास्तवमें श्राविका होऊँ तो नलकी विजय और उनके शत्रुओंकी पराजय हो! सैनिक तो दोनों ओरके निर्दोष हैं इसलिये उनका बाल भी बाँका न हो!

इतना कह दमयन्तीने कलशसे जल लेकर कृष्णराज पर उसे तीन बार छिड़क दिया। यह छींटे शरीर पर पड़ते ही कृष्णराज बुझे हुए अँगारेकी भाँति निस्तेज हो गया। साथही शासनदेवीके प्रभावसे उसके हाथकी

तलवार इस प्रकार जमीन पर गिर पड़ी, जिस प्रकार वृक्षसे पका हुआ पत्र गिर पड़ता है। इससे कृष्णराज श्रीहीन हो गया और अपने मनमें कहने लगा कि नल कोई साधारण मनुष्य नहीं है, मैंने अज्ञानताके कारण व्यर्थ ही उसे भला-बुरा कहा और उसका अपमान किया। मुझे इसके लिये अब क्षमा-प्रार्थना करनी चाहिये।

मनमें यह सद्भाव उत्पन्न होते ही कृष्णराज एक नौकर की भाँति नलके पैरों पर गिर पड़ा और हाथ जोड़कर कहने लगा—"हे स्वामिन्! मैंने अविचारपूर्वक जो बातें कही थीं, उनके लिये मुझे घोर पश्चाताप हो रहा है। मेरा यह अपराध क्षमा कीजिये।"

नल बड़ेही सज्जन और उदार पुरुष थे इसलिये उन्होंने कृष्णराजको शरणागत समझकर तुरन्त उसका अपराध क्षमा करदिया। अपने जामाताके यह गुण देखकर राजा भीमरथ अत्यन्त प्रसन्न हुए और अपनी पुत्रीको पुण्यवती मानकर मन-ही-मन उसकी प्रशंसा करने लगे। इसके बाद उन्होंने समस्त राजाओंके सामने ही शुभ मुहूर्तमें नल दमयन्तीका विवाह कर दिया। कन्या-

दानके समय उन्होंने नलको अनेक हाथी घोड़े तथा रथादिक देकर सम्मानित किया। स्वयंवरमें पधारे हुए जो राजा उनके आग्रहसे ठहर गये थे, उनका भी आदर-सत्कार करनेमें उन्होंने किसी प्रकारकी कोरकसर न रक्खी।

विवाह कार्य सम्पन्न हो जानेके वाद हाथमें कंकण बाँधे हुए ही नल और दमयन्तीने मंगल गान गाती हुई वृद्धा स्त्रिओंके साथ गृह चैत्यका विधिपूर्वक वन्दन किया। इसके वाद राजा भीमरथ तथा निषध राजने बड़े समारोहके साथ उन दोनोंका कंकण-मोचन कराया। विवाहोत्सव पूण हो जाने पर भी कई दिन तक निषधराजने राजा भीमरथका आतिथ्य ग्रहण किया। इसके वाद उन्होंने भीमरथसे विदा ग्रहण की। भीमरथ उन्हें बहुत दूर तक पहुँचा कर अन्तमें अपने नगरको वापस लौट गये।

चलते समय दमयन्तीको उसकी माता पुष्पदन्तीने शिक्षा दी कि :—"हे पुत्री! घोर संकट पड़ने पर भी तुम अपने पतिसे कभी दूर न रहना। जिस प्रकार शरीरके पीछे छाया लगी रहती है, उसी प्रकार स्त्रीको सदा

अपने पतिका अनुसरण करना चाहिये। पतिव्रता स्त्रीके-लिये पतिके चरण ही आश्रयस्थान हुआ करते हैं। पति ही उसका उपास्य देव और पति ही उसका जीवनधन होता है। हे पुत्री! मेरी इन बातों पर ध्यान रक्खोगी, तो तुम सदा सुखी रहोगी। भगवान सदा तुम्हारा मंगल करेगा।"

इसप्रकार पुत्रीको शिक्षा दे, माताने अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे उसे ससुरालके लिये विदा किया। वह भी माता-पिता और सखियोंके वियोगसे खिन्न होती हुई नलकुमारके रथमें बैठ गयी। पुत्र और पुत्रवधूको एक रथमें बैठे देख-कर निषधराजका हृदय आनन्दसे भर गया। एक विजयी नृपति की भाँति अभिमानपूर्वक भूमिको कंपित करते हुए उन्होंने अपने नगरके लिये प्रस्थान किया। उनके हाथी जिधरसे निकलते, उधरकी जमीन उनके मदजलसे तर हो जाती। घोड़े जिधरसे निकलते, उधरकी जमीन उनके पैरोंसे दबकर काँसेके बर्तनकी तरह बजने लगती। गाड़ियोंकी गतिसे रास्ते चित्रितसे हो गये। ऊँट और खच्चड़ोंने मार्गके वृक्षोंको पत्र रहित बना दिया। सैनि-

कोंने कूप, तालाव और नदियोंका जल पी-पीकर उन्हें खाली कर डाला, सेनाके चलनेसे इतनी धूल उड़ती थी, कि उसके कारण आकाशमें दूसरी भूमि सी प्रतीत होने लगती थी। राजा निषध अपने नगर पहुँचनेके लिये इतने अधीर हो रहे थे, कि वे किसी भी विघ्न-बाधाकी परवाह न कर तूफानकी तरह निश्चित मार्ग पार करनेके बाद ही विश्रामका नाम लेते थे।

एकदिन निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचनेके पहलेही मार्गमें सूर्यास्त हो गया। अन्धकारमें जल, स्थल, गढ़ा या टीला कुछ भी दिखायी न देता था। ऐसी अवस्थामें सेनाके लिये आगे बढ़ना बहुतही कठिन हो गया। आँखे होने पर भी सब लोग अन्धेकी तरह इधर-उधर भटकने और ठोकरें खाने लगे। सेनाकी यह अवस्था देखकर नलने गोदमें लेटी हुई दमयन्तीसे कहा :—"प्रिये! इस समय हमारी सेना अन्धकारके कारण विचलित हो रही है। तुम्हें इस समय अपने तिलक-भास्करको प्रकाशित कर सेनाको आगे बढ़नेमें सहायता करनी चाहिये।"

पतिदेवके यह वचन सुनकर दमयन्तीने जल लेकर

अपना ललाट धो दिया। फलतः उसका तिलक अन्धकारमें सूर्यकी भाँति प्रकाशित हो उठा और उसी प्रकाशमें समस्त सेना उस दिन का रास्ता तय कर निर्दिष्ट स्थानमें जा पहुँची।

दूसरे दिन मार्गमें नलको एक प्रतिमाधारी मुनिराज दिखायी दिये। उनके चारों ओर भ्रमर इस तरह चक्कर काट रहे थे। जिस तरह मधुर रस और परागके फेरमें वे कमलके आसपास चक्कर काटा करते हैं। उन्हें देखते ही नलकुमार अपने पिताके पास दौड़ गये और उनसे कहने लगे :—"पिताजी! क्या आपने इन मुनिराजको नहीं देखा? चलिये, इन्हें वन्दन कीजिये और राह चलते इनके दर्शनका पुण्य लूटिये। देखिये, यह मुनिराज कायोत्सर्ग कर रहे हैं। किसी मदोन्मत्त हाथीने खुजली मिटानेके लिये अपना गण्डस्थल इनके शरीरसे रगड़ दिया है। मालूम होता है कि वैसा करते समय उसका मदजल मुनिराजके शरीरमें लग गया है और उसीकी सुगन्धसे यह मधु लोलुप भौंरोंका दल यहाँ खिंच आया है। इन भौंरोंने मुनिराजको न जाने कितना

काटा है, किन्तु फिर भी वे परिशह सहन कर रहे हैं। हाथी द्वारा उत्पीड़ित होनेपर भी अपने स्थान या ध्यानसे न डिगनेवाले मुनिराजका अनायास दर्शन होना वास्तवमें बड़े सौभाग्यका विषय है।"

पुत्रके यह वचन सुनकर निषधराजको भी उस मुनिराज पर श्रद्धा उत्पन्न हुई। वे अपने पुत्र और परिवारके साथ उनके पास गये और उनको वन्दन कर कुछ देरतक उनकी सेवा की। इसके बाद उनकी रक्षाका प्रबन्ध कर वे वहाँसे भी आगे बढ़े और शीघ्र ही कोशला नगरीके समीप जा पहुँचे। नलने दमयन्तीको उसे दिखाते हुए कहा :—"प्रिये! देखो, यही जिन चैत्योंसे विभूषित हमारी नगरी है।"

नलके यह कहनेपर दमयन्तीने उन विशाल जिन चैत्योंको देखा। उनके बाह्य दर्शनसे ही उसका हृदय मत्त मयूरकी भाँति थिरक उठा। उसने उत्साहित होकर कहा :—"मैं धन्य हूँ जो मुझे आप जैसे पति मिले, जो इस रमणीय नगरीके स्वामी हैं। मैं इन चैत्योंकी नित्य वन्दना किया करूँगी।"

इधर निषधराजके आगमनका समाचार पहलेही नगरमें फैल गया था, इसलिये जनताने उनके स्वागतकी पूरी तैयारी कर रक्खी थी। नगरके सभी रास्ते ध्वजा और पताकाओंसे सजा दिये गये थे। घर-घर मंगलाचार हो रहा था। निषधराजने अच्छा दिन देखकर अपने दोनों पुत्र और पुत्रवधूके साथ नगर प्रवेश किया। निषधराजने यहाँपर भी अपनी ओरसे नलका विवाहोत्सव मनाया और दीन तथा आश्रितोंको दानादि देकर सन्तुष्ट किया।

इसके बाद नल और दमयन्तीने बहुत दिनोंतक अपना समय आनन्दपूर्वक व्यतीत किया। अन्तमें राजा निषधको वैराग्य उत्पन्न हुआ, इसलिये उन्होंने नलको अपने सिंहासनपर बैठा कर और कुबेरको युवराज बनाकर दीक्षा ले ली। नलकुमार परम न्यायी और नीतिज्ञ थे, इसलिये उन्होंने इस गुरुतर भारको आसानीसे उठा लिया। वे सन्तानकी ही भाँति प्रजाका पालन करते थे और उसके दुःखसे दुःखी तथा सुखसे सुखी रहते थे। अपने इस गुणके कारण वे शीघ्रही जनताके प्रेम-भाजन

बन गये। बुद्धि पराक्रम और भुजबलमें उनकी समता करना सहज काम न था। इसीलिये उनके शत्रुओंने मन-ही-मन हार मान ली, जिससे उनका राज्य केवल निष्कण्टक ही न बन गया, बल्कि धीरे-धीरे उसमें कुछ वृद्धि भी हो गयी।

राज्य मिलनेके कई वर्ष बाद एकदिन नल राजाने अपने पुराने सामन्त और मन्त्रियोंसे पूछा :—"मेरा राज्य इस समय भी क्या उतना ही बड़ा है, जितना पिताजीके सामने था, या उसमें कुछ वृद्धि हुई है?"

मन्त्रियोंने कहा :—"आपके पिताजीने तीन अंश न्यून अर्ध भरत पर राज्य किया था, किन्तु आप तो पूरे अर्ध भरत पर राज्य करते हैं। पिताकी अपेक्षा पुत्रका अधिक होना अच्छा ही है। इसीमें उसकी तारीफ है। किन्तु आपकी इस कीर्तिमें एकबात कलंकरूप होरही है।"

नलने आश्चर्य चकित होकर पूछा :—"वह कौन-सी बात है?"

मन्त्रियोंने कहा :—"यहाँसे दोसौ योजनकी दूरी पर तक्षशिला नामक नगरीमें कदम्ब नामक राजा राज्य

करता है। आपके अर्ध भरतमें केवल वही एक ऐसा है, जो आपकी आज्ञा नहीं मानता। यद्यपि वह बहुत छोटा राजा है और आपने यही समझकर उसकी उपेक्षा की है, किन्तु यह ठीक नहीं। इससे दिनों दिन उसका हौंसला बढ़ता जा रहा है। यदि यही अवस्था बनी रही तो फिर उसे वश करना कठिन हो जायगा। अभी जो काम केवल धमकीसे हो सकता है, वह फिर युद्ध करने पर भी न हो सकेगा।"

मन्त्रियोंकी यह बात सुनकर नलराजाने कदम्बके यहाँ एक दूत भेजना स्थिर किया। इसके लिये उन्होंने एक महावाचाल दूतको पसन्द किया और उसे सब बातें समझा कर एक बहुत बड़ी सेनाके साथ वहाँ जानेकी आज्ञा दी। दूत उसी दिन वहाँसे प्रस्थान कर शीघ्रही राजा कदम्बके यहाँ पहुँचा। उसने उसकी राज-सभामें उपस्थित हो, उसे अपने आगमनका कारण कह सुनाया। साथही उसने कहा :—"हे राजन्! आपको अपना अभिमान छोड़कर नल राजाकी दासता स्वीकार कर लेनी चाहिये, इसीमें आपका कल्याण है। यदि आप

मेरे इन हितवचनों पर ध्यान न देंगे और राजा नलकी अधीनता स्वीकार न करेंगे, तो निःसन्देह आपको बहुत पछताना पड़ेगा।"

दूतके यह वचन सुनतेही कदम्बका चेहरा लाल हो गया और क्रोधके कारण उसकी आँखोंसे चिनगारियाँ झरने लगीं। वह आपेसे बाहर होकर कहने लगा:—"हे दूत! तुम्हारे स्वामी पागल तो नहीं हो गये? क्या वे मेरी प्रकृति और मेरे भुजबलसे अपरिचित हैं? क्या तुम्हारे यहाँ सामन्त और मन्त्री आदिका भी अभाव है, जो तुम्हारे राजाको सोते हुए सिंहको जगानेसे नहीं रोकते? तुम्हारे राजाने तुम्हें मेरे यहाँ भेजकर बड़ाही दुस्साहस किया है। तुम दूत हो, साथही निर्दोष हो, इसलिये तुम्हें छोड़ देता हूँ। तुम्हारे हितवचनोंमें कोई सार नहीं। यदि तुम्हारे राजाको राज्यसे नफरत हो गयी हो, तो वे खुशीसे युद्ध कर सकते हैं। मैं भी इसके लिये तैयार बैठा हूँ।"

उसके यह धृष्टपूर्ण वचन सुनकर दूतको बड़ाही आश्चर्य हुआ। वह चुपचाप वहाँसे अपने नगरको लौट

आया और राजा नलको उसका उत्तर और उसके अहं-कारका हाल कह सुनाया। सुनकर राजा नलने शीघ्रही अपने मन्त्री और सामन्तोंको एकत्रकर उनसे सलाह की। सलाहमें शीघ्रही उसपर आक्रमण करना स्थिर हुआ, इस-लिये राजा नलने विशाल सेना लेकर तक्षशिला पर धावा बोल दिया और बड़ी फुर्तीके साथ चारों ओरसे उसे घेर लिया। उस समय चारों ओर हाथियोंका मजबूत घेरा देखकर ऐसा मालूम होता था, मानो तक्षशिलाके आस-पास लौह-निर्मित किला खड़ा है। इधर नलके आक्रमणका समाचार मालूम होते ही कदम्ब भी अपनी सेनाके साथ बाहर निकल आया। बस, फिर क्या था, दोनों दलोंमें घोर युद्ध आरम्भ हो गया। पैदलसे पैदल, घोड़ेसे घोड़े और हाथीसे हाथी भिड़ गये। चारों ओर खूनकी प्यासी चमाचम तलवारें चमकने लगीं। बाण चलानेवालोंने आकाशमें बाणोंके मण्डप बना दिये। शस्त्र प्रहारोंसे आहत हो, दोनों दलोंके योद्धा भूमिपर गिरगिरकर वीरगतिको प्राप्त होने लगे। देखते-ही-देखते वहाँपर खूनकी नदी बहने लगी।

दोनों ओरके सैनिक और हाथी घोड़ोंका नाश होते देखकर नलने कदम्बसे कहा :—"व्यर्थ ही इन निर्दोष सैनिक और मूक पशुओंका नाश क्यों होना चाहिये? हमीं दोनों परस्पर युद्ध कर अपनी जय-पराजयका निर्णय क्यों न कर लें?"

कदम्ब अभिमानी तो था ही, उसने तुरन्त नलकी बात मान ली। उनका आदेश मिलतेही दोनों ओरके सैनिकोंने युद्ध बन्द कर दिया। अब नल और कदम्बमें विविध आयुधों द्वारा भाँति-भाँति का युद्ध होने लगा। कभी वे तलवारसे लड़ते, कभी भाले और कटारीसे। एकबार दोनोंमें भीषण मल्लयुद्ध भी हुआ। कदम्बने जिस-जिस प्रकारका या जिस-जिस शस्त्रद्वारा युद्ध करनेकी इच्छा प्रकट की अथवा जिस युद्धके लिये नलको चुनौती दी, उसी युद्धमें नलने उसे बुरी तरह पराजित किया। किसी युद्धमें भी कदम्बकी विजय न हुई।

अब कदम्बकी आँखें खुलीं। अब उसे मालूम हुआ कि नलसे लोहा लेनेमें, नलको तुच्छ समझनेमें उसने भयंकर भूल की थी। किन्तु अब क्या हो सकता था?

विजयलक्ष्मीने जयमाल नलके गलेमें डाल दी थी। कदम्बका मामला सभी तरहसे हारा हुआ था। वह चिन्तामें पड़ गया। प्रायः ऐसे ही समय मनुष्यके हृदयमें सद्बुद्धि उत्पन्न होती है। उसने सोचा, कि राज्य तो हाथसे जाता ही है, अब कीड़ी मच्छर या कुत्तेकी मौत मरनेकी अपेक्षा मैं कोई ऐसा कार्य क्यों न कर लूँ, जिससे मेरा आत्म-कल्याण हो जाय?

सौभाग्यवश उसे आत्मकल्याणका एक उपाय भी सुझाई दे गया। उसने उसी समय समरभूमिसे भाग कर किसी मुनिराजके पास जाकर दीक्षा ले ली। यह बात नलको मालूम न हो सकी, इसलिये उन्होंने उसकी खोज करनी शुरू की। उन्होंने सोचा कि उसे इस प्रकार जीता छोड़ देनेसे वह फिर किसी दिन बगावतका झंडा करेगा, इसलिये या तो उसे मार डालना चाहिये या उससे अपनी वश्यता स्वीकार करा लेनी चाहिये। यही सोचकर उन्होंने उसका पीछा न छोड़ा।

कई दिनोंके बाद नलने कदम्बको पाया, किन्तु उनके लिये उसको पानेकी अपेक्षा न पाना ही अच्छा

था। कदम्ब उस समय प्रतिमाधारी यतिके वेशमें था। नल उसका यह वेश देखकर चक्करमें पड़ गये। पहले तो उन्होंने समझा कि उसने प्राणभयसे ही यह वेश धारण कर लिया है, इसलिये उन्होंने उसे भला-बुरा कहकर युद्धके लिये ललकारा, किन्तु उनकी बातोंका जब उसपर कोई प्रभाव न पड़ा, तब नलको विश्वास हो गया, कि उसने वास्तवमें दीक्षा लेकर तप आरम्भ कर दिया है। अपने इस कार्य द्वारा उसने उलटे नलको जीत लिया। नलने उसके सामने शिर झुकाकर कहा :—"हे कदम्ब! तुमने मुझे जीत लिया—मैं स्वीकार करता हूँ कि तुम्हारी विजय हुई है। मैंने अज्ञानतावश तुम्हें भला-बुरा कहा है इसके लिये मेरा यह अपराध क्षमा करो।"

इधर कदम्ब भी वास्तवमें विरक्त हो गया था। उसके निकट अब राजा और प्रजा सभी समान थे। किसीके अपराधसे रुष्ट होने या किसीकी खुशामद से सन्तुष्ट होनेका अब उसे कोई कारण न था, इसलिये उसने नलकी इन बातोंका कोई उत्तर न दिया। उसकी यह निस्पृहता देखकर नलराजाकी श्रद्धा सौगुनी बढ़ गयी।

वे नाना प्रकारसे कदम्बकी स्तुति कर, उसके सत्वसे शिर धुनाते हुए तक्षशिलाको लौट आये। वहाँपर उन्होंने उसके पुत्र जयशक्तिको उसके सिंहासन पर बैठाया। उसने नल-राजाकी अधीनता स्वीकार करली। तदनन्तर नलराजा विजयका-डंका बजाते हुए अपनी नगरीको लौट आये।

कोशला नगरीमें वापस आने पर उनके आदेशसे अर्ध भरतके समस्त राजा उनकी सेवामें उपस्थित हुए और उन्होंने नलको अर्ध भरतका एकछत्र स्वामी मानकर उनका राज्याभिषेक किया। नलने भी इस समय बड़े समारोहके साथ उत्सव मनाया और अतिथि रूप राजाओं को आदर सत्कार द्वारा सम्मानित किया। यह उत्सव पूर्ण होनेपर सभी राजे-महाराजे अपने-अपने देशको वापस चले गये और नल-दमयन्ती प्रजापालन करते हुए अपने दिन आनन्दपूर्वक व्यतीत करने लगे।

परन्तु नलका छोटा भाई कुबेर, जिसको उसके पिता दीक्षा लेते समय युवराज बना गये थे, वह बड़ा ही नीच प्रकृतिका था। उसे यदि कुलाङ्गार कहा जाये, तब भी अनुचित न होगा। उसे अपने युवराज-पदसे सन्तोष न

था। उसे तो राजा बननेकी इच्छा थी, इसीलिये वह नलके बढ़ते हुए प्रतापको सहन न कर सकता था। वह मन-ही-मन उनका राज्य हड़पनेकी कोई तरकीब सोच रहा था।

चन्द्रमामें भी कलंक होता है। रत्न भी सर्वथा निर्दोष नहीं होते। नलमें हजार सद्गुण होने पर भी एक बहुत बड़ा दुर्गुण था। वे कुछ-कुछ द्यूत व्यसनी थे—सत्यानाशी जुएँके शौकीन थे। कुबेरने उनकी इसी दुर्बलता द्वारा लाभ उठाना स्थिर किया। वह नित्य नलके साथ जुआँ खेलने लगा। आरम्भमें तो वह मनोविनोद की एक सामग्री रही, किन्तु धीरे-धीरे उसने भीषण रूप धारण कर लिया। पहले कोई किसीकी हार जीत पर ध्यान न देता था, किन्तु अब लम्बी-लम्बी बाजियाँ लगने लगीं। घड़ी-दो-घड़ीके खेलमें लाखोंका उलट-फेर होने लगा।

नित्य नियमानुसार एक दिन नल जुआँ खेलने बैठे। कुबेर तो अपनी घातमें था ही, नलको उसकी कुटिलताका ख्याल तक न था। आरम्भमें दोनोंकी हारजीत बराबर होती रही, कभी नल जीतते और कभी कुबेर। परन्तु

थोड़ी देरके बाद जब खेल और गहरा होने लगा, तब नलकी भाग्यलक्ष्मी उनसे रूठ गयी। रोज जो पासे उनकी इच्छानुसार पड़ते थे, वही आज उलटे पड़ने लगे। धीरे-धीरे नल अपना सारा खजाना हार गये।

परन्तु 'हारा जुआँरी दूना खेले' इस कहावतके अनुसार नलने जुएँसे मुँह न मोड़ा। आज उनके शिरपर मानो भूत सवार था। उनको हार पसन्द न थी और जीत होती न थी। उन्होंने अपने साम्राज्यका एक-एक प्रान्त अपने दाँव पर रखना आरम्भ किया। हर दाँवमें वे समझते थे कि इस बार जरूर जीतूँगा, परन्तु दुर्भाग्यवश वे लगातार हारते ही चले गये। धीरे-धीरे वे आधा साम्राज्य हार गये, किन्तु उन्होंने उठनेका नाम न लिया।

किसी तरह यह समाचार दमयन्तीने सुना। वह तुरन्त गिरती-पड़ती वहाँपर दौड़ आयी। नलकी हालत देखकर उसका तो कलेजा ही बैठ गया। वे मानो पागल हो रहे थे। आँख बन्दकर अपना राज्य दाँव पर लगाते और बातकी बातमें हार जाते। दमयन्ती उनके पैरोंपर गिर पड़ी और गिड़गिड़ाकर कहने लगी :—"हे नाथ!

आज आप यह क्या अनर्थ कर रहे हैं ? उठिये, इस समय इस जुएँसे मुख मोड़िये, वर्ना हमलोग पथके भिखारी बन जायँगे। हे नाथ! मैं आपको रोज समझाती थी, कि यह बहुत ही बुरा व्यसन है, इससे मनुष्य अन्ध बन जाता है और क्षणमात्रमें अपनी सारी सम्पदा खोकर अमीरसे फकीर बन बैठता है, किन्तु आपने मेरी बात पर ध्यान न दिया। आप राजी-खुशीसे कुबेरको सारा राज्य भलेही दे दीजिये, मैं उसमें जरा भी बाधा न दूँगी, परन्तु संसारको यह कहनेका अवसर न दीजिये कि नलने जुएँमें अपना राज्य खो दिया। आपने जिस राज्यको बढ़ानेके लिये बीसों लड़ाइयाँ लड़ी हैं, अपार जन-धन स्वाहा किया है, अपने प्राण तकको खतरेमें डाला है, उस राज्यको इस तरह जुएँमें न खोइये। मेरा हृदय तो इसके विचार मात्रसे—इसकी कल्पनासे ही विदीर्ण हुआ जाता है। हे नाथ! मुझ पर दया कीजिये, अपना खयाल कीजिये, जैसे भी हो यहाँसे उठ चलिये। अब भी कुछ नहीं बिगड़ा। हे नाथ! दासीकी बात मानिये!!!"

दमयन्ती इससे अधिक कुछ न कह सकी। उसका गला भर आया। गरम-गरम आँसुओंसे उसने नलके दोनों पैर भिगो डाले। वह और कर ही क्या सकती थी? उसका यह कार्य पत्थरको भी पिघलानेके लिये काफी था, परन्तु कालकी कुटिलताके कारण नलके कान पर जूँतक न रेंगी। उन्होंने तिरस्कार पूर्वक अपने पैरोंसे दमयन्तीको धक्का दे दिया। दमयन्ती सिसकती हुई दूर जा गिरी। नलने आँख उठाकर उसकी ओर देखनेका भी कष्ट न उठाया। वे फिर उसी तरह द्यूत क्रीड़ामें लीन हो गये।

यह सुनकर महलमें चारों ओर हाहाकार मच गया। दमयन्तीने लज्जा छोड़कर मन्त्रियोंको बुलाया और उनसे सारा हाल कहा। मन्त्रियोंने भी नलके पास जाकर उन्हें बहुत समझाया-बुझाया ; किन्तु जिस प्रकार सन्निपातके रोगीपर कोई दवा असर नहीं करती, उसी प्रकार नल पर किसी बातका प्रभाव न पड़ा। धीरे-धीरे वे अपना सारा राज्य हार गये। किन्तु इतने पर भी उन्होंने उठनेका नाम न लिया। अब उनके पास और कोई

सम्पत्ति न थी। सिर्फ अन्तःपुर बचा हुआ था। एक दॉवमें उसे और दमयन्तीको भी लगा दिया। भाग्य तो उनके प्रतिकूल था ही, वे उसे भी हार गये।

अब?—अब ऐसी कौनसी वस्तु बची हुई थी, जिसे नल दॉव पर रखते? उन्होंने एक बार चारों ओर देखा, दूर-दूर तक नजर दौड़ायी, किन्तु कोई वस्तु दिखायी न दी। इतनेमें उनकी दृष्टि अपने शरीर पर पड़ी। भुजाओंमें बाजूबन्द, कानोंमें कुण्डल, गलेमें मुक्ता-माला आदि आभूषण अब भी मौजूद थे। उन्होंने एक एक करके उन्हें भी दॉव पर रख दिया। उनकी भी वही गति हुई, जो सब सम्पत्तिकी हुई थी। अब उनके पास कोई भी वस्तु बची न थी। सभी कुछ समाप्त हो गया था, इसीलिये जुआँ भी समाप्त हो गया। नल वहॉसे उठे, किन्तु दमयन्तीके कथनानुसार पथके भिखारी बन कर ही उठे!

नलको जाते देख, कुबेरने विकट हॅसी-हँस कर कहा :—"नल! अब तुम यहाँ मत रहना। अपने राज्यमें मैं तुम्हें कदापि न रहने दूँगा। आज ही यह

नगरी छोड़ दो और जितनी जल्दी हो सके, मेरी सीमाके बाहर निकल जाओ! तुमको पिताने राज्य दिया था, किन्तु मुझे तो इन पासोंने दिया है!"

नलने कहा:—"भाई, अभिमान मत करो! लक्ष्मी तो समर्थ पुरुषोंकी दासी है!"

इतना कहकर नल, केवल एक उत्तरीय वस्त्र पहन कर वहाँसे चल पड़े। दमयन्तीने भी उनका अनुसरण किया। इसपर कुबेरने उसका रास्ता रोक कर कहा:—"हे सुन्दरी! तुम कहाँ जाती हो? तुम्हें तो नल जुएँमें हार चुके हैं। तुम अब मेरे साथ चलो और मेरे अन्तःपुरको पावन करो!"

दमयन्तीने तो कुबेरके इन वचनोंका कोई उत्तर न दिया, किन्तु नलके वयोवृद्ध मन्त्रियोंसे अब बोले बिना न रहा गया। उन्होंने कहा:—"हे कुबेर! अब तक हमारे लिये जैसे नल राजा थे, वैसेही अब आप हैं। हम आपके सेवक हैं, किन्तु आपके इस अन्यायपूर्ण कार्यका विरोध किये बिना हम कदापि नहीं रह सकते। दमयन्ती महा सती है। इसे साधारण स्त्री मत समझना। यह

परपुरुषकी छाया भी अपने शरीर पर न पड़ने देगी। इसे तुम अपने अन्तःपुरमें नहीं रख सकते। वैसे भी बड़ा भाई पिता तुल्य और उसकी स्त्री माता तुल्य मानी जाती है। इस लोकरीतिको बालक तक जानते हैं, इसलिये आप इस विचारको अपने हृदयसे निकाल दीजिये। यदि आप हमारी बातोंपर ध्यान न देंगे, और इस मामलेमें बलसे काम लेंगे, तो दमयन्ती आपको भस्म कर देगी, क्योंकि इसके लिये यह असम्भव नहीं है। बल्कि हमारी सलाह तो यह है कि आप ऐसा प्रबन्ध कर दें, जिससे नलके साथ जानेमें उसे सुविधा हो। नलको आप ग्राम या नगर आदि भलेही न दें, किन्तु कमसे कम मार्गव्यय और रथ तो देही दें। इससे दमयन्तीको भी कष्ट न होगा और वे आसानीसे आपकी सीमा पार कर सकेंगे। आपको तो खुद सोचकर अपनी ओरसे यह सब कर देना चाहिये था, जिसे हमें कहनेकी जरूरत ही न पड़ती।"

मन्त्रियोंकी यह फटकार सुनकर कुबेर कुछ लज्जित हुआ और उसने दमयन्तीका रास्ता छोड़ दिया।

मन्त्रियोंके कथनानुसार उसने खाने-पीनेके कुछ सामान, एक सारथी और एक रथ भी नलको दे देनेकी आज्ञा दी। किन्तु नलने कहा :—"जब मैंने द्यूतमें अपनी सारी सम्पत्ति खो दी, तब इस रथका ही मुझे क्या प्रयोजन है! मुझे यह कुछ न चाहिये।"

मन्त्रियोंने कहा :—"हे स्वामिन्! हम भी आपके साथ चलते, किन्तु आपने कुबेरको राज्य दे दिया है, वह राजा हो गया है, इसलिये उसे छोड़ कर जाना अब हम उचित नहीं समझते। अब तो दमयन्ती ही आपको मन्त्री, मित्र और सेवकका काम देगी। किन्तु हे नाथ! दमयन्ती परम सती है, साथ ही शिरीष पुष्पके समान सुकुमार है। उसने कण्टकपूर्ण मार्ग अपने नेत्रोंसे भी कभी न देखा होगा। ऐसी अवस्थामें आप उसे पैदल कैसे ले जायँगे? सूर्य्यके प्रखर तापसे तवेकी तरह तपते हुए मार्गको अपने कोमल पैरोंसे दमयन्ती किस प्रकार पार करेगी? इसलिये आप रानी सहित इस रथ पर बैठनेकी दया कीजिये। ईश्वर आपका कल्याण करेगा।"

मन्त्रियोंके कई वार कहने पर भी पहले तो नलने रथ पर बैठनेसे इन्कार किया, किन्तु अन्तमें उनके अनुरोधके सामने उन्हें झुकना ही पड़ा। राजा नल उसी समय दमयन्तीके साथ रथ पर बैठकर वहाँसे चल पड़े। दमयन्तीने केवल एकही वस्त्र पहन रक्खा था। अतः उसे देखकर ऐसा मालूम होता था, मानो वह कहीं स्नान करने जा रही है। उसका यह वेश देख कर नगरकी स्त्रियाँ रो पड़ी। वे कहने लगीं :—"हा दैव! तेरी यह कैसी गति है? कल तक जो राज-रानी थी, जिसने महलके वाहर पैर भी न रक्खा था, आज वही केवल एक वस्त्रसे पतिके साथ जंगलकी ओर जा रही है।"

इस प्रकार जनताका करुण-क्रन्दन सुनते हुए, नलराजा कोशला नगरीके एक बड़े रास्ते पर जा पहुँचे। वहाँपर उन्हें करीव पाँच सौ हाथ ऊँचा और वहुत भारी एक स्तम्भ दिखायी दिया। उसे देखते ही नल अपना सारा दुःख भूल गये। कौतूहल वश उसके पास जाकर उन्होंने बात-की-बातमें पहले उसे उखाड़ डाला और बादको फिर उसी स्थानमें गाड़ दिया। उन्हें इस प्रकार

अपना बल अजमानेका शौक था। इसलिये उन्हें इस कार्यमें जरा भी कष्ट या कठिनाई प्रतीत न हुई।

नलका यह बल देखकर लोग आश्चर्यमें पड़ गये। वे कहने लगे :—"अहो! धन्य है नलराजको, जो इतने पराक्रमी हैं। हा दैव! तू ऐसे बलवानको भी चक्करमें डाल देता है! तेरी गति बहुत ही विचित्र है!"

इसी समय नलका यह पराक्रम देखकर लोगोंको एक पुरानी घटना याद आ गयी। जिस समय नल और कुबेर बालक थे और अपना अधिकाँश समय खेल-कूदमें व्यतीत करते थे, उस समय एक ज्ञानी मुनिका आगमन हुआ था। उन्होंने नलको देखकर कहा था कि :— "इस नलने पूर्वजन्ममें साधुको क्षीर दान दिया था, इसलिये इस जन्ममें यह अर्ध-भरतका स्वामी होगा। इसकी एक पहचान यह भी होगी, कि नगरमें जो पाँच सौ हाथ ऊँचा स्तम्भ है, उसे यह अनायास उखाड़ सकेगा।"

मुनिका यह वचन आज सत्य प्रमाणित हुआ। लोग कहने लगे :—"नल ही अर्धभरतके वास्तविक स्वामी होंगे। आज कुबेरकी कपट-लीलाके कारण उन्हें नगर

छोड़ना पड़ रहा है, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे किसी दिन फिर अपना सिंहासन अपने हाथमें करेंगे। धन्य है राजा नलको! धन्य है सती दमयन्ती को! ईश्वर करे इनका पुण्य-प्रताप दिन पर दिन बढ़ता रहे। इन दोनोंकी जय हो!"

इस प्रकार प्रजाका विलाप और अपनी प्रशंसा देखते सुनते हुए राजा नल नगरके बहार निकले। दमयन्तीका हृदय इस दुःखसे मानो विदीर्ण हुआ जा रहा था। उसकी अश्रु-धारासे सारा रथ भीज गया। उसकी यह अवस्था देखकर नलने उसे सान्त्वना दी। जब वह कुछ शान्त हुई, तब नलने उससे कहा:—"हे देवि! अब आगे बढ़नेके पहले हमलोगोंको अपना स्थान निर्धारित कर लेना चाहिये। क्या तुम कोई ऐसा स्थान बतला सकती हो, जहाँ जानेसे हमलोगोंको शान्ति मिल सके।?"

दमयन्तीकी बुद्धि बहुत ही तीक्ष्ण थी। उसने यह सोचकर कि ऐसे समयमें अपना आदमी ही अपने काममें आता है, कहा:—"हे नाथ! इस समय आप कुंडिनपुर चलिये और मेरे पिताका आतिथ्य ग्रहण कर उन्हें कृतार्थ

कीजिये। मेरी धारणा है कि आपको वे सब प्रकारकी सहायता देंगे।"

दमयन्तीकी यह सलाह नलको भी पसन्द आ गयी। उन्होंने उसी ओर रथ बढ़ानेका सारथीको आदेश दिया।

इस स्थानसे आगे बढ़ने पर राजा नलको एक भयंकर जंगल मिला, जो व्याघ्र जैसे हिंसक प्राणियोंसे भरा था। साथ ही वृक्षोंके कारण वहाँ ऐसी घटा घिरी हुई थी, कि दिनको भी सूर्यदेवका प्रकाश उस स्थानको प्रकाशित न कर सकता था। यहाँपर ऐसे भीलोंसे नलराजकी भेट हो गयी, जो देखनेमें यमदूतके समान प्रतीत होते थे। उनके धनुष कान तक खिंचे हुए थे और उन पर विषके बुझे हुए तीक्ष्ण बाण चढ़े हुए थे। उनमेंसे कुछ भील उन्मत्तकी भाँति नाचने लगे, कुछ शृंगी नाद करने लगे, कुछ गायन गाने लगे, कुछ पहलवानोंकी तरह ताल ठोकने लगे और कुछ मेघधाराकी भाँति बाणवृष्टि करने लगे। जिस प्रकार कभी-कभी कुत्ते हाथीका रास्ता रोक लिया करते हैं, उसी प्रकार इन भीलोंने चारों ओरसे नलको घेर कर उनका रास्ता रोक लिया।

यह देखकर नल अपने रथसे कूद पड़े। तलवार खींचकर वे उनपर टूटना ही चाहते थे, कि इतनेमें दमयन्तीने उनका हाथ पकड़ लिया। उसने कहा :—"हे नाथ! आप इन लोगोंपर रोष न करें। यह सब मूर्ख और कायर हैं। इनपर हाथ उठाना आपको शोभा न देगा। सिंह कभी शशक और शृगाल पर वार नहीं करता। इनके खूनसे आप अपनी तलवार मत रंगिये। इनके लिये तो मैं ही काफी हूँ।"

इतना कह दमयन्तीने एकबार हुंकार किया। उसे सुनते ही वे सब इतने भयभीत हो गये, कि उनमें बेतरह भगदड़ मच गयी। नलने उनका पीछा किया, दमयन्तीने भी उनका साथ न छोड़ा। भीलोंको खदेड़ते हुए वे अपने रथसे कुछ दूर निकल गये। भीलोंको फिर इतनी हिम्मत ही न हुई, कि वे एकत्र होकर उनसे लोहा लें, इसलिये कुछ दूर तक उनका पीछा करनेके बाद नल और दमयन्ती वापस लौट आये।

किन्तु जब बुरे दिन आते हैं, तब विपत्तिके बादल शिरपर मंडराया ही करते हैं। मनुष्यको कभी किसी

विपत्तिका शिकार होना पड़ता है, तो कभी किसी विपत्तिका। जिस स्थानपर रथ खड़ा किया था, उस स्थानपर आकर नलने देखा, तो रथका कहीं पता भी न था। केवल सारथी दुःखित भावसे एक ओर खड़ा था। उसने नलको बतलाया, कि जिस समय आप भीलोंको खदेड़ने गये थे, उसी समय भीलोंका एक दूसरा दल यहाँ आया और उसने वह रथ मुझसे छीन लिया। यह सुनकर नल अवाक् हो गये। कहने सुननेकी कोई बात भी न थी। दैव दुर्बलका घातक हुआ ही करता है। अब वे सारथीको कोशला नगरीकी ओर विदा कर चुपचाप वहाँसे चल पड़े और दमयन्तीका हाथ पकड़कर उस भयंकर जंगलमें भटकने लगे।

बेचारी दमयन्ती पर ऐसी मुसीबत कभी न पड़ी थी। उसके कोमल पैर वनकी कठिन भूमिमें विचरण करनेसे क्षत-विक्षत हो गये। कहीं उसके पैरोंमें काँटे चुभ जाते, तो कहीं कुशके मूल। उसके पैरोंसे रक्तकी धारा बहने लगी। वह जिधर पैर रखती उधरकी ही

भूमि रक्तरञ्जित बन जाती। इस प्रकार दमयन्तीने अपने रक्तसे उस वन-भूमिको मानो इन्द्रवधूटियोंसे पूर्ण बना दिया। नलने उसे आराम पहुंचानेके लिये अपनी धोती फाड़कर उसके दोनों पैरोंमें पट्टी बाँध दी, किन्तु इससे क्या होता था। जिसने कभी महलके बाहर पैर भी न रक्खा था, उसके लिये इस तरह वनवन भटकना बहुत ही दुष्कर था।

दमयन्ती वारंवार थककर वृक्षोंके नीचे बैठ जाती। नल अपने वस्त्रसे उसका पसीना पोछते और उसे हवा करते। दमयन्ती जब प्यासी होती, तृषाके कारण जब उसका कंठ सूखने लगता, तब नल पलाश पत्तोंका दोना बनाकर किसी सोते या नदीसे उसके लिये जल भर लाते और उससे तृषा निवारण करते। यह सब करते हुए उनका हृदय विदीर्ण हुआ जाता था, अपनी हृदयेश्वरीकी यह दयनीय दशा देखकर उनकी आँखोंमें आँसू भर आते थे, किन्तु लाचारी थी। यह सब सहन करनेके सिवा और कोई उपाय भी न था।

एकदिन दमयन्तीने पूछा :—"नाथ! अभी यह

जंगल और कितना बाकी है? अभी इसे पार करनेमें कितने दिन लगेंगे? मुझे तो ऐसा मालूम होता है, मानों इस जंगलमें ही मेरे जीवनका अन्त आ जायगा।"

नलने कहा :—"प्रिये! यह जंगल तो सौ योजनका है जिसमेंसे हम लोगोंने शायद ही पाँच योजन अभी पार किये हों। किन्तु विचलित होनेकी जरूरत नहीं। जो मनुष्य विपत्तिकालमें धैर्यसे काम लेता है, वही अन्तमें सुखी होता है।"

इस तरहकी बातें करते हुए दोनों जन जंगलमें चले जा रहे थे। धीरे-धीरे शाम हुई और सूर्य भगवान भी अस्त हो गये। नलने देखा कि अब दमयन्ती बहुत थक गयी है, साथ ही रात्रिके समय जंगलमें आगे बढ़ना ठीक भी नहीं, इसलिये उन्होंने अशोकवृक्षके पत्ते तोड़कर उसके लिये एक शैय्या तैयार कर दी। इसके बाद उन्होंने दमयन्तीसे कहा :—"प्रिये! अब तुम इस शैय्या पर विश्राम करो। यदि तुम्हें थोड़ी देरके लिये भी निद्रा आ जायगी, तो तुम अपना सारा दुःख भूल जाओगी।

दुःखी मनुष्यको निद्रामें ही थोड़ीसी शान्ति मिल सकती है।"

दमयन्तीने कहा :—"हे देव! मुझे मालूम होता है मानो पश्चिम ओर कोई हिंसक प्राणी छिपा हुआ है। देखिये, गायें भी कान खड़े किये उसी ओरको देख रही हैं। यदि हमलोग यहाँसे कुछ आगे चलकर ठहरें तो बहुत अच्छा हो।"

नलने कहा :—"प्रिये! तुम बहुत ही डरपोक हो, इसलिये ऐसा कहती हो। यहाँसे आगे बढ़ना ठीक नहीं। आगे तपस्वियोंके आश्रम हैं। वे सब मिथ्या दृष्टि हैं। उनके संगसे सम्यक्त्व उसी प्रकार नष्ट हो जाता है, जिस प्रकार खटाई पड़नेके कारण दूध अपनी स्वाभाविक गन्ध और स्वादसे रहित बन जाता है। विश्रामके लिये इस समय यही स्थान सबसे अच्छा है। तुम निश्चिन्त होकर सो रहो। यदि तुम्हें भय मालूम होता है, तो मैं अंगरक्षककी भाँति सारी रात पहरा दूँगा।"

पतिदेवके यह वचन सुनकर दमयन्ती निश्चिन्त हो गयी। नलने उसकी शैय्यापर अपना अर्धवस्त्र बिछा

दिया। तदनन्तर दमयन्ती पञ्च परमेष्ठीका स्मरण करती हुई उसी शैय्या पर लेट रही और गहरी थकावटके कारण उसे शीघ्र ही निद्रा आ गयी।

दमयन्तीके सोजानेपर, दैव दुर्विपाकसे नलके हृदयमें एक विचारका उदय हुआ। वे अपने मनमें कहने लगे:— "ससुराल जाकर रहना बहुत ही बुरा है, परले दरजेकी नीचता है। उत्तम पुरुष कदापि ऐसा नहीं करते। मुझे भी यह विचार छोड़ देना चाहिये। वहाँ जाकर रहनेसे मेरा अपमान होगा, मेरी मर्यादा नष्ट हो जायगी। इसलिये वहाँ जाना ठीक नहीं। किन्तु दमयन्ती मेरे इस प्रस्तावसे शायद सहमत न होगी। उसे अपने पिताके यहाँ सुख मिलनेकी आशा है, इसलिये वह तो वहीं चलने पर जोर देगी। वह वहाँपर सुखी भी हो सकती है, चाहे तो वहाँ सहर्ष जा सकती है, मैं उसे रोकना भी नहीं चाहता, किन्तु मैं वहाँ क्यों जाऊँ?"

नल बड़ी चिन्तामें पड़ गये। दमयन्ती उनके साथ थी। वह अपने मायके जाना चाहती थी, किन्तु नलको इसमें अपमान दिखायी देता था, इसीलिये वे असमंजसमें

पड़ गये। दूसरे ही क्षण उनके हृदयमें वह भयङ्कर विचार उत्पन्न हुआ, जिसके कारण उन दोनोंका वह रहा-सहा सुख भी नष्ट हो गया, जो एक दूसरेके साथ रहनेसे उन्हें उस जंगलमें भी प्राप्त होता था। वे कहने लगे:—"यदि अपने हृदयको पत्थर बनाकर मैं दमयन्तीको यहीं छोड़ दूँ, तो फिर मैं जहाँ चाहूँ वहाँ जा सकता हूँ। दमयन्ती परम सती है। अपने सतीत्वके प्रभावसे सर्वत्र उसकी रक्षा होगी। किसीकी सामर्थ्य नहीं जो उसे किसी प्रकारकी हानि पहुँचा सके। बस, यही विचार उत्तम है। इसीको अब कार्य रूपमें परिणत करना चाहिये।"

इस प्रकार नलने कुछ ही क्षणोंमें दमयन्तीको, उस दमयन्ती को जो उन्हें प्राणसे भी अधिक प्रिय थी, हिंसक प्राणियोंसे भरे हुए जङ्गलमें सोती हुई अवस्थामें छोड़ जाना स्थिर कर लिया। उन्होंने दमयन्तीकी शैय्या पर अपना जो वस्त्र बिछा दिया था, उसे छुरीसे आधा काट लिया। इसके बाद दमयन्तीके वस्त्र पर अपने रुधिर से निम्नलिखित दो श्लोक लिखकर वे आँसू बहाते हुए चुपचाप वहाँसे एक तरफ चल दिये।

अपनी सोती हुई प्रियाको देखते जाते थे ।

(पृष्ठ ३०५)

"विदर्भेषु यात्यध्वा, वटाऽलंकृतया दिशा।
कोशलेषु च तद्वाम—स्तयोरेकेन केनचित् ॥१॥
गच्छेः स्वेच्छाशये ! वेश्म, पितु र्वा श्वसुरस्य वा।
अहं तु क्वापि न स्थातु—मुत्सहे हे विवेकिनि ! ॥२॥"

अर्थात् :—"जिस दिशामें वटवृक्ष है, उसी दिशामें विदर्भ देश जानेका रास्ता है और उसकी बायीं ओरसे जो रास्ता जाता है, वह कोशल देशकी ओर गया है। हे विवेकिनि ! इन दोमेंसे इच्छानुसार एक रास्तेको पकड़कर तुम पिता या श्वसुरके यहाँ चली जाना। तुम इन दोमेंसे किसी भी एक स्थानमें रह सकती हो, परन्तु मेरी इच्छा तो कहीं भी रहनेकी नहीं होती।"

यह सब कार्रवाई करनेके बाद नल उस स्थानसे तो चल दिये, किन्तु उनको इससे सन्तोष न होता था। वे बारंबार सिंहकी भाँति घूम-घूमकर अपनी सोती हुई प्रियाको देखते जाते थे। जब वे उससे कुछ दूर निकल गये और उसका दिखलाई देना बन्द हो गया, तब उनका हृदय मचल पड़ा। वे अपने मनमें कहने लगे :—"मैंने यह बहुत ही बुरा किया। दमयन्ती मुझपर विश्वासकर

अबोध बालककी भाँति सो रही है। ऐसे समयमें यदि व्याघ्र या सिंह उसपर आक्रमण कर देंगे, तो उसकी क्या अवस्था होगी ? मुझे इस प्रकार उसे सोती हुई न छोड़ना चाहिये। रातभर मुझे उसकी रक्षा करना उचित है। सुबह वह जहाँ इच्छा हो वहाँ जा सकती है।"

जिस प्रकार कोई वस्तु भूल जाने पर मनुष्य चिन्तित भावसे उसे लेनेके लिये दौड़ पड़ता है, उसी प्रकार नल दमयन्तीके पास दौड़ आये। वह अभी तक ज्योंकी त्यों सो रही थी। उसे देखकर नल अपने मनमें कहने लगे:—"अहो ! अन्तःपुरमें जिस दमयन्तीके दर्शन सूर्यके लिये भी दुर्लभ थे, वही दमयन्ती आज केवल एक वस्त्र पहिने हुए रास्तेमें अकेली पड़ी हुई है। परन्तु इसकी यह दुर्दशा मेरे ही कर्म दोषसे हुई है। हा दैव ! मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ ? मेरी आँखोंके सामने ही यह सती अनाथकी भाँति जमीन पर लोट रही है। मेरे लिये इससे बढ़कर लज्जाकी बात दूसरी नहीं हो सकती। मुझे वारंवार धिक्कार है।"

फिर वे कहने लगे:—"मैं इस सतीको यहाँपर

अकेली छोड़े जा रहा हूँ। जब इसकी नींद खुलेगी और यह मुझे न देखेगी तब यह अपने मनमें क्या कहेगी? सम्भव है कि उस अवस्थामें यह अपना प्राण भी त्याग दे, इसलिये मुझे इसके साथ यह व्यवहार न करना चाहिये। यह इसके प्रति विश्वास घात होगा—अधर्म होगा। इससे तो इसके साथ ही मुझे भी यहाँपर मृत्युसे भेटना पड़े तो वह अच्छा है।"

थोड़ी देर बाद पुनः नलके हृदयमें विचार आया—"यह जंगल बहुत ही भयङ्कर है। इसे पार करना दमयन्तीके लिये असम्भव है। यदि किसी तरह उसने इसे पार भी कर लिया, तो मैं अब इसके मायके तो जाऊँगा नहीं। उस अवस्थामें मेरे साथ इसे न जाने कब तक और कहाँ-कहाँ भटकना पड़ेगा? क्या इससे दमयन्तीका जीवन सुखी हो सकता है? क्या इससे उसके दुःखोंका अन्त आ सकता है? नहीं-नहीं, यह रोजकी यातना, रोजका मनःकष्ट तो मृत्युसे भी बढ़कर दुःखप्रद है। मैं यह सब अपनी आँखोंसे कैसे देख सकूँगा? इससे तो यही अच्छा है, कि रातभर दमयन्तीकी रक्षाकर, सुबह

उसकी निद्रा भङ्ग होनेके पहलेही मैं यहाँसे चला जाऊँ। दमयन्ती उठेगी तो मुझे न देखकर अवश्य दुःखी होगी, किन्तु अन्तमें उन श्लोकोंको मेरा आदेश मानकर वह अवश्य अपने मायके या ससुराल चली जायगी। इससे कुछ दिनके बाद उसका जीवन सुखी हो जायगा और वह इन सब दुःखोंको स्वप्नकी भाँति भूल जायगी। मुझे भी चिरकाल तक उसका दुःख देखकर दुःखी न होना पड़ेगा। इससे बढ़कर और क्या हो सकता है।"

अन्तमें नलने यही विचार स्थिर किया। वे रातभर नंगी तलवार लिये दमयन्तीके पास खड़े रहे। सुबह उसके उठनेके पहले ही अन्तिम बार उसका मुख देख मन-ही-मन उसकी कल्याण कामना कर नलने शीघ्रता-पूर्वक वह स्थान छोड़ दिया।

सुबह निद्रा भङ्ग होनेके पहले दमयन्तीने एक स्वप्न देखा। उसे ऐसा मालूम हुआ मानो वह फल और पत्र युक्त एक आम्रवृक्ष पर बैठी है और भ्रमरका शब्द सुनती हुई उसके फल खा रही है। इतनेहीमें एक हाथीने आकर उस वृक्षको उखाड़ डाला और दमयन्ती पक्षीके

अण्डेकी तरह जमीन पर आ गिरी। यह स्वप्न देखते ही दमयन्तीकी निद्रा भङ्ग हो गयी। उसने आँखें खोलकर देखा, तो नलका कहीं पता न था। इससे वह चिन्तामें पड़ गयी और झुण्डसे बिछुड़ी हुई हरिणीकी भाँति चारों ओर चकित हो होकर देखने लगी।

जब उत्तरोत्तर अधिक समय व्यतीत हो चला और उसे कहीं भी नल दिखायी न दिये तब वह अत्यन्त व्याकुल हो उठी। वह अपने मनमें कहने लगी :—"यदि पतिदेव मुँह धोनेके लिये कहीं जल लेने गये होते, तो अब तक अवश्य ही लौट आये होते। किन्तु वे तो बिना बतलाये एक क्षणके लिये भी इस प्रकार मुझे अकेली न छोड़ते थे। तब क्या वे मुझे छोड़कर कहीं चले गये? नहीं, यह भी न होना चाहिये, क्योंकि मैंने कोई अपराध तो किया नहीं! तब क्या कोई विद्याधरी उनके रूप पर मोहित हो, उन्हें बलपूर्वक खिलानेके लिये उठा ले गयी होगी या पतिदेव ही उसकी किसी कलापर मुग्ध हो उसके साथ चले गये होंगे? हा! यह वृक्ष वही है, यह पर्वत वही है, यह अरण्य और यह पृथ्वी भी वही है,

किन्तु कमल समान लोचन वाले एक नल ही मुझे दिखायी नहीं देते। हा दैव! तूने यह मेरा अन्तिम अवलम्ब भी मुझसे क्यों छीन लिया?"

अब दमयन्ती अपने स्वप्नपर विचार करने लगी। वह कहने लगी :—"मैंने जो स्वप्न देखा है, वह निःसन्देह अच्छा नहीं है। मैंने स्वप्नमें जो आम्रवृक्ष देखा है, वह नलराज है। उसके पत्र फलादिक राज्य हुआ। फल खाना अर्थात् राज्य-सुख भोग करना। भौंरे हुए मेरे परिजन। जंगली हाथी हुआ दुर्दैव। उसने मेरे पतिको स्थान भ्रष्टकर दिया—उनका राज्य छीन लिया। मेरा वृक्षसे गिरना, नलसे पृथक होना हुआ। मुझे मालूम होता है कि मैं अब अपने प्राणनाथसे शायद न मिल सकूँगी। स्वप्नका तो यही तात्पर्य मालूम होता है।"

इस प्रकार अपने स्वप्नपर ज्यों-ज्यों विचार करती गयी। त्यों-त्यों दमयन्तीका जी दुःखी होता गया। नलका अब भी कहीं पता न था। वह अपने भाग्यको दोष देती हुई करुण-क्रन्दन करने लगी। वह कहने लगी :—"हा नाथ! हा हृदयेश्वर! आपने मुझे क्यों

छोड़ दिया ? मैंने ऐसा कौनसा अपराध किया था, जिससे आपको यह दुष्कार्य करना पड़ा ? क्या मैं आपके लिये भार रूप हो पड़ी थी ? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। सर्पको अपनी कंचुली कदापि भार-रूप नहीं मालूम होती। हे नाथ! यदि मुझे चिढ़ानेके लिये, मुझसे हँसी करनेके लिये, आप कहीं वनमें छिप रहे हों, तो अब मुझे शीघ्रही दर्शन दीजिये। आपकी यह हँसी मेरे लिये प्राणघातक हो रही है। हे वन देवता! मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ, आप मेरे प्राणेशको मुझे दिखा दीजिये, वे जिस रास्ते गये हों, वह रास्ता मुझे बता दीजिये! हा प्राणेश! मैं आपके विना यह जीवन कैसे धारण करूँगी ? हे पृथ्वी माता! तुम्हीं मुझे अपने गर्भमें स्थान देकर मुझ पर कुछ उपकार करो! वहाँ मुझे शायद कुछ शान्ति मिल सके। इस संसारमें तो अब उनका मिलना संभव नहीं प्रतीत होता।"

इस प्रकार दमयन्तीने बहुत देर तक विलाप किया। यहाँ तक कि उसके अश्रुओंसे उसका वस्त्र और उस स्थानकी भूमि सिक्त हो गयी। अन्तमें वह उठ खड़ी हुई

और आसपासके स्थानोंमें नलकी खोज करती हुई विचरण करने लगी। वह जल और स्थल, वन और पर्वत सभी स्थानोंमें गयी, सर्वत्र उन्हें खोजा, किन्तु न तो कहीं उनका पता ही चला, न उसे ज्वर पीड़ित की भाँति कहीं शान्ति ही मिली। अन्तमें वह व्याकुल हो, कर्त्तव्य विमूढ़ बन गयी और एक स्थानमें बैठकर अपनी अवस्था पर विचार करने लगी।

इसी समय उसकी दृष्टि उन दो श्लोकों पर जा पड़ी, जो राजा नलने चलते समय अपने रुधिरसे उसके वस्त्र पर लिख दिये थे। पतिदेवके हस्ताक्षर देखते ही उसका चित्त प्रफुल्लित हो उठा। उसने आनन्दपूर्वक उन श्लोकोंको पढ़ा। पढ़कर अपने मनमें कहने लगी—"अवश्य ही पतिदेव मुझे भूले नहीं हैं। उन्होंने अपने हृदयका सर्वोच्च स्थान अब भी मुझे दे रक्खा है। यदि ऐसा न होता तो वे मुझे आदेश रूपी अपना यह प्रसाद क्यों दे जाते? मैं प्राणनाथके इस आदेशको गुरुवाक्यसे भी बढ़कर मानूंगी। उनकी आज्ञा मेरे लिये सदा कल्याण प्रद ही हो सकती है। मैं पिताके घर जा सकती हूँ, किन्तु पतिके बिना

पिताका गृह भी स्त्रियोंके लिये नरक समान दुःखदायी हो पड़ता है। किन्तु मैंने पतिदेवके साथ भी मायके जानेकी इच्छा की थी, अब उन्होंने आदेश भी दिया है, इसलिये मुझे मायके अवश्य जाना चाहिये। अब जब तक वे मेरी खबर न लेंगे, तब तक वही मेरा आश्रयस्थान होगा।"

इस प्रकार अपना कर्त्तव्य निर्धारित कर, दमयन्ती वट-वृक्ष वाले मार्ग द्वारा अपने मायकेके लिये चल पड़ी। परन्तु यह मार्ग नाना प्रकारके हिंसक प्राणियोंसे पूर्ण हो रहा था। ज्योंही दमयन्ती आगे बढ़ी, त्योंही मुख फैलाये हुए व्याघ्र उसे सामने मिले। वे दमयन्ती पर आक्रमण करनेके लिये झपटे, परन्तु उन्हें वह अग्नि ज्वालाके समान दिखायी दी, इसलिये उन्हें उसके समीप आनेका साहस न हुआ।

यहाँसे आगे बढ़ने पर कहीं भयंकर सर्पोंके बिलमें दमयन्तीका पैर लग गया। इससे बड़े-बड़े विषधर साँप उसमेंसे निकल कर फुफकार मारते हुए दमयन्तीकी ओर लपके, परन्तु उसके सतीत्वके प्रभावसे वे भी उसके पास तक न पहुँच सके। इसी तरह मदोन्मत्त हाथियोंसे भी उसे काम पड़ा, किन्तु वे भी उसका कुछ अनिष्ट न कर

सके। बात यह है कि जो स्त्रियाँ सती होती हैं, उनकी रक्षा ईश्वर करता है। किसी भी उपद्रवके कारण उनका बाल बांका नहीं होता।

दमयन्तीका वेश मार्गकी कठिनाई, थकावट और धूल धक्कड़के कारण बहुत ही मलीन हो गया था। वह देखने में अब एक भिल्लिनी जैसी प्रतीत होती थी। उसके केश खुले हुए और वस्त्र गीला हो रहा था। वह दावानलके भयसे हस्तिनीकी भाँति झपटती हुई अपने मायकी ओर चली जा रही थी। इतनेहीमें उसे एक बहुत बड़ा सार्थ दिखायी दिया, जो पड़ाव डाले वहीं पड़ा हुआ था। दमयन्तीने सोचा कि यदि पुण्ययोगसे जंगलमें कोई सार्थ मिल जाता है, तो उससे व्याकुल मुसाफिरको वैसा ही लाभ होता है, जैसा डूबते हुएको समुद्रमें नौका मिल जाने पर होता है। अब मैं इसके साथ निर्विघ्न रूपसे एकाध दिन रह सकूँगी।"

यह सोचकर दमयन्ती उसी स्थानमें बैठ गयी। दुर्भाग्य वश इसी समय डाकुओंका एक बहुत बड़ा दल वहाँ आ पहुँचा और उसने चारों ओरसे उस सार्थको घेर

लिया। परन्तु दमयन्ती जैसी महासतीके साथ रहने पर वे भला उसका क्या बिगाड़ सकते थे! दमयन्तीने उन डाकुओंके सरदारसे कहा :—"यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो, तो इसी समय यहाँसे चले जाओ। मैंने प्राणपणसे इस सार्थकी रक्षा करना स्थिर किया है।"

परन्तु दमयन्तीका मलीन वेश देखकर उसने समझा कि यह कोई पगली स्त्री है, इसलिये उसने उसकी बात पर कोई ध्यान न दिया। दमयन्तीने जब देखा, कि वे ऐसे माननेवाले नहीं हैं और सार्थको लूटनेकी तैयारी कर रहे हैं, तब उसने कई बार भीषण हुँकार किये। उसके इस शब्दसे सारा जंगल भर गया। डाकुओंको तो ऐसा मालूम हुआ मानों भयंकर वज्रपातके कारण उनके कान बहरे हो गये हैं। जिस प्रकार धनुषका शब्द सुनकर कौवे भगते हैं, उसी प्रकार दमयन्तीका वह शब्द सुनकर डाकू पलायन कर गये। उनसे सार्थका कुछ भी अनिष्ट न हुआ।

दमयन्तीका यह अद्भुत चमत्कार देखकर सार्थके आदमी उसके बड़े भक्त बन गये। वे कहने लगे :—

"यह अवश्य कोई देवी है, जो हमारे सुकृतसे आकर्षित हो यहाँ आयी है। यदि आज इसने हमारी रक्षा न की होती, तो हमलोग वे मौत मारे जाते और हमारी सारी सम्पत्ति लुट जाती।

डाकुओंके भग जाने पर सार्थवाहक दमयन्तीके पास आया और माताकी भाँति श्रद्धापूर्वक उसे प्रणाम कर कहने लगा :—"हे माता! आप कौन हैं और इस मलीन वेशमें यहाँ क्यों विचरण कर रही हैं?"

दमयन्तीको आज बहुत दिनोंके बाद मनुष्यकी सूरत दिखायी दी थी। कोशला नगरी छोड़नेके बाद आज पहले पहल ही यह ऐसा आदमी मिला था, जिसने उससे सुख दुःख पूछा था। इसलिये उसका प्रश्न सुनकर दमयन्तीकी आँखोंमें आँसू भर आये। उसने सार्थपतिको अपना बन्धु मानकर नलकी द्यूत क्रीड़ासे लेकर अब तकका सारा हाल उसे कह सुनाया।

दमयन्तीका प्रकृत परिचय पाकर सार्थपतिको बड़ाही आश्चर्य हुआ। उसने हाथ जोड़कर कहा :—"हे महासती! आप राजा नलकी पत्नी हैं, अतः हमारे लिये

परम पूजनीय हैं। आपके दर्शन पाकर हमलोग आज धन्य हो गये हैं। आपने डाकुओंसे भी हमारी रक्षा की है, इसलिये हम और भी आपके ऋणी हैं। आप मेरे साथ चलकर मेरे स्थानको पावन कीजिये। हमलोग आपका जितना सत्कार करें, वह थोड़ा ही है।"

इतना कह वह सार्थपति बड़े आदरके साथ दमयन्तीको अपने तम्बूमें लिवा ले गया। वहाँपर उसने भोजनादिक द्वारा उसका सत्कार किया, शारीरिक और मानसिक विश्राम मिलनेके कारण दमयन्ती की थकावट भी दूर हो गयी और वह पहले की अपेक्षा अधिक स्वस्थ, शान्त तथा प्रसन्न दिखायी देने लगी।

संयोगवश इसी समय आकाश काले-काले बादलोंसे घिर आया और बड़े वेगके साथ मूशलाधार वृष्टि होने लगी। जलकी अधिकताके कारण उस जंगलकी समस्त भूमि सरोवरके रूपमें परिणत हो गयी। जिधर देखें, उधर जल-ही-जल दिखायी देने लगा। कीचड़-कादेके कारण चार कदम भी चलना कठिन हो गया। वायुके शीतल झकोरे कलेजेको भी कँपाये डालते थे। पूरे तीन दिन

तक यही अवस्था रही। इन तीन दिनोंमें बेचारे पक्षी तक अपने घोंसलोंसे बाहर न निकल सके। चौथे दिन वृष्टि बन्द हुई, बादल छँट गये और सूर्य भगवान अपने स्वाभाविक उत्ताप द्वारा पुनः सबके शरीरमें नवजीवनका संचार करने लगे। सौभाग्यवश दमयन्तीको इस वर्षा और तूफानके कारण कोई कष्ट न हुआ। सार्थवाहकने उसके आरामके लिये ऐसा प्रबन्ध कर दिया था, कि उसे यह भी अनुभव न होता था कि मैं जंगलमें अपरिचित आदमियोंके बीचमें हूँ। बल्कि उसे ऐसा मालूम होता था, मानो मैं अपने पिताके घर पहुँच गयी हूँ।

वर्षा बन्द हो जानेके बाद भी दो तीन दिन तक उस सार्थने अपना पड़ाव वहाँसे न उठाया। इसके बाद जब रास्ता साफ हो गया, तब उसने वहाँसे आगेके लिये प्रस्थान किया। दमयन्ती भी भाग्य भरोसे दुःखित हृदय से वहाँसे आगेके लिये चल पड़ी।

कुछ दूर जाने पर दमयन्तीको साक्षात् यमराजके समान एक भयंकर राक्षस मिला। उसकी जीभ ज्वालाके समान, मुखाकृति विकराल और भयंकर, पैर तालवृक्षके

समान ऊँचे, रङ्ग काजलके समान काला और स्वभाव जंगली पशुओंकी भाँति हिंसक था। दमयन्तीको देखते ही वह प्रसन्न हो उठा। उसने कहा :—"हे मानुषी! मैं बहुत दिनोंका भूखा हूँ और किसी शिकारकी खोजमें इधर-उधर घूम रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि मेरे भाग्यसे-ही तुम यहाँ आ गयी हो। अब मैं तुम्हें भक्षण कर अपनी क्षुधा शान्त करूँगा।"

राक्षसके वचन सुनकर दमयन्तीका हृदय भयसे काँप उठा। फिर भी उसने हिम्मतसे काम लेकर कहा :—"हे राक्षस! तू पहले मेरी बात सुन ले, फिर तुझे जो अच्छा लगे सो करना। मेरे हृदयमें परम आर्हत धर्म बसा हुआ है, इसलिये मैं मृत्युसे तो जरा भी नहीं डरती, परन्तु मुझे तेरा अनिष्ट होनेका भय जरूर है। मैं पर-स्त्री हूँ। यदि तू मुझे स्पर्श करेगा, तो भयंकर विपत्तिमें फँस जायगा, तेरा सारा सुख नष्ट हो जायगा।"

दमयन्तीके इन मधुर वचनोंका उस राक्षस पर गहरा प्रभाव पड़ा। उसने प्रसन्न होकर कहा :—"हे भद्रे! तुम्हारे मधुर वचन सुनकर मैं अपनी भूख-प्यास भूल

गया हूँ। अब मैं तुम्हें भक्षण करना नहीं चाहता। बल्कि मेरे द्वारा तुम्हारा कुछ उपकार हो सके तो उसे करनेके लिये भी मैं सहर्ष तैयार हूँ।"

दमयन्तीने पूछा :—"क्या तुम सचमुच मेरा उपकार करना चाहते हो? अच्छा, यदि ऐसी ही बात है, तो बतलाओ कि मेरे पतिदेव मुझे अब कब मिलेंगे?"

राक्षसने अवधि ज्ञानसे जानकर कहा :—"हे यशस्विनी! प्रवासके दिनसे लेकर ठीक बारह वर्ष पूर्ण होने पर तुम्हारे पतिसे तुम्हारी भेट होगी। उस समय तुम अपने पिताके घरमें होगी। वहाँपर तुम्हारे इस वियोग का अन्त आयगा। मेरा यह वचन झूठा नहीं पड़ सकता। इस समय हजार उपाय करने पर भी उनसे भेट नहीं होगी, इसलिये उसके लिये चेष्टा करना, व्याकुल होना या रोना-धोना बेकार है। तुम्हें मार्गकी कठिनाइयोंसे भी अब घबड़ानेकी जरूरत नहीं। मैं तुम्हें क्षणमात्रमें तुम्हारे पिताके घर पहुँचा सकता हूँ।"

दमयन्तीने कहा :—"नहीं भाई, यह कष्ट करनेकी जरूरत नहीं। मैं पर-पुरुषके साथ कहीं भी जाना पसन्द

नहीं करती। तुमने मेरे पतिके आगमनका जो समाचार बतलाया है, वही मेरे लिये बहुत है। मुझे इतनेसे ही सन्तोष है। तुम अब सहर्ष जा सकते हो। तुम्हारा कल्याण हो।

यह सुनकर वह राक्षस अपना ज्योतिमय रूप दिखाकर बिजलीके पुञ्जकी भाँति तुरन्त वहाँसे आकाशकी ओर उड़ गया।

दमयन्तीको जब यह मालूम हुआ कि उसके पतिका प्रवासकाल बारह वर्षका है, तब उसने प्रतिज्ञा की कि जब तक पतिदेव नहीं मिलेंगे, तब तक रंगे हुए वस्त्र, ताम्बूल, आभूषण, विलेपन और छः विगय अपने काममें न लाऊँगी। साथ ही उसने मायके जानेका विचार भी थोड़े दिनोंके लिये त्याग दिया। वर्षाकाल भी समीप आ गया था, इसलिये वह चुपचाप एक पर्वतकी गुफामें चली गयी और वहींपर रहकर चातुर्मास व्यतीत करने लगी।

दमयन्तीने उस गुफामें श्रीशान्तिनाथ भगवानका एक बिम्ब बनाकर स्थापित किया। वह सुबह शाम जंगलसे ताजे पुष्प चुन लाती और उन्हीं द्वारा भक्ति पूर्वक उस

बिम्बका पूजन करती। इसके साथ ही वह तरह-तरहके व्रत, उपवास और तपका भी अनुष्ठान करती। और जब वे पूर्ण होते तब परम श्राविका की भाँति बीज रहित प्रासुक फलोंद्वारा पारणकर उनकी पूर्णाहुति करती।

इस प्रकार दमयन्तीके दिन जपतपमें व्यतीत हो रहे थे। उधर दो-चार दिनके बाद सार्थवाहकको दमयन्तीका स्मरण आया। उसने जब देखा, कि उसका कहीं पता नहीं है, तब उसे बड़ीही चिन्ता हुई और वह वापस लौटकर दमयन्तीकी खोज करने लगा। अन्तमें उस गुफाके अन्दर दमयन्तीसे उसकी भेट हो गयी। जिस समय वह वहाँ पहुँचा उस समय दमयन्ती जिन बिम्बका पूजन कर रही थी। उसे सकुशल देखकर सार्थवाहककी चिन्ता दूर हो गयी और वह उसे प्रणाम कर विनयपूर्वक उसी जगह बैठ गया।

प्रभु पूजा समाप्त होनेपर दमयन्तीने सार्थवाहकका स्वागत किया और बड़े प्रेमसे उसका कुशल समाचार पूछा। इसी समय उनका शब्द सुनकर कुछ तापस भी उस गुफामें जा पहुँचे और वहीं बैठकर उनकी बातें सुनने

लगे। वर्षाके दिन तो थे ही, शीघ्रही बादल घिर आये और मूशलाधार वृष्टि होने लगी। उस गुफामें इतना स्थान न था, कि सब तापसोंका उसमें समावेश हो सके। इसलिये वे सब वर्षाके कारण व्याकुल हो उठे। उन्होंने दमयन्तीसे पूछा :—"इस समय होमलोग कहाँ जायँ और किस प्रकार इस जलसे अपनी रक्षा करें?"

दमयन्तीने उनकी घबड़ाहट देखकर उन्हें सान्त्वना दी और उनके चारों ओर एक रेखा खींचकर कहा :— "यदि मैं सती, परम श्राविका और सरल चित्तवाली होऊँ तो बाहर मूशलाधार वृष्टि होने पर भी इस रेखाके अन्दर एक भी बूँद न गिरे।" दमयन्तीके मुखसे यह वचन निकलते ही उतने स्थानमें इसतरह जलका गिरना बन्द हो गया, मानो किसीने छाता तान दिया हो। उसका यह चमत्कार देखकर सब तापस बड़े विचारमें पड़ गये और अपने मनमें कहने लगे कि निःसन्देह यह कोई देवी है। वर्ना मानुषीमें इतनी शक्ति कहाँ कि वह इस प्रकार पृथ्वीपर जलका गिरना रोक दे। ऐसा सौन्दर्य भी मानुषीमें होना असम्भव ही है। अस्तु।

इसके बाद उस वसन्त सार्थवाहकने पूछा :—"हे देवि ! आप यह किस देवताका पूजन कर रही हैं।"

दमयन्तीने कहा :—"यह तीनों लोकके नाथ अरिहन्त देवका विम्ब है। यह परमेश्वर हैं और मन-वाञ्छित देनेवाले हैं। इन्हींकी आराधनाके कारण मैं यहाँ निर्भय होकर रहती हूँ। इनके प्रभावसे मुझे व्याघ्रादिक हिंसक प्राणी भी हानि नहीं पहुँचा सकते।"

इस प्रकार अरिहन्त भगवानकी महिमाका वर्णन कर दमयन्तीने सार्थवाहकको अहिंसामूलक जैनधर्म कह सुनाया। उसे सुनकर उसने जैनधर्म स्वीकार कर लिया। उन तापसोंने भी उसके उपदेशसे सन्देह रहित जिनधर्म स्वीकार किया और अपने तापस धर्मको त्याग दिया।

इसके बाद वसन्त सार्थवाहकने उसी जगह एक नगर बसाया और वहाँपर शान्तिनाथ भगवानका एक चैत्य बनवाकर उसमें अपना सारा धन लगाया। इसके बाद वह सार्थवाहक समस्त तापस और उस नगरके निवासी लोग आर्हत धर्मकी साधना करते हुए अपना समय व्यतीत करने लगे। वहाँपर रहनेवाले पाँच सौ

तापसोंको सम्यक् ज्ञान प्राप्त हुआ, इसलिये उस नगरका नाम तापसपुर रक्खा।

एकदिन दमयन्तीको रात्रिके समय उस पर्वतके शिखर पर बड़ा प्रकाश दिखायी दिया। साथ ही उसने देखा कि वहाँपर बड़ी धूम मची हुई है और सुर, असुर तथा विद्याधर इधर उधर आ जा रहे हैं। उनके जय जय कारसे समस्त तापस तथा वसन्त सार्थवाहक आदिकी निद्रा भंग हो गयी। पर्वत पर क्या हो रहा है, यह जाननेकी सबको बड़ी इच्छा हुई, इसलिये सब लोग सती दमयन्तीको आगे करके उस पर्वत पर चढ़ गये। वहाँ पहुँचने पर उन्होंने देखा कि सिंहकेसरी नामक साधुको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है और देवतागण उसीका उत्सव मना रहे हैं।

दमयन्ती तथा उसके समस्त संगी यह देख कर बहुत ही प्रसन्न हुए। दमयन्ती मुनिराजको वन्दन कर उनके चरणोंके निकट बैठ गयी। पश्चात् उसके संगी भी मुनिराजको वन्दन कर यथोचित स्थानमें बैठ गये। इसी समय उस साधुके गुरु यशोभद्रसूरि वहाँ आ पहुँचे। उन्हें यह

जान कर बहुत ही आनन्द हुआ कि उनके शिष्यको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है। वे भी उन्हें वन्दन कर उनके सामने बैठ गये। इस अवसर पर करुणासागर सिंहकेसरीने सबको प्रसंगोचित धर्मोपदेश दिया। उन्होंने कहा :—"हे भव्य जनो! संसारमें मनुष्य जन्म अत्यन्त दुर्लभ है। न जाने कितनी योनियोंमें भटकनेके बाद जीवको पुण्य-प्रभावसे इसकी प्राप्ति होती है, इसलिये इसे व्यर्थ न गवाँ-कर सफल करना चाहिये। जीव दया रूप जिन धर्म ही इस असार संसारमें सार रूप है। यह मनुष्य जन्मको सफल बना देता है, इसलिये हे भव्य जनो! यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो, तो जिनधर्म स्वीकार करो!"

इस प्रकार धर्मोपदेश देनेके बाद मुनिने तापस-कुल-पतिका संशय दूर करनेके लिये कहा :—"हे तापस कुलपते! इस दमयन्तीने तुम्हें जो धर्म बतलाया है, वह बहुत ही उत्तम है। यह महासती जिन धर्ममें अनुरक्त है, इसलिये यह मिथ्या वचन नहीं कह सकती। यह तो तुम अपनी आँखोंसे भी देख चुके हो, कि इसके सतीत्वके प्रभावसे जितने स्थानमें तुमलोग बैठे थे, उतने स्थानमें

वर्षाका एक बूँद भी न गिरा और उसके चारों ओर मूशलधारा वृष्टि होती रही। वास्तवमें इस सतीका प्रभाव वर्णनातीत है। इसके सतीत्व और श्राविका धर्मके कारण जंगलमें भी देवतागण इसे सदा सहाय करते हैं। इसीलिये समस्त उपद्रवोंसे इसकी रक्षा होती है और कोई भी इसका बाल बाँका नहीं कर पाता। एकबार इस सार्थ-वाहकके संगियोंको डाकुओंने घेर लिया था। उस समय इस महासतीने केवल अपने हुंकार द्वारा उन्हें भगा कर सार्थकी रक्षा की थी।"

इस प्रकार केवली भगवान दमयन्तीकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा कर रहे थे। इतनेमें वहाँ एक महर्द्धिक देव आ पहुँचा। वह दमयन्तीको वन्दन कर कहने लगा :—
"हे भद्रे! मैं इस तपोवनके कुलपतिका कर्पर नामक शिष्य था और तपश्चर्य्याके कारण क्रोधी हो गया था। पञ्चाग्निका साधक होने पर भी मुझे तपोवनके तापस पूजते न थे। वे कभी वचनों द्वारा भी मुझे सन्तुष्ट न करते थे। मैं अभिमानी तो था ही, इसलिये उनके इस कार्यसे मुझे क्रोध आगया और मैं वहाँसे दूसरे स्थानको चला गया।"

उस स्थानको जाते समय, रात्रिके घोर अन्धकारमें मैं एक गुफाके पास ठोकर खाकर गिर गया और मेरे कई दाँत टूट गये। मैं इस वेदनासे व्याकुल हो उठा और सात दिन तक वहीं पड़ा रहा। परन्तु इतने पर भी उन तापसोंको दया न आयी। मेरी सेवा-सुश्रुषा तो करना तो दूर रहा, उन्होंने मुझे मुँहसे भी न बुलाया। बल्कि यों कहना चाहिये कि जिस प्रकार घरसे सर्प निकल जाने पर लोग प्रसन्न होते हैं, उसी प्रकार वहाँसे मेरे चले आने के कारण वे सब प्रसन्न हो उठे। उनकी यह मनोवृत्ति देख कर मुझे और भी क्रोध आगया। उसी दुःखानुबन्धी क्रोधमें मेरी मृत्यु हो गयी और मैं इन्हीं तापसोंके वनमें एक महासर्पके रूपमें उत्पन्न हुआ।

इसके बाद हे देवि! एकबार आप पतिवियोगसे दुःखित हो कहीं जा रही थी। उस समय आपको देखते ही मैं आपको काटने दौड़ा। परन्तु आपने मुझे देखते ही नमस्कार मन्त्रका उच्चारण किया। इसलिये मैं शक्तिहीन बन गया और मेरी गति इस प्रकार रुक गयी, जैसे किसीने मुझे किसी बन्धन द्वारा जकड़ दिया हो। इसके

बाद में फिर एक गुफामें जा छिपा और मेंढक आदि जीवोंको खा-खा कर अपने दिन बिताने लगा।

इस घटनाके कुछ दिन बाद, एक दिन घोर वृष्टि हो रही थी। आपको अनेक तापस घेरे हुए बैठे थे और आप उन्हें धर्मोपदेश दे रही थीं। सौभाग्यवश आपके कुछ शब्द मेरे कानमें भी पड़ गये। आपने तापसोंको बतलाया था कि जो जीवोंकी हत्या करता है, वह संसार में सर्वत्र उसी तरह दुःखित होता है, जिस प्रकार मरु-भूमिमें पथिक। आपके यह वचन सुनकर मैं अपने मनमें कहने लगा :—"मैं तो नित्य ही जीवहिंसामें लिप्त रहता हूँ, अतः मेरी न जाने कौन गति होगी?" अब मैं इसी बात पर विचार करने लगा और रात दिन अपनी भविष्य-चिन्तासे व्याकुल रहने लगा।

चिन्ता करते-करते मुझे ऐसा मालूम होने लगा मानो इन तापसोंको मैंने कहीं देखा है। बारंबार इसी विषय पर विचार करनेसे मुझे निर्मल जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। मुझे पूर्व जन्मकी सभी बातें इस प्रकार याद आने लगी, मानो कलके किये हुए कार्य हों। इससे

मुझे वैराग्य आ गया और मैंने अनशन कर अपना वह शरीर त्याग दिया।

इस बार मृत्युके बाद मैं सौधर्म देवलोकमें देव हुआ। मैं इस समय कुसुम समृद्ध विमानमें वास करता हूँ। मेरा नाम कुसुमप्रभ है। आपके प्रसादसे अब मैं स्वर्गीय सुख उपभोग करता हूँ। मेरे दिन बड़े आनन्दमें कट रहे हैं। यदि आपका धर्मवचन मेरे कानोंमें न पड़ा होता, तो मेरी न जाने क्या दशा होती? शायद मैं अनन्त काल-तक उसी पाप-पंकमें फँसा रहता और मेरी अवस्था उत्तरोत्तर खराब होती जाती। इस उपकारके कारण मैं आपका चिर-ऋणी रहूँगा, आपको कभी न भूलूँगा। इस समय अवधि ज्ञानसे मुझे मालूम हुआ, कि आप यहाँ पधारी हैं, इसीलिये मैं आपके दर्शन करने आया हूँ। मैं अपने को आपका धर्मपुत्र मानता हूँ।"

इस प्रकार दमयन्तीको अपना परिचय देकर उसने उन तापसोंसे कहा :—"भाइयो! मेरे उन अपराध और आचरणोंको आपलोग क्षमा कर दें, जो मैंने क्रोधके कारण किये थे। आपलोगोंको अब श्रावक धर्म प्राप्त

हुआ है, जो सब धर्मोंमें श्रेष्ठ है। इस पर सदा दृढ़ रहना और रत्नकी भाँति यत्नपूर्वक इसकी रक्षा करना !"

इतना कह वह देव उठ खड़ा हुआ और क्षणमात्रमें उस गुफासे एक सर्पका शरीर उठा लाया। उसे उसने नन्दीवृक्ष पर लटका कर पुनः उन तापसोंसे कहा :—
"जो मनुष्य क्रोध करता है, वह इसी तरह भुजंग होता है। प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा शिक्षा देनेके लिये ही मैं अपने इस शरीरको यहाँ उठा लाया हूँ।"

कुलपति यद्यपि पहलेसे ही सम्यक्त्व धारी था, तथापि कुसुमप्रभकी बातें सुनकर उसे विशेष रूपसे वैराग्य आ गया। उसने केवली भगवानको वन्दन कर उनसे दीक्षाकी याचना की। केवली भगवानने कहा :—
"तुम्हें मेरे गुरुदेव यशोभद्रसूरि दीक्षा देंगे। मैं तुम्हें दीक्षा देनेमें असमर्थ हूँ।"

केवली भगवानके इस उत्तरसे कुलपतिको बड़ा ही आश्चर्य हुआ। किन्तु उसने उस आश्चर्यको प्रकट न कर एक दूसरा ही प्रश्न पूछा। उसने कहा :—"हे भगवन्! आपने दीक्षा किस प्रकार ली थी?"

केवली भगवानने कहा :—"मेरी दीक्षाकी भी एक विचित्र कहानी है, किन्तु तुम सब लोगोंका कौतूहल निवारण करनेके लिये मैं उसे सहर्ष वर्णन करता हूँ। सुनो, मेरा जन्म कोशला नगरीमें हुआ था। मैं राजा नलके लघुबन्धु कुबेर राजाका पुत्र हूँ। संगानगरीके केसरी राजाकी बन्धुमती नामक कन्यासे मेरा विवाह हुआ था। विवाहके बाद मैं उस नवोढ़ाको साथ लेकर जिस समय अपने नगरकी ओर आ रहा था, उसी समय मार्गमें मुझे यह गुरुदेव दिखायी दिये। इनके साथ शिष्योंका भी एक बहुत बड़ा दल था! मैंने इन्हें भक्ति-पूर्वक वन्दन कर इनका धर्मोपदेश सुना।

धर्मोपदेश सुननेके बाद मैंने मुनिराजसे अपना आयुष्य पूछा। उन्होंने बतलाया कि तुम्हारा आयुष्य अब केवल पाँच ही दिनका है। मृत्युको समीप जानकर मेरा हृदय भयसे काँप उठा। मुझे भयभीत देखकर गुरु-देवने कहा :—"हे वत्स! भयभीत होनेसे कोई लाभ नहीं। ऐसे समयमें तो धैर्य धारण करना चाहिये। मेरी बात मानो तो तुम दीक्षा ले लो। यदि मनुष्य एक दिन

भी दीक्षाकी आराधना करता है, तो वह स्वर्ग और मोक्ष सुखका अधिकारी हो जाता है।"

गुरुदेवके यह वचन सुनकर मैंने तुरन्त उनके निकट दीक्षा ले ली। उन्हींके उपदेशसे मैं यहाँ चला आया था। यहाँपर शुक्ल ध्यानके कारण मेरे घातिककर्म क्षय हो गये और मुझे मोक्ष सुख देनेवाला केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ।"

इतना कह केवली भगवान शान्त हो गये। योग-निरोध तो वे करते ही थे। इसलिये शीघ्र ही भवोपग्राही चार कर्मोंका क्षय कर वे परमपदके अधिकारी हुए। देवतागण उनके शरीरको पवित्र क्षेत्रमें ले गये और वहाँ-पर उन्होंने उसका अग्नि-संस्कार किया।

इसके बाद उस कुलपतिने श्रीयशोभद्रसूरिके निकट दीक्षा ले ली। दमयन्तीको भी उसी समय दीक्षा लेनेकी इच्छा हुई। उसने इसके लिये मुनिराजसे प्रार्थना भी की, किन्तु उन्होंने यह कहकर उसे दीक्षा देनेसे इन्कार कर दिया कि अभी तुम्हें नलके साथ भोग-भोगने बाकी हैं, इसलिये तुम दीक्षाके योग्य नहीं हो।"

दमयन्ती मुनिराजका यह वचन सुनकर मौन हो गयी। सुबह मुनिराज पर्वतसे उतरकर तापसपुर पधारे और दमयन्तीके अनुरोधसे नगर निवासियोंको धर्मोपदेश दिया। तत्पश्चात् नगर निवासियोंके हृदयमें सम्यक्त्वका बीज बोकर मुनिराज वहाँसे दूसरे स्थानके लिये प्रस्थान कर गये।

मुनिराजके चले जानेपर दमयन्ती पुनः अपनी गुफामें लौट आयी। वह मलीन वस्त्र धारण कर साध्वीकी भाँति धर्मध्यानमें लीन रहने लगी। एक-एक करके उसने सात वर्ष उसी गुफामें व्यतीत कर दिये। एक दिन गुफाके बाहरसे किसी मुसाफिरने उससे कहा:—"हे दमयन्ती! मैंने अमुक स्थानमें आज तुम्हारे पतिको देखा है।"

मुसाफिरके यह वचन कानमें पड़ते ही दमयन्तीका शरीर रोमाञ्चित हो उठा। वह उसे देखनेके लिये गुफासे बाहर निकल आयी। उसने चारों ओर नजर दौड़ायी, किन्तु कहीं भी उसे वह मनुष्य न दिखायी पड़ा, जिसने उसे यह प्रिय वचन सुनाये थे। उसने प्रत्येक शब्द अपने

"हा दैव! अब मैं क्या करूँ और कहां जाऊँ ?"

(पृष्ठ ३३५)

कानोंसे स्पष्ट सुना था, इसलिये यह भी न कह सकती थी, कि उसे किसी प्रकार भ्रम हुआ था। अतः जिस ओरसे वह शब्द आया था, उसी ओरको वह चल पड़ी और इधर-उधरके वृक्षोंमें उसकी खोज करने लगी। उसने बड़ी देर तक उसकी खोज की, किन्तु कहीं भी उसका पता न चला।

दमयन्ती इससे बहुत निराश हो गयी। उसने अपनी गुफाकी ओर वापस लौटनेका विचार किया, तो मार्गमें वह रास्ता ही भूल गयी। दमयन्ती अब सचमुच बड़े चक्करमें पड़ गयी। वह कभी खड़ी होती, कभी बैठ जाती और कभी भूमिपर लोटने लगती। निराशा और दुःखके कारण उसके नेत्रोंसे अश्रुधारा बह निकली। वह कहने लगी :—"हा दैव! अब मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ?"

बड़ी देरतक इधर-उधर भटकनेके बाद फिर दमयन्ती एक ओरको चल पड़ी। उसे ऐसा मालूम होने लगा, मानो उसे ठीक रास्ता मिल गया है, और इस रास्तेसे उसे उस गुफा तक पहुँचनेमें कोई कठिनाई न

होगी। परन्तु कुछ दूर आगे बढ़ते ही एक विकराल मुखी राक्षसीने उसका रास्ता रोक लिया और उसने लाल जीभ लपकाकर कहा :—"हे मानुषी! अब मैं तुझे खा डालूँगी। तू मेरे हाथसे निकल कर नहीं जा सकती।"

दमयन्ती इससे बड़े संकटमें पड़ गयी। उसने इष्ट-देवका स्मरण कर कहा:—"यदि मैंने नलके सिवा स्वप्नमें भी अन्य पुरुषका चिन्तन किया हो, यदि मेरा सतीत्व अखण्ड हो, तो इस राक्षसीका विचार पलट जाये और यह शत्रुता छोड़ कर मित्रताकी दृष्टिसे मुझे देखने लगे।"

दमयन्तीकी इस प्रार्थनाके कारण उसी समय राक्षसी के विचार पलट गये और वह उसका रास्ता छोड़ कर न जाने कहाँ लोप हो गयी।

वहाँसे आगे बढ़ने पर दमयन्तीको दूरसे एक नदी दिखायी दी। तृषाके कारण उसका कंठ सूख रहा था, इसलिये उसने सोचा कि वहाँ पहुँचने पर अपनी तृषा शान्त करूँगी। किन्तु जब वह उस नदीके पास पहुँची, तब उसने देखा कि वह तो एकदम सूखी पड़ी है। उस समय उसकी ठीक वही अवस्था हुई, जो जलके धोखे

बालूके पास पहुँचने पर मृगकी होती है। दमयन्ती यदि प्यासी न होती तो अवश्य उस स्थानसे योंही आगे बढ़ जाती, किन्तु प्यासके कारण उससे बिना कुछ किये न रहा गया। इसलिये उसने अपने दाहिने पैरकी एंड़ी जमीनपर पटक कर कहा :—"यदि मेरा हृदय सम्यग् दर्शनसे पूर्ण हो, तो यहाँ गंगा जलकी भाँति निर्मल नीर प्रकट हो। उसके मुखसे यह वचन निकलते ही उस नदीमें निर्मल जलकी प्रचण्ड धारा प्रवाहित होने लगी। दमयन्ती उसके द्वारा अपनी तृषा शान्त कर वहाँसे आगेके लिये चल पड़ी।

दमयन्तीने सोचा था कि इस रास्तेसे वह शीघ्र ही अपनी तापसपुरवाली गुफामें पहुँच जायगी, किन्तु यह उसकी भूल थी। उसे अब तक ठीक रास्ता न मिला था और वह इधर उधर भटक रही थी। चलते-चलते जब वह थक गयी, तो एक वट-वृक्षके नीचे बैठ कर विश्राम करने लगी। उसी समय एक सार्थके कुछ आदमी, जो माल लेने गये थे, उधरसे आ निकले। दमयन्तीको देख-कर उनमेंसे एकने पूछा :—"हे भद्रे! तुम कौन हो

और यहाँपर क्यों बैठी हो ? हमें तो तुम कोई देवीसी प्रतीत होती हो !"

दमयन्तीने कहा :—"नहीं, मैं कोई देवी नहीं, एक साधारण मानुषी हूँ। इस समय मैं जंगलमें ही रहती हूँ। किन्तु मुझे तापसपुर जाना है। इसलिये यदि तुम्हें उसका रास्ता मालूम हो तो मुझे उस रास्ते तक पहुँचा देनेकी कृपा करो !"

आदमीने कहा :—"जिस ओर सूर्यास्त होता है, उस ओर सीधी चली जाने पर तुम तापसपुर पहुँच जाओगी। वहाँका रास्ता हमें अवश्य मालूम है, किन्तु समयाभावके कारण हमलोग तुमको वहाँतक पहुँचाने नहीं जा सकते। हमारा सार्थ यहाँ पास ही में टिका हुआ है। यदि तुम हमारे साथ वहाँ चलो, तो हमलोग तुम्हें किसी नगरमें पहुँचा सकते हैं।"

दमयन्तीने देखा कि इधर उधर भटकनेकी अपेक्षा उनके साथ किसी नगरको पहुँच जाना अच्छा है, इसलिये वह उनके साथ हो गयी। पड़ावमें पहुँचने पर सार्थवाहक धनदेव उसके पास दौड़ आया। उसने

पूछा :—"हे भद्रे ! तुम कौन हो और यहाँपर क्यों आयी हो ?"

दमयन्तीने अपरिचित मनुष्योंको अपना प्रकृत परिचय देना उचित न समझा। इसलिये उसने कहा :—"हे सार्थपति ! मैं एक वणिककी पुत्री हूँ। मैं अपने पतिके साथ अपने मायके जा रही थी। एक रातको जब मैं सो गयी, तब न जाने क्या सोचकर मेरा पति मुझे छोड़कर चला गया। मैं उसीको खोजती हुई चारों ओर भटक रही थी, इतनेहीमें तुम्हारे आदमियोंसे मेरी भेंट हो गयी और वे मुझे यहाँपर लिवा लाये। हे महाभाग ! अब तुम मुझे किसी नगरमें पहुँचा दोगे तो बड़ी कृपा होगी।"

सार्थपतिने कहा :—"मैं अचलपुरकी ओर जा रहा हूँ। तुम भी मेरे साथ वहाँ चल सकती हो। मेरे साथ चलनेसे तुम्हें किसी प्रकारका कष्ट न होने पायगा। मैं तुम्हें अपनी कन्या समझकर तुम्हारे आरामका ख्याल रक्खूँगा।"

दमयन्ती अचलपुर जानेके लिये राजी हो गयी, इस-

लिये सार्थवाहकने उसके लिये एक गाड़ीका प्रबन्ध कर दिया। दमयन्ती उसीमें बैठकर यात्रा करने लगी।

एकदिन किसी पहाड़की तराईमें, एक सुन्दर झरनेके पास सार्थवाहने पड़ाव डाला। रातमें जिस समय दमयन्ती सोनेकी तैयारी कर रही थी, उस समय उसने सार्थके किसी मनुष्यको नमस्कार महामन्त्रका पाठ करते सुना। उसे सुनकर दमयन्ती तुरन्त उठ बैठी। उसने सार्थवाहकसे कहा :—"नवकार मन्त्रका पाठ करनेवाला यह मनुष्य मेरा सहधर्मी है। इसलिये आपकी आज्ञा हो तो मैं उसे देखना चाहती हूँ।"

सार्थवाहकने इसमें कोई आपत्ति न की। बल्कि वह स्वयं पिताकी भाँति उसकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये उसे उस सहधर्मीके पास लिवा ले गया। दमयन्तीने वहाँ जाकर देखा कि वह साक्षात् शरीरधारी श्रावककी भाँति अपने तम्बूमें बैठा है और एक पटपर खिंचे हुए आर्हत बिम्बकी वन्दना कर रहा है। दमयन्ती भी उस बिम्बको वन्दनाकर वहींपर बैठ गयी। उस परम श्रावकको देखकर उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा था।

जबतक वह चैत्य-वन्दन करता रहा, तब तक दमयन्ती चुपचाप बैठी रही। चैत्य-वन्दन पूर्ण हो जानेपर उसने प्रेमपूर्वक पूछा :—"हे बन्धो! यह किस जिनेश्वरका बिम्ब है?"

श्रावकने कहा :—"हे धर्मशीला! यह बिम्ब भविष्यमें होनेवाले उन्नीसवें तीर्थंकर श्रीमल्लिनाथका है। मैं भावी तीर्थंकरका यह बिम्ब क्यों पूजता हूँ, यह प्रश्न तुम्हारे हृदयमें उठना स्वाभाविक है। हे कल्याणी! तुम्हारे कल्याणके लिये मैं स्वयं तुम्हें यह रहस्य बतलाता हूँ। ध्यानसे सुनो :—

"मैं काञ्चीनगरीका एक वणिक हूँ। एकबार वहाँ-पर ज्ञानवान् धर्मगुप्त नामक मुनिका आगमन हुआ। उस समय मैं उनकी सेवामें उपस्थित हुआ, और उन्हें वन्दन करनेके बाद मैंने पूछा :—"हे भगवन्! मेरी मुक्ति किस तीर्थंकरके तीर्थमें होगी?"

मुनिराजने मेरे इस प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा :—"तुम देवलोकसे च्युत होकर मल्लिनाथके तीर्थमें मिथिला नगरीके प्रसन्नचन्द्र नामक राजा होगे। उन्नीसवें तीर्थंकर

श्रीमल्लिनाथका दर्शन प्राप्त होनेपर तुम्हें केवलज्ञान उत्पन्न होगा और उसी समय तुम मोक्षके अधिकारी होगे।"

हे धर्मज्ञे! उसी समयसे मैं श्रीमल्लिनाथ भगवानका विम्ब पटमें अंकित कर भक्तिपूर्वक उसका पूजन करता हूँ। यही मेरी इस पूजाका रहस्य है। हे पुण्यवती! मुझे अपना धर्म बन्धु मानकर क्या तुम भी अब अपना परिचय देनेकी कृपा करोगी?"

उसका यह प्रश्न सुनकर दमयन्तीने अपनी आँखें नीचेकी ओर झुका लीं। उसने अपने पतिवियोगादिका जो हाल धनदेवको बतलाया था, वही हाल धनदेवने उस श्रावकको कह सुनाया। उसे सुनकर उसकी आँखोंमें आँसू आ गये। उसने दमयन्तीको आश्वासन देते हुए कहा :—"हे भद्रे! तुम शोक मत करो। यह दुःख तुम्हारे कर्मोदयके ही कारण तुम पर आ पड़ा है अब तुम इस सार्थवाहकको अपना पिता और मुझे अपना भाई समझो। हम तुम्हारे सुखके लिये यथासाध्य चेष्टा करेंगे।" अस्तु।

थोड़े दिनोंके बाद वह सार्थ अचलपुर जा पहुँचा।

वहाँपर दमयन्तीने रह जानेकी इच्छा प्रकट की, इसलिये उसे वहीं छोड़कर सार्थवाहक अन्यत्र चला गया।

इधर दमयन्तीने नगरमें जानेका विचार किया, किन्तु उसे तृषा लगी हुई थी इसलिये उसने सोचा कि पहले कहीं जलपान कर लेना चाहिये। नगरकी बाहर द्वारके पास ही एक बावली बनी हुई थी। उसमें नगरकी अनेक पनिहारियें पानी भर रही थीं। सीढ़ियों द्वारा उसीमें उतर कर दमयन्तीने अपनी तृषा शान्त की। पानी पीनेके बाद ज्यों ही वह उससे बाहर निकलने लगी, त्यों ही उसका बाया पैर एक गोहने पकड़ लिया। इससे दमयन्ती घबड़ा गयी उसने समझा कि अब यहीं जीवनका अन्त आ जायगा। फिर भी उसने धैर्य पूर्वक तीन बार नवकार का पाठ किया। यही उस निर्बलका बल था। उसके प्रभावसे गोहने दमयन्तीका पैर तुरन्त छोड़ दिया। दमयन्ती मन-ही-मन भगवानको धन्यवाद देती हुई, हाथ पैर और मुँह धो कर, धीरे-धीरे राज-हंसीकी भाँति उस बावलीसे बाहर निकल आयी।

बावलीसे बाहर निकलने पर दमयन्तीको कुछ थका-

वट मालूम हुई, इसलिये वह वहींपर एक वृक्षके नीचे लेटकर विश्राम करने लगी। इस स्थानसे नगरकी उच्च अट्टालिकाएं स्पष्ट दिखायी देती थीं और उनका दृश्य बहुत ही मनोरम प्रतीत होता था। दमयन्ती उन्हींकी ओर देखती हुई अपने भूत भविष्य पर विचार करने लगीं।

इस अचलपुरके राजाका नाम ऋतुपर्ण और रानीका नाम चन्द्रयशा था। जिस समय दमयन्ती उस वृक्षके नीचे लेटी हुई थी, उसी समय राजमन्दिरकी कई दासियाँ उस बावली पर जल भरने आयीं। जिस प्रकार राखकी ढेरीमें पड़ा रहने पर भी कुन्दन अपनी स्वाभाविक दमक नहीं छोड़ता, उसी प्रकार दीन-हीन और मलीन होने पर भी दमयन्तीकी स्वाभाविक सुन्दरता अभी नष्ट न हुई थी। उसे देखकर सभी दासियें आपसमें काना फूसी करने लगी। वे कहने लगीं :—"यह अवश्य कोई बड़े घरानेकी स्त्री है, क्योंकि ऐसा रूप तो देवी और विद्याधरियोंमें भी नहीं पाया जाता। किसी आपत्ति विपत्तिमें पड़कर इसकी यह अवस्था हो गयी है! इसी

लिये यह दुःखितावस्थामें भूमिपर लेट रही है। लेकिन पंक लग जानेपर भी कमलिनी तो सदा कमलिनी ही रहती है।"

दमयन्ती चिन्तामग्न थी, साथ ही उसे कुछ निद्रा भी आ गयी थी, इसलिये दासियोंकी इन बातोंकी ओर उसका ध्यान भी आकर्षित न हुआ। वे सब जल भरकर राजमन्दिरको वापस चली गयीं। वहाँ उन्होंने रानीसे उसकी चर्चा की। इसलिये रानीने कहा :—"अच्छा, तुम जाओ और उसे मेरे पास लिवा लाओ। मैं उसे अपनी पुत्री चन्द्रवतीकी बहिन बनाकर अपने पास रख लूँगी।"

रानीकी यह बात सुनकर उसकी कई दासियाँ दमयन्तीके पास गयीं और कहने लगी :—"हे सुभगे! इस नगरकी रानी चन्द्रयशाने तुम्हें आदरपूर्वक अपने पास बुलाया है। वे तुम्हें अपनी पुत्रीके समान रक्खेंगी और तुम्हें किसी प्रकारका कष्ट न होने देंगी। और यहाँपर पड़े रहनेसे तो तुम्हारे शरीरमें भूत-प्रेत प्रवेश कर तुम्हें सतायेंगे। इसलिये हे भद्रे! तुम हमारे साथ

चलो और इस मलीन वेशको त्याग कर राजकन्याकी भाँति ऐश्वर्य भोग करो।"

दमयन्ती ऐश्वर्यके प्रलोभनसे तो लुब्ध न हुई, किन्तु रानीने उसे पुत्री बनाकर आश्रय देनेको कहा था, इसलिये वह उसी समय दासियोंके साथ चन्द्रयशाके पास चली गयी।

चन्द्रयशा दमयन्तीकी सगी मौसी थी, परन्तु दमयन्तीको इस बातका कुछ भी पता न था। दूसरी ओर चन्द्रयशाको यह बात मालूम थी, कि उसकी बहिनके दमयन्ती नामक एक लड़की है, उसने बाल्यावस्थामें उसे देखा भी था, किन्तु इस समय न तो वह उसे पहचानती ही थी, न उसे इसी बातका पता था कि यह दमयन्ती ही है।

इस प्रकार यह आत्मीयता अज्ञात होने पर भी, चन्द्रयशाने जब दमयन्तीको देखा, तो उसके हृदयमें वात्सल्यभाव उमड़ आया। दमयन्तीकी भी यही अवस्था हुई। उन दोनोंका हृदय उसी अज्ञात सम्बन्धके कारण लोह चुम्बककी भाँति एक दूसरेके प्रति आकर्षित होने

लगा। चन्द्रयशाने दमयन्तीको गाढ़ आलिङ्गन कर उसे गलेसे लगा लिया। रानीका यह माताके समान प्रेम देखकर दमयन्तीके नेत्रोंसे भी अश्रुधारा वह निकली। वह दुःख और प्रेमके कारण रानीके पैरों पर गिर पड़ी।

रानीने उसे उठाकर मधुर वचनों द्वारा सान्त्वना दी। जब वह शान्त हुई, तब रानीने उसका परिचय पूछा। दमयन्तीने पूर्वकी भाँति अपना असली परिचय न देकर जो बातें सार्थवाहकसे कही थीं, वही बातें रानी से भी कह दीं। उन्हें सुनकर रानीने समवेदना प्रकट करते हुए कहा:—"हे कल्याणी! तुम्हें यहाँपर किसी प्रकारका कष्ट न होने पायगा। जिस प्रकार मेरी पुत्री चन्द्रवती रहती है, उसी प्रकार तुम भी रहो और आनन्द करो।"

दमयन्ती ऐश्वर्य या सुखकी भूखी तो थी नहीं, किन्तु उसे किसी निरापद स्थान या आश्रयकी आवश्यकता जरूर थी। इसलिये रानीके उपरोक्त वचन सुनकर उसे परम सन्तोष हुआ और वह बड़ी सादगीके साथ वहाँ रहती हुई अपने दिन व्यतीत करने लगी।

रानी चन्द्रयशा जब-जब इस गुप्तवेशवाली दमयन्ती को देखती, तब-तब उसे प्रकृत दमयन्तीकी याद आ जाती थी। वह दमयन्तीके रूपसे उसके रूपकी तुलना करती, तो उसे उन दोनोंमें बड़ी समानता दिखायी देती। एकदिन उसने अपनी पुत्री चन्द्रवतीसे कहा :— "तुम्हारी यह बहिन ठीक मेरी बहिनकी पुत्री दमयन्तीके समान है। इसे देखकर मुझे सन्देह हो जाता है कि यह वही तो नहीं है? परन्तु यह केवल सन्देह ही है। उसकी न तो ऐसी अवस्था हो ही सकती है, न वह यहाँ आ ही सकती है। वह तो हमारे स्वामी राजा नलकी पटरानी है और यहाँ से एकसौ चौवालिस योजनकी दूरी पर कोशला नगरीमें रहती है!"

खैर, रानीने इसे असम्भव मानकर दमयन्तीके निकट कभी इसकी चर्चा न की। फलतः उन दोनोंका यह सम्बन्ध प्रकट न हो सका और दमयन्ती उसी तरह अपने दिन बिताती रही।

रानी चन्द्रयशाने नगरके बाहर एक दानशाला बनवा रखी थी। वहाँपर वह रोज सुबह कुछ देर बैठ-

कर दीन और दुःखियोंको दान दिया करती थी। यह देख, दमयन्तीने रानीसे कहा :—"माताजी! यदि आप कहें तो दानशालामें बैठकर मैं भी दीन दुःखियोंको दान दिया करूँ। सम्भव है कि मेरे पतिदेव कभी घूमते-घामते वहाँ आ जायें या वहाँ आनेवाले मुसाफिरोंसे किसी प्रकार उनका पता मिल जाय!"

रानीने दमयन्तीकी यह प्रार्थना सहर्ष स्वीकार कर ली, अतः दूसरे ही दिनसे दमयन्ती वहाँ बैठकर दान देने लगी। वहाँपर जो-जो याचक या मुसाफिर आता, उसको नलका रूप आदि बतला-बतलाकर दमयन्ती उससे उनका पता पूछती। धीरे-धीरे यही उसकी दिनचर्या हो गयी। इस कार्यमें उसे आनन्द भी आता था और उसका दिन भी आसानीसे कट जाता था।

एकदिन दमयन्ती दानशालामें बैठी हुई थी। इतने-ही में राजकर्मचारी एक बन्दीको लेकर उधरसे आ निकले। वे उसे वधस्थानकी ओर लिये जा रहे थे। दमयन्तीने उन राज-कर्मचारियोंसे उसके अपराधके सम्बन्धमें पूछताछ की, तो उन्होंने बतलाया कि यह एक चोर है।

इसने चन्द्रवती देवीकी रत्नपिटारी चुरा ली है, इसलिये इसे मृत्युदण्ड दिया गया है।"

मृत्युदण्डका नाम सुनते ही दमयन्तीको उस चोर पर दया आ गयी। इसलिये उसने करुणापूर्ण दृष्टिसे उस चोरकी ओर देखा। देखते ही चोरने हाथ जोड़कर कहा :—"हे देवि! मुझ पर आपकी दृष्टि पड़ने पर भी क्या मुझे मृत्युदण्ड ही मिलेगा? क्या आप मुझे अपना शरणागत मानकर मेरी रक्षा न करेंगी?"

चोरके यह वचन सुनकर दमयन्तीका हृदय और भी द्रवित हो उठा। उसने उसे अभयदान देकर कहा :—"यदि मैं वास्तवमें सती होऊँ, तो इस बन्दीके समस्त बन्धन छिन्न-भिन्न हो जायँ।"

इतना कह दमयन्तीने हाथमें जल लेकर उसपर तीन बार छिड़क दिया। छिड़कते ही उसके सब बन्धन टूट गये। इससे राज-कर्मचारियोंमें बड़ाही तहलका मच गया। उन्होंने तुरन्त राजा ऋतुपर्णको इसकी खबर दी। उसे इससे बहुतही आश्चर्य हुआ, क्योंकि ऐसी घटना इसके पहले कभी भी घटित न हुई थी। वे सपरिवार दमयन्तीके

पास गये और उससे कहने लगे :—"हे पुत्री ! तुमने यह क्या किया ? दुष्टोंका दमन और शिष्टोंकी रक्षा करना राजाका एकान्त कर्त्तव्य है। उपद्रवियोंसे रक्षा करनेके लिये ही राजा अपनी प्रजासे कर लेता है। अपराधियोंको समुचित दण्ड न देनेसे उनका पाप राजा-केही शिर पड़ता है। इस चोरने राज-कन्याकी रत्न पिटारी चुरा ली है, इसे दण्ड न देनेसे दूसरे चोरोंका भी हौसला बढ़ जायगा और फिर इस प्रकारके अपराधियों को दण्ड देना कठिन हो पड़ेगा।

दमयन्तीने कहा :—"पिताजी ! इसमें कोई सन्देह नहीं, कि अपराधियोंको दण्ड अवश्य देना चाहिये, परन्तु यदि मेरे सामने ही इसका वध किया जायगा, तो मुझ श्राविकाका दया-धर्म किस काम आयगा ? इसलिये मैं आपसे क्षमा प्रार्थना करती हूँ। यह मेरी शरणमें आया है। इसका चित्कार, इसकी करुण-प्रार्थना सुनकर मैंने इसे अभयदान दिया है। आप भी इसे अभयदान देनेकी कृपा करें। मैं यह उपकार अपने ही ऊपर समझूँगी और इसके लिये आपकी चिरऋणी रहूँगी।"

दमयन्तीका अत्यन्त आग्रह देखकर राजा ऋतुपर्णने उस चोरका अपराध क्षमा कर दिया। राज-कर्मचारियों के हाथसे मुक्ति पाते ही वह चोर दमयन्तीके पैरों पर गिर पड़ा और कहने लगा:—"आपने आज मुझे जीवन-दान दिया है, इसलिये आजसे मैं आपको अपनी माता मानूँगा।"

इतना कह, दमयन्तीका आशीर्वाद ग्रहण कर उस समय तो वह चोर वहाँसे चला गया, किन्तु इसके बादसे वह रोज एकबार दमयन्तीके पास आने और उनको प्रणाम करने लगा। एकदिन दमयन्तीने उससे पूछा:— "तुम कौन हो और कहाँ रहते हो? तुमने चोरीका यह पापकर्म क्यों किया था?"

उसने कहा:—"हे देवी! तापसपुरमें वसन्त नामक एक धनीमानी सार्थवाहक रहते थे। उन्हींका मैं पिङ्गल नामक नौकर था। मैं दुर्व्यसनी था, इसलिये उन्हींके यहाँ सेंध लगाकर, मैंने उनके भंडारसे थोड़ा बहुमूल्य माल चुरा लिया। वह माल लेकर मैं वहाँसे भागा। मैं समझता था कि इस मालको लिये किसी सुरक्षित

स्थानमें पहुँच जाऊँगा और थोड़े दिन मौज करूँगा, किन्तु दुर्भाग्यवश मार्गमें डाकुओंने मुझे लूट लिया। इसलिये मैं फिर जैसाका तैसा हो गया।

पश्चात् मैं घूमता घामता यहाँ आ पहुँचा। यहाँपर राजा ऋतुपर्णने मुझे नोकर रख लिया। इससे मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ, खासकर इस विचारसे कि अब मुझे फिर माल मारनेका मौका मिलेगा। चोरका ध्यान सदा चोरीमें ही रहता है, इसलिये किसी भी कार्यसे यदि मैं राजमन्दिरमें इधर उधर जाता, तो वहाँ रक्खी हुई चीजों पर सबसे पहले नजर डालता। एकदिन मैंने चन्द्रवती देवीकी रत्नपिटारी देख ली। उसे देखते ही मेरा चित्त चलायमान हो गया और मैं उसी क्षण उसे चुरा लाया।

परन्तु चोरकी हिम्मत कितनी? मैं ज्योंही डरते डरते वहाँसे भागनेकी तैयारी करने लगा, त्योंही राजमहलके चतुर पहरेदारोंको मुझपर सन्देह हो गया और उन्होंने मुझे गिरफ्तार कर लिया। तलाशी लेने पर मेरे पाससे जब वह रत्नपिटारी निकली, तब उन्होंने मुझे

राजाके सामने उपस्थित किया और उन्होंने चोरीके अपराधमें मुझे मृत्युदण्ड दे दिया। इसके बाद जो कुछ हुआ वह आपको मालूम ही है। यदि आपने मुझे न बचाया होता तो, हे महासती! उस दिन मैं कुत्ते की मौत मारा गया होता।"

चोरकी इस आत्म-कथासे दमयन्तीको जब यह मालूम हुआ, कि वह वसन्त सार्थवाहकका नोकर था और तापसपुरमें रहता था, तब उन्होंने बड़े प्रेमसे वसन्तका कुशल समाचार पूछा। उत्तरमें उस चोरने कहा :—"हे देवी! तापसपुरसे आपके चले आने पर विन्ध्याचलके वियोगी हाथीकी भाँति वसन्त सार्थवाहकने अन्न त्याग दिया और सात दिन तक उपवास किया। इसके बाद यशोभद्रसूरिका उपदेश श्रवण कर उसने आठवें दिन फिर अन्न ग्रहण किया।

इसके कुछ दिन बाद वह अनेक बहुमूल्य चीजें लेकर राजा कुबेरके दर्शन करने गया। वे उसकी भेट देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे न केवल राजसभामें ही सम्मानित किया, बल्कि छत्र और चमर

सहित उसे तापसपुरका राज्य देकर उन्होंने उसे अपने सामन्तोंमें शामिल कर लिया। उन्होंने उसका नाम भी बदलकर वसन्त श्रीशेखर रख दिया। इस प्रकार राज-सम्मान प्राप्त कर वह विजय-भेरी बजाता हुआ तापसपुर लौट आया। उस समयसे वह वहींपर रहता है और प्रेमपूर्वक प्रजाका पालन करता है।"

वसन्तका यह समाचार सुनकर और उसे सुखी जानकर दमयन्तीको अत्यन्त आनन्द हुआ। उन्होंने उस चोरसे कहा :—"हे वत्स! तुमने पूर्व जन्ममें दुष्कर्म किये थे। उन्हींका फल तुम इस जन्ममें भोग कर रहे हो। अब तुम्हें दीक्षा लेकर उन दुष्कर्मों को क्षय कर देना चाहिये।"

चोरने कहा :—"माताजी! मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य करनेको तैयार हूँ।"

इसी समय वहाँपर कहींसे दो साधु आ पहुँचे। दमयन्तीने उन्हें दोष रहित भोजन करानेके बाद कहा :—"हे भगवन्! यदि यह पुरुष योग्य हो, तो इसे दीक्षा देनेकी कृपा कीजिये।"

साधुओंने कहा :—"हाँ, यह योग्य है। इसे दीक्षा देनेमें कोई आपत्ति नहीं है।" यह कहते हुए मुनिराज पिङ्गलको उसी समय देव-मन्दिरमें ले गये और वहाँपर उन्होंने उसे यथाविधि दीक्षा दे दी।

उधर कई दिनोंके बाद दमयन्तीके पिता भीमरथने सुना कि द्यूत क्रीड़ामें नलका सारा राज्य कुबेरने जीत लिया है और राज्य जीतनेके बाद उसने नलको अपने देशसे निकल जानेकी आज्ञा दे दी है। उन्होंने यह भी सुना कि दमयन्तीको साथ लेकर नल जंगलमें चले गये हैं, किन्तु इसके बाद उन दोनोंका क्या हुआ, यह आज तक किसीको मालूम नहीं हो सका।

महलमें जाकर राजाने यह समाचार अपनी रानी पुष्पदन्तीको सुनाया। पुष्पदन्ती अपनी पुत्री और दामादकी चिन्तासे अधीर और व्याकुल होकर रोदन करने लगी। राजा भीमरथको भी कम दुःख न हुआ था। किन्तु वे जानते थे कि विपत्ति कालमें जो मनुष्य धैर्यसे काम लेता है, वही अन्तमें सुखी होता है। उन्होंने रानीको भी समझा बुझाकर शान्त किया।

इसके बाद रानीने उनसे अनुरोध किया कि किसी चतुर दूतको भेजकर चारों ओर उनकी खोज करानी चाहिये। राजा भीमरथने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया।

दूसरे ही दिन उन्होंने इस कार्यके लिये हरिमित्र नामक एक पुरोहितको चुन लिया और उसे सब मामला समझा कर नल दमयन्तीकी खोज करनेके लिये रवाना किया। वह सर्वत्र उनकीखोज करता हुआ क्रमशः अचल-पुरमें पहुँचा और वहींके राजा ऋतुपर्णसे भेट की। जिस समय उन दोनोंमें बात चीत हो रही थी, उसी समय वहाँ रानी चन्द्रयशा जा पहुँची। उन्हें जब यह मालूम हुआ, कि यह आदमी राजा भीमरथके यहाँसे आया है तब उन्होंने अपनी बहिन पुष्पदन्ती आदिका कुशल समाचार पूछा। उत्तरमें हरिमित्रने कहा :-"हे देवि! रानी पुष्पदन्ती और राजा भीमरथ तो परम प्रसन्न हैं, किन्तु नल-दमयन्तीका समाचार बहुत ही शोचनीय है।"

चन्द्रयशाने कहा :—"हे पुरोहित! तुम यह क्या कह रहे हो? नल और दमयन्तीको क्या हो गया है? उनका जो कुछ समाचार हो, शीघ्र ही कहो।"

हरिमित्रने द्यूतसे लेकर नलके वन-प्रवास तकका सारा हाल उन्हें कह सुनाया। रानीको अत्यन्त दुःख हुआ और वे उस दुःखके कारण विलाप करने लगीं। हरिमित्र उनको उसी अवस्थामें छोड़ कर दानशालाकी ओर चला गया। उसे भूख भी बड़े जोरोंकी लगी हुई थी, इसलिये उसने सोचा कि वहींपर भोजनका भी ठिकाना हो जायगा। दानशालाका द्वार तो सबके लिये खुला ही रहता था। इसलिये हरिमित्रने वहाँपर ज्योंही भोजनकी इच्छा प्रकट की, त्योंही शुद्ध और ताजे भोजनकी थाली उसके सामने आ गयी। हरिमित्र उसके द्वारा अपनी क्षुधाग्नि शान्त करने लगा।

भोजन करते समय अतिथियोंके पास जाना और उनसे पूछ-ताछ कर उन्हें किसी और वस्तुकी आवश्यकता हो, तो वह उन्हें दिला देना, यह दमयन्तीका एक नियमसा था। इसी नियमानुसार वह हरिमित्रके पास भी पहुँची और उससे पूछने लगी कि भाई! तुम्हें किसी वस्तुकी आवश्यकता तो नहीं है?

हरिमित्रको किसी खाद्यपदार्थकी आवश्यकता न

थी, इसलिये उसने उसके लिये तो इन्कार कर दिया, परन्तु इसके साथ ही उसकी दृष्टि दमयन्ती पर जा पड़ी, जिससे उसको इतना आनन्द हुआ, मानो उसे कुबेरका भण्डार मिल गया हो। वह दमयन्तीको भली भाँति पहचानता था। इसलिये उसे पहचाननेमें जरा भी दिक्कत न हुई, फिर भी उसने उसे दो तीन बार देखकर भली भाँति निश्चय कर लिया। जब उसे मालूम हो गया कि यही दमयन्ती है, तब उसने पुलकित हृदयसे दमयन्तीको प्रणाम करके कहा :—"हे देवि! तुम्हारी यह क्या अवस्था हो रही है! खैर, तुम्हारा पता लग गया, यह भी कम सौभाग्यकी बात नहीं है। अब तुम्हारे माता-पिता और स्वजन स्नेहियोंकी चिन्ता दूर हो जायेगी।"

इतना कह, हरिमित्रने दमयन्तीको अपने आगमनका सब हाल कह सुनाया। इसके बाद वह रानी चन्द्रयशाके पास दौड़ गया और उन्हें यह शुभ संवाद कह सुनाया। दमयन्ती उनकी दानशालामें रहती थी, वे उसे रोज देखती थी, फिर भी,—उसे पहचानते हुए

भी—उन्होंने उसे न पहचाना, इसके लिये उन्हें बड़ा दुःख हुआ। वे उसी समय दानशालामें जा पहुँची। वहाँपर उन्होंने दमयन्तीको गलेसे लगा लिया। दमयन्ती भी उन्हें जी खोल कर मिली, क्योंकि उसे यह बात आज अपने जीवनमें पहले ही पहल मालूम हुई, कि चन्द्रयशा उसकी सगी मौसी है।

अपना प्रकृत परिचय न देकर छद्मवेशमें रहनेके कारण दमयन्तीको चन्द्रयशाने सख्त उलाहना दिया। उसने कहा :—"हे वत्से! मुझे वारंवार धिक्कार है कि मैं तुम्हें पहचान न सकी। मुझे भ्रम तो अनेकबार हुआ, परन्तु मैंने निराकरण एकबार भी न किया। इसके लिये आज मुझे बड़ा ही पश्चाताप हो रहा है। लेकिन इसके साथ ही मैं तुम्हें भी भला बुरा कहे विना नहीं रह सकती। तुमने छिपे वेशमें रहकर मुझे धोखा क्यों दिया? तुमने अपना असली परिचय मुझे क्यों नहीं दिया? दैवयोगसे तुम्हारे शिर यह दुःख आ पड़ा तो इसमें लज्जाकी कौन बात थी? लज्जा भी कहाँ?—मातृकुलमें! माता-पिताके सामने?"

इस प्रकार दमयन्तीको उलाहना देनेके बाद रानी चन्द्रयशा उसकी दुरवस्थाके लिये रोने कलपने लगी। शान्त होनेपर उन्होंने दमयन्तीसे पूछा :—"हे पुत्री! तुमने नलको त्याग दिया था या नलने तुमको त्याग दिया था? मैं समझती हूँ कि उन्होंने ही तुम्हें त्याग दिया होगा। तुम तो सती हो, इस लिये ऐसा अनुचित काम तुम कर भी कैसे सकती हो? अब तक मैंने कहीं भी ऐसा नहीं सुना कि किसी पतिव्रता स्त्रीने संकटावस्थामें पड़े हुए अपने पतिको त्याग दिया हो। जिस दिन इस देशकी सती साध्वी स्त्रियाँ ऐसा करने लगेंगी, उस दिन यह पृथ्वी अवश्य रसातलको चली जायगी। परन्तु नलने भी तुम्हें त्यागकर बड़ा ही अनुचित कार्य किया है। वे तुम्हें मेरे यहाँ या तुम्हारी माताके यहाँ क्यों न छोड़ गये? ऐसी महासती भार्याको जंगलमें अकेली छोड़ देना नलके लिये बड़े कलङ्ककी बात है। इस कार्य द्वारा उन्होंने अपने कुलको भी कलङ्कित बना दिया है। हे वत्से! तुम मेरा अपराध क्षमा करो। मैंने तुम्हें पह-चाननेमें ऐसी बड़ी भूलकी है, जिसका वर्णन भी नहीं

किया जा सकता। खैर, होनहार होकर ही रहता है। तुम्हारे भाग्यमें यह दुःख वदा था, इसीलिये तुम्हें भोग करना पड़ा !"

इस प्रकार नाना प्रकारकी बातें कहकर चन्द्रयशाने दमयन्तीको सान्त्वना दी। इतने ही में उसे स्मरण आ गया कि दमयन्तीके ललाट पर तो सूर्यके समान परम तेजस्वी एक तिलक था, वह क्यों नहीं दिखायी देता? उसने दमयन्तीके ललाटकी ओर देखा। दमयन्ती जान बूझ कर उसकी सफाई न करती थी इसलिये वह मैला कुचेला हो रहा था। रानी चन्द्रयशाने हाथमें जल लेकर उसे भली भांति धो दिया। धोते ही वह तिलक इस प्रकार चमक उठा, जिस प्रकार बादल छँट जाने पर वर्षाके दिनोंमें सूर्य चमक उठता है।

इसके बाद रानी चन्द्रयशा बड़े आदरके साथ उसे दानशालासे अपने राज महलमें लिवा लायी। वहाँ उसने स्वयं अपने हाथसे स्नान करा कर मनोहर श्वेत वस्त्र उसे पहननेको दिये। मौसीका यह प्रेम और आदर भाव देख कर दमयन्तीके होठों पर भी आज हँसी दिखायी

देने लगी। रानी चन्द्रयशा दमयन्तीको सजाबजा कर राजा ऋतुपर्णके पास लिवा ले गयी। उस समय राजा एक कमरेमें बैठे हुए थे। रात हो चुकी थी और चारों ओर घोर अन्धकार फैला हुआ था। कमरेमें एक बत्ती जल रही थी, जो काफी तेज थी, लेकिन फिर भी वह उस स्थानके अन्धकारको पूर्णरूपसे दूर करनेमें समर्थ न थी। रानी चन्द्रयशाने कमरेमें पैर रखते ही वह बत्ती बुझा दी। साथ ही उसने दमयन्तीके ललाटका वस्त्र हटाकर उसका वह तिलक खोल दिया। तिलक खोलते ही वह कमरा जग-मगा उठा।

राजाने चकित होकर पूछा :—"प्रिये! तुमने दीपक तो यहाँ आते ही बुझा दिया था, अब यह इतना प्रकाश कहाँसे आ रहा है? मुझे तो ऐसा मालूम होता है, मानो यह रात नहीं बल्कि दिन है।"

चन्द्रयशाने कहा :—"नाथ! यह दमयन्तीके भाल तिलकका प्रताप है। इसके रहने पर सूर्य, चन्द्र, दीपक या रत्न—किसी भी वस्तुकी जरूरत नहीं पड़ती। इसका प्रकाश बहुत दूर तक फैल जाता है और उस

प्रकाशमें दिनकी तरह सब चीजें बहुत साफ दिखायी देती हैं।"

राजाने आश्चर्यपूर्वक फिर पूछा :—"क्या दमयन्ती मिल गयी? उसका पता मिल गया? वह कहाँ थी? उसका पता किस प्रकार मिला?"

रानी चन्द्रयशाने राजाको सारा हाल कह सुनाया। सुनकर उन्हें बड़ाही आश्चर्य हुआ। वे भी इस बातसे बहुत दुःखित हुए, कि दमयन्ती इतने दिनोंसे उनके महलमें, उन्हींकी छत्र छायामें रहती थी, फिर भी वह पहचानी न जा सकी। इसके बाद उन्होंने दमयन्तीको अपने पास बैठाकर बड़े प्रेमसे उसकी विपत्तिका हाल पूछा। दमयन्तीने सजल नेत्रोंसे अपनी करुण कथा उनको भी कह सुनायी। राजा ऋतुपर्ण उसे सुनकर बहुत दुःखी हुए। उन्होंने अपने रूमालसे दमयन्तीके अश्रु पोंछ कर नाना प्रकारसे उसे आश्वासन दिया। बेचारी दमयन्ती अपने हृदयकी वेदनाको हृदयमें ही छिपा कर फिर किसी तरह शान्त हो गयी।

इसी समय आकाशसे एक देव उतर कर राजा

ऋतुपर्ण और दमयन्तीके सामने आ उपस्थित हुआ। उसने हाथ जोड़कर दमयन्तीसे कहा :—"हे माता! मैं वही पिंगल चोर हूँ, जिसे आपने उन दो साधुओं द्वारा दीक्षा दिलायी थी। दीक्षा लेनेके बाद मैं विहार करता हुआ तापसपुर गया और वहाँके श्मशानमें कायोत्सर्ग कर मैं अपने जीवनका शेष समय व्यतीत करने लगा। संयोग वश उसी समय एक चितासे आग उछल कर आस पासके वृक्षोंमें लग गयी और उसने देखते-ही-देखते दावानलका रूप धारण कर लिया। मैं भी उस दावानलमें जल गया, परन्तु मृत्युके समय मैं धर्मध्यानमें लीन था, इसलिये मैं देवलोकमें देव हुआ और मेरा नाम पिङ्गल पड़ा। देवत्व प्राप्त होनेके बाद मुझे अवधि ज्ञानसे मालूम हुआ, कि आपने मेरी प्राण रक्षाकर मुझे जो प्रव्रज्या दिलायी थी उसीके प्रभावसे मैं सुरसुखका भोक्ता हुआ हूँ। हे स्वामिनी! यदि मुझे पापी समझकर आपने उस समय मेरी उपेक्षा की होती, तो मुझे धर्मकी प्राप्ति कदापि न होती और मैं अवश्य नरकका अधिकारी होता। हे देवी! आपके ही प्रसादसे मुझे यह देवत्व

और देव सम्पत्ति प्राप्त हुई है, इसलिये मैं आपका दर्शन करने आया हूँ। आपकी सदा जय हो!"

इतना कह वह देव सात क्रोड़ सुवर्ण मुद्राओंकी वर्षा कर अन्तर्धान हो गया। जैन धर्मका यह साक्षात् फल देखकर राजा ऋतुपर्ण भी बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने भी जैन धर्म स्वीकार कर लिया।

दो एकदिन बाद हरिमित्रने राजा ऋतुपर्णसे कहा :—"हे राजन्! दमयन्तीको अब अपने पिताके घर जानेकी आज्ञा दीजिये। उसके माता पिता उसके वियोगसे बहुत दुःखित हो रहे हैं।"

राजा और रानीने इसके लिये सहर्ष अनुमति दे दी। उनकी रक्षाके लिये उन्होंने एक छोटीसी सेना भी उनके साथ कर दी। यथा समय दमयन्ती सबसे मिल भेंट कर एक रथमें बैठ, अपने पितृ-गृहके लिये रवाना हुई।

हरिमित्रने कुंडिनपुरके समीप पहुँचनेके पहले ही दमयन्तीके आगमनका समाचार राजा भीमरथको भेज दिया था, इसलिये राजा भीमरथ बड़ेही प्रेमसे अपनी पुत्रीको लिवानेके लिये सामने आ पहुँचे। पिताको

देखकर दमयन्ती रथसे उतर पड़ी और पैरोंसे चलती हुई पिताकी ओर अग्रसर हुई। उनके समीप पहुँचते ही वह आनन्दपूर्वक विकसित नेत्रोंसे उनके चरणों पर गिर पड़ी। पिता और पुत्रीका यह मिलन वास्तवमें परम दर्शनीय था। दोनोंके होठों पर मुस्कुराहट और नेत्रोंमें अश्रु थे। राजा भीमरथका वात्सल्य भाव देखते ही बनता था। वे बारंबार दमयन्ती की पीठ पर हाथ फेर-कर उसे स्नेह और करुणाभरी दृष्टिसे देखते थे। उनका आनन्द आज उनके हृदयमें न समाता था।

पुत्रीके आगमनका समाचार सुनकर रानी पुष्पवती भी वहाँ आ पहुँचीं। उनका समूचा शरीर स्नेहके कारण रोमाञ्चित हो रहा था। जिस प्रकार गंगा यमुनाका संगम होता है, उसी प्रकार माताने पुत्रीको गलेसे लगा लिया। स्नेहमयी माताके गले लगने पर दमयन्तीका दुःख-सागर मानो उमड़ पड़ा और उसे रुलाई आ गयी। जब उसने जी भरकर रो लिया, तब उसका हृदय भार कुछ हलका हुआ।

इसके बाद दमयन्तीके माता-पिता बड़े प्रेमसे उसे

राजमहलमें लिवा ले गये। वहाँपर दमयन्तीने द्यूत क्रीड़ासे लेकर अब तक की मुसीबतका सारा हाल उन्हें कह सुनाया। सुननेके बाद माता पुष्पदन्तीने उसे बहुत सान्त्वना दी। उसने कहा :—"हे आयुष्मती! यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि इतने संकट आनेपर भी तुम्हारा जीवन बच गया है और तुम सकुशल हमारे पास पहुँच गयी हो। इससे प्रतीत होता है कि तुम्हारा सौभाग्यसूर्य अभी अस्त नहीं हुआ है। अब तुम यहाँपर आनन्दसे रहो। मेरा विश्वास है कि कभी-न-कभी तुम्हारे पतिदेव तुम्हें अवश्य मिलेंगे। हमलोग अब उनकी खोज करानेमें भी कोई बात उठा न रक्खेंगे।"

पुरोहित हरिमित्रका कार्य बहुत ही सन्तोष दायक था। यदि उसने तनमनसे चेष्टा न की होती, तो दमयन्तीका पता कदापि न चलता। राजा भीमरथने इन सब बातों पर विचार कर उसे पाँच सौ गाँव इनाम दे दिये। साथ ही उन्होंने कहा :—"हे हरिमित्र! यदि इसी तरह चेष्टा कर तुम नलका पता लगा लाओगे, तो मैं तुम्हें अपना आधा राज्य दे दूँगा।" इसके बाद

उन्होंने अपनी पुत्रीके आगमनके उपलक्षमें एक अट्ठाई महोत्सव किया, जो सात दिन तक जारी रहा। इन दिनोंमें उन्होंने देव पूजा और गुरु पूजा विशेष रूपसे की।

समय समय पर राजा भीमरथ भी दमयन्तीको बड़े प्रेमसे अपने पास बुलाकर उसे सन्त्वना दिया करते थे। एकदिन उन्होंने कहा :—"हे पुत्री! मैं एक ऐसी युक्ति सोच रहा हूँ, जिससे नलकुमार जहाँ होंगे वहाँसे अपने आप यहाँ चले आयँगे। मेरी यह धारणा है, कि अब तुम्हें अधिक समय तक यह दुःखमय जीवन न बिताना होगा।"

पिताकी इन सान्त्वनाओंसे दमयन्तीको खूब शान्ति मिलती थी और वह अपने दिन बड़े ही आनन्दमें बिताती थी।

इस तरह कोशला नगरी छोड़नेके कई वर्ष बाद दमयन्ती तो किसी तरह ठिकाने लग गयी, किन्तु नलको सुदिन देखनेका समय अभी न आया था। वे दमयन्तीको सोती हुई छोड़कर वर्षों तक जंगलमें भटकते रहे। एकबार उन्हें एक स्थानसे काजल समान काला

धुआँ निकलता दिखायी दिया। वह इस प्रकार ऊँचे चढ़ रहा था, मानो सूर्य चन्द्र और ताराओंको श्याम बनानेके लिये वहाँ जा रहा हो। शीघ्र ही उस स्थानमें आगकी भयंकर लपटें दिखायी देने लगीं। पशुओंमें भगदड़ मच गयी। पक्षियोंने उड़ उड़कर दूसरे जंगलका रास्ता लिया। हरे भरे वृक्ष भी इस दावानलकी प्रबलताके कारण इस प्रकार भस्म होने लगे, मानो सूखा हुआ तृण भस्म हो रहा हो। नल भी यह दावानल देखकर कर्त्तव्य विमूढ़ बन गये।

ठीक इसी समय उस दावानलके अन्दरसे नलको किसी मनुष्य की सी आवाज आती हुई सुनायी दी। उन्होंने कान लगाकर सुना तो उन्हें मालूम हुआ, कि कोई अपनी रक्षाके लिये उनसे पुकार पुकार कर प्रार्थना कर रहा है। वह कह रहा था :—"हे इक्ष्वाकुकुल-तिलक राजा नल! हे क्षत्रियोत्तम! मेरी रक्षा कीजिये। आप यद्यपि निष्कारण उपकारी हैं, तथापि यदि आप मेरी प्राण रक्षा करेंगे तो मैं भी उसके बदले आपका कुछ उपकार कर दूँगा।"

यह सुनकर नल उस दावानल की ओर आगे बढ़े। समीप पहुँचने पर उन्होंने देखा कि वनलताओंके झुण्डमें एक भीषण सर्प पड़ा हुआ है और वही उनका नाम ले लेकर अपनी रक्षाके लिये उन्हें पुकार रहा है।

नलको एकायक उस सर्पके पास जानेका साहस न हुआ। उन्होंने दूरहीसे उसे पूछा :—"हे भुजंग! तुझे मेरा और मेरे वंशका नाम कैसे मालूम हुआ? क्या तू वास्तवमें सर्प है? सर्प तो मनुष्यकी बोली नहीं बोलते!"

सर्पने उत्तर दिया :—"हे महापुरुष! पूर्व जन्ममें मैं मनुष्य था, किन्तु अपने कर्मोंके कारण इस जन्ममें मैं सर्प हो गया हूँ। किसी सुकृतके कारण मैं इस जन्ममें भी मानुषी भाषा बोल सकता हूँ। हे यशोनिधान! मुझे अवधिज्ञान है, इसीलिये मुझे आपका और आपके वंशादिकका नाम मालूम है। आप शीघ्र ही मेरी रक्षा कीजिये, वर्ना मैं इसीमें जलकर खाक हो जाऊँगा।"

सर्पकी यह दीनतापूर्ण बातें सुनकर नलको उसपर दया आ गयी। उन्होंने दूरसे ही अपने उत्तरीय वस्त्रका

एक छोर उसके पास फेंक दिया। सर्प जब उससे लिपट गया तब उन्होंने उस वस्त्रका दूसरा छोर पकड़कर, उसे अपनी ओर खींच लिया। इसके बाद वे उसे उठाकर निरापद स्थानको ले जाने लगे, परन्तु उस स्थान तक पहुँचनेके पहले ही उसने राजा नलके हाथमें बेतरह डस लिया। इससे नलने तुरन्त उसे दूर फेंक दिया और कहा :—"वाह! तुमने मेरे ऊपर बड़ा ही उपकार किया! लोग सच ही कहते हैं, कि सर्पको जो दूध पिलाता है, उसे भी वह काटे बिना नहीं रहता।"

नल यह बातें कह ही रहे थे, कि विषके प्रभावसे उनका शरीर कुबड़ा, केश प्रेतकी भाँति पीले, होंठ ऊँटकी तरह लम्बे, हाथ पैर छोटे, और पेट बहुत बड़ा हो गया। अंगोंमें इस प्रकार विकृति आ जानेसे वे बहुत बदसूरत दिखायी देने लगे। इससे उन्हें बड़ा ही दुःख हुआ और वे अपने मनमें कहने लगे :—"इस प्रकार कुरूप होकर जीनेकी अपेक्षा तो मरना ही अच्छा है। अब मुझे दीक्षा ले लेनी चाहिये, ताकि इस परितापसे सदाके लिये छुटकारा मिल जायगा।"

परन्तु इतनेही में उन्होंने आश्चर्यके साथ देखा कि वह सर्प सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे विभूषित तेजपुञ्जके समान एक देव बन गया है। उसने नलसे कहा :—"हे नल-कुमार! तुम दुःखी मत हो! मैं तुम्हारा पिता निषध हूँ। मैंने तुम्हें राज्य देकर दीक्षा लेली थी। उसके प्रभावसे मैं ब्रह्मलोकमें देव हुआ। वहाँपर अवधि ज्ञानसे तुम्हारी दुर्दशाका हाल मालूम होने पर मैंने माया सर्पका रूप धारण कर तुम्हें कुरूप बना दिया है। जिस प्रकार कड़वी दवा पीनेसे रोगीका उपकार ही होता है, उसी प्रकार इस कुरूपसेभी तुम्हें लाभ ही होगा। तुमने अपने राजत्वकालमें अनेक राजाओंको अपना दास बनाया था। इसलिये वे सब तुम्हारा अपकार कर सकते हैं, परन्तु तुम्हारा रूप परिवर्तित हो जानेसे वे अब तुम्हें पहचान न सकेंगे, फलतः तुम उनसे सुरक्षित रह सकोगे। दीक्षा लेनेका विचार तो इस समय तुम भूलकर भी मत करना, क्योंकि तुम्हें अभी बहुत भोग भोगने बाकी हैं। जब दीक्षा लेनेका उपयुक्त समय आयेगा, तब मैं स्वयं तुम्हें खबर दूँगा। इस समय तो तुम यही समझलो कि जो कुछ हुआ है, वह तुम्हारे

भले हीके लिये हुआ है । मैं तुम्हारा शुभचिन्तक हूँ, इसलिये मेरे द्वारा स्वप्नमें भी तुम्हारा अपकार नहीं हो सकता ।"

इतना कह उस देवने नलको एक बिल्व फल और एक रत्न पिटारी देते हुए कहा :—"इन दोनों चीजोंको बड़े यत्नसे रखना। जब तुम्हें अपना असली रूप धारण करना हो, तब इस फलको फोड़ डालना। इसे फोड़ने पर इसके अन्दर तुम्हें देव दूष्य वस्त्र दिखायी देंगे। उसी समय इस पिटारीको भी खोलना। इसमें हार आदिक कई बहुमूल्य आभूषण हैं। ज्योंही तुम उन वस्त्र और आभूषणोंको धारण करोगे, त्योंही तुम्हारा यह कुरूप लोप हो जायगा और तुम अपने उसी देव समान असली रूपमें आ जाओगे।"

पिताके यह वचन सुनकर नलको बड़ाही आनन्द हुआ। उन्होंने उनकी दी हुई दोनों वस्तुएं बड़े यत्नसे अपने पास रख लीं। इसके बाद उन्होंने उनसे पूछा :— "हे पिताजी ! आप इस समय देवयोनिमें हैं, इसलिये आपकी सर्वत्र गति है। क्या आप बतला सकते हैं, कि आपकी पुत्रवधु दमयन्ती इस समय कहाँ है ?"

देव तनधारी निषधने कहा :—"दमयन्ती इस समय कुंडिन पुरके मार्गमें है। वह वहाँ सकुशल पहुँच जायगी। इसलिये उसकी चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं। तुम भी अब जहाँ चाहे वहाँ जा सकते हो। मेरी समझमें तो तुम्हारा जंगलमें भटकना बेकार है। तुम्हारी जहाँ जानेकी इच्छा हो, वहाँ मैं तुम्हें क्षणमात्रमें पहुँचा सकता हूँ।"

नलने कहा :—"अच्छा, आप मुझे सुसुमारपुर पहुँचा दीजिये।" यह सुनकर निषध उसी समय नलको सुसुमारपुरमें छोड़ आये और स्वयं देवलोकमें चले गये।

इधर नलकुमार सुसुमारपुरके बाहर नन्दन वनमें पहुँचे। वहाँपर उन्होंने सिद्धायतनके समान एक चैत्य देखा। उसमें श्रीनेमिनाथ भगवानकी प्रतिमा स्थापित थी। उसे देखते ही भक्तिभावके कारण नलका शरीर रोमाञ्चित हो उठा। उन्होंने बड़े प्रेमसे भगवानकी वन्दना की। इसके बाद वे नगरके दरवाजेके पास गये। वहाँपर उन्होंने देखा कि एक मदोन्मत्त हाथी जंजीर तुड़ा कर चारों ओर घूम रहा है। वह जिस वृक्षके पास

जाता, उसीको सूंढ़में लपेट कर मूलीकी भाँति उखाड़ डालता। गजशालाके महावत इधर उधर दौड़ रहे थे, किन्तु उनसे कुछ करते धरते न बनता था। हाथीके भयसे चारों ओर भगदड़ मची हुई थी।

संयोगवश सुसुमारपुरके स्वामी राजा दधिपर्ण भी उस समय वहीं किले पर उपस्थित थे। उन्होंने वहींसे पुकार कर कहा कि :—"इस हाथीको जो वश कर लेगा, उसे मैं मनवाञ्छित वस्तु इनाम दूंगा। क्या यहाँ कोई ऐसा वीर नहीं है, जो इसे अधिकारमें ला सके?"

कुब्ज वेश धारी नल यह सुनते ही छाती ठोंककर मैदानमें आ गये। उन्होंने कहा :—"राजन्! आप वहींसे खड़े खड़े तमाशा देखिये, मैं अभी इस हाथीको वश कर लेता हूँ।"

नलकी यह बात अभी पूरी भी न हुई थी, कि हाथी चिग्घाड़ करता हुआ उनके पीछे दौड़ा। परन्तु नल इससे भयभीत न हुए। वे घूमकर उसके सामने आ गये। हाथी दूने वेगसे उन पर झपटा। लोग

बड़े जोरसे चिल्ला उठे। सबने यही समझा कि इस कूबड़ेको अब यह हाथी कदापि जीता न छोड़ेगा। लोगोंने उनसे भाग जानेको कहा, लेकिन नल केसरी सिंहकी भाँति उसके सामने डट गये। वे तरह तरहसे पैंतरे बदल कर हाथीको दौड़ाने और थकाने लगे। कभी वे गेंदकी तरह इधर उछल जाते और कभी उधर। कभी खड़े हो जाते और कभी भूमि पर लेट रहते। जिस प्रकार सँपेरी सर्पको छकाता है, उसी प्रकार उन्होंने अपने कार्यों द्वारा उस हाथीको परेशान कर डाला।

अन्तमें जब हाथी कुछ थककर कमजोर हो गया, तब उसके गलेकी जंजीरपर पैर रख, वे सिंह की भाँति उछल कर उसके कन्धे पर चढ़ गये। इसके बाद वे हाथमें अंकुश लेकर उसे इच्छानुसार इधर उधर चलाने लगे। जो हाथी कुछ देर पहले तूफानकी तरह इधर उधर दौड़ता था, वही नलके हाथमें पड़कर भेंड़ बकरीकी तरह शान्त हो गया। लोगोंनें उनके इस कार्यसे प्रसन्न हो, जय जयकार की ध्वनिसे आकाश गुंजा

दिया। राजा दधिपर्णने अपने गलेसे सोनेकी माला उतार कर उनके गलेमें डाल दी। चारों ओर यही चर्चा होने लगी कि जिस हाथीको बड़े बड़े योद्धा वशमें न कर सके, उसे एक कूबड़ेने वश कर लिया।

नल उस हाथीको मदरहित बनाकर आलान-स्तम्भके पास ले गये और उसके कन्धेसे उतर कर उसे जंजीरोंसे जकड़ दिया। इसके बाद राजाने सम्मानपूर्वक कुब्ज (नल) को बुलाकर पूछा कि :—"हे कुब्ज! हाथियोंको वश करनेके अलावा क्या और भी कोई कला तुम जानते हो?"

कुब्जने कहा :—"महाराज! आप और क्या देखना चाहते हैं? मुझे पाकशास्त्रका थोड़ा बहुत ज्ञान है। आप चाहें तो उस विद्याका चमत्कार भी मैं आपको दिखा सकता हूँ।

किन्तु राजाको इस बात पर विश्वास ही न होता था कि ऐसा कुरूप आदमी पाकशास्त्रमें निपुण होगा। उन्होंने कौतूहल वश उस कुब्जको चावल आदि सामग्री दिला दी और उनसे उत्तमोत्तम भोजन बना लानेका आदेश दिया। तदनन्तर कुब्जने वह सामग्री सूर्यके

उत्तापमें रखकर सूर्यविद्याका स्मरण किया, फलतः अपने आप सब भोजन पदार्थ तैयार हो गये। कुब्ज उन पदार्थोंको यथाविधि छोटे बड़े पात्रोंमें सजाकर राजाके पास ले गया। राजाने उन सभी पदार्थोंको चक्खा। जिस वस्तुको वे चखते, उसीमें उन्हें अलौकिक स्वाद मालूम पड़ता था, ऐसे स्वादिष्ट पदार्थ उन्हें आज तक कभी भी नसीब न हुए थे। इसलिये जिस वस्तुको वे एकबार खाते, उसीको बारंबार खानेकी इच्छा करते। यदि एक पदार्थ छोड़कर दूसरा खाते तो वह पहलेसे भी बढ़कर स्वादिष्ट मालूम पड़ता था। राजा दधिपर्ण कुब्जकी यह करामात देखकर हैरान हो गये।

भोजन करनेके बाद उन्होंने कुब्जको फिर अपने पास बुलाकर कहा :—"हे कुब्ज! तुम वास्तवमें पाक-शास्त्रके अद्भुत ज्ञाता हो। मैंने कुछ दिन नलकी सेवा की थी। उस समय सूर्य विद्या द्वारा मैंने उन्हें ऐसे ही पदार्थ तैयार करते देखा था। मैंने यह भी सुना था कि उनके सिवा इस संसारमें और किसीको भी यह कला मालूम नहीं है। इसलिये हे कुब्ज! तुम नल तो नहीं हो?"

कुब्जने राजाके इस प्रश्नका कोई उत्तर न देकर सिर्फ अपना शिर हिला दिया। राजा दधिपर्ण भी अपने मनमें कहने लगे :—"कहाँ यह कुब्ज और कहाँ नल! कहाँ इसका यह विकृत रूप और कहाँ नलका वह अद्भुत सौन्दर्य! नल तो देवता और विद्याधरोंसे भी अधिक सुन्दर हैं। मैंने उन्हें स्वयं देखा है। कोशला नगरी यहाँसे दो सौ योजन दूर है, साथ ही नल अर्ध भरतके स्वामी हैं, इसलिये उनका यहाँ आना भी संभव नहीं। यह मेरी अज्ञानता ही है, जो इसके साथ मैं नलकी समानता कर रहा हूँ।"

इस प्रकार विचार कर राजा दधिपर्णने अपने मस्तिष्कसे वह विचार निकाल दिया। फिर भी वे उस पर अत्यन्त प्रसन्न थे, इसलिये उन्होंने एक लाख रुपये, पाँच सौ गाँव और अनेक वस्त्राभूषण उसे पुरस्कार दिये। कुब्जने गाँवोंको छोड़ कर और सभी चीजें ले लीं। इस पर राजाने फिर कहा :—"हे कुब्ज! तुम्हारी इच्छा हो तो और भी कोई चीज माँग सकते हो।"

कुब्जने कहा :—"अच्छा, महाराज! यदि आप

देना ही चाहते हैं तो मेरी बात मानकर अपने राज्यसे शिकार और शराब खोरी—यह दो चीजें दूर कर दीजिये।"

राजाने कहा :—"तथास्तु!" उसी दिन एक राज-आज्ञा प्रकाशित कर इन दोनोंके लिये राज्य भरमें मनाई कर दी गयी।

इसके बाद उस कुब्जने वहाँसे अन्यत्र जानेकी इच्छा प्रकट की, किन्तु राजा दधिपर्णने अत्यन्त आग्रह कर उसे अपने ही यहाँ रख लिया। कुछ दिनोंके बाद उन्होंने उसे एकान्तमें बुलाकर पूछा :—"हे कुब्ज! तुम कौन हो, कहाँके रहने वाले हो और इस समय कहाँसे आ रहे हो, यह सब बातें जानने की मुझे बड़ी इच्छा है। मैं समझता हूँ कि यह बातें बतलानेमें तुम्हें कोई आपत्ति न होगी।"

कुब्जने कहा :—"हे राजन्! मैं कोशलेश्वर राजा नलकी पाकशालामें काम करता था। मेरा नाम हुण्डिक है। वहींपर मैंने सब कलाएं सीखी थीं। जुएमें नलके छोटे भाई कुबेरने उनका समूचा राज्य जीत लिया, इसलिये वे

दमयन्तीको लेकर जंगलमें चले गये। वहाँपर उनकी मृत्यु हो गयी। मैंने कपटी कुबेरके आश्रयमें रहना उचित न समझा, इसलिये मैं आपके नगरको चला आया।"

कुब्जके मुखसे नलका मृत्यु-समाचार सुनकर राजा दधिपर्णको बहुत ही दुःख हुआ। वे सपरिवार इस तरह रुदन करने लगे, मानो उनका सगा भाई मर गया हो। इसके बाद उन्होंने यथाविधि नलकी उत्तर क्रिया भी की। कुब्ज वेश धारी नल यह सब देखकर मन-ही-मन हँस रहे थे, किन्तु वे अपना वास्तविक रहस्य प्रकट करना न चाहते थे, इसलिये उन्होंने कुछ और कहना उचित न समझा।

एकबार किसी आवश्यक कार्यसे राजा दधिपर्णने अपना एक दूत दमयन्तीके पिता राजा भीमरथके पास भेजा। राजा भीमरथने उसका बड़ाही सत्कार किया और उसे कई दिन अपने पास रक्खा। एक दिन उस दूतने बातचीतके सिलसिलेमें राजा भीमरथसे कहा :—"हे स्वामिन्! मेरे स्वामीके यहाँ एक ऐसा आदमी है, जो

राजा नलकी पाकशालामें काम करता था। उसे राजा नलने स्वयं शिक्षा दी थी, इसलिये वह सूर्य विद्या द्वारा तरह तरहके भोजन बना सकता है।"

दूतकी यह बात सुनकर राजा भीमरथने तो कुछ भी न कहा, किन्तु चतुरा दमयन्तीके कान खड़े हो गये। उसने कहा :—"हे पिताजी! किसी चतुर दूतको भेजकर जरा जाँच कीजिये कि वह आदमी कैसा है? मुझे जहाँ तक पता है, इस संसारमें नलके सिवा और कोई भी मनुष्य सूर्यपाकी नहीं है। संभव है कि वेही रूप परिवर्तन कर वहाँ वास करते हों!"

राजा भीमरथने दमयन्तीके कथनानुसार जाँच करना स्वीकार कर लिया। उन्होंने इस कामके लिये कुशल नामक एक कार्यकुशल ब्राह्मणको पसन्द किया। उन्होंने उसे सब मामला समझा कर कहा :—"तुम सुसुमारपुर जाकर राजाके उस रसोइयेको देख आओ, साथ ही इस बात का पता ले आओ कि उसने यह कला कहाँ सीखी थी। हमें सन्देह है कि वह शायद नल होगा, इसलिये अच्छी तरह जाँच करनेकी जरूरत है।

विप्रराज कुशल, राजाके आदेशानुसार शीघ्र ही सुसुमारपुर जा पहुँचे। वहाँ इधर उधरसे पता लगाकर वे उस कुब्जके पास गये, किन्तु उसे देखते ही उनकी आशा पर पानी फिर गया। वे अपने मनमें कहने लगे :—कहाँ नल और कहाँ यह? कहाँ मेरु और कहाँ राई? दमयन्तीको वृथा ही नलका भ्रम हुआ है। लेकिन खैर अब यहाँ तक आये हैं, तो अच्छी तरह जाँच ही क्यों न कर लें? इसमें अपना क्या जाता है?—यह सोच कर विप्रराज उस कुब्जके सामने निम्नलिखित दो श्लोक वारंवार उच्चारण करने लगे :—

"निघृणानां निस्त्रपाणां, निःसत्वानां दुरात्मनाम्।
धूर्वहो नल एवैकः, पत्नीं तत्याज यः सतीम्॥ १॥
सुप्तामेकाकिनीं मुग्धां, विश्वस्तां त्यजतः प्रियाम्।
उत्सेहाते कथं पादौ, नैषधेरल्प मेधसः॥ २॥"

अर्थात् :—"निर्दय, निर्लज्ज, निर्बल और दुर्जनोंमें नल ही सबसे चढ़कर है, क्योंकि उसने अपनी सती स्त्रीको त्याग दिया है। उस मुग्धा और विश्वस्त प्रियतमाको सोती हुई अवस्थामें अकेली छोड़कर उस अल्पबुद्धि नलके पैर आगे किस प्रकार बढ़े होंगे?"

विप्रराजके मुखसे वारंवार यह श्लोक सुनकर नलको दमयन्तीकी याद आ गयी, फलतः उनके नेत्रोंसे अश्रु-धारा बहने लगी। उनकी यह अवस्था देखकर विप्र-राजने पूछा :—"भाई कुब्ज! तुम रुदन क्यों कर रहे हो?"

हुण्डिक अर्थात् उस कुब्जने उत्तर दिया :—"आप बहुतही करुण स्वरसे इन श्लोकोंको पढ़ते हैं, इसीलिये मेरी आँखोंमें आँसू आ गये। क्या आप इन श्लोकोंका अर्थ बतलानेकी कृपा न करेंगे?"

विप्रराजको तो उससे ऐसी बातें कहनी ही थीं, इसलिये उन्होंने द्यूतक्रीड़ासे लेकर दमयन्तीके कुण्डिनपुर पहुँचने तकका सारा हाल उसे कह सुनाया। साथही उसने कहा कि :—"राजा दधिपर्णके दूतने हमारे राजासे यह कहा था कि तुम सूर्यपाकी हो, किन्तु दमयन्तीका कहना है कि नलके सिवा संसारमें और कोई सूर्यपाकी है ही नहीं, इसलिये उसे सन्देह हो गया कि शायद तुम नल ही हो। अपना यह सन्देह दूर करनेके लिये ही उसने पितासे विनय अनुनय कर तुम्हें

देखनेके लिये मुझे यहाँ भेजा है। परन्तु विकृत अंग-वाले तुम कुब्ज कहाँ और दिव्य शरीर धारण करनेवाले वे नल कहाँ? कहाँ खद्योत और कहाँ सूर्य! यहाँ आते समय मुझे जो शुभ शकुन हुए थे, वे सब बेकार हो गये। तुम नल नहीं हो।"

विप्रराजकी यह सब बातें सुनकर कुब्जका हृदय और भी मर्माहत हो उठा। उसने जब देखा कि अब धैर्यका बांध टूटना ही चाहता है, तो वह विप्रराजको आग्रहपूर्वक अपने घर लिवा ले गया। वहाँपर उसने उनसे कहा :—"आपके मुखसे नल और दमयन्तीका वृत्तान्त सुनकर मुझे बड़ाही आनन्द हुआ है। कहिये इसके बदलेमें मैं आपकी क्या सेवा करूँ?"

इस प्रकार मीठे वचन कहकर उसने भोजनादिक द्वारा विप्रराजका बड़ाही सत्कार किया। इसके बाद जब उन्होंने वहाँसे चलनेकी इच्छा प्रकट की, तब राजा दधिपर्णने उसे जो वस्त्राभूषण दिये थे, वे सब उसने उनको दे दिये। विप्रराज उसकी जय मनाते हुए सकुशल कुंडिनपुर लौट आये।

कुडिनपुरमें आकर विप्रराजने राजा भीमरथको कुब्जका रूप उसके अंग प्रत्यंगकी विकृति, उसका हाथीको वश करना, उसकी दानशीलता, उसका सूर्यपाकी होना आदि सभी बातें विस्तारपूर्वक कह सुनायीं। उसने राजाको सोनेकी माला, लाख रूपये और वे वस्त्राभूषण दिखलाये, जो कुब्जने उसे ईनाममें दिये थे। साथही उसने वह दो श्लोक भी राजाको सुना दिये, जिनका बारंबार पाठ करनेपर कुब्जकी आँखोंसे अश्रुधारा बह निकली थी। उसने इस बातपर विशेष रूपसे जोर दिया, कि कुब्जका रूप देखकर स्वप्नमें भी कल्पना नहीं की जा सकती, कि यह मनुष्य नल हो सकता है।"

दमयन्तीने विप्रराजकी यह सब बातें बड़े ध्यानसे सुनीं। उसने अपने पितासे कहा :—"हे पिताजी! हाथीको वश करना, सूर्यपाकी होना, असाधारण दान-शीलता आदि सभी बातें ऐसी हैं जो मेरे संदेहको पुष्ट करती हैं। केवल उसका रूपही ऐसा है जो हमारी धारणाको पलट देता है, फिर भी मुझे मालूम होता है कि वह नल ही है। किसी आहार या कर्मदोषसे उनकी

शरीर विकृत हो गया होगा। आप किसी तरह एकबार कुब्जको यहाँ बुलाइये, जिससे मैं स्वयं उसकी परीक्षा ले सकूँ।"

राजा भीमरथने कहा :—"हे पुत्री! मैं भी यही बात सोच रहा था। मैं राजा दधिपर्णको तुम्हारे स्वयंवरकी झूठी खबर देकर यहाँ बुलाऊँगा। निमन्त्रण पाकर वे यहाँ अवश्यही आयेंगे, क्योंकि पहले भी वह तुमसे ब्याह करनेके लिये बहुत लालायित थे। जब तुमने नलसे ब्याह कर लिया था, तब वे बहुत निराश हो गये थे। दधिपर्णके साथ वह कुब्ज भी अवश्यही आयगा, क्योंकि यदि वह नल होगा तो अपनी पत्नीका दूसरेके हाथमें जाना कदापि सहन न करेगा। इन लोगोंको बुलानेमें एक और युक्तिसे भी काम लिया जा सकता है। स्वयंवरकी तिथि उनको इतनी समीप लिखनी होगी, कि यहाँ आनेके लिये भी काफी समय न हो। नल अश्वविद्याके जानकार हैं। वे अश्वोंको वायुवेगसे चला सकते हैं। यदि वह कुब्ज नल होगा, तो समय कम होने पर भी दधिपर्णको निर्दिष्ट समयके पहले ही

यहाँ पहुँचा देगा। इससे नलकी परीक्षा भी हो जायगी।"

दमयन्तीको पिताकी यह युक्ति पसन्द आ गयी, इसलिये उन्होंने उसी दिन एक दूत द्वारा दधिपर्णके यहाँ स्वयंवरका निमन्त्रण भेज दिया। राजा दधिपर्ण उस निमन्त्रणको पढ़कर बड़ी चिन्तामें पड़ गये। कहने लगे :—"दमयन्तीसे व्याह करनेकी तो बड़ी इच्छा है, परन्तु स्वयंवर तो कल ही है। एक दिनमें किसी तरह भी वहाँ नहीं पहुँचा जा सकता। निमन्त्रण दो चार दिन पहले आया होता, तो क्या ही अच्छा होता! अब मैं क्या करूँ?"

इस प्रकार सोचते हुए राजा बहुत उदास हो गये। किसी तरह उनकी इस उदासीका हाल उस कुब्जको भी मालूम हो गया। वह अपने मनमें कहने लगा :—"यह समाचार बहुत ही चिन्ता जनक है। दमयन्ती तो महासती है। वह दूसरे पुरुषकी इच्छा ही कैसे कर सकती है? यदि वह इच्छा भी करेगी तो मेरे जीतेजी किसी दूसरेके अन्तःपुरकी शोभा बढ़ायेगी? नहीं, ऐसा कदापि नहीं हो

सकता। मुझे अब किसी तरह वहाँ अवश्य पहुँचना चाहिये, मैं दधिपर्णके साथ अनायास वहाँ जा सकता हूँ। वे चाहें तो मैं उन्हें छः प्रहरमें कुण्डिनपुर पहुँचा सकता हूँ।"

यह सोचकर कुब्जने राजासे पूछा :—"हे राजन्! आप क्यों उदास हैं? क्या आप मुझे अपनी उदासीका कारण बतला सकते हैं?"

दधिपर्णने कहा :—"भाई! क्या कहूँ, मुझसे कुछ कहते नहीं बनता। नलका देहान्त हो जानेके कारण राजा भीमरथ दमयन्तीका दूसरा स्वयंवर कर रहे हैं। निमन्त्रण पत्रमें स्वयंवरकी तिथि चैत्र शुक्ल पञ्चमी लिखी है। दूतको तो वहाँसे आनेमें इतने दिन लग गये, अब मैं छः प्रहरमें वहाँ कैसे पहुँच सकता हूँ? हे कुब्ज! यही मेरी उदासीका कारण है।"

कुब्जने कहा :—"राजन्! आप चिन्ता न कीजिये। मैं आपको निर्दिष्ट समयके पहले वहाँ पहुँचा सकता हूँ। आप अपनी सवारीके लिये एक अच्छा रथ और दो घोड़े अश्वशालासे मँगा लीजिये। सारथीकी जरूरत नहीं। उसका काम मैं स्वयं कर लूँगा।"

कुब्जकी यह बात सुनकर राजा दधिपर्ण आश्चर्यमें पड़ गये। वे अपने मनमें कहने लगे :—"यह कुब्ज कोई साधारण मनुष्य नहीं मालूम पड़ता। शायद यह कोई देव या विद्याधर होगा। तभी तो समय समय पर यह ऐसे अलौकिक कार्य कर दिखलाता है।" अस्तु, उन्होंने कुब्जसे कहा :—"तुम स्वयं अश्वशालासे अपनी पसन्दगीके घोड़े और रथ ले आओ। मैं इसी समय चलनेके लिये तैयार हूँ।"

कुब्ज उसी समय दो मँझोले घोड़े और एक रथ ले आया। राजा तो चलनेके लिये तैयार ही खड़े थे। उन्होंने एक सेवक, एक छत्रधर और दो चमर ढालने-वाले—इन चार आदमियोंको भी अपने साथ रथमें बैठा लिया। कुब्ज भी अपना बिल्वफल और रत्नपिटारी कमरमें बाँधे तैयार था। उसने सारथीका स्थान ग्रहण कर ज्योंही घोड़ोंकी बागडोर अपने हाथमें ली, त्योंही वे पंखधारी अश्वोंकी भाँति आकाशमें उड़ने और हवासे बातें करने लगे। उसका यह चमत्कार देखकर दधिपर्णने अपने दांतों तले उंगली दबा ली।

रथकी गति बहुत तेज होनेके कारण बैठनेवालोंके शरीरमें जोरोंकी हवा लगती थी। एकबार बड़ी जोरका झोंका लगनेसे राजाका उत्तरीय वस्त्र उड़कर नीचे गिर पड़ा। यह देखकर राजाने कुब्जसे कहा :—"जरा रथको रोकिये, मैं अपना वस्त्र उठा लूँ।"

कुब्जने हँसकर कहा :—"राजन्! यहाँ आपका वस्त्र कहाँ? जिस स्थानमें आपका वस्त्र गिरा, उस स्थानसे हमलोग करीब पचीस योजन दूर निकल आये हैं। यह घोड़े मध्यम हैं। यदि उत्तम होते तो इतनी ही देरमें हमलोग पचास योजन दूर निकल गये होते।"

यह सुनकर राजा दधिपर्ण चुप हो गये। यहाँसे आगे बढ़ने पर उन्हें दूरसे विभीतक नामक एक वृक्ष दिखायी दिया। वह वृक्ष नीचेसे ऊपर तक फलोंसे लदा हुआ था। राजाने उसे देखकर कुब्जसे कहा :—"मुझे एक ऐसी विद्या मालूम है, जिसके सहारे गणना किये बिना ही मैं यह बतला सकता हूँ कि इस वृक्षमें कितने फल लगे हुए हैं। किन्तु लौटती बार मैं तुम्हें यह कौतुक दिखाऊँगा। तुम समस्त

फलोंको तोड़कर गिन लेना, कि मेरा कहना ठीक है या नहीं ?"

कुब्जने कहा :—"लौटती बार क्यों, इसी समय दिखाइये न ? आप समझते होंगे, कि इस सारथीको फल तोड़नेमें अधिक समय लग जायगा और शायद कुण्डिनपुर पहुँचनेमें देरी हो जायगी, पर मैं आपसे बतला देना चाहता हूँ, कि मैं इन समस्त फलोंको एकही मुट्ठीके प्रहारसे गिरा सकता हूँ। इसमें मुझे जरा भी समय न लगेगा।"

राजाने कहा :—"अच्छी बात है, तुम्हारी इच्छा हो तो इसी समय फलोंको गिराकर गिन लो। समूचे वृक्षमें सब मिलाकर पूरे अठारह हजार फल हैं।"

कुब्जने अपने कथनानुसार एक ही मुष्टि-प्रहार द्वारा समस्त फल गिरा दिये। गिरानेके बाद उनको गिना, तो वे पूरे अठारह हजार निकले, न एक कम न अधिक। कुब्जको यह देखकर बड़ाही विस्मय हुआ। वह राजा दधिपर्णकी इस विद्या पर उसी प्रकार मुग्ध हो गया, जिस प्रकार राजा उसकी अश्वविद्यापर मुग्ध हो गये थे।

राजाने कहा :—"यदि तुम अपनी अश्वविद्या मुझे सिखा दो, तो मैं भी अपनी यह विद्या तुम्हें सिखानेके लिये तैयार हूँ।" इस पर कुब्ज राजी हो गया, फलतः उन दोनोंने अपनी-अपनी विद्याका परस्पर परिवर्त्तन कर लिया।

दधिपर्णने सारी रात एक समान गतिसे यात्रा की। सुबह सूर्योदयके पहले ही उनका रथ कुण्डिनपुर पहुँच गया। कुण्डिनपुरको देखते ही दधिपर्णके होठों पर हँसी आ गयी। उन्होंने सोचा कि जब यहाँ तक आनेमें सफलता मिली है, तब दमयन्तीको वरण करनेमें भी दैव अवश्य ही सफलता प्रदान करेगा।

उधर दमयन्तीने उसी दिन प्रातःकाल एक शुभ स्वप्न देखा। उसे ऐसा मालूम हुआ मानो निर्वृत्ति देवी कोशला नगरीका उद्यान ले आयी है। उस उद्यानमें पुष्प और फल युक्त एक आम्र वृक्ष है। देवीकी आज्ञासे वह उस वृक्षपर चढ़ गयी। वहाँ देवीने उसे एक खिला हुआ कमल दिया। इसी समय एक पक्षी, जो पहले ही से उस वृक्ष पर बैठा हुआ था भूमिपर गिर पड़ा।

यह स्वप्न देखते ही दमयन्तीकी आँखें खुल गयीं। उसने अपने पितासे इसका हाल कहा। वे इससे बहुतही प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा :—"बेटी! यह स्वप्न बहुत ही अच्छा मालूम होता है। तुमने जो निर्वृत्ति देवी देखी है, वह तुम्हारी पुण्यराशि है। कोशलाका उद्यान तुम्हें ऐश्वर्य दिलानेवाला है। आम्रवृक्ष पर चढ़ना पति समागम सूचित करता है। खिला हुआ कमल तुम्हारा सतीत्व है जो नलके मिलनसे शीघ्र ही विकसित होने-वाला है। वृक्षसे पक्षीका गिरना कुबेरका पतन सूचित करता है। उसके राज्यभ्रष्ट होनेमें अब अधिक देर न समझनी चाहिये। यह स्वप्न तुमने प्रभात कालमें देखा है, इसलिये इसका फल तुम्हें अति शीघ्र और संभवतः आज ही मिलेगा। स्वप्नशास्त्रके अनुसार तुम्हारे स्वप्नका फल यही मालूम होता है।"

थोड़ी ही देरमें मंगल नामक एक अनुचरने राजा भीमरथको दधिपर्णके आगमनका समाचार कह सुनाया। राजा भीमरथ यह सुनकर नगरके बाहर गये और बड़े सम्मानके साथ दधिपर्णको नगरमें लिवा लाये। इसके

बाद उन्होंने एक राज-भवनमें उनको ठहरा कर भोजनादिक द्वारा उनका आतिथ्य सत्कार किया।

राजा दधिपर्णको भीमरथके इस स्वागत सत्कारसे पूर्ण सन्तोष हुआ, परन्तु उनकी समझमें यह न आता था, कि जिस स्वयंवरके लिये वे इतनी दूरसे यहाँ आये थे, उसकी कोई तैयारी नगरमें नहीं दिखायी देती थी। वे कहने लगे, शायद स्वयंवरकी तिथि लिखने या पढ़नेमें भूल हुई होगी। इतने ही में राजा भीमरथ उनके पास आये। दधिपर्णने सोचा कि अब इनसे इस विषयमें पूछ ताछ करनी चाहिये। किन्तु परम चतुर राजा भीमरथ उनका मनोभाव पहले ही समझ गये, इसलिये उन्होंने उनके कुछ कहने सुननेके पहले ही कहा :—"राजन्! आपको जिस कार्यके लिये बुलाया है, उसकी बातचीत हमलोग फिर किसी समय एकान्तमें करेंगे। किन्तु इस समय तो मैं एक दूसरे ही कार्यसे आपके पास आया हूँ। मैंने सुना है कि आपके साथ जो कुबड़ा आया है वह सूर्यपाकी है। मैं उसकी इस विद्याका चमत्कार देखना चाहता हूँ। अन्तःपुरमें रानी आदि भी इसके लिये परम

उत्सुक हैं। क्या आप थोड़ी देरके लिये उसे मेरे साथ भेजनेकी कृपा न करेंगे ?"

राजा दधिपर्ण भीमरथका यह अनुरोध भला कैसे अमान्य कर सकते थे ? उन्होंने उसी समय कुब्जको भीमरथके साथ कर दिया। भीमरथ उसे सम्मान पूर्वक अपने महलमें लिवा ले गये। वहाँ उन्होंने उसे चावल आदि देकर अपनी अद्भुत विद्याका चमत्कार दिखलानेको कहा। कुब्जने, उस सामग्री द्वारा क्षणमात्रमें उसी तरह स्वादिष्ट भोजन तैयार कर दिया, जिस प्रकार उसने पहले दधिपर्ण राजाके यहाँ तैयार किया था। राजा भीमरथने सपरिवार उन पदार्थोंको चक्खा। दमयन्तीको उन्होंने वह चीजें विशेप रूपसे खिलायीं, क्योंकि उसीके कहनेसे उसकी परीक्षाका यह आयोजन किया गया था।

कुब्ज द्वारा वना हुआ वह भोजन चखते ही दमयन्तीने पितासे कहा :—"अब मुझे पूरा विश्वास और प्रतीति हो गयी है, कि यह पदार्थ मेरे पतिदेवके ही बनाये हुए हैं। ये कुब्ज या वामन किस प्रकार हो

गये, यह मैं नहीं कह सकती, किन्तु इनके नल होनेमें कोई सन्देह नहीं किया जा सकता। इस सूर्यपाकके अतिरिक्त उनकी एक परीक्षा और भी ऐसी है, जिससे मैं तुरन्त उनको पहचान सकती हूं। मेरे किसी भी अंगमें उनका हाथ या उंगली स्पर्श होते ही मेरा समूचा शरीर रोमाञ्चित हो उठता है। आप ऐसा प्रबन्ध करिये कि तिलक करनेके मिस वे मेरे ललाटको या मेरे किसी दूसरे अंगको एक उंगली द्वारा स्पर्श करें। यदि वे नल होंगे, तो मैं उसी समय उन्हें पहचान लूँगी।"

दमयन्तीका यह वचन सुनकर भीमरथने उस कुब्जसे पूछा :—"भाई, सच कहो, क्या तुम नल हो?"

कुब्जने अपने दोनों कानों पर हाथ रखते हुए कहा :—"भगवान्! भगवान्! आप यह क्या कहते हैं? देवता स्वरूप वे नल कहाँ और बीभत्स रूप मैं कहाँ? मैं नहीं समझ सकता, कि मेरे और उनके रूपमें जमीन आसमानका अन्तर होने पर भी आप लोग ऐसा सन्देह क्यों कर रहे हैं?"

भीमरथने कहा :—"अच्छा भाई तुम नल नहीं हो

तो न सही, हम इसकी परीक्षा आप कर लेंगे। तुम अपनी एक उंगलीसे दमयन्तीका कोई अंग स्पर्श कर आओ। बस, फिर तुम्हें हम कोई कष्ट न देंगे।"

कुब्ज वेशधारी नलने इसके लिये तरह तरहके बहाने किये, किन्तु किसी तरह भी उनका प्राण न बच सका। उन्हें विवश होकर राजा भीमरथका यह प्रस्ताव स्वीकार करना पड़ा। दमयन्तीके कमरेमें जाकर उन्होंने एक उंगली द्वारा ज्यों ही दमयन्ती का ललाट स्पर्श किया, त्योंही उसका शरीर कदम्ब वृक्षकी भाँति रोमाञ्चित हो उठा। बस, फिर क्या था, दमयन्ती सारा संकोच छोड़कर उनके चरणोंसे लिपट गयी। उसने गरम आँसु-ओंसे उनके चरणोंको धोते हुए कहा :—"नाथ! उस समय तो आप मुझे सोती हुई जंगलमें छोड़ आये थे, परन्तु अब आप कहाँ जायंगे? मैंने अपना यह खोया हुआ धन आज बहुत दिनोंके बाद पाया है।"

नलके लिये भी अब अधिक समय तक कुब्जके रूपमें रहना कठिन हो गया। इसकी अब जरूरत भी न थी, इसलिये उन्होंने उस बिल्वफलको फोड़ डाला और पिटारीसे

वस्त्राभूषण निकाल कर धारण कर लिये। उन्हें धारण करतेही वे कुब्ज मिटकर पुनः वही देवता स्वरूप नल दिखलाने लगे। पतिदेवको प्रकृत रूपमें देखकर दमयन्तीके आनन्दका वारापार न रहा। वह प्रेमपूर्वक लताकी भाँति नलके गलेसे चिपट गयी। नलके नेत्रोंमें भी उस समय हर्षके आँसू आ गये। पति-पत्नीका यह मिलन आज वाहर वर्षके वाद हुआ था, इसलिये वह इतना मधुर, इतना प्रेममय और इतना आनन्दपूर्ण था, कि इसका वर्णन करना मनुष्यकी शक्तिसे परे था।

पत्नीको मिलने-भेटनेके वाद राजा नल उस कमरेसे वाहर निकले। वाहर राजा भीमरथ उनकी राह देखते हुए खड़े थे। कुब्जके बदले नलको कमरेसे निकलते देखकर उनका हृदय मत्त मयूरकी भाँति थिरक उठा। उन्होंने दौड़कर नलको गलेसे लगा लिया। इसके वाद वे प्रेमपूर्वक उन्हें राजसभामें लिवा ले गये और वहाँ उन्हें अपने सिंहासन पर बैठाकर, वे उनका कुशल समाचार पूछने लगे। नलके प्रकट होनेका यह समाचार देखते ही-देखते बिजलीकी भाँति समूचे नगरमें फैल गया।

राजा दधिपर्णने भी यह समाचार सुना। इसलिये वे उसी समय राजा भीमरथकी राज-सभामें दौड़ आये और नलको प्रणाम कर कहने लगे :—"हे नल भूपाल! आप तो मेरे स्वामी हैं। मैं आपका दास होने योग्य भी नहीं हूँ, फिर भी अज्ञानतावश मैंने आपको अपना आश्रित बना कर रक्खा था। हे देव! मेरा यह अपराध क्षमा कीजिये। मैं इस दुर्व्यवहारके कारण बहुत ही लज्जित हूँ।"

नलने सिंहासनसे उठकर दधिपर्णको गले लगाते हुए कहा :—"राजन्! आप यह क्या कहते हैं? आपने मेरे साथ कोई दुर्व्यवहार नहीं किया है। मैंने स्वेच्छापूर्वक आपके यहाँ आश्रय ग्रहण किया था और मैं शपथपूर्वक कह सकता हूँ कि आपके यहाँ मुझे घरसे भी बढ़कर आराम मिला है। आप अपना विनय दिखानेके लिये चाहे जो कहें, किन्तु मैं तो आपकी इस कृपाके लिये सदा चिरऋणी ही रहूँगा।"

इसी समय सार्थपति धनदेव बहुमूल्य भेट लेकर राजा भीमरथके दर्शन करने आया। उसे देख, दम-

यन्तीने अपने पितासे उसके उपकारोंका हाल कह सुनाया, फलतः राजा भीमरथने उसका बड़ा ही सत्कार किया और उसे छातीसे लगाकर उसका गौरव बढ़ाया।

अब दमयन्तीके आनन्दका वारापार न था। उसने दीर्घकालके बाद वह सुदिन देखा था। ऐसे समयमें भला वह उन मनुष्योंको कैसे भूल सकती थी, जिन्होंने विपत्तिके समय उसपर उपकार किया था, या उसे किसी प्रकारका सहारा दिया था। उसने पिताकी आज्ञासे दूत भेजकर राजा ऋतुपर्ण, रानी चन्द्रयशा, चन्द्रवती और तापसपुरके स्वामी वसन्त श्रीशेखरको भी कुण्डिनपुर बुलाया और एक मास तक अपने पास रखकर उनका आतिथ्य सत्कार किया।

एक दिन सबलोग राज-मन्दिरमें बैठे हुए आनन्द-पूर्वक बातें कर रहे थे। इसी समय आकाशसे उतरकर एक परम तेजस्वी देव वहाँ आया। उसने दमयन्तीको प्रणाम कर कहा :—"हे देवि! मैं पूर्व जन्ममें विमल-मति नामक तापसपति था और आपहीके उपदेशसे मुझे ज्ञान उत्पन्न हुआ था। मृत्यु होनेपर मैं सौधर्म देवलोकके

केसर नामक विमानमें केसर नामक देव हुआ। मैं मिथ्यादृष्टि था, किन्तु आपहीके उद्योगसे मुझे जैन धर्मसे अनुराग उत्पन्न हुआ था। यदि उस समय मुझे आपका उपदेश न मिला होता तो मैं सुर-सम्पत्तिका भोक्ता कदापि न होता। आज इसी कारणसे मैं आपके निकट कृतज्ञता प्रकट करने आया हूँ।" इतना कहनेके बाद वह देव वहाँपर सुवर्ण की वृष्टिकर अन्तर्धान हो गया।

इसके बाद भीमरथ, दधिपर्ण, ऋतुपर्ण, वसन्त श्रीशेखर तथा अन्यान्य राजाओंने नलका राज्याभिषेक कर, कई दिनोंतक महोत्सव मनाया। महोत्सव पूर्ण होनेपर सब राजाओंने सलाहकर निश्चित किया कि अब जिस तरह हो, कुबेरसे राज्य वापस लेना चाहिये। निदान नलके आदेशानुसार सब राजाओंने अपनी-अपनी सेना एकत्र की। जब समस्त सेना एक स्थानमें एकत्र हुई तो ऐसा मालूम होने लगा, मानो सैनिकोंका महासागर उमड़ पड़ा है। इस सेनाको देखकर परम प्रतापी राजा नलका साहस सौगुना बढ़ गया। शुभ मुहूर्त्तमें कुबेरसे अपनी

राज्य-लक्ष्मी वापस लेनेके लिये नलने इस सेनाके साथ अयोध्या पुरीकी ओर प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचने पर रतिवल्लभ नामक उपवनमें तंबू-डेरे खड़े कर वे अपना कर्त्तव्य स्थिर करने लगे।

इधर नलके आगमनका समाचार सुनकर कुबेरके प्राण सूख गये। उसमें अब नलसे युद्ध करनेकी शक्ति न थी। इसीलिये वह विशेष रूपसे चिन्तित हो उठा। इसी समय नलने उसके पास एक दूत भेजकर कहला भेजा कि मैं अपना राज्य वापस लेना चहता हूँ। यद्यपि मैं युद्धकी तैयारी करके यहाँ आया हूँ, किन्तु तुमने मेरा राज्य जूए द्वारा प्राप्त किया था, इसलिये मैं जूए द्वारा भी उसे वापस लेना बुरा नहीं समझता। तुम अपनी इच्छानुसार द्यूत या रण—दोमेंसे एकका निमन्त्रण स्वीकार कर सकते हो।"

इस सन्देशसे कुबेरकी व्याकुलता दूर हो गयी। उसे जो पसन्द था, वही नलने कहला भेजा था। द्यूत क्रीड़ामें वह परम निपुण था और उसे विश्वास था कि संसारमें कोई भी उसे जीत नहीं सकता। जबसे उसने

नलका राज्य जीत लिया था, तबसे उसकी हिम्मत और भी बढ़ गयी थी। उसने जूएका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। वह समझता था कि इसबार भी विजय होगी, परन्तु यह तो भाग्यका खेल था। उस समय कुबेरका सितारा बुलन्द था, इस समय नलका। जब भाग्यलक्ष्मी प्रसन्न होती है, तब मनुष्यको अनायास सफलता मिलने लगती है। उस समय यदि वह मिट्टी छू लेता है, तो वह भी सोना बन जाता है। पहले जिस प्रकार कुबेरने नलका राज्य जीत लिया था, उसी प्रकार नलने इसबार कुबेरसे सारा राज्य जीत लिया।

परन्तु सज्जन और दुर्जनमें बड़ा ही अन्तर होता है। नादान दोस्तसे दाना दुश्मनभी भला कहा गया है। कुबेर हृदयहीन मनुष्य था और नल परम दयालु थे। कुबेरने उनके साथ जो दुर्व्यवहार किया था, उसे वे भूल गये। उन्होंने फिर यही समझा कि यह मेरा छोटा भाई है। इसीलिये उन्होंने पुनः उसे युवराज बना दिया।

राज्य वापस मिलने पर नलने दमयन्तीके साथ

आनन्दपूर्वक नगर प्रवेश कर सबसे पहले कोशलापुरीके समस्त चैत्योंको वन्दन किया। इसके बाद महोत्सव आरम्भ हुआ और नलका पुनः राज्याभिषेक किया गया। इस समय अर्ध भरतके सोलह हजार राजा नाना प्रकारकी मंगल भेट लेकर उनकी सेवामें उपस्थित हुए। उन सबोंने नलकी अधीनता स्वीकार की और नलने उनका आदर सत्कार कर उन्हें अनेक प्रकारसे सम्मानित किया। इसके बाद नलने निर्भय हो, हजारों वर्ष तक अर्धभरत पर राज्य किया।

अन्तमें एक दिन दिव्यरूपधारी निषधदेव अपने पुत्र नलके पास आकर कहने लगे :—"हे वत्स! इस भवारण्यमें आत्माका विवेक रूपी समस्त धन विषय रूपी चोर लूटे ले रहे हैं। यदि तुम उसकी रक्षा न करोगे, तो तुम्हारा पुरुषार्थ फिर किस काम आयगा? मैंने तुमसे कहा था कि जब दीक्षा लेनेका समय आयगा, तब मैं तुम्हें सूचित करूँगा। इसीलिये आज मैं तुम्हारे पास आया हूँ। वह समय आ गया है। अब तुम्हें दीक्षा ग्रहण कर आत्म कल्याणके मार्गपर अग्रसर होना चाहिये।

इतना कह निषधदेव अन्तर्धान हो गये। संयोगवश उसी समय जिनसेन नामक एक अवधिज्ञानी आचार्यका आगमन हुआ। उन्हें देख, नल और दमयन्ती उसी समय उनके पास गये और उन्हें वन्दन करनेके बाद उनसे अपने पूर्वजन्मका हाल पूछने लगे। इसपर जिनसेनने कहा :—"हे राजन्! पूर्व जन्ममें साधुको क्षीर दान देनेसे तुम्हें राज्य प्राप्त हुआ है, किन्तु क्रोधके कारण तुमने बारह घड़ीके लिये मुनिको उनके संगियोंसे अलग कर दिया था, इसीलिये तुम्हें बारह वर्षका वियोग सहन करना पड़ा है।"

इधर नलको यह बात तो मालूम हो ही चुकी थी, कि उनके दीक्षा लेनेका समय समीप आ गया है, इसलिये अब उन्होंने अपने पुष्कल नामक पुत्रको राज्य देकर आचार्य जिनसेनके निकट दीक्षा ले ली। दमयन्तीने भी उनका अनुसरण किया। नलने दीक्षा लेनेके बाद दीर्घकाल तक साधना की, किन्तु विषयोंपर विजय प्राप्त करना कोई सहज काम नहीं है। एकबार उनके मनमें विकार उत्पन्न हो जानेके कारण उनका

चित्त दमयन्तीकी ओर चला गया! आचार्यको यह बात मालूम हो जानेपर उन्होंने नलका त्याग कर दिया।

इससे नल बड़े असमंजसमें पड़ गये, किन्तु उनकी यह अवस्था देखकर उसी समय उनके पिताने देवलोकसे आकर उनको ऐसा उपदेश दिया कि वह सदाके लिये उनके हृदय पट पर अंकित हो गया। उनके हृदयमें जो विकार उत्पन्न हुआ था, वह भी इस उपदेशके प्रभावसे ठीक उसी प्रकार गायब हो गया, जिस प्रकार सूर्योदय होनेपर अन्धकार गायब हो जाता है।

नल अपने पिताके उपदेशसे यद्यपि ठीक रास्तेपर आ गये, किन्तु फिर भी उन्हें ऐसा मालूम हुआ मानो वे व्रतपालनमें असमर्थ हैं। इसलिये उन्होंने अनशन आरम्भ किया और उनमें अनुराग होनेके कारण दमयन्तीने भी उन्हींका अनुसरण किया—यानी उसनेभी अनशन किया। इसी अनशनके फलस्वरुप उन दोनोंकी मृत्यु हो गयी और वे स्वर्गीय सुखके अधिकारी हुए।" अस्तु!

वसुदेवको यह अद्भुत वृत्तान्त सुनाकर कुवेरने कहा:—"हे यदुकुल भूषण! मृत्युके बाद वही नल

मुझ कुवेरके रूपमें उत्पन्न हुआ और दमयन्ती भी मेरी स्त्री हुई। वहीं वहाँसे च्युत होकर अब कनकवतीके रूपमें उत्पन्न हुई है। पूर्व जन्मकी पत्नी होनेके कारण इसपर मुझे मोह उत्पन्न हुआ था और इसीलिये मैं इसे देखनेको यहाँ आया था। हे वसुदेव! इस तरहका मोह सौ जन्म तक पीछा नहीं छोड़ता। मुझे यह देखकर परम सन्तोष हुआ, कि कनकवतीको तुमने पत्नी रूपमें प्राप्त किया है। मैं तुमसे यह भी बतला देना चाहता हूँ, कि यह कनकवती इसी जन्ममें अपने कर्मोंको क्षय कर मोक्ष प्राप्त करेगी। यह बात मुझे विमल स्वामी तीर्थंकरने उस समय बतलायी थी, जिस समय मैं इन्द्रके साथ महाविदेहमें उन्हें वन्दन करने गया था।"

इस प्रकार कनकवतीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनाकर कुवेर तो अन्तर्धान हो गये और वसुदेव उसके साथ ब्याह कर आनन्दपूर्वक अपने दिन निर्गमन करने लगे।

नवाँ परिच्छेद

रोहिणीका पाणिग्रहण

एकदिन वसुदेव कुमार घोर निद्रामें पड़े हुए थे। इसी समय सूर्पक विद्याधर उन्हें हरण कर ले गया। ज्योंहीं वसुदेवको यह मालूम हुआ, त्योंहीं उन्होंने उसे एक ऐसा मुक्का जमाया, कि उसने उसी समय छटपटा कर छोड़ दिया। इससे वसुदेव गोदावरी नदीमें जा गिरे। वसुदेव उस नदीको पार कर कोल्लापुर नगरमें गये। वहाँपर राजकुमारी पद्मश्रीके साथ उनका विवाह हो गया। परन्तु उस स्थानसे भी उन्हें नीलकंठ विद्याधर हरण कर ले गया। वसुदेव उसे भी मुक्का जमाकर उसके हाथसे छूट गये। इस बार वे चम्पानगरीके एक सरोवरमें जा गिरे। उससे निकल कर वे चम्पापुरीमें गये और वहाँपर उन्होंने राजमन्त्रीकी कन्यासे विवाह किया। परन्तु वहाँसे फिर उन्हें सूर्पक उठा ले गया। इसबार

उसके हाथसे छुटकारा मिलने पर वे गंगानदीमें जा गिरे। गंगासे निकल कर वे मुसाफिरोंके साथ घूमते-घामते किसी पल्लीमें पहुँच गये। वहाँपर पल्लीपतिकी जरा नामक पुत्रीसे उन्होंने विवाह किया, जिसके उदरसे उन्हें जराकुमार नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इसके बाद यत्र तत्र विचरण करते समय वसुदेवने अवन्तिसुन्दरी, नरद्वेषिणी, सूरसेना और जीवयशा आदिक हजारों कन्याओंसे विवाह किया।

एकबार वसुदेवने सुना कि अरिष्टपुरमें रुधिर राजाकी रोहिणी नामक कन्याका स्वयंवर होनेवाला है, इस लिये उन्होंने उस स्वयंवरके लिये प्रस्थान किया। मार्गमें उन्हें एक देव मिला। उसने वसुदेवसे कहा :—"रोहिणीसे तुम्हारा विवाह अवश्य होगा, परन्तु स्वयंवरमें सफलता प्राप्त करनेके लिये तुम्हें पटह बजाना होगा। इस पटहकी ध्वनि सुनते ही राजकन्या तुम्हें जयमाल पहना देगी।"

देव की यह शिक्षा हृदयमें धारण कर वसुदेव अरिष्टपुर पहुँचे। वहाँपर स्वयंवर-मण्डपमें राजाओंके

बीचमें न बैठकर वे पहलेसे ही वेश बदल कर बाजेवालोंके बीचमें जा छिपे। यथासमय साक्षात् रोहिणीके समान रोहिणीने मण्डपमें पदार्पण किया। उसे देखते ही जरासंध आदि समस्त राजा उस पर मुग्ध हो गये और विविध चेष्टा द्वारा उसका हृदय अपनी ओर आकर्षित करनेका उद्योग करने लगे। इधर राजाकी आज्ञा मिलते ही रोहिणीकी प्रधान परिचारिकाने स्वयंवरमें उपस्थित समस्त राजा और राजकुमारोंका उसे परिचय दिया, किन्तु उसने किसीको भी पसन्द न किया।

राजकुमारी जब घूमती-घामती बाजेवालोंकी ओर पहुँची, तब वसुदेव उसे लक्ष्यकर पटह बजाने लगे। उन्होंने उस पटह की ही आवाजमें कहा :—"हे मृगाक्षी! तुम हरिणीकी भाँति चारों ओर क्या देख रही हो? तुम इधर आओ और देखो कि अपने हृदय-मन्दिरमें तुम्हारी प्रतिमा स्थापित करनेके लिये मैं किस प्रकार तैयार बैठा हूँ।" यह शब्द सुनते ही रोहिणी वसुदेवकी ओर मुड़ी और उसी क्षण उसने वसुदेवको जयमाल पहना दी।

वसुदेवके गलेमें जयमाल पड़ते ही चारों ओर हाहाकार मच गया। कुछ लोग वसुदेवको मारनेके लिये दौड़ पड़े और कुछ लोग राजकन्याकी यह पसन्दगी देखकर उसकी दिल्लगी उड़ाने लगे। इन राजाओंमें कोशला नगरीका दन्तवक्र नामक एक राजा भी था। वह बहुत ही नीच प्रकृतिका था। इसलिये उसने जोर जोरसे पुकार कर रुधिर राजासे कहा :—"यदि इस कन्याका विवाह तुम्हें पटह बजाने वालेसे करना थी, तो फिर तुमने इन कुलीन राजाओंको क्यों बुलाया था? कन्या अपनी अज्ञानताके कारण बाजे-वालेसे ब्याह कर सकती है, परन्तु उसके पिताको इसकी उपेक्षा कदापि न करनी चाहिये। बाल्यावस्थामें बच्चोंकी शिक्षा दीक्षाका भार माता-पिताके ही शिर रहता है, इस जिम्मेदारीसे वे अपनेको अलग नहीं कर सकते!"

रुधिरराजने कहा :—"हे कोशलेश्वर! तुम्हारे इन वचनोंसे मैं कन्याके स्वयंवरमें बाधक नहीं बन सकता। स्वयंवरमें तो कन्या जिसे पसन्द करे, वही

उसका वर होता है। यही स्वयंवरका सिद्धान्त है, जो हमारे यहाँ अनादि कालसे चला आ रहा है।"

यह सुनकर विदुर नामक एक न्यायी राजाने कहा :—"हे रुधिरराज ! आपका कहना ठीक है, परन्तु वरसे उसका कुलादिक पूछना तो जरूरी है।"

वसुदेव बीचहीमें बोल उठे कि इस समय कुल बतलानेकी जरूरत नहीं है। मैं चाहे जो, और चाहे जैसा होऊँ, किन्तु इस समय सब लोगोंको तो केवल यही देखना चाहिये, कि कन्याने मुझे पसन्द किया है या नहीं ? अब यह मेरी स्त्री है और इस पर मेरा पूर्ण अधिकार है। यदि कोई इसका हरण करेगा, तो मैं अपना भुजबल दिखाकर उसे अपने कुलका परिचय दूँगा।"

वसुदेवके यह धृष्टतापूर्ण वचन सुनकर जरासन्ध आग बबूला हो उठा। उसने समुद्रविजय आदिक राजाओंसे कहा :—"इस अधम रुधिर राजने स्वयंवरके बहाने हमलोगोंको यहाँ बुलाकर हमारा घोर अपमान किया है, इसलिये सबसे पहले इसीको दण्ड देना चाहिये।

हमारा दूसरा शत्रु यह पटह बजानेवाला है। राज-कन्याको पाकर इसे भी इतना गर्व हो गया है, कि हमलोगोंको भला बुरा कहनेमें भी इसे संकोच नहीं होता। इसलिये अब इन दोनोंको इसी समय मार डालना चाहिये।"

जरासन्धके यह वचन सुनते ही समुद्रविजय आदिक राजा युद्ध करनेके लिये तैयार हो गये। वसुदेव भी असावधान न थे। दधिमुख विद्याधर उनके लिये रथ लेकर तैयार ही खड़ा था। वेगवतीकी माता अंगार-वतीने उनको जो धनुष और भाथे दिये थे, उन्हें लेकर वे इसी रथ पर बैठ गये। रुधिर राजाकी सेना बहुत बड़ी न थी, किन्तु वह भी विपक्षियोंसे युद्ध करनेके लिये तैयार हो गयी। देखते-ही-देखते दोनों दल एक दूसरेसे भिड़ गये और वह रमणीय स्थान भयानक समरस्थलीके रूपमें परिणत हो गया।

रुधिर राजकी सेना बहुत ही निर्बल थी, इसलिये जरासन्ध आदिने पहले ही आक्रमणमें उसे काट छाँट डाला, किन्तु इसके बाद वसुदेव सम्हल गये और प्रत्येक

राजाको चुन-चुन कर मारने लगे। सबसे पहले उन्होंने अपना हाथ शत्रुञ्जय राजा पर साफ किया। इसके बाद वे दन्तवक्रको ले बीते। उसके बाद शल्यराज उनके सामने आया। उसकी भी वसुदेवने वही अवस्था की जो शत्रुञ्जय और दन्तवक्रकी की थी। ज्योंही यह तीनों राजा मारे गये, त्योंहीं मैदान साफ हो गया। अब वसुदेवके समक्ष आनेके लिये किसीकी हिम्मत न रही।

वसुदेवके इस पराक्रमसे चकित होकर जरासन्धने समुद्रविजयसे कहा :—"हमलोगोंने इसे बाजावाला समझ कर बड़ी भूल की है। पहले तो हम सब राजा बड़ी-बड़ी बातें बनाते थे, परन्तु अब इसके सामने आनेका किसीको साहसही नहीं पड़ता है। हे समुद्र-विजय! अब तुम्हीं एक ऐसे वीर हो जो इसका मान-मर्दन कर सकते हो। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि इसे पराजित करने पर रोहिणी तुम्हारी ही होगी।"

समुद्रविजयने कहा :—"राजन्! मुझे पर स्त्रीकी आवश्यकता नहीं है। किन्तु आपके आदेशानुसार मैं उस प्रबल शत्रुसे भी युद्ध करनेके लिये तैयार हूँ!"

इतना कह समुद्रविजय अपने बन्धु वसुदेवके साथ

युद्ध करने लगे। उन दोनोंमें दीर्घकाल तक युद्ध होता रहा, किन्तु कोई किसीको पराजित न कर सका। वसुदेवका पराक्रम देखकर समुद्रविजय भी मन-ही-मन संकोच कर गये। इसी समय वसुदेवने एक अक्षर बाण छोड़ा, जो समुद्रविजयके चरणोंपर जा गिरा। समुद्रविजयने उसे उठाकर पढ़ा। उसमें लिखा था कि:—"मैं आपका भाई वसुदेव, जो कपट पूर्वक गायब हो गया था, आपको प्रणाम करता हूँ!"

बाणका यह लेख पढ़ते ही समुद्रविजयने अपने शस्त्र जमीन पर फेंक दिये। ओह! मैं अपने भाईसे ही युद्ध कर रहा हूँ? यह सोचते और 'हे वत्स! हे वत्स!" कहते हुए वे वसुदेवको गले लगानेके लिये दौड़ पड़े। उनको अपनी ओर आते देखकर वसुदेव भी रथसे उतर कर उनकी ओर आगे बढ़े। मार्गमें दोनों भाइयोंकी भेट हो गयी। वसुदेव समुद्रविजयके चरणोंपर गिर पड़े और समुद्रविजयने उनको उठा कर हृदयसे लगा लिया। रणभूमिमें दोनों भाइयोंका यह मिलन एक अद्भुत दृश्य उपस्थित कर रहा था। जिसने

इस दृश्यको देखा, उसीके नेत्र, उसीका तन-मन तृप्त हो गया।

शान्त होने पर समुद्रविजयने वसुदेवसे पूछा :—"हे भाई! तुम्हें अपना नगर छोड़े सौ वर्ष हो गये? इतने समय तक तुम कहाँ रहे और क्या करते रहे?"

इस प्रश्नके उत्तरमें वसुदेवने नगर छोड़नेके समयसे लेकर अब तकका सारा हाल उन्हें कह सुनाया। उसे सुनकर समुद्रविजयके साथ ही रुधिर राजको भी बड़ा ही आनन्द हुआ। वे अपने मनमें कहने लगे कि मेरी कन्याने योग्य पुरुषको ही पसन्द किया है। मणि और काञ्चनका यह मेल मिलानेके लिये उन्होंने विधाताको भी बहुत धन्यवाद दिया। जरासन्धको जब मालूम हुआ कि वसुदेव उनके सामन्त समुद्रविजयका छोटा भाई है, तब उनका क्रोध भी हवा हो गया। इस प्रकार थोड़ी देर पहले जहाँ मार काट और शत्रुताकी बातें हो रही थीं, वहाँ अब शान्तिका साम्राज्य स्थापित हो गया। इसके बाद रुधिर राजने, सभी राजाओंके समक्ष शुभ मुहूर्त्तमें बड़े समारोहके साथ वसुदेव और रोहिणीका

विवाह कर दिया। विवाहोत्सव पूर्ण होनेपर जरासन्ध आदिक राजा अपने अपने स्थानको वापस चले गये किन्तु रुधिर राजके अनुरोधसे कंस समेत समस्त यादव एक वर्षके लिये वहीं ठहर गये और रुधिर राजका आतिथ्य ग्रहण करते रहे।

एकबार वसुदेवने रोहिणीसे एकान्तमें पूछा :—"हे सुन्दरि! स्वयंवरके समय सभामें एकसे एक बढ़कर राजे महाराजे उपस्थित थे, किन्तु उनको पसन्द न कर तुमने मुझे क्यों पसन्द किया? मैं तो उस समय एक साधारण पटहवादकके सिवा और कुछ भी न था?"

रोहिणीने कहा :—"हे नाथ! मैंने उस वेशमें भी आपको पहचान लिया था। बात यह थी कि मैं प्रज्ञप्ति विद्याकी सदा पूजा करती थी। उसने मुझे बतलाया था कि तेरा पति दसवाँ दशार्ह होगा। स्वयंवरमें वह पटह-वाद्य बजायेगा और यही उसकी पहचान होगी। इसीसे मैंने आपको पहचान लिया था।"

एकदिन राजा समुद्रविजय आदि रुधिर राजकी सभामें बैठे हुए थे। उस समय वसुदेव कुमार भी

वहींपर उपस्थित थे। उसी समय एक प्रौढ़ा स्त्री आकाशसे उतरकर वहाँ आयी। और उसने वसुदेवसे कहा :—"हे कुमार! मेरा नाम धनवती है। मेरे बालचन्द्रा और वेगवती नामक दो कन्याएं हैं। इनमेंसे बालचन्द्रा आपसे विवाह करनेके लिये लालायित है। वह दिनमें न खाती है, न रातको ही उसे निद्रा आती है। यदि आप मेरे साथ न चलेंगे, तो आपकी वियोगाग्निमें वह अपने प्राण त्याग देगी।"

वसुदेवने गुरुजनोंके सामने उसकी इन बातोंका कोई उत्तर न देकर, समुद्रविजयकी ओर देखा। समुद्रविजयने कहा :—"हे भाई! यह शुभ कार्य है, इसलिये मैं तुम्हें सहर्ष जानेकी आज्ञा देता हूँ। किन्तु पहलेकी तरह वहाँ अधिक समय न बिता देना!"

बड़े भाईकी आज्ञा मिल जाने पर वसुदेव उन्हें प्रणाम कर धनवतीके साथ आकाशगामी वाहन द्वारा गगनवल्लभ नगरमें जा पहुँचे। वहाँपर बालचन्द्राके पिता काञ्चनदंष्ट्रने, जो विद्याधरोंके राजा थे, उनका

बड़ा सत्कार किया और शुभ मुहूर्त्तमें बड़ी धूमके साथ उनसे बालचन्द्राका विवाह कर दिया।

राजा समुद्रविजय इस बीच रुधिरराजसे विदा ग्रहण कर कंसादिकके साथ अपने नगरको चले गये थे। वहाँ वे प्रतिदिन वसुदेवकी प्रतीक्षा करते थे। इधर वसुदेवने शीघ्र ही काञ्चनदंष्ट्रसे विदा ग्रहण कर बालचन्द्राके साथ अपने नगरके लिये प्रस्थान किया। इसी समय उन्होंने अपनी उन सब स्त्रियोंको भी अपने साथ ले लिया, जिनसे उन्होंने पहले ब्याह किया था। इस समय अनेक विद्याधर और उनके साले आदिक सम्बन्धी भी उनके साथ हो गये। वसुदेव इन सबके साथ जिस समय विमलमणि विमानमें बैठ कर शौर्यपुर पहुँचे, उस समय उनका आनन्द हृदयमें न समाता था। राजा समुद्रविजय और समस्त नगर निवासी बड़े आदरके साथ उन्हें नगरमें लिवा ले गये। वहाँ वसुदेव परिवारके साथ आनन्दपूर्वक अपने दिन व्यतीत करने लगे।

—:०:—

दसवाँ परिच्छेद

कृष्ण वासुदेव और बलभद्रका जन्म

हस्तिनापुर नगरमें एक महामति नामक सेठ रहता था। उसे ललित नामक एक पुत्र था, जो माताको बहुत ही प्रिय था। एकबार सेठानीने ऐसा गर्भ धारण किया, जो बहुत ही बुरा और सन्ताप दायक था। सेठानीने उस गर्भको गिरानेके लिये अनेक उपाय किये, किन्तु कोई फल न हुआ। यथासमय उसने एक सुन्दर पुत्रको जन्म दिया, परन्तु जन्म होते ही उसने उसे कहीं फेंक देनेके लिये एक दासीके सिपुर्द कर दिया।

दासीको क्या, वह उसी समय उस बालकको लेकर वहाँसे चल पड़ी, परन्तु मकानसे बाहर निकलते ही उसका पिता सामने मिल गया। दासीके हाथमें जीवित बालकको देखकर उसने उसके सम्बन्धमें पूछताछ

की, तो दासीने उससे सारा हाल बतला दिया। बालकको देखकर सेठका पितृ-हृदय द्रवित हो उठा, इसलिये उसने दासीके हाथसे उसे ले लिया। इसके बाद गुप्तरूपसे दूसरे मकानमें ले जाकर उसने उसे बड़ा किया और उसका नाम गंगदत्त रक्खा।

ललितको अपने इस भाईका हाल मालूम था, इसलिये वह भी कभी-कभी उस मकानमें जाकर उसे खेलाया करता था। एकदिन वसन्तोत्सवके समय उसने अपने पितासे कहा :—"हे पिताजी! वसन्तोत्सवके दिन गंगदत्त भी हमलोगोंके साथ भोजन करे तो बड़ाही अच्छा हो।"

पिताने कहा :—हाँ अच्छा तो है, किन्तु तुम्हारी माता उसे देख लेगी तो बड़ा ही अनर्थ कर डालेगी।"

ललितने कहा :—"अच्छा, मैं ऐसा प्रबन्ध करूँगा, जिससे माताजी उसे देख न सकेंगी।"

पुत्रकी यह बात सुनकर पिताने उसे इस कार्यके लिये अनुमति दे दी। भोजनका समय होने पर ललितने गंगदत्तको एक पर्देके पीछे बैठा दिया और खुद पिता-

पुत्र उसके बाहर बैठकर भोजन करने लगे। भोजन करते समय बीच बीचमें वे अपनी थालीसे खानेकी चीजें उठा उठाकर चुपचाप गंगदत्तको भी देते जाते थे। इतने ही में अचानक हवासे पर्दा उड़ा तो गंगदत्त पर उसकी माताकी दृष्टि पड़ गयी। उसे देखते ही उसके बदनमें मानो आगसी लग गयी। उसने गंगदत्तके केश पकड़ कर उसे खूब मारनेके बाद घरसे बाहर निकाल कर वह उसे एक मोरी में ढकेल आयी।

महामति सेठ और ललितको इससे बड़ाही दुःख हुआ। उन्होंने चुपचाप उसे मोरीसे निकाल कर नह-लाया धुलाया और अनेक प्रकारसे उसे सान्त्वना दी। इसके बाद वे फिर उसे उसी मकानमें चुपचाप रख आये।

इस घटनाके कुछ दिन बाद वहाँपर कई साधुओंका आगमन हुआ। सेठने उनका आदर सत्कार कर, उनसे गंगदत्त और उसकी माताका हाल निवेदन करके पूछा :—"हे भगवन्! गंगदत्तकी माता उससे इतना वैर क्यों रखती है?"

इस प्रश्नके उत्तरमें एक साधुने कहा :—"ललित और गंगदत्त पूर्वजन्ममें सगे भाई थे। ललित बड़ा और गंगदत्त छोटा था। एकवार वे दोनों गाड़ी लेकर जंगलमें काष्ठ लेने गये वहाँसे गाड़ीमें काष्ठ भरकर जब वे लौटे, तो मार्गमें एक स्थानपर बड़े भाईको एक नागिन दिखलायी दी। उस समय छोटा भाई गाड़ी हाँक रहा था। इस-लिये बड़े भाईने उसे पुकारकर उसका ध्यान उस नागिन की ओर आकर्षित किया और उसे बचा देनेको कहा। यह सुनकर नागिन बहुतही प्रसन्न हुई और उसे उन दोनों पर विश्वास जमगया। परन्तु छोटा भाई कुटिल प्रकृतिका था, इसलिये उसने उसके ऊपरसे गाड़ी निकाल दी। इससे वह नागिन वहीं कुचल कर मर गयी। इस जन्ममें वही नागिन तुम्हारी स्त्री हुई है। वह बड़ा भाई, जिससे उस जन्ममें उसकी रक्षा की थी, इस जन्ममें ललित हुआ है और वह अपनी माताको अत्यन्त प्यारा है। छोटा भाई गंगदत्त हुआ है। उसने उस जन्ममें नागिनका प्राण लिया था, इसलिये इस जन्ममें उसकी माता उससे वैर रखती है। इस प्रकार हे सेठ!

स्नेह और वैर पूर्वजन्मके कर्मोंसे ही उत्पन्न होते हैं, अकारण नहीं।

साधुके यह वचन सुनकर सेठ और ललितको बड़ाही दुःख हुआ। उन्हें इस संसारकी विचित्रता देखकर वैराग्य आ गया और उन दोनोंने उसी समय दीक्षा ले ली। मृत्युके बाद वे दोनों महाशुक्र देवलोकमें गये और वहाँपर स्वर्गीय सुख उपभोग करने लगे। इधर गंगदत्तने भी माताकी अनिष्टताका स्मरण कर विश्व-वल्लभ होनेका निदान किया। मृत्यु होने पर वह भी उसी महाशुक्र देवलोकका अधिकारी हुआ।

ललितका जीव देवलोकसे च्युत होने पर वसुदेवकी पत्नी रोहिणीके उदरसे पुत्र रूपमें उत्पन्न हुआ। जिस दिन वह रोहिणीके गर्भमें आया, उस दिन पिछली रातमें रोहिणीने एक स्वप्न देखा था, जिसमें उसे ऐसा मालूम हुआ था, मानो गज, सिंह, चन्द्र और समुद्र—यह चारों उसके मुखमें प्रवेश कर रहे हैं। यह स्वप्न बहुत अच्छा और पुत्र-जन्मका सूचक था। इसलिये गर्भकाल पूर्ण होने पर रोहिणीने सचमुच चन्द्रके समान एक

सुन्दर पुत्रको जन्म दिया। पश्चात् मागध आदिने बड़ी धूमधामसे उसका जन्मोत्सव मनाया। वह बालक सबको प्यारा मालूम होता था, इसलिये वसुदेवने उसका नाम राम रक्खा। यही राम आगे चलकर बलराम और बलभद्रके नामसे विख्यात हुआ। जब वह कुछ बड़ा हुआ तो वसुदेवने उसकी शिक्षा दीक्षाके लिये एक आचार्य नियुक्त कर दिया। रामने उसके निकट रहकर थोड़े ही दिनोंमें समस्त विद्या तथा कलाओंमें पारदर्शिता प्राप्त कर ली।

एकदिन राजा समुद्र विजय अपनी राज-सभामें बैठे हुए थे। उस समय वसुदेव और कंस आदि भी वहींपर उपस्थित थे। इतने ही में वहाँ नारदमुनि आ पहुँचे। उनको देखकर राजा तथा समस्त सभा खड़ी हो गयी। राजाने उनको ऊँचे आसन पर बैठा कर पूजनादि द्वारा उनका बड़ाही सत्कार किया। इससे नारदमुनि बहुतही प्रसन्न हुए और राजाको आशीर्वाद दे वहाँसे अन्यत्र प्रस्थान कर गये।

नारदमुनिका यह आदर सत्कार देखकर कंसको

बड़ाही आश्चर्य हुआ और उसने उनके चले जाने पर समुद्रविजयसे उनका परिचय पूछा। समुद्रविजयने कहा :—"प्राचीनकालमें इस नगरके बाहर यज्ञयशा नामक एक तापस रहता था। उसके यज्ञदत्ता नामक एक भार्या और सुमित्र नामक एक पुत्र भी था। सुमित्रकी पत्नीका नाम सोमयशा था। जृंभक देवताओंमेंसे कोई देवता च्युत होकर उसीके उदरसे पुत्र रूपमें उत्पन्न हुआ और उसीका नाम नारद पड़ा।

जिन तापसोंके यहाँ नारदका जन्म हुआ था, वे एक प्रकार का व्रत किया करते थे। उस व्रतकी विधि यह थी कि एकदिन उपवास करना और दूसरे दिन जंगल में जाकर फलों द्वारा पारण करना। एकदिन वे लोग नारदको एक अशोक वृक्षके नीचे बैठा कर पारणके लिये फल लेने चले गये। इसी समय उधरसे जृँभक देवता आ निकले और उस सुन्दर बालकको अशोक वृक्षके नीचे अकेला देखकर उसके पास खड़े हो गये। इसके बाद अवधिज्ञानसे उन्हें जब यह मालूम हुआ कि पूर्व जन्ममें वह भी जृंभक देवता और उनका एक मित्र था,

तब उन्होंने उस वृक्षकी छायाको स्थिर बना दिया, जिससे उस पर धूप न आ सके।

इतना कर जृंभक देवता उस समय तो अपने काममें चले गये, किन्तु काम निपटाकर जब वे उधरसे फिर लौटे तो उस समय भी उस बालकको उन्होंने उसी स्थानमें पाया। स्नेहवश वे इस बार उसे वैताढ्य पर्वत पर उठा ले गये। वहाँपर एक गुफामें उन्होंने उसे पाल-पोस कर बड़ा किया। जब उसकी अवस्था आठ वर्षकी हुई, तब उन्होंने उसे प्रज्ञप्ति आदि विद्याओंकी शिक्षा दी। इसके बाद वही बालक बड़ा होने पर नारदमुनिके नामसे विख्यात हुआ। नारदमुनि अपनी विद्याओंके बल आकाशमें विचरण करते हैं। वे इस अवसर्पिणीमें नवें नारद और चरम शरीरी हैं। नारद की उत्पत्तिका यह हाल मुझे त्रिकालज्ञानी सुप्रतिष्ठ मुनिने बतलाया था। नारद मुनि स्वभावसे कलह प्रिय हैं। यदि कोई उनकी अवज्ञा करता है, तो वे रुष्ट हो जाते हैं। शायद इसी कारणसे उनकी सर्वत्र पूजा होती है। उनकी एक विशेषता यह भी है कि वे कहीं भी एक स्थानमें स्थिर

नहीं रहते। नारदकी बाल्यावस्थामें जृंभक देवताओंने जिस अशोककी छाया स्थिर कर दी थी, वह उस समयसे पृथ्वीपर छाया वृक्षके नामसे सम्बोधित किया जाता है।" यह वृत्तान्त सुनकर कंस चकित हो गया।

तदनन्तर समुद्रविजयके यहाँ कुछकाल रहनेके बाद कंस अपनी राजधानी मथुरा नगरीको चला गया था। एकबार उसने वहाँसे वसुदेवको मथुरा आनेके लिये निमन्त्रित किया। इसलिये वसुदेव समुद्रविजयकी आज्ञा प्रासकर वहाँ गये। कंस और उसकी पत्नी जीवयशाने उनका बड़ाही आदर सत्कार किया। इसके बाद एकदिन मौका देखकर कंसने कहा:—"हे मित्र! मृत्तिकावती नामक नगरीमें मेरे काका देवक राज करते हैं। उनके देवकी नामक एक कन्या है। आप उससे विवाह कर लीजिये। मैं आपका अनुचर हूँ, इसलिये मुझे विश्वास है कि आप मेरी यह प्रार्थना अमान्य न करेंगे।"

वसुदेवने कंसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली, इसलिये उनको अपने साथ लेकर कंसने मृत्तिकावती नगरीके लिये

प्रस्थान किया। संयोगवश मार्गमें नारद मुनि मिल गये। उन्होंने उनसे पूछा :—"तुम दोनों जन कहाँ जा रहे हो?"

वसुदेवने कहा :—"कंसकी इच्छानुसार मैं देवक राजाकी देवकी नामक कन्यासे विवाह करने जा रहा हूँ।"

नारदने कहा :—"कंसने इस काममें मध्यस्थ बनकर बहुतही उत्तम कार्य किया है। हे वसुदेव! जिस प्रकार पुरुषोंमें तुम सर्वश्रेष्ठ हो, उसी प्रकार स्त्रियोंमें देवकी शिरमौर है। मालूम होता है, कि विधाताने यह अद्भुत जोड़ मिलानेके लिये ही तुम दोनोंको उत्पन्न किया था। यदि तुम देवकीसे विवाह कर लोगे, तो उसके सामने तुम्हें विद्याधरियाँ भी तुच्छ मालूम देने लगेंगी। इस विवाहमें कोई विघ्न बाधा न हो, इसलिये मैं अभी देवकीके पास जाता हूँ और उसे तुम्हारे गुण सुनाकर, तुम्हींसे विवाह करनेके लिये उसे समझा आता हूँ।"

इतना कह नारद उसी समय आकाश मार्ग द्वारा

देवकीके घर जा पहुँचे। देवकीने उनका आदर सत्कार कर यथाविधि उनका पूजन किया। इसपर नारदने उसे आशीर्वाद देते हुए कहा :—"हे कुमारी! मैं आशीर्वाद देता हूँ, कि तुम्हारा विवाह वसुदेवके साथ हो!"

देवकीने सकुचाते हुए पूछा :—"भगवन्! वसुदेव कौन हैं?"

नारदने कहा :—"कामदेवको भी लज्जित करनेवाले, युवक शिरोमणि, विद्याधरियोंके प्रिय पात्र, दसवें दशार्ह वसुदेवका नाम क्या तुमने नहीं सुना? उसका नाम तो बच्चे तक जानते हैं। हे सुन्दरि! आज संसारमें दूसरा कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जो रूप और सौभाग्यमें उसके सामने ठहर सके। इसीलिये तो देवता भी उससे ईर्ष्या करते हैं।"

इतना कह नारद मुनि अदृश्य हो गये। किन्तु उनकी बातोंसे देवकीके हृदयमें वसुदेवने सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर लिया। वह मन-ही-मन उनपर अनुरक्त हो गयी और उन्हींके ध्यानमें रात दिन निमग्न रहने लगी।

कुछ ही दिनोंमें वसुदेव और कंस भी वहाँ जा

पहुँचे। देवक राजाने उनका बड़ा सत्कार किया और उच्च आसन पर बैठाकर उनके आगमनका कारण पूछा। इसपर कंसने कहा :—"राजन्! वसुदेव मेरे स्वामी और मित्र हैं। मेरी इच्छा है कि इनसे आप देवकीका व्याह कर दें। इसके लिये इनसे बढ़कर दूसरा पति और कौन हो सकता है?"

देवकने मुस्कुरा कर कहा :—"आज तक मैंने कन्याके यहाँ इस तरह पतिको जाते नहीं देखा। आपने यह विरुद्धाचरण क्यों किया? खैर, देवकी या उसकी मातासे पूछे विना इस सम्बन्धमें मैं कोई बात नहीं कह सकता।"

देवकका यह उत्तर सुनकर कंस और वसुदेव अपने तम्बूमें लौट आये। पश्चात् देवक राजसभासे उठकर अपने अन्तःपुरमें गया। वहाँ उसने रानीसे कहा :—"आज कंसने देवकीका व्याह वसुदेवसे कर देनेके लिये मुझे प्रार्थना की थी किन्तु मैंने इन्कार कर दिया है। देवकी मुझे प्राणसेभी बढ़कर प्यारी है। यदि मैं इसका व्याह अभीसे कर दूँगा, तो मेरे लिये इसका वियोग असह्य हो जायगा।"

यह सुनकर रानी और देवकी उदास हो गयी। देवकीके नेत्रोंमें तो आँसू तक भर आये। रानीने कहा :—"आपको इन्कार न करना चाहिये था। देवकीकी अवस्था विवाह करने योग्य हो चुकी है। उसका वियोग तो किसी न किसी दिन हमें सहना ही होगा। जब आपको घर बैठे वसुदेव जैसा वर मिल रहा है, तो इस सुयोगसे आपको अवश्य लाभ उठाना चाहिये।"

देवकने कहा :—"मैं तो उपहास कर रहा था। अभी मैंने उसको कोई निश्चयात्मक उत्तर नहीं दिया है। यदि तुम्हें यह सम्बन्ध पसन्द है, तो मैं भी कदापि इन्कार न करूँगा।"

इस प्रकार सबकी राय मिल जाने पर देवकने मन्त्रीको भेज कर कंस और वसुदेवको अपने महलमें बुला लिया और शुभ मुहूर्त्तमें बड़े समारोहके साथ वसुदेवसे देवकीका विवाह कर दिया। देहजमें देवकने बहुतसा सुवर्ण, अनेक रत्न और कोटि गायों सहित दस गोकुलके स्वामी नन्दको प्रदान किया। विवाह कार्य

सम्पन्न हो जाने पर वसुदेव और कंस, नन्दको अपने साथ लेकर मथुरा नगरीको लौट आये। वहाँ कंसने अपने मित्रके इस विवाहोपलक्षमें एक महोत्सवका आयोजन किया, जिसके कारण नगरमें कई दिन तक बड़ी चहल पहल और धूम मची रही।

इसी बीच एकदिन कंसके छोटे भाई अतिमुक्त मुनि, जिन्होंने बहुत पहले दीक्षा ले ली थी, वे पारण करनेके लिये कंसके यहाँ पधारे। तपश्चर्याके कारण उनका शरीर बहुत दुर्बल हो गया था, यहाँ तक कि वे बड़ी कठिनाईसे चल फिर सकते थे। इधर कंसकी पत्नी जीवयशाने महोत्सवके कारण उस समय मद्यपान किया था इसलिये वह उन्मत्त हो रही थी। उसने मुनिराजके गलेमें लिपट कर कहा :—"हे देवर! तुम इस महोत्सवके समय यहाँ पर आ गये सो बहुतही अच्छा हुआ। आओ, हम दोनों एक साथ मिलकर नाचें और गायें।"

उसने मुनिराजसे इसी तरहकी और भी दिल्लगियाँ की। इससे मुनिराजको बड़ाही कष्ट हुआ। उन्होंने खिन्न होकर कहा :—"हे पापिनी! जिसके निमित्त यह

उत्सव हो रहा है, उसीके सातवें गर्भ द्वारा तेरे पति और पिताकी मृत्यु होगी।"

मुनिराजका यह भयंकर वचन सुनकर जीवयशाका सारा नशा उतर गया और वह भयसे थर-थर काँपने लगी। उसने उसी समय मुनिराजको छोड़ दिया। उनके चले जाने पर जीवयशाने कंसके पास जाकर सारा हाल कह सुनाया। उसे सुन कर कंस भी चिन्तित हो उठा। वह अपने मनमें कहने लगा:—"इस बातकी तो आशा ही न करनी चाहिये, कि मुनिराजका वचन व्यर्थ हो जायगा। उन्होंने जो कहा है, वह तो एकदिन होकर ही रहेगा, लेकिन मुझे अभीसे निराश न होकर अपनी रक्षाका उपाय करना चाहिये। वसुदेव मेरे मित्र हैं। यदि मैं उनसे देवकीके सात गर्भ माँग लूँ, तो इस विपत्तिसे अनायास मेरी रक्षा हो जायगी। मेरी धारणा है कि वसुदेव गर्भ देनेसे कदापि इन्कार न करेंगे। किन्तु यदि वे इन्कार करेंगे, तो मैं किसी दूसरे उपायका अवलम्बन करूँगा।"

यह सोचकर कंस मदोन्मत्तकी भाँति झूमता झामता

वसुदेवके पास गया। वसुदेवको देखते ही उसने दोनों हाथ जोड़कर उनको प्रणाम किया। वसुदेव भी कंसको देखकर खड़े हो गये। उन्होंने उसका समुचित सत्कार कर उसे योग्य आसन पर बैठाया। इसके बाद उन्होंने कहा :—"हे मित्र! तुम मुझे प्राणसे भी अधिक प्रिय हो। तुम्हारी मुखाकृतिसे मालूम होता है कि तुम कुछ कहना चाहते हो। मेरे निकट तुम्हें संकोच करनेकी आवश्यकता नहीं। मेरे योग्य जो कुछ कार्य सेवा हो, सहर्ष सूचित करो।"

कंसने कहा :—"हे मित्र! जरासन्धसे जीवयशा दिला कर तुमने मुझपर जो उपकार किया था, उसके भारसे मैं अब तक दबा हुआ हूँ। किन्तु अब मुझपर एक उपकार और कीजिये। वह यह कि, मुझे देवकीके सात गर्भों की आवश्यकता है। क्या आप देनेकी कृपा न करेंगे?"

कंसकी यह याचना सुनकर वसुदेव पहले तो कुछ विचारमें पड़ गये, किन्तु बादको उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया। देवकीने भी इसमें कोई [illegible], क्योंकि

बल्कि उसने कहा :—"हे कंस ! तुमने जैसा कहा है, वैसाही होगा। मेरे बच्चोंको तुम अपने ही समझना।" तुम्हींने हम दोनोंका यह योग मिलाया है। क्या हम-लोग इतनी ही देरमें तुम्हारा उपकार भूलकर अकृतज्ञ बन जायेंगे ? नहीं नहीं, यह कदापि नहीं हो सकता।" तुम्हारे इस उपकारके बदले हमलोग जो भी करें, वह थोड़ा ही है।

देवकीकी यह बातें सुनकर वसुदेवने कहा :—"प्रिये ! कंससे इस विषयमें कुछ अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं। तुम अपने सात बच्चे उत्पन्न होते ही इन्हें दे देना। इस सम्बन्धमें अब कुछ भी सोचने या कहने सुननेकी जरूरत नहीं है।"

वसुदेव और देवकीकी इस कृपाके लिये उनको धन्यवाद देकर कंस अपने वासस्थानको चला गया। वह उस समय मदोन्मत्त मालूम होता था, इसलिये वसुदेवने उस समय उससे अधिक बातचीत करना उचित न समझा। परन्तु उसके चले जाने पर जब वसुदेवने यह सोचकर हाल सुना, तब वे बड़ा ही पश्चाताप

करने लगे। किन्तु अब पश्चातापसे कोई लाभ न था। वे सत्यवादी थे। समुद्र अपनी मर्यादा छोड़ सकता था, सूर्य पश्चिममें उदय हो सकता था, मेरु चलित हो सकता था, किन्तु उनका वचन मिथ्या नहीं हो सकता था।

दूसरी ओर भद्दिलपुर नगरमें नाग नामक एक धनीमानी सेठ रहता था। उसकी स्त्रीका नाम सुलसा था। वे दोनों परम श्रावक थे। एकबार अतिमुक्त मुनिने बाल्यावस्थामें सुलसासे कहा था कि तुम मृतवत्सा होगी। यह सुनकर सुलसाने हरिणीगमेषी देवकी आराधना की। आराधना करने पर जब वह देव प्रसन्न हुआ तो सुलसाने उससे पुत्रोंकी याचना की। इसपर देवने अवधि ज्ञानसे विचार कर कहा कि :—"हे सुलसे! अतिमुक्त का वचन मिथ्या नहीं हो सकता। तुम्हारे उदरसे जितने भी बच्चे उत्पन्न होंगे, वे सब मरे हुए होंगे। तथापि मैं तुम्हारी मनःतुष्टिके लिये एक उपाय कर सकता हूँ। वह यह कि, प्रसवके समय मैं तुम्हारे गर्भोंको देवकीके उदरमें और देवकीके गर्भोंको तुम्हारे उदरमें रख दूँगा। इस परिवर्तनसे देवकीको कोई हानि न होगी, क्योंकि

उसके बच्चे तो अन्तमें कंस द्वारा मारे ही जायँगे, दूसरी ओर देवकीके बच्चे तुम्हें मिल जानेसे उनका जीवन भी बच जायेगा और तुम्हारी मनोकामना भी पूर्ण हो जायगी।"

इतना कह हरिणीगमेषी देव उस समय तो अन्तर्धान हो गये, किन्तु बादको उन्होंने अपनी दैवी शक्तिसे सुलसा और देवकी को एक साथ ही रजस्वला बनाया, जिससे उन दोनोंने एक साथ ही गर्भ धारण किया और एक साथ ही उन दोनोंका प्रसवकाल उपस्थित हुआ। हरिणीगमेषीने जब देखा कि उनके प्रसवमें अधिक समयकी देर नहीं है, तब उन्होंने सुलसाका मृतगर्भ उठाकर देवकीके उदरमें और देवकीका गर्भ उठाकर सुलसाके उदरमें स्थापित कर दिया। इस प्रकार देवकी और सुलसाके लगातार छः गर्भोंका उन्होंने परिवर्त्तन किया। फलतः देवकीके गर्भसे मृत बालक उत्पन्न हुए और उन्हें कंसने शिलापर पटकवा दिया। दूसरी ओर सुलसाने लगातार छः पुत्रको जन्म दिया, जो बड़े होने पर अनीकयशा, अनन्तसेन,

अजीतसेन, निहतारि, देवयशा और शत्रुसेनके नामसे प्रसिद्ध हुए।

सातवीं बार ऋतुस्नाता देवकीने प्रभातकालमें गज, सिंह, सूर्य, ध्वज, विमान, पद्मसरोवर और अग्नि इन सात चीजोंको स्वप्नमें देखा। यह स्वप्न बहुत ही शुभ था और वासुदेवके जन्मका सूचक था। यह स्वप्न देखनेके बाद शीघ्रही गंगदत्तका जीव महाशुक्र देवलोकसे च्युत होकर देवकीके गर्भमें आया। देवकीने रत्नकी भाँति उस गर्भकी रक्षा की। गर्भकाल पूर्ण होने पर श्रावण कृष्ण अष्टमीको रात्रिके समय शुभ मुहूर्तमें देवकीने एक पुत्र-रत्नको जन्म दिया।

देवकीका यह सातवाँ गर्भ था। अतिमुक्त मुनिके कथनानुसार इसीके हाथसे कंसकी मृत्यु होनेवाली थी। इसी भयको दूर करने के लिये कंसने वसुदेवसे सात गर्भ मांग लिये थे। इस सातवें गर्भको हाथ करनेके लिये वह विशेष रूपसे लालायित था, इसलिये उसने वसुदेव और देवकीके वासस्थानमें कड़ा पहरा बैठा दिया था। परन्तु इस बालककी रक्षाका भार स्वयं देवताओंने ले रक्खा

था, इसलिये जिस समय उसका जन्म हुआ, उस समय समस्त पहरेदार इस प्रकार निद्रामें पड़ गये, मानो उन्होंने मद्यपान किया हो।

बेचारी देवकीके छः बालकोंको कंसने शिला पर पटकवा दिया था। छः बच्चोंकी माता होने पर भी उसकी गोद ज्योंकी त्यों खाली थी। देवकीको इसके लिये बड़ा दुःख था। वह जानती थी, कि उसके सातवें बच्चेकी भी वही गति होगी, जो छः बच्चोंकी हो चुकी है। उसकी इस कल्पनासे उसका हृदय काँप उठा। उसने खिड़कीसे बाहर झाँक कर देखा तो सब पहरेदार घोर निद्रामें पड़े हुए थे। उसने किसी तरह अपने इस पुत्रको बचानेका संकल्प किया। वसुदेव उसके पास ही शिर पकड़े हुए बैठे थे। देवकीने गिड़गिड़ाकर उनसे कहा :—"हे नाथ! किसी तरह मेरे इस बच्चेकी प्राणरक्षा कीजिये। कंस आपका मित्र होने पर भी उसने आपको वचन बद्ध कर शत्रुका काम किया है। उसने जिस तरह हमारे छः बच्चोंको शिलापर पटकवा कर मार दिया है, उसी तरह वह हमारे इस लालको भी मार डालेगा।

इस समय सब पहरेदार सो रहे हैं। आप चुपचाप इस बालकको लेकर यहाँसे निकल जाइये और नन्दके गोकुलमें रख आइये। ऐसा करने पर इसका प्राण बच जायगा। हे नाथ! मुझ अभागिनीकी इतनी प्रार्थना अवश्य मान्य कीजिये।

देवकीकी यह प्रार्थना वसुदेव अमान्य न कर सके। वे उसी समय बालकको उठाकर चुपचाप महलसे निकल पड़े। श्रावणकी अँधेरी रात थी, आकाश मेघाच्छन्न था, चारों ओर अन्धकारका साम्राज्य था, रास्ता भी साफ न था, किन्तु देवताओंकी कृपासे सारी कठिनाइयाँ दूर हो गयीं। उन्होंने उस बालक पर पुष्पवृष्टि की, शिर पर छत्र धारण किया और आठ दीपकों द्वारा मार्गका अन्धकार दूर किया।

किसी तरह वसुदेव महलसे तो निकल आये, परन्तु उन्हें ख्याल आया कि नगरके दरवाजे तो रातको बन्द रहते हैं, वे किस प्रकार खुलेंगे? वे चिन्ता करते हुए किसी तरह मुख्य द्वारके पास पहुँचे। देखा तो वह द्वार खुला पड़ा था। देवताओंने धवल वृषभका रूप धारण

कर पहले ही वह द्वार खोल दिया था। उसी द्वारके पास काठके एक पींजड़ेमें उग्रसेन बन्द रहते थे। वसुदेव जब उस स्थानमें पहुँचे, तो उग्रसेनने उनसे पूछा। यह क्या लिये आ रहे हो? वसुदेवने वह बालक दिखाकर कहा :—"यह कंसका काल है। हे राजन्! इससे आपका भी उपकार होगा, किन्तु अभी यह बात किसीसे जाहिर न कीजियेगा।" यह कहते हुए वसुदेव उस बालकको लिये शीघ्र ही नन्दके घर पहुँच गये।

इसी समय नन्द-पत्नी यशोदाने भी एक पुत्रीको जन्म दिया था। वसुदेव अपना पुत्र यशोदाको देकर, उनकी पुत्री आप ले आये। जिस समय वे उस पुत्रीको लेकर अपने वासस्थानमें पहुँचे, उस समय भी समस्त प्रहरी घोर निद्रामें पड़े हुए थे। इससे उन्हें उस कन्याके साथ देवकीके पास पहुँचनेमें कोई कठिनाई न हुई। उन्होंने उसे ले जाकर देवकीके हाथमें रख दिया और उसकी प्राप्तिका सारा हाल भी उसे कह सुनाया। देवकी यह जानकर परम प्रसन्न हो उठी

कि उनका पुत्र सकुशल नन्दके घर पहुँच गया और कंसके हाथसे अब उसे हानि पहुँचनेकी कोई सम्भावना नहीं है।

कुछ देर बाद उस कन्याने रोदन किया। उसे सुनकर समस्त प्रहरी उठ बैठे। वे उसी समय उस बालिकाको कंसके पास उठा ले गये। कंस उसे देखकर विचारमें पड़ गया। मुनिराजने तो कहा था, कि देवकीके सातवें गर्भसे मेरी मृत्यु होगी, किन्तु यह तो एक बालिका है। यह मेरा नाश करनेमें कैसे समर्थ हो सकती है। मालूम होता है कि मुनिराजने कोरी धमकी ही दी थी। इस बालिकाकी हत्यासे मुझे क्या लाभ होगा?—इस प्रकार विचार कर कंसने उस बालिकाकी हत्याका विचार छोड़ दिया और केवल उसकी नासिका काटकर उसे देवकीको वापस दे दिया।

वसुदेवके जो पुत्र उत्पन्न हुआ था और जिसे वे रातोरात नन्दके यहाँ छोड़ आये थे, उसका वर्ण श्याम होनेके कारण उसका नाम कृष्ण पड़ा। यद्यपि प्रत्यक्ष रूपसे नन्द और यशोदा ही उसका लालन-पालन

करते थे, किन्तु परोक्ष रूपसे अनेक देव-देवियाँ भी उसकी रक्षाके लिये सदा उद्यत रहते थे।

कृष्णके जन्मको एक मास होने पर देवकीने उसे देखनेके लिये गोकुल जानेकी इच्छा प्रकट की। वसु-देवने कहा :—"प्रिये! तुम वहाँ सहर्ष जा सकती हो, किन्तु यदि तुम विना किसी कारणके अनायास वहाँ जाओगी, तो कंसको सन्देह हो जायेगा। इसलिये हे सुभगे! वहाँ कोई निमित्त दिखलाकर जाना उचित होगा। मेरी राय तो यह है कि तुम नगरकी अनेक स्त्रियोंको साथ लेकर, गो-पूजन करती हुई गोकुल पहुँच जाओ और गो-पूजनके ही बहाने पुत्रको देखकर वहाँसे तुरंत लौट आओ!"

वसुदेवकी यह सलाह देवकीको पसन्द आ गयी, इसलिये उन्होंने वैसा ही किया। यशोदाकी गोदमें अपने लालनको—उस लालनको, कि जिसका हृदय श्रीवत्ससे शोभित है, जिसकी कान्ति मरकत रत्नके समान है, जिसके हाथ पैरमें चक्रादिके लक्षण हैं, विकसित कमल समान जिसके लोचन हैं, देखकर देवकीका हृदय आनन्द

विभोर हो गया। उन्होंने उसे अपनी गोदमें लेकर खेलाया, उसका दुलार किया और वारंवार उसे हृदयसे लगाकर अपने प्रेमावेशको शान्त किया। कृष्णको अपनी गोदसे उतारने की उन्हें मानो इच्छा ही न होती थी, परन्तु लाचारी थी, इसलिये वे उसे वहीं छोड़कर अपने वासस्थानको लौट आयीं। परन्तु उस दिनसे पुत्र वियोग सहन करना उनके लिये असम्भव हो पड़ा, इस-लिये वे गो-पूजनके बहाने रोज एकबार गोकुल जाने लगी। उसी समयसे गो-पूजनकी प्रथा प्रचलित हुई, जो आजतक इस देशमें सर्वत्र प्रचलित है।

परन्तु वसुदेवके शत्रुओंको इससे भला शान्ति कैसे मिल सकती थी? सूर्पकके शकुनी और पूतना नामक दो पुत्रियाँ थी। वे अपने पिताकी प्रेरणासे उसका बदला लेनेको तैयार हुईं। एकदिन कृष्ण एक गाड़ीके पास अकेले खेल रहे थे। संयोगवश उस समय नन्द या यशोदा—दो में से एक भी वहाँ उपस्थित न थे। इसी समय वह दोनों विद्याधरियाँ कृष्णके पास आ पहुँची और कृष्णको मार डालनेका मौका देखने लगीं। कुछ

देरमें श्रीकृष्ण जब खेलते खेलते उस गाड़ीके नीचे पहुँचे, तब शकुनी उस गाड़ी पर चढ़ गयी और उन्हें उसके नीचे दबाकर मार डालनेकी चेष्टा करने लगी। यह देख-कर श्रीकृष्ण वहाँसे बाहर सरक आये। बाहर पूतना उनके लिये तैयार खड़ी थी। वह कृष्ण को गोदमें लेकर उन्हें अपना जहर से भरा हुआ स्तन पिलाने लगी। परन्तु उसकी भी यह चाल बेकार हो गयी। कृष्णकी रक्षा करनेके लिये जो देवता सदैव उपस्थित रहते थे, उन्होंने इसी समय उस गाड़ी द्वारा प्रहार कर उन दोनोंकी जीवन-लीला समाप्त कर दी।

इस घटनाके कुछ देर बाद वहाँ नन्द आ पहुँचे। सबसे पहले उनकी दृष्टि उस गाड़ी पर जा पड़ी, जो शकुनि और पूतना पर प्रहार करनेसे चूर चूर हो गयी थी। इसके बाद उन्होंने रक्तलोचनवाली राक्षसी समान उन दोनों विद्याधरियोंको देखा, जिनके प्राण-पखेरू तन-पिञ्जरको वहीं छोड़कर न जाने कहाँ प्रयाण कर गये थे। यह सब देखते ही नन्दके प्राण सूख गये। किसी अज्ञात शंकासे उनका हृदय काँप उठा। वे अपने मनमें

कहनें लगे—"मालूम होता है कि आज श्रीकृष्णकी खैर नहीं।" उन्होंने उसी समय उनकी खोज की। वे कहीं खेल रहे थे। उनको सकुशल देखकर नन्दके मृत शरीरमें मानो फिरसे प्राण आ गये। पूछताछ करने पर उन्हें ग्वाल-बालोंने बतलाया कि "कृष्णने ही उस गाड़ीको तोड़ डाला था और उन्हींने उन राक्षसियोंको मारकर अपनी प्राण रक्षा की थी!"

नन्दने बड़े आश्चर्यके साथ यह समाचार सुना। उन्होंने श्रीकृष्णका समूचा शरीर टटोल कर देखा कि उन्हें कहीं चोट तो नहीं आयी है। इसी समय वहाँ यशोदा आ पहुँची। श्रीकृष्णको अकेला छोड़नेके लिये नन्दने उनको सख्त उलाहना देते हुए कहा :— "प्यारी! तुमने आज कृष्णको अकेला क्यों छोड़ दिया? तुम्हारे ऐसे कामका परिणाम किसी समय बहुत ही भयानक हो सकता है। देखो, आज ही भगवानने इसकी रक्षा न की होती तो न जाने क्या हो गया होता! चाहे जितना नुकसान हो रहा हो, घीके घड़े

ही क्यों न लुढ़के जा रहे हों, परन्तु कृष्णको अकेला छोड़कर तुम्हें कहीं न जाना चाहिये।"

यशोदा भी उस गाड़ी और विद्याधरियोंको देखकर सहम गयीं। उन्होंने बड़े प्रेमसे कृष्णको अपनी गोदमें उठाकर उनके शरीर की जांच की। जब उन्हें विश्वास हो गया, कि कृष्णको कहीं चोट नहीं आयी, तब उनका हृदय शान्त हुआ। उन्होंने बारंबार कृष्णके कपोल पर चुम्बन कर उन्हें गलेसे लगा लिया। इस दिनसे वे कृष्णको बड़े यत्नसे रखने लगीं। अपनी समझमें वे उन्हें कभी अकेला न छोड़ती थीं, परन्तु कृष्ण बहुत ही उत्साही और चञ्चल प्रकृतिके बालक थे, इसलिये वे मौका मिलतें ही यशोदाकी नजर बचाकर इधर उधर निकल जाया करते थे।

कृष्णकी इस आदतसे यशोदा बहुत आजिज आ गयीं। एकदिन उन्हें कार्यवश अपनी पड़ोसिनके यहाँ जाना था। वे जानती थीं, कि कृष्ण घरमें बैठनेवाले जीव नहीं हैं, इसलिये उन्होंनें उनकी कमरमें एक रस्सी बाँधकर, उस रस्सीका दूसरा छोर एक बहुत बड़े

ऊखलसे बाँध दिया। इतना करने पर उन्हें विश्वास हो गया कि कृष्ण अब उस स्थानको छोड़कर और कहीं नहीं जा सकते, इसलिये वे पड़ोसिनके यहाँ चली गयीं। श्रीकृष्णको अकेले देखकर उसी समय सूर्पकका पुत्र अपने दादाका बदला चुकानेके लिये वहाँ आ पहुँचा। उसने श्रीकृष्णके दोनों ओर दो अर्जुनके वृक्ष उत्पन्न किये। इसके बाद कृष्णको ऊखल समेत पीस डालनेके लिये वह विद्याधर उन्हें उन दोनों वृक्षोंके बीचमें ले गया। परन्तु उसके कुछ करनेके पहले ही, कृष्णकी रक्षाके लिये वहाँ जो देवता नियुक्त था, उसने उन दोनों वृक्षोंको उखाड़ डाला और उस विद्याधरको मारकर वहाँसे खदेड़ दिया। उस समय वहाँ कोई उपस्थित न था, किसीको भी यह भेद मालूम न हो सका।

थोड़ी देरमें कुछ ग्वाल-बाल खेलते हुए वहाँ आ पहुँचे, उन्होंने उन वृक्षोंको देखकर समझा कि कृष्णने ही उन वृक्षोंको उखाड़ डाला है। वे तुरन्त यशोदाके पास दौड़ गये। उन्होंने यशोदासे कहा :—"कृष्णने

दो वृक्षोंमें ऊखल फँसाकर उन्हें उखाड़ डाला है।" यशोदा यह आश्चर्यजनक संवाद सुनकर उसी समय वहाँ आ पहुँची। नन्द भी कहींसे दौड़ आये। कृष्णको सकुशल देखकर उनके आनन्दका वारापार न रहा। उन्होंने धूलि धूसरित कृष्णको गलेसे लगाकर वारंवार उनके मस्तक पर चुम्बन किया। उस दिन कृष्णके उदरमें दाम (रस्सी) बांधा गया था, इसलिये उस दिनसे सब ग्वाल-वाल कृष्णको दामोदर कहने लगे।

श्रीकृष्ण गोप गोपियोंको वहुत ही प्यारे थे, इसलिये वे उन्हें रात दिन गोदमें लिये घूमा करती थीं। ज्यों ज्यों वे बड़े होते जाते थे, त्यों त्यों उनके प्रति लोगोंका स्नेह भी बढ़ता जाता था। कृष्णका स्वभाव बहुत ही चञ्चल था, इसलिये जब वे कुछ बड़े हुए, तब गोपियोंकी मटकियोंसे दूध दही उठा लाने लगे, ऐसा करते समय वे कभी कभी उनकी मटकियाँ भी फोड़ डालते थे, तथापि गोपियाँ उनसे असन्तुष्ट न होती थीं। वे चाहे बोलते चाहे मारते, चाहे दही-मक्खन खा जाते, चाहे कोई नुकसान कर डालते, किन्तु हर

हालतमें नन्द, यशोदा और समस्त गोपगोपियाँ उनसे प्रसन्न ही रहते थे! उनकी बाललीलामें, उनके क्रीड़ा कौतुकोंमें कोई किसी प्रकारकी बाधा न देते थे, बल्कि उनके प्रेमके कारण, सब लोग मन्त्र-मुग्धकी भाँति उनके पीछे लगे रहते थे।

धीरे धीरे कृष्णके अतुल पराक्रम—शकुनि और पूतनाको मारने, शकट तोड़ने और अर्जुन वृक्षोंको उखाड़ डालनेकी बात चारों ओर फैल गयी। जब यह बातें वसुदेवने सुनी, तब उन्हें बड़ी चिन्ता हो गयी। वे अपने मनमें कहने लगे:—"मैं अपने पुत्रको छिपानेके लिये नन्दके यहाँ छोड़ आया था, परन्तु अब वह अपने बलसे प्रकट होता जा रहा है। यदि कंसको उसपर सन्देह हो जायगा, तो वह उसका अमंगल किये बिना न रहेगा। इसके लिये पहलेहीसे सावधान हो जाना उचित है। यदि कृष्ण की रक्षाके लिये मैं अपने किसी पुत्रको उसके पास भेज दूं तो बहुत ही अच्छा हो सकता है। परन्तु अक्रूरादि पुत्रोंको तो क्रूर मति कंस जानता है, इसलिये उन्हें भेजना

ठीक नहीं। रामको वह नहीं पहचानता, अतः उसे वहाँपर जानेका आदेश दिया जा सकता है।

इस प्रकार विचार कर वसुदेवने कोशला नगरीसे रामसहित रोहिणीको बुलाकर उन्हें शौर्यपुर भेज दिया। इसके बाद एक दिन रामको बुलाकर, उनको सब मामला समझा, उन्हें भी नन्द और यशोदाके हाथोंमें सौंप, पुत्रकी ही भाँति रखनेका अनुरोध किया। नन्द और यशोदाने इसमें कोई आपत्ति न की। उन्होंने कृष्णकी भाँति रामको भी पुत्ररूपमें अपना लिया।

राम और कृष्ण—दोनों भाई दस धनुष ऊँचे और देखनेमें अत्यन्त सुन्दर थे। वे जिधर खेलनेके लिये निकल जाते, उधरकी ही गोपिकाएं सारा कामकाज छोड़कर, उनको देखनेमें लीन हो जाती थीं। कृष्ण जब कुछ बड़े हुए, तब नन्दने उनको शिक्षाके उपकरण देये और वे रामके निकट धनुर्वेद तथा अन्यान्य लाओं की शिक्षा प्राप्त करने लगे। राम और कृष्ण भी एक दूसरेके भाई, कभी मित्र और कभी गुरु शिष्य नते। वे खाते पीते, उठते बैठते, सोते जागते, खेलते

कूदते सदा एक दूसरेके साथ ही रहते। यदि एक क्षणके लिये भी कोई किसीसे अलग हो जाता तो वह उनके लिये असह्य हो पड़ता था।

कृष्ण बहुत ही बलवान थे। उनके शरीरमें कितना बल है, इसकी कभी किसीको थाह न मिलती थी। बीच बीचमें वे ऐसे कार्य कर दिखाते थे, जिससे लोगोंको दांतों तले उंगली दबानी पड़ती थी। बड़े बड़े उत्पाती वृषभोंको, जिन्हें कोई काबूमें न कर सकता था उन्हें वे केवल पूँछ पकड़ कर खड़े कर देते थे। ऐसे ऐसे कार्य उनके लिये बाँये हाथके खेल थे। अपने भाईके यह सब कार्य देखकर रामको बड़ा ही आनन्द और आश्चर्य होता था, परन्तु वे अपने मुखसे कुछ भी न कहकर, उदासीनकी भाँति सब कुछ देखा करते थे।

धीरे धीरे कृष्णकी अवस्था जब कुछ बड़ी हुई, तब उनका अलौकिक रूप देखकर गोपियोंके हृदयमें काम-विकार उत्पन्न होने लगा। वे जब तब कृष्णको अपने बीचमें बैठाकर रास और वसन्त क्रीड़ा करने लगतीं। जिस प्रकार भ्रमर दल एक क्षणके लिये भी

कमलसे अलग नहीं होता, उसी प्रकार गोपियाँ भी कृष्णसे कभी अलग न होती। कृष्णको देखते ही उनकी पलकोंका गिरना बन्द हो जाता, उनकी दृष्टि स्थिर बन जाती और उनकी जिह्वा भी कृष्णका ही जप करने लगतीं। कभी कभी वे कृष्णके ध्यानमें इसप्रकार तन्मय बन जातीं, कि उन्हें सामने रक्खे हुए पात्रोंका भी ध्यान न रहता और वे अनेकबार भूमिपर ही गायोंको दुह देतीं। कृष्ण सदा दीन-दुःखियोंकी आततायियोंसे रक्षा करनेके लिये प्रस्तुत रहते थे, इसलिये कृष्णको अपने पास बुलानेके लिये अनेकबार गोपियाँ भीत और त्रस्त मनुष्योंकी भाँति झुठ-मुठ चीत्कार कर उठती थीं। कृष्ण जब उनके पास जाते तब वे हँस पड़तीं और तरह तरहसे अपना प्रेम व्यक्त कर, अपने हृदयको शान्त करतीं।

कभी कभी गोपियाँ निर्गुण्डी आदि पुष्पोंकी माला बनातीं और कृष्णके कण्ठमें उसे जयमालकी भाँति पहना कर आनन्द मनातीं। कभी वे गीत और नृत्यादिक द्वारा कृष्णका मनोरंजन करतीं और उनके

शिक्षा वचन सुनकर अपने कर्णोंको पावन करतीं। कृष्ण समस्त गोपोंके अग्रणी थे, इसलिये उन्हें गोपेन्द्रके नामसे भी सम्बोधित करती थीं। जिस समय कृष्ण मोरपंख धारण कर मधुर स्वरसे मुरली बजाते, उस समय गोपियोंका हृदय भी थिरक थिरक कर नाचने लगता। कभी कभी गोपियाँ कृष्णसे कमल ला देनेकी प्रार्थना करतीं और वे उन्हें लाकर देते। गोपियाँ इससे बहुत ही सन्तुष्ट रहती थीं। कभी कभी वे मधुर शब्दोंमें रामको उलाहना देते हुए कहने लगतीं :—"हे राम! तुम्हारा भाई ऐसा है कि यदि हम उसे देख लेती हैं, तो वह हमारा चित्त हरण कर लेता है और यदि हम उसे नहीं देखतीं, तो वह हमारा जीवन ही नष्ट कर देता है।"

कभी कभी कृष्ण पर्वतके शिखर पर चढ़ जाते और वहाँसे वंशी बजाकर रामका मनोरंजन करते थे। कभी कभी कृष्ण नृत्य करते, गोपियाँ गायन गातीं और राम तबलचीकी भाँति हस्तताल देते थे। इस प्रकार विविध क्रीड़ा करते हुए राम और कृष्णके ग्यारह वर्ष देखते ही देखते सानन्द व्यतीत हो गये।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

नेमिनाथ भगवानका जन्म

उधर शौर्यपुर नगरमें समुद्रविजय राजाकी शिवादेवी रानीने एकदिन प्रभातके समय गज, वृषभ, सिंह, लक्ष्मी, पुष्पमाला, चन्द्र, सूर्य, ध्वज, कुम्भ, पद्मसरोवर सागर, देवविमान, रत्नपुञ्ज और निर्धूम अग्नि—यह चौदह महास्वप्न देखे। उसदिन कार्तिक कृष्ण द्वादशी और चित्रा नक्षत्र था। उस नक्षत्रसे चन्द्रमाका योग होने पर अपराजित अनुत्तर विमानसे शंखका जीव च्युत होकर शिवादेवीके उदरमें आया। उस समय तीनोंलोक प्रकाशित हो उठे और अन्तर्मुहूर्त्त तक नारकीय जीवोंको भी सुख हुआ। तीर्थंकरोंके जन्मके समय इतना तो अवश्य ही होता है।

स्वप्न देखते ही शिवादेवीकी निद्रा टूट गयी। उन्होंने तुरन्त शैय्या त्यागकर अपने पतिसे इन स्वप्नोंका

यह चौदह महास्वप्न देखे ।

हाल कह सुनाया। राजाने उनका फल जाननेके लिये एक क्रोष्टुकि नामक स्वप्न पाठक को बुला भेजा। उसी समय अचानक एक मुनिराज भी वहाँ आ गये। राजाने उन दोनोंका सत्कार कर उनसे उस स्वप्नका फल पूछा। इसपर मुनिराजने कहा :—"हे राजन्! यह स्वप्न बहुत ही उत्तम है। तुम्हारी रानी एक ऐसे पुत्रको जन्म देगी, जो तीनों लोकका स्वामी तीर्थंकर होगा।"

यह स्वप्न-फल सुनकर राजा और रानी बहुत ही प्रसन्न हुए। रानी उस दिनसे रत्नकी भाँति यत्नपूर्वक उस गर्भकी रक्षा करने लगीं। उस गर्भके प्रभावसे रानीके अंगप्रत्यङ्गका लावण्य और सौभाग्य बढ़ गया। गर्भकाल पूर्ण होनेपर शिवादेवीने श्रावण शुक्ल पञ्चमीके रात्रिके समय चित्रा नक्षत्रके साथ चन्द्रमाका योग होने पर एक सुन्दर पुत्रको जन्म दिया। उसके शरीरकी कान्ति मरकत रत्नके समान और देह शंख लाञ्छनसे सुशोभित हो रही थी। राजा और रानीके नेत्र इस पुत्र-रत्नको देखते ही मानो शीतल और तृप्त हो गये।

इस पुत्रका जन्म होते ही छप्पन दिशिकुमारिकाओंने

अपने अपने स्थानसे आकर शिवादेवीका प्रसूति-कर्म किया। इसके बाद पञ्चरूप धारण कर सौधर्मेन्द्र भी वहाँ आये। उन्होंने एक रूपसे प्रभुका प्रतिबिम्ब माताके पास रखकर, उन्हें अपने हाथोंमें उठा लिया, और दो रूपोंसे दोनों ओर दो चमर, तथा एकसे छत्र धारण किया, और पाँचवें रूपसे उनके आगे आगे वज्र उछालते हुए, उन्हें भक्ति-पूर्वक मेरु पर्वतके शिखर पर अति पाण्डुकंबला नामक शिला पर ले गये। वहाँ प्रभुको अपनी गोदमें स्थापित कर शक्रने एक सिंहासन पर स्थान ग्रहण किया और अच्युत आदि तिरसठ इन्द्रोंने भक्ति-पूर्वक भगवानको स्नान कराया। फिर शक्रेन्द्रने भी भगवानको ईशानेन्द्रकी गोदमें बैठा कर उन्हें विधि-पूर्वक स्नान कराया।

भगवानको स्नान करानेके बाद शक्रेन्द्रने दिव्य पुष्पों द्वारा उनकी पूजा और आरती की। इसके बाद हाथ जोड़कर उन्होंने इस प्रकार उनकी स्तुति की :—

"हे मोक्ष गामिन्! हे शिवादेवीकी कुक्षिरूपी सीपके मुक्ताफल! हे प्रभो! हे शिवादेवीके रत्न! आपके

द्वारा हमारा कल्याण हो! हे बाईसवें तीर्थङ्कर! मोक्ष सुख जिसके करतलमें है, जिसे समस्त पदार्थोंका ज्ञान है, जो विविध लक्ष्मीके निधान रूप हैं, ऐसे आपको अनेकानेक नमस्कार है! हे जगद्गुरु! यह हरिवंश आज पवित्र हुआ, यह भारतभूमि भी आज पावन हुई, क्योंकि आप जैसे चरम शरीरी तीर्थाधिराजका इसमें जन्म हुआ है।। हे त्रिभुवन वल्लभ! जिस प्रकार लता समूहके लिये मेघ आधार रूप होते हैं, उसी प्रकार संसारके लिये आप आधार रूप हैं। आप ब्रह्मचर्यके स्थान और ऐश्वर्यके आश्रय रूप हैं। हे जगत्पते! आपके दर्शनसे भी प्राणियोंका मोह नष्ट होकर उन्हें दुर्लभ ज्ञानकी प्राप्ति होती है। हे हरिवंशरूपी वनके लिये जलधर समान! आप अकारण त्राता हैं, अकारण वत्सल हैं और अकारण समस्त जीवोंके पालन करनेवाले हैं। हे प्रभो! आज भरत-क्षेत्र अपराजित विमानसे भी अधिक महिमावान बन गया है, क्योंकि लोगोंको सम्यक्त्व देनेवाले आपने इसमें जन्म लिया है। हे नाथ! अब आपसे मेरी यही प्रार्थना है कि आपके

चरण मेरे मनरूपी मानस सरोवरमें राज-हंसकी भाँति सदा निवास करें और मेरी जिह्वा निरन्तर आपका गुणगान किया करे !"

इस प्रकार जगत् प्रभुकी स्तुति कर शक्रेन्द्र पुनः उन्हें शिवादेवीके पास उठा ले गये और उन्हें यथास्थान रख आये। इसके बाद भगवानके लिये पाँच अप्सराओंको धात्रीके स्थानमें नियुक्त कर, वे नन्दीश्वर की यात्रा कर अपने स्थानको वापस चले गये।

इसके बाद राजा समुद्रविजयने भी पुत्रके जन्मोपलक्षमें एक महोत्सव मनाया और अपने इष्टमित्र, सभाजन तथा आश्रितोंको दानादि द्वारा सम्मानित किया। जिस समय यह बालक गर्भमें आया, उस समय उसकी माताने पहले चौदह स्वप्न और बादको अरिष्ट रत्नकी चक्रधारा देखी थी, इसलिये राजाने उस बालकका नाम अरिष्टनेमि रक्खा। अरिष्टनेमिके जन्मका समाचार सुनकर वसुदेव आदि राजाओंको भी अत्यन्त आनन्द हुआ और उन्होंने भी मथुरा नगरीमें बड़ी धूमके साथ उसका जन्मोत्सव मनाया।

बारहवाँ परिच्छेद

कंस-वध

एकदिन देवकीको देखनेके लिये कंस वसुदेवके घर गया। वहाँपर उसने देवकीकी उस कन्याको देखा, जिसकी नासिका छेद्कर उसने जीवित छोड़ दिया था। उसे देखकर कंसके हृदयमें कुछ भयका सञ्चार हुआ, इसलिये घर आने पर उसने एक अच्छे ज्योतिषीको बुलाकर उससे पूछा कि मुनिराजने जो यह कहा था कि "देवकीका सातवाँ गर्भ—तुम्हारा भाञ्जा—तुम्हारी मृत्युका कारण होगा, यह बात झूठ है या सच है?"

ज्योतिषीने कुछ सोच विचार कर कहा :—"हे राजन्! मुनिका वचन मिथ्या नहीं हो सकता। देवकीका सातवाँ गर्भ, जो तुम्हारी मृत्युका कारण होगा, कहीं न कहीं जीवित अवस्थामें अवश्य विद्यमान होगा। वह कहाँ है, यह जाननेके लिये तुम अपने अरिष्ट नामक

वृषभ, केशी नामक अश्व, दुर्दान्त गर्दभ तथा दुर्दमनीय मेषको वृन्दावनमें छोड़ दो और उन्हें स्वच्छन्द विचरण करने दो। जो इन चारोंको मारे, उसे ही देवकीका सातवाँ पुत्र समझना! निःसन्देह उसीके हाथसे तुम्हारी मृत्यु होगी।"

कंसने पूछा—"क्या इसके अतिरिक्त उसकी और भी कोई पहचान है?"

ज्योतिषीने कहा—"हाँ, अवश्य है। आपके यहाँ शारंग नामक जो धनुष है, आपकी बहिन सत्यभामा जिसकी नित्य पूजा करती है, उसे जो चढ़ायेगा, वही आपके प्राणोंका घातक होगा। ज्ञानियोंका कथन है कि वह धनुष वासुदेवके सिवा और कोई धारण न कर सकेगा। इसके अतिरिक्त वही कालीयनागका दमन करेगा और चाणूर मल्ल तथा आपके पद्मोत्तर तथा चम्पक नामक हाथियों को मारेगा। जो यह सब कार्य करेगा, उसीके द्वारा आपकी भी मृत्यु होगी।

ज्योतिषीके यह वचन सुनकर कंसका हृदय भयसे काँप उठा। उसने अपने शत्रुको खोज निकालनेके

लिये उसी समय अरिष्ट आदिको वृन्दावनमें छोड़ दिया। अरिष्ट वास्तवमें बड़ाही भीषण पशु था। वह जहाँ जाता, वहाँके लोगोंको अत्यन्त दुःखित कर देता। मनुष्योंकी कौन कहे, बड़े-बड़े गाय बैलोंको भी वह अपने सींगोंसे पंककी भाँति उठाकर दूर फेंक देता था। यदि किसीके घरमें वह घुस जाता, तो वहाँसे किसी प्रकार भी निकाले न निकलता और दही दूध या घृतादिकके जो पात्र सामने पड़ते, उन्हें तोड़ फोड़ कर मिट्टीमें मिला देता।

एकदिन अरिष्ट घूमता घामता गोकुलमें जा पहुँचा और वहाँपर गोप-गोपियोंके घरमें घुसकर इसी तरहके उत्पात मचाने लगा। उसने किसीके बच्चोंको उठा पटका, किसीके गाय बैलोंको जख्मी कर डाला, किसीका घी दूध मिट्टीमें मिला दिया और किसी की खाद्य सामग्री नष्ट भ्रष्ट कर दी। उसके इन उत्पातोंसे चारों ओर हाहाकार मच गया। गोपियाँ दीन बन गयीं! वे दुःखित होकर राम और कृष्णको पुकारकर कहने लगीं :—"हे राम! हे कृष्ण! हमें बचाओ! इस आफतसे हमारी रक्षा करो!"

गोपियोंकी यह करुण पुकार शीघ्र ही राम और कृष्णके कानों में जा पड़ी। वे उसी समय उनकी रक्षाके लिये दौड़ पड़े। परन्तु बूढ़े मनुष्योंने उनको रोका। वे जानते थे कि अरिष्ट कंसका साँढ़ है। वह बड़ाही भयंकर है। एक तो उसे मारना ही कठिन है और यदि कोई किसी तरह उसे मारेगा भी, तो वह कंसका कोपभाजन हुए विना न रहेगा। इसलिये उन्होंने राम और कृष्णसे कहा :—"जो कुछ होता हो, होने दो! वहाँ जानेकी जरूरत नहीं। हमें घी दूध न चाहिये, गाय बैल न चाहिये, उनकी सब हानि हम बर्दाश्त कर लेंगे, परन्तु हम तुम्हें वहाँ न जाने देंगे। वहाँ जानेसे तुम्हारी खैर नहीं।"

परन्तु राम और कृष्ण ऐसी बातें सुनकर भला क्यों रुकने लगे? वे शीघ्र ही साँढ़के पास जा पहुँचे। कृष्णने उसे ललकारा। उनकी ललकार सुनते ही रोष पूर्वक अपने सींग और पूँछ उठाकर वह कृष्णकी ओर झपटा। कृष्ण भी तैयार खड़े थे। नजदीक आते ही उन्होंने उसके दोनों सींग पकड़ कर उसकी गर्दन

इस तरह ऐंठ दी, कि वह वहीं जमीन पर गिर पड़ा और उसकी जीवन लीला समाप्त हो गयी। अरिष्टकी इस मृत्युसे गोप गोपियोंको बड़ा ही आनन्द हुआ और वे देवताकी भाँति कृष्णकी पूजा करने लगे। कृष्ण पर अब तक उनका जो प्रेम था, वह इस घटनाके बाद दूना हो गया।

इसके बाद एकदिन कृष्ण अपने इष्ट-मित्रोंके साथ वनमें क्रीड़ा कर रहे थे। इसी समय कंसका वह केशी नामक अश्व वहाँ आ पहुँचा। उसके बड़े बड़े दाँत, काल समान शरीर और भयंकर मुख देखकर सब लोग भयभीत हो गये। वह छोटे छोटे बछड़ोंको मुखसे काटने और गाय बैलोंको लातोंसे मारने लगा। कृष्णने उसे कई बार खदेड़ा, परन्तु वह किसी प्रकार भी वहाँसे न गया। अन्तमें जब कृष्णने बहुत तर्जना की, तब वह मुख फैलाकर उन्हींको काटनेके लिये झपट पड़ा। उसके तीक्ष्ण दाँतोंको देखकर सबको शंका हुई, कि अब वह कृष्णको कदापि जीता न छोड़ेगा, परन्तु उसके समीप आते ही कृष्णने अपनी वज्र समान भुजा इतनी

तेजीके साथ उसके मुखमें डाल दी कि उसका मुख गर्दन तक फट गया और उसी पीड़ाके कारण तत्काल उसकी मृत्यु हो गयी। इसी प्रकार कंसके उस दुर्दान्त गर्दभ और मेषको भी कृष्णने क्षणमात्रमें मारकर गोकुल और वृन्दावनको सदाके लिये उनके भयसे मुक्त कर दिया।

इन सब बातोंका पता लगानेके लिये कंसके गुप्त-चर सदैव चारों ओर विचरण किया करते थे। उन्होंने यथा समय कंसको इन सब घटनाओंकी सूचना दी। इससे कंसका सन्देह दूर हो गया और वह समझ गया, कि नन्दके यहाँ कृष्ण नामक जो बालक है, वही मेरा शत्रु है। फिर भी विशेष रूपसे इसकी परीक्षा करनेके लिये उसने एक उत्सवका आयोजन किया। यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि उसके यहाँ शारंग नामक एक धनुष था, जिसकी सत्यभामा पूजा किया करती थी। उसने उस धनुषको राजसभामें स्थापित कराया और सत्यभामाको वहीं बैठकर उसकी पूजा करनेका आदेश दिया। इसके बाद उसने चारों ओर घोषणा

करा दी कि जो शारंग धनुषको उठाकर उसकी प्रत्यञ्चा चढ़ा देगा, उसीके साथ मैं अपनी बहिन सत्यभामाका विवाह कर दूँगा।

सत्यभामा परम सुन्दरी रमणी थी। देखनेमें देवाङ्गनाओंको भी मात करती थी। उसके विवाहकी बात सुनते ही चारों ओरसे दूर दूरके राजे महाराजे वहाँ आ आकर अपना भाग्य आजमाने लगे। परन्तु उस धनुषकी प्रत्यञ्चा चढ़ाना तो दूर रहा, कोई उसको उसके स्थानसे तिल भर भी इधर उधर न कर सका। जो लोग आते थे, वे इसी तरह विफल हो होकर लौट जाते थे। मानो उस धनुषका चढ़ानेवाला इस धराधाममें उत्पन्न ही न हुआ था।

धीरे धीरे यह समाचार अनाधृष्टिके कानों तक जा पहुँचा। अनाधृष्टि वसुदेवका पुत्र था और मदनवेगाके उदरसे उत्पन्न हुआ था। वह अपनेको बड़ा ही बलवान मानता था और इसके लिये उसे अभिमान भी था। उसने धनुष चढ़ानेका विचार किया और एक तेज रथ पर बैठकर शीघ्र ही मथुराके लिये प्रस्थान

किया। मार्गमें उसे गोकुल गाँव मिला। वह राम और कृष्णसे मिलनेके लिये वहाँ एक रात ठहर गया। उनसे बहुत दिनोंके बाद मुलाकात होनेके कारण वह अत्यन्त आनन्दित हुआ।

दूसरे दिन सुबह अनाधृष्टि वहाँसे मथुरा जानेको निकला। राम और कृष्ण प्रेमपूर्वक उसे नगरके बाहर पहुँचाने आये। अनाधृष्टिको मथुराका रास्ता मालूम न था, इसलिये उसने रामको तो बिदा कर दिया, किन्तु कृष्णको रास्ता दिखानेके लिये अपने साथ ले लिया।

मथुराका मार्ग बहुत ही संकीर्ण था और उसमें जहाँ तहाँ बड़े बड़े वृक्ष खड़े थे। गोकुलसे कुछ ही दूर आगे बढ़ने पर अनाधृष्टिका रथ एक विशाल वट वृक्षमें फँस गया। अनाधृष्टिने उसे बाहर निकालनेकी बड़ी चेष्टा की, बहुत हाथ पैर मारे, किन्तु किसी तरह भी वह रथ बाहर न निकल सका। यह देखकर कृष्ण रथ परसे नीचे कूद पड़े और उन्होंने क्षणमात्रमें उस वृक्षको उखाड़ कर रथका रास्ता साफ कर दिया। कृष्णका यह बल देखकर अनाधृष्टिको बड़ाही आनन्द हुआ और उसने प्रेमपूर्वक

कृष्णको गलेसे लगा लिया। इसके बाद वे दोनों रथ पर बैठकर पुनः आगे बढ़े और क्रमशः यमुना नदी पार-कर निर्विघ्न रूपसे मथुरा जा पहुँचे।

मथुरा पहुँचनेके बाद दोनों जन यथा समय कंसकी राज-सभामें गये। उस समय भी वहाँपर अनेक राजे धनुष चढ़ानेके लिये उपस्थित थे। धनुषके पास ही साक्षात् लक्ष्मीके समान कमलनयनी सत्यभामा बैठी हुई थी। जो उसे देखता था, वही उस पर मुग्ध हो जाता था। सत्यभामाने भी कृष्णको देखा। देखते ही वह उनपर आशिक हो गयी। उसने मन-ही-मन अपना तनमन उनके चरणोंमें समर्पण कर दिया, साथही उसने भगवानसे प्रार्थना की कि :—"हे भगवन्! मैं कृष्णको अपना हृदय-हार बनाना चाहती हूँ। तुम उन्हें ऐसी शक्ति दो कि वे धनुष चढ़ानेमें सफलता प्राप्त कर सकें।"

इधर अनाधृष्टिने धनुष चढ़ानेकी तैयार की, परन्तु ज्योंहीं वह धनुषको उठाने गया, त्योंहीं उसका पैर बेतरह फिसल गया और वह ऊँटकी तरह मुँहके बल जमीन पर गिर पड़ा। इससे अनाधृष्टिका हार टूट गया,

मुकुट सरक गया और कुण्डल कानसे निकल गये। उसकी यह अवस्था देखकर सत्यभामा कुछ लज्जित हो गयी। इसलिये उसने अपना मुख फेर लिया, किन्तु अन्य नरेश अपनी हँसी न रोक सके और वे ठठाकर हँस पड़े। अनाधृष्टि भी इससे कुछ लज्जित हो गया और एक ओर जाकर अपने गहने-कपड़े ठीक करने लगा।

परन्तु राजाओंकी यह हँसी कृष्णको बहुत ही बुरी और अपमान जनक मालूम हुई। उन्होंने उसी समय पुष्पमालाकी भाँति अनायास उस धनुषको उठा लिया और उसे एक ओरसे झुकाकर क्षणमात्रमें उसकी प्रत्यञ्चा चढ़ा दी। कृष्ण वैसे भी परम तेजस्वी थे, किन्तु इस समय उनका चेहरा और भी चमक उठा। धनुषकी प्रत्यञ्चा चढ़ानेके लिये झुके हुए कृष्ण इस प्रकार शोभा देने लगे, जिस प्रकार वर्षाकालमें इन्द्र-धनुषसे युक्त मेघ शोभा देते हैं। धनुषकी प्रत्यञ्चा चढ़ानेके बाद कृष्णने उसे उसी स्थानमें पूर्ववत् रख दिया और वे वहाँसे चुपचाप बाहर निकल आये।

यह सब बातें इतनी जल्दी हो गयीं, कि धनुष

किसने चढ़ाया, यह भी लोगोंको अच्छी तरह न मालूम हो सका। कृष्ण राज-सभासे बाहर निकल कर अनाधृष्टिके पास आये और दोनों जन रथपर बैठकर वसुदेवके पास आये। वहाँ कृष्णको रथपर छोड़ कर अनाधृष्टि अकेला ही पितासें मिलने गया। उसे यह कहनेमें लज्जा मालूम हुई कि मैं धनुषको न उठा सका, इसलिये उसने अपने पितासे कहा :—"हे पिताजी! अन्यान्य राजे जिसे छु भी न सके थे, उस शारंग धनुषको मैंने अनायास चढ़ा दिया है।"

पुत्रके यह वचन सुनकर वसुदेवने घबड़ा कर कहा—"यदि यह बात ठीक है, तो हे अनाधृष्टि! तुम इसी समय मथुरासे चले जाओ! यहाँ तुम्हारी खैर नहीं है। ज्योंहीं कंसको यह हाल मालूम होगा त्योंहीं यह तुम्हें मरवा डालेगा।"

पिताकी यह बात सुनकर अनाधृष्टिने कृष्णके साथ उसी समय मथुरा नगरी छोड़ दी। वह वहाँसे गोकुलमें आया और राम तथा कृष्णसे विदा ग्रहण कर चुपचाप शौर्यपुर चला गया।

अनाधृष्टिने यद्यपि अपने पितासे कहा था, कि धनुष मैंने चढ़ाया है, तथापि सत्य बात अधिक समय तक छिपी न रह सकी। चारों ओर यह बात जाहिर हो गयी कि नन्द-कुमारने धनुष चढ़ाया है। यह समाचार सुनते ही कंस आग बबूला हो गया। उसने समारम्भको रोककर समस्त मल्लोंको मल्लयुद्धका आयोजन करनेके आज्ञा दी। जो राजा शारंगके उत्सवमें भाग लेने आये थे, वे भी यह मल्लयुद्ध देखनेको ठहर गये। इस मल्लयुद्धके अन्दर कंसकी क्या दुरभिसन्धि छिपी है, यह वसुदेवको भली भाँति मालूम थी। वे जानते थे, कि इनके बहाने उनके प्रिय पुत्रका प्राण लेनेकी चेष्टा की जायगी। संभव है कि इस समय कोई और भी अनर्थ हो जाय, यह सोचकर उन्होंने इस अवसर पर अपने समस्त ज्येष्ठबन्धु और अक्रूर आदि पुत्रोंको मथुरा बुला लिया। कंस जिसे मारनेकी तैयारी कर रहा था, वसुदेव भीतर ही भीतर उसे बचानेकी तैयारी करने लगे।

धीरे धीरे मल्लयुद्धका दिन भी आ पहुँचा। अखाड़ेके चारों ओर दर्शकोंके लिये बड़े बड़े सुशोभित

मंच तैयार किये गये थे। कंसने अपने लिये भी एक ऊँचा मंच बनवाया था। नियत समय पर वसुदेव और उनके पुत्रादिक अन्यान्य राजाओंके साथ यथोचित स्थानमें बैठाये गये। और सब लोग बड़ी उत्सुकताके साथ मल्लोंके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे।

उधर गोकुलमें राम और कृष्णने भी उत्सवका समाचार सुना। कृष्ण इसे देखनेके लिये लालायित हो उठे। उन्होंने रामसे कहा :—"भाई! मुझे यह उत्सव देखनेकी बड़ी इच्छा है। तुम कहो तो हमलोग आज मथुरा चलें और इस उत्सवको देख आयें!

कृष्णके इस प्रस्तावसे, राम सहमत हो गये। दोनों जन शीघ्रतापूर्वक घर आये और मथुरा जानेकी तैयारी करने लगे। कृष्णकी इच्छा थी, कि स्नानादिकसे निवृत्त होकर मथुराके लिये प्रस्थान किया जाय, इसलिये उन्होंने यशोदासे स्नानकी तैयारी कर देनेको कहा। परन्तु यशोदा दूसरे काममें लगी हुई थीं, इसलिये कृष्णकी बातपर वे ध्यान न दे सकीं। उधर रामकी बहुत दिनोंसे इच्छा थी कि कृष्णको उनके बन्धुओंके

वधका समाचार बतलाकर यशोदाका प्रकृत परिचय दे दिया जाय। उन्होंने इस अवसरसे लाभ उठाकर हँसते हुए यशोदासे कहा :—"मालूम होता है कि तुम अपने पिछले दिन भूल गयी हो, इसीलिये हमारी बातोंपर अब ध्यान नहीं देती हो।"

इतना कह रामने कृष्णसे कहा :—"चलो, यशोदा मैयाको आज फुरसत नहीं हैं। हमलोग यमुनामें स्नान कर लेंगे।"

भाईकी वह बात सुनकर कृष्ण उनके साथ चल तो दिये, किन्तु उन्होंने यशोदाको जो शब्द कहे थे, वह उन्हें अच्छे न लगे। इससे उनका चेहरा कुछ उतर गया। यमुनाके तटपर पहुँचनेपर बलरामने कृष्णसे पूछा :—"भाई! अभी तक तो तुम बहुत प्रसन्न थे। अब उदास क्यों दिखाई देते हो?"

कृष्णने गद्गद् स्वरसे कहा :—"माता यशोदाको मैं बड़े आदरकी दृष्टिसे देखता हूँ। तुम भी अबतक ऐसाही करते थे, किन्तु आज तुमने उनसे कठोर वचन कहकर अच्छा नहीं किया।"

बलरामने कहा :—"भाई कृष्ण! मैंने यशोदासे जो कुछ कहा था, वह हँसीमें कहा था, उनका दिल दुखानेके लिये नहीं। मेरा विश्वास है कि उन्हें इससे बुरा भी न लगा होगा।"

कृष्णने कहा :—"वे हमारी माता हैं, इसलिये हमें ऐसे वचन न कहने चाहियें।"

बलरामने नम्रता पूर्वक कहा :—"भाई! तुम्हारा कहना ठीक है, यशोदा भी हमारी माता ही है, परन्तु हमारे प्रकृत माता-पिता तो और ही हैं।"

कृष्ण यह सुनकर चकित हो गये। बलरामने धीरेसे कहा :—"यशोदा हमारी प्रकृत माता और नन्द हमारे प्रकृत पिता नहीं हैं। हमारी प्रकृत माताका नाम देवकी है, जो देवक राजाकी पुत्री हैं। हमारे पिता संसारमें वीर शिरोमणि और परम सुन्दर माने जाते हैं। उनका नाम वसुदेव है। माता देवकी गो पूजनके बहाने प्रतिमास एकबार यहाँ आती हैं और तुम्हें देख जाती हैं। जिस समय वे यहाँ आती हैं, उस समय उनके स्तनदुग्ध और अश्रुओंसे जमीन तक

भीग जाती है। हमारे पिता वसुदेव कंसके आग्रहसे इस समय मथुरामें ही रहते हैं, क्योंकि वे दाक्षिण्यताके भण्डार हैं। मैं तुम्हारा सौतेला भाई हूँ, किन्तु उम्रमें तुमसे बड़ा हूं। इसीलिये पिताजीने तुम्हारे साथ रहनेका आदेश दिया है।"

कृष्णका आश्चर्य और भी बढ़ गया। उन्होंने विकसित नेत्रोंसे पूछा :—"पिताजीने मुझे अपने पास न रखकर यहाँ क्यों भेज दिया है?"

इस प्रश्नके उत्तरमें बलरामने कृष्णको अपने भाइयोंके मारे जाने का सारा हाल कह सुनाया। कृष्ण ज्यों ज्यों वह हाल सुनते जाते थे, त्यों त्यों क्रोध और घृणाके कारण उनके शरीरमें कम्प उत्पन्न होता जाता था। बलरामकी बातें जिस समय पूर्ण हुई, उस समय कृष्णकी अवस्था कुचले हुए सर्पकी सी हो रही थी। उन्होंने हाथमें यमुनाका जल लेकर उसी समय कंसको मारनेकी प्रतिज्ञा की।

इसके बाद दोनों भाई यमुनाके जलमें उतर कर प्रसन्नता पूर्वक स्नान करने लगे। उसी स्थानपर

कालियनाग नामक भयंकर सर्प रहता था। वह कृष्णको देखते ही उनकी ओर झपट पड़ा। बलराम असावधान थे, इसलिये कालियनागके फन पर मणिकी चमक देखकर वे चौंक पड़े। उन्होंने चिल्लाकर कृष्णका ध्यान उसकी ओर आकर्षित करना चाहा, परन्तु कृष्ण इसके पहले ही उसे देख चुके थे। इसलिये उन्होंने उसी समय कमलकी भाँति एक हाथसे उसे पकड़ लिया और कमलनाल द्वारा दूसरे हाथसे उसे नाथ डाला। इसके बाद उसकी पीठ पर बैठकर उन्होंने बड़ी देरतक उसे जलमें घुमाया। अन्तमें कालियनाग जब थक कर परेशान हो गया, तब कृष्णने उसे छोड़ दिया। इसके बाद वे भी स्नान कर जलसे बाहर निकल आये।

इसी समय और भी अनेक लोग यमुनामें स्नान करने आये थे। कृष्णका यह अद्भुत कार्य देखकर वे सब चकित हो गये। ज्योंहीं कृष्ण जलसे बाहर निकले, त्योंहीं उन्होंने चारों ओरसे उनको घेर लिया। सब लोग कृष्ण पर मुग्ध हो रहे थे और मुक्तकण्ठसे उनकी प्रशंसा कर रहे थे। कृष्णने सबके प्रश्नोंका उत्तर दे,

शीघ्रही अपने गोपवन्धुओंके साथ वहाँसे मथुराके लिये प्रस्थान किया ।

यथा समय दोनों भाई मथुरा जा पहुँचे । वहाँपर नगरके मुख्य द्वार पर पद्मोत्तर और चम्पक नामक दो मदोन्मत्त हाथी कंसने खड़े करवा दिये थे । महावतोंका संकेत पाते ही वे बलराम और कृष्णकी ओर झपट पड़े । कृष्णने पद्मोत्तरका सामना किया और बलरामने चम्पकका । दोनोंने उन दोनोंके दाँत उखाड़ डाले और मुष्टि प्रहार द्वारा उनकी जीवन-लीला वहीं समाप्त कर दी । लोग उनका यह पराक्रम देखकर चकित हो गये । उन्हें जब यह मालूम हुआ कि यही नन्दके दोनों पुत्र हैं और इन्होंने अरिष्टादिकका संहार किया है, तब उन्हें और भी आश्चर्य हुआ और वे उनकी ओर संकेत कर करके आपसमें काना-फूसी करने लगे ।

इसी प्रकार लोगोंका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हुए, राम और कृष्ण गोपमण्डलीके साथ कंसके उस अखाड़ेमें जा पहुँचे, जहाँ मल्लयुद्धका आयोजन हो रहा था । वहाँ उन दोनोंको बैठनेकी कोई जगह न

दिखायी दी, इसलिये उन्होंने एक सुशोभित मञ्चके लोगोंको ढकेल कर उसपर अधिकार जमा लिया। इसके बाद बलरामने संकेत द्वारा कृष्णको कंसका परिचय दिया, जो एक ऊँचे मञ्च पर बैठा हुआ था। कंसके पीछे वसुदेव और समुद्रविजय आदि बैठे हुए थे। बलरामने कृष्णको क्रमशः उनका भी परिचय दिया। इन देवकुमार सदृश दोनों बालकोंकी ओर शीघ्रही सभाके समस्त लोगोंका ध्यान आकर्षित हुआ और वे भी आँखें फाड़ फाड़ कर उन दोनोंको देखने लगे।

शीघ्रही मल्लयुद्ध हुआ। अखाड़ेमें छोटे मोटे पहलवानोंके कई जोड़ उतरे और उन्होंने अपना कौशल दिखा कर दर्शकोंका मनोरञ्जन किया। इसके बाद कंसके आदेशसे चाणूर मल्ल खड़ा हुआ और मेघ गर्जनाकी भाँति ताल ठोंक कर अखाड़ेमें चारों ओर चक्कर काटने लगा। उसे अपने जोड़का कोई मल्ल न दिखायी दिया इसलिये उसने सभाजनोंको चुनौती देते हुए कहा :—"जो वीर कुलमें उत्पन्न हुआ हो या जो अपनेको वीर मानता हो, उसे मैं युद्धके लिये

नियन्त्रित करता हूँ। वह अखाड़ेमें कूद कर मेरे साथ अपना बल आजमाये और मेरी युद्ध-पिपासाको पूर्ण करे !"

चाणूरकी यह ललकार सुनकर सब लोग चुप हो गये। सभामें घोर सन्नाटा छा गया। किसीमें भी ऐसी शक्ति न थी, जो उसकी चुनौती स्वीकार करे। परन्तु महाभुज कृष्णके लिये चाणूरका यह गर्वपूर्ण वचन असह्य हो पड़ा। वे अपना पीताम्बर दूर फेंक कर अखाड़ेमें कूद पड़े और ताल ठोंक कर चाणूरके सामने खड़े हो गये। उनका यह कार्य देखकर सब लोग बड़े आश्चर्यमें पड़ गये। वे कहने लगे,—"कहाँ चाणूर और कहाँ कृष्ण। चाणूर अवस्था और डील डौलमें बहुत बड़ा है। उसका शरीर भी कसा हुआ है। मल्ल युद्ध उसका व्यसाय है, उसीपर उसकी जीविका निर्भर करती है, इसलिये उसकी प्रकृतिमें क्रूरता आ गयी है। किन्तु यह नन्दकुमार तो अभी दुधमुँहा बच्चा है। इसका शरीर कमल-गर्भसे भी अधिक कोमल है। इसलिये चाणूर और इसकी जोड़ बहुत ही अनुचित है। इनकी

कुश्ती—इनका युद्ध देखना भी सभ्य समाजके लिये पापरूप है !"

इस प्रकारकी चर्चाके कारण चारों ओर भयंकर कोलाहल मच गया। कंस भला इसे कैसे पसन्द कर सकता था ? कृष्णको किसी-न-किसी तरह मरवा डालना, यह तो उसका अभीष्ट ही था। उसने क्रुद्ध होकर कहा :—"इन उन्मत्त गोप-बालकोंको यहाँ किसने बुलाया है ? मालूम होता है कि यह अपने आप ही यहाँ आये हैं और स्वेच्छासे ही मल्लयुद्ध करनेको तैयार हुए हैं। ऐसी अवस्थामें इन्हें रोकना ठीक नहीं। हाँ, यदि किसीको यह बुरा मालूम होता हो, तो वह सामने आकर इन्हें सहर्ष रोक सकता है।"

कंसके यह क्रूरतापूर्ण वचन सुनकर सब लोग चुप हो गये। किसीको भी उसके सामने यह साहस न हुआ, कि इस अन्यायपूर्ण कार्यका विरोध करे ; क्योंकि सभी लोग यह जानते थे कि कंसके कार्यका विरोध करना, मृत्युको निमन्त्रण देना है। अन्तमें इस श्मशानकी सी शान्तिको भंग करते हुए कृष्णने गम्भीर स्वरमें

सभाजनोंसे कहा :—"आप लोग चिन्ता न करें! चाणूरका शरीर बहुत हृष्ट-पुष्ट है, नित्यकी कसरतके कारण इसका शरीर कसा हुआ है, कंसने इसे न जाने कितना माल खिला दिया है, इसलिये आपलोगोंकी चिन्ता स्वाभाविक है। मैं एक साधारण गोप-बालक हूँ, गो दुग्धके सिवा खाने पीनेकी और कोई चीज मुझे नसीब भी नहीं होती, फिर भी आपलोग जरा तमाशा देखिये। इसकी भी आज वही दशा होगी, जो सिंह-शावकके सामने मदोन्मत्त हाथीकी होती है।"

कृष्णके यह वचन सुनकर कंसका कलेजा कॉंप उठा। किन्तु उसने अपने इस भावको प्रकट न करके कहा :—"यह बालक बहुत ही अभिमानी मालूम होता है, इसलिये मैं मुष्टिक नामक महामल्लको भी इसी समय इससे युद्ध करनेका आदेश देता हूँ।"

कंसका यह कहना था कि मुष्टिक भी लंगोट कस कर अखाड़ेमें कूद पड़ा। पहले यदि अन्याय हो रहा था, तो अब महा अन्याय होनेकी तैयारी होने लगी। बलराम भला इसे कब बर्दाश्त कर सकते थे! मुष्टिकके

साथ ही वे भी मञ्चपरसे अखाड़ेमें कूद पड़े। कृष्णने चाणूरको और बलरामने मुष्टिकको अपने साथ युद्ध करनेको ललकारा। दोनों जोड़ बेजोड़ होने पर भी देखने लायक थे। समस्त सभाकी आँखें उधर ही जाकर स्थिर हो गयीं। कृष्ण और बलराम दोनों अपने प्रतिस्पर्धीसे नागपाशकी तरह उलझ गये और बेतरह भुजायुद्ध करने लगे। युद्ध क्या आरम्भ हुआ, मानो प्रलय उपस्थित हो गया। जिस समय वे भूमिपर दृढ़ता-पूर्वक अपने चरण स्थापित करते, उस समय मानो पृथ्वी हिल उठती और जिस समय ताल ठोंकते या विभिन्न अंगोंपर हाथकी थपकी लगाते, उस समय मानो ब्रह्माण्ड फटने लगता। जिस समय कृष्ण और बलराम उन महामल्लोंको गेंदकी तरह अनायास ऊपर उछाल देते, उस समय लोगोंके आनन्दका वारा-पार न रहता और उनके मुखसे हर्षकी किलकारियाँ निकल पड़तीं। चाणूर और मुष्टिक भी उन वीर बालकोंको उठा फेंकनेकी चेष्टा करते, किन्तु उन्हें इसमें लेश भी सफलता न मिलती।

दोनों ओरसे इसी तरहके दाँवपेंच बहुत देरतक चलते रहे। अन्तमें जिस प्रकार गजराज अपने दन्तशूलों द्वारा पर्वत पर प्रहार करता है, उसी प्रकार कृष्णने चाणूरके हृदय पर एक जबर्दस्त मुक्का जमाया। महा-मानी चाणूर इससे तिलमिला उठा और उसने भी कृष्णके हृदय पर एक ऐसा मुक्का जमाया, कि कृष्णको चक्करसा आगया और वे अर्धमुर्छित अवस्थामें भूमि पर गिर पड़े।

कंस बड़ा हा पापी और कपटी था। उसने इसी अवस्थामें कृष्ण पर प्रहार करनेका चाणूरको संकेत किया। चाणूर संकेत पाते ही कृष्णकी ओर लपका। लोगोंको भय हुआ कि वह अब उन्हें कदापि जीता न छोड़ेगा और शायद होता भी ऐसा ही; किन्तु बलरामका ध्यान इसी समय उसकी ओर आकर्षित हुआ और वे मुष्टिकको छोड़ कर चाणूर पर टूट पड़े। उन्होंने चाणूरके हृदय पर वज्र समान एक घूंसा जमाया, जिससे वह सात धनुष दूर जा गिरा। इसी बीच कृष्ण भी सावधान हो गये और उन्होंने ताल ठोंक कर फिर चाणूरको युद्धके

लिये ललकारा। चाणूर उनकी ललकार सुनकर फिर उनसे आ भिड़ा। इसबार महापराक्रमी कृष्णने घुटनेसे उसके शरीरका मध्यभाग दबा, हाथसे उसका शिर झुका, उसके ऐसा मुक्का मारा, कि उसके मुखसे रक्तकी धारा वह निकली, हाथ पैर ढीले पड़ गये और दोनों नेत्र निस्तेज हो गये। उसने कृष्णको छोड़ दिया और दूसरे ही क्षण उसके प्राणपंखेरू सदाके लिये इस संसारसे बिदा हो गये।

कृष्णकी इस विजयसे, यद्यपि दर्शकोंको असीम आनन्द हुआ, किन्तु कंसके भयसे किसीको हर्षध्वनि तक करनेका साहस न हुआ। कंस तो चाणूरकी मृत्यु देखकर भय और क्रोधसे कांप उठा। उसने कहा :— "इन दोनों गोप-बालकोंको शीघ्र ही मार डालो। और इन दोनों सर्पोंको दूध पिलाकर बड़ा करनेवाले नन्दको भी मार डालो! उस पापीकी समस्त सम्पत्ति लूट लो! जो उसे बचानेकी चेष्टा करे या उसके पक्षकी कोई बात कहे, उसे भी उसीक्षण मार डालो।"

उसके यह वचन सुनकर कृष्णको क्रोध आ गया।

उनके दोनों नेत्र रक्त कमलकी भांति लाल हो गये। उन्होंने गर्जना कर कहा :—"हे पापिष्ट! चाणूरकी मृत्यु हो जाने पर भी तेरा होश अभी ठिकाने नहीं आया? हे दुष्ट! पहले तू अपनी प्राण रक्षा कर ले, फिर नन्दादिकको मरवानेकी फिक्र करना? अब मैं तुझे भी कदापि जीता न छोड़ूँगा।"

इतना कह कृष्ण उछल कर कंसके मञ्च पर चढ़ गये और उसके केश पकड़ कर उसे भूमि पर गिरा दिया। भूमि पर गिरते ही कंसका मुकुट टूट कर चूर चूर हो गया और उसके कपड़े फट गये। उसकी अवस्था ठीक वैसी ही हो गयी, जैसी वध-स्थानमें बँधे हुए बकरेकी होती है। कृष्णने उसकी भर्त्सना करते हुए कहा :—"हे दुष्ट! तूने अपनी रक्षाके लिये व्यर्थ ही बाल हत्या की! देख, अब तेरा काल तेरे सामने खड़ा है! हे दुष्ट! हे नीच! हे नराधम! अब तू अपने कर्मका फल भोगनेको तैयार हो जा!"

इतना कह कृष्ण कंसकी ओर झपटे। इसी समय बलरामने मुष्टिक मल्लको मार डाला। कंसकी ओर कृष्णको

अग्रसर होते देखकर कंसके अनेक सैनिक विविध शस्त्र लेकर उन्हें मारने दौड़े ; किन्तु बलरामने मञ्चके स्तम्भ उखाड़ कर उनको इस तरह मारा कि वे छत्ते पर बैठी हुई मधु-मक्खियोंकी भाँति भाग खड़े हुए। इसी समय कृष्णने कंसके शिर पर पैर रखकर उसे भूमि पर गिरा दिया, और मुष्टि प्रहार द्वारा उसकी इहलोक लीला समाप्त कर दी। इसके बाद उसके केश पकड़ कर वे उसे मण्डपके बाहर घसीट ले गये। कंसकी यह दुर्दशा देख-कर जरासन्धके सैनिक, जिन्हें कंसने अपनी रक्षाके लिये बुला रक्खा था, राम और कृष्णसे युद्ध करनेको तैयार हुए। यह देखकर राजा समुद्रविजय भी सामने आ खड़े हुए। जरासन्धकी सेनाको युद्धके लिये प्रस्तुत देखकर उन्होंने भी अपनी सेनाको आगे बढ़नेका आज्ञा दी। इससे जरासन्धके सैनिकोंकी हिम्मत टूट गयी और वे उसीक्षण वहाँसे भाग खड़े हुए।

इस प्रकार मैदान साफ हो जाने पर समुद्रविजयके आदेशसे अनाधृष्टि, राम और कृष्णको रथमें बैठाकर वसुदेवके वासस्थानमें रख आया। वहाँपर समस्त यादवों-

की एक सभा एकत्र हुई, जिसमें वसुदेवने राम और कृष्णको अपनी गोदमें बैठा, उनका दुलार कर, उनके बल विक्रमकी भूरि भूरि प्रशंसा की। वसुदेवका यह कार्य देखकर उनके भाइयोंने भी आश्चर्य प्रकट किया और बलराम तथा कृष्णका वास्तविक परिचय पूछा। इस पर वसुदेवने अतिमुक्तक मुनिके आगमनसे लेकर कृष्णके जन्म आदिकका सारा हाल उन्हें कह सुनाया।

वसुदेवके मुखसे यह सब हाल सुनकर समुद्रविजयके हृदयमें वात्सल्यका स्रोत उमड़ पड़ा। उन्होंने भी कृष्णको अपनी गोदमें बैठा कर उनका बड़ा प्यार किया और यत्न-पूर्वक उनकी रक्षा करनेके लिये बलरामकी मुक्त-कण्ठसे प्रशंसा की। वसुदेवके अन्यान्य भाई भी इसी तरह उन दोनोंको गोदमें ले लेकर उनकी प्रशंसा करने लगे। इसी समय देवकी भी वहाँ आ पहुँची। उनके साथ वह कन्या भी थी, जिसे कंसने नासिका छेद कर जीवित छोड़ दिया था। उन्होंने भी कृष्णको गले लगाकर उनका बड़ा प्यार किया।

यादवोंने आश्चर्यके साथ वसुदेवसे पूछा :—"हे महाभुज! आप अकेले ही समूचे जगतको जीतनेमें समर्थ हैं, फिर भी आप अपने पुत्रोंको जन्मते ही मारनेके लिये निर्दय कंसके हाथमें क्यों सौंप देते थे? उसका यह कार्य आप कैसे सहन कर लेते थे?"

वसुदेवने कहा :—"संसारमें सत्यसे बढ़कर और कोई चीज नहीं है। सत्य की रक्षा करनेके लिये ही मैंने उसका यह दुष्कर्म सहन किया है। मैं तो कृष्णको भी जन्मते ही उसके हाथोंमें सौंप देता, परन्तु देवकीके आग्रहसे मैं इसे गोकुलमें रख आया था और वहाँसे नन्द-पुत्रीको अपने यहाँ ले आया था। कंसने जब देखा कि देवकीके सातवें गर्भसे कन्या उत्पन्न हुई है, तब उसने उपेक्षाके भावसे उसकी नाक छेदकर उसे जीवित छोड़ दिया। देवकीके साथ तुमलोग इस समय जिस कन्याको देख रहे हो, वह वही कन्या है।"

इसके बाद राजा समुद्रविजयने अपने बन्धुओंकी सम्मतिसे राजा उग्रसेनको बन्दीगृहसे मुक्त कराया और उसके साथ समुद्रविजय आदिक राजाओंने यमुना नदीके

तट पर कंसकी उत्तर क्रिया की। कंसकी माता और पत्नी आदिने भी यमुनामें स्नानकर उसे जलाञ्जलि दी ; किन्तु जीवयशाने लोगोंके हजार समझाने बुझाने पर भी अपने पतिको जलाञ्जलि न दी। उसने सबके सामने उच्च स्वरसे प्रतिज्ञा की—कि बलराम और कृष्ण तथा समस्त सन्तति सहित दसों दशार्हौंको मरवानेके बादही मैं अपने पतिकी उत्तर क्रिया करूँगी। अन्यथा मैं स्वयं चितामें जल मरूँगी !"

इस प्रकार प्रतिज्ञा कर वह अपने पिताके घर राजगृह नगरको चली गयी। इसके बाद बलराम और कृष्णकी इच्छनुसार राजा समुद्रजियने उग्रसेनको मथुराका राजा बनाया। राजा उग्रसेनने इसी समय अपनी पुत्री सत्यभामाके साथ कृष्णका ब्याह भी कर दिया। थोड़े ही दिनों पहले जहाँ उत्पात और अशान्तिका वायुमण्डल था, वहीं अब शान्ति, सुख और आनन्दकी छटा दिखायी देने लगी।

उधर मथुरासे प्रस्थान कर जीवयशा यथासमय अपने पिता जरासन्धके पास पहुँची। उसके बिखरे हुए

केश, रोषपूर्ण लाल लाल नेत्र और मूर्तिमान दरिद्रताका सा भयंकर रूप देखकर वे सन्न हो गये। पूछताछ करने पर जीवयशाने अतिमुक्तक मुनिके आगमनसे लेकर कंसकी मृत्यु पर्यन्तका सारा हाल उन्हें कह सुनाया। सुनकर जरासन्धने कहा :—"हे पुत्री! कंसने आरम्भमें ही भूल की थी। उसे देवकीको मार डालना चाहिये था। न रहता बाँस न बजती बाँसुरी। यदि खेत न रहता तो नाज ही क्यों पैदा होता? परन्तु हे पुत्री! अब तू रुदन मत कर। मैं कंसके घातकोंको सपरिवार मारकर उनकी स्त्रियोंको अवश्य रुलाऊँगा। यदि मैंने ऐसा न किया, तो मेरा नाम जरासन्ध नहीं!"

इस प्रकार पुत्रीको सन्त्वना देनेके बाद जरासन्धने सोम नामक एक राजाको दूत बनाकर राजा समुद्र-विजयके पास मथुरा भेजा। उसने वहाँ जाकर उनसे कहा :—"हे राजन्! राजा जरासन्धने कहलाया है कि मेरी पुत्री जीवयशा मुझे प्राणसे भी अधिक प्यारी है। उसके कारण उसका पति भी मुझे वैसा ही प्यारा था। आप और आपके सेवक सहर्ष रह सकते हैं, परन्तु

कंसको मारने वाले इन राम और कृष्ण नामक क्षुद्र बालकोंको हमारे हाथोंमें सौंप दीजिये। देवकीका सातवाँ गर्भ तो कंसको देनेके लिये आपलोग पहलेहीसे बाध्य थे। खैर, तब न सही, अब उसे दे दीजिये। बलरामने कृष्णकी रक्षा की है, इसलिये वह भी अपराधी है!"

समुद्रविजयने उत्तर दिया :—"जरासन्ध हमारे मालिक हैं, परन्तु उनकी अनुचित आज्ञा हमलोग कैसे पालन कर सकते हैं? वसुदेवने अपनी सरलताके कारण देवकीके छः गर्भ कंसको सौंप दिये, सो उसने कोई अच्छा कार्य नहीं किया। बलराम और श्रीकृष्णने कंसको मारकर अपने उन्हीं भाइयोंका बदला लिया है, इसलिये वे अपराधी नहीं कहे जा सकते। यदि वसुदेव बाल्यावस्थासे स्वेच्छाचारी न होता और हमारी सम्मति-से सब काम करता रहता, तो उसके छः पुत्र कंसके हाथसे कभी न मारे गये होते। अब तो यह बलराम और कृष्ण हमें प्राणसे भी अधिक प्रिय हैं। इनका प्राण लेनेके लिये इनकी याचना करना घोर अन्याय और

धृष्टता है। स्वामीकी यह आज्ञा हमलोग कदापि नहीं मान सकते।"

समुद्रविजयका यह उत्तर सुनकर सोमको क्रोध आ गया। उसने कहा :—"स्वामीकी आज्ञा पालन करनेमें सेवकोंको भलेबुरेका विचार कदापि न करना चाहिये। हे राजन्! जहाँ तुम्हारे छः पुत्र मारे गये, वहाँ इन दो कुलाङ्गारोंसे भी गम खाइये, परन्तु इनके लिये साँपके मुँहमें पैर मत रखिये। बलवानके साथ विरोध करने पर अन्तमें नाश ही होता है। मगधेश्वरके सामने तुम किसी बिसातमें नहीं हो। यदि उनकी तुलना मदोन्मत्त हाथीसे ली जाय, तो तुम उनके सामने भेंड बकरीके बराबर भी नहीं हो। इसलिये, मैं तो तुम्हें यही सलाह दूँगा, कि राम और कृष्णको उनके पास भेज दीजिये और स्वप्नमें भी उनसे वैर करनेका विचार न कीजिये।"

यह सुनतेही कृष्णने क्रुद्ध होकर कहा :—"हे सोम! हमलोगोंने शिष्टाचारके कारण तुम्हारे स्वामीके प्रति जो आदरभाव दिखलाया, उससे क्या वह हमारा

स्वामी हो गया ? जरासन्धको हमलोग किसी तरह अपना स्वामी नहीं मान सकते। तुम्हारे स्वामीने जो सन्देश भेजा है, उससे मालूम होता है, कि वह भी अपनी वही गति कराना चाहता है, जो कंसकी हुई है। इससे अधिक हमें कुछ नहीं कहना है। तुम्हारी जो इच्छा हो, उससे जाकर कह सकते हो!

यह सुनकर सोम और भी क्रुद्ध हो उठा। उसने समुद्रविजयसे कहा :—"हे दशार्ह ! तुम्हारा यह पुत्र कुलाङ्गार है। इसकी ऐसी धृष्टता कदापि क्षम्य नहीं हो सकती। तुम इसे हमारे हाथोंमें सौंप दो, फिर यह अपने आप ठीक हो जायगा।"

यह सुनकर अनाधृष्टिने लाल लाल आंखें निकाल कर कहा :—"पितासे वारंवार दोनों पुत्रोंको मांगते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती ? यदि अपने जामाताकी मृत्युसे जरासन्धको दुःख हुआ है, तो क्या हमें अपने छः भाइयोंके मरनेसे दुःख नहीं हुआ ? तुम्हारी इस धृष्टताको हमलोग कदापि क्षमा नहीं करेंगे।"

राजा समुद्रविजयने भी इसी प्रकार सोमकी बहुत

भर्त्सना की। इससे सोम क्रुद्ध होकर राजगृहीको वापस चला गया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसकी माँग बहुत ही अनुचित थी और वह कभी भी पूरी न की जा सकती थी। इस अवस्थामें समुद्रविजयने उसे जो उत्तर दिया था, वह सर्वथा उचित ही था। फिर भी इस विचारसे वे व्याकुल हो उठे, कि जरासन्धको इस रसे सन्तोष न होगा और यदि उसने हमलोगोंपर क्रमण कर दिया, तो उससे लोहा लेना भी कठिन जायगा।

इन्हीं विचारोंके कारण राजा समुद्रविजय चिन्तामें पड़ गये। अन्तमें उन्होंने क्रोष्टुकी नामक ज्योतिषीको बुलाकर पूछा :—"हे भद्र! तीन खण्डके स्वामी राजा जरासन्धसे हमारा विग्रह उपस्थित हो गया है। कृपया बतलाइये कि अब क्या होगा?"

ज्योतिषीने कहा :—"कुछ ही दिनोंके अन्दर यह महाबलवन्त राम और कृष्ण जरासन्धको मारकर तीनों खण्डके स्वामी होंगे। परन्तु आपलोगोंका अब यहाँ रहना अच्छा नहीं। आप अपने समस्त बन्धु-बा

और परिवारको लेकर समुद्रके किनारे पश्चिम दिशाको चले जाइये। यहाँसे प्रस्थान करते ही आपके शत्रुओंका नाश होना आरम्भ हो जायगा। आपलोग जब तक अपनी यात्रामें बराबर आगे बढ़ते जायँ, तब तक सत्यभामा दो पुत्रोंको जन्म न दे। इसके बाद जहाँ वह दो पुत्रोंको जन्म दे, वहीं आपलोग नगर बसाकर बस जायँ। ऐसा करने पर कोई भी आपका बाल बाँका न कर सकेगा और उत्तरोत्तर आपका कल्याण ही होता जायगा।"

यह सुनकर राजा समुद्रविजय बहुतही प्रसन्न हुए। उन्होंने उसी दिन डुग्गी पिटवा कर अपने प्रयाणकी घोषणा करवा दी। इसके बाद मथुरा नगरीसे अपने ग्यारह कोटि बन्धु-बान्धवोंको साथ लेकर वे शौर्यपुर गये और वहाँ सात कोटि यादवोंका दल विन्ध्याचलके मध्यभागमें होकर पश्चिम दिशाकी ओर आगे बढ़ा। राजा उग्रसेनने भी मथुरामें रहना उचित न समझा, इसलिये वे भी उन्हींके साथ चल दिये।

उधर राजा सोमने राजगृहीमें जाकर, समुद्रविजयकी

सब बातें जरासन्धको कह सुनायीं। सुनते ही जरासन्ध क्रोधसे आग-बबूला हो उठा। उसे क्रुद्ध देखकर उसके पुत्र कालकुमारने कहा :—"हे तात! आपके सामने वे डरपोंक यादव किस हिसाबमें हैं? यदि आप आज्ञा दें, तो मैं उन्हें समुद्र या अग्निसे भी खींचकर मार सकता हूँ। यदि मैं इस प्रतिज्ञाके अनुसार काम न करूँगा, तो अग्निप्रवेश कर अपना प्राण दे दूँगा और आपको भी अपना मुख न दिखाऊँगा।"

पुत्रके यह वीरोचित वचन सुनकर जरासन्ध बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने उसी समय कालकुमारको पाँच सौ राजा और अगणित सेनाके साथ यादवों पर आक्रमण करनेके लिये रवाना किया। कालकुमारके साथ उसका भाई यवन सहदेव भी था। इन लोगोंको चलते समय तरह तरहके अपशकुन हुए। यवन सहदेवने उनकी ओर कालकुमारका ध्यान भी आकर्षित किया, किन्तु उसने उसकी एक न सुनी। वह तेजीके साथ रास्ता काटते हुए सदलबल शीघ्र ही विन्ध्याचलकी तराईमें यादवोंके समीप जा पहुँचा।

कालकुमारको समीप आया जानकर राम और कृष्णके अधिष्ठायक देवताओंको यादवोंकी रक्षा करनेके लिये बाध्य होना पड़ा। इसलिये उन्होंने अपनी मायासे एक पर्वत खड़ा कर, उसमें दावानल और एक बड़ीसी चिताका दृश्य उपस्थित किया और उस चिताके पास एक रोती हुई स्त्रीको बैठा दिया। इस मायाविनी रमणीको देखते ही कालकुमारने पूछा :—"हे भद्रे! तुम कौन हो और इस प्रकार क्यों रुदन कर रही हो?"

उस रमणीने दोनों नेत्रोंसे अश्रुधारा बहाते हुए कहा :—"मैं राम और कृष्णकी बहिन हूं। जरासन्धके भयसे समस्त यादव इस ओरको भाग आये थे। किन्तु उन्होंने जब सुना कि कालकुमार अपनी विशाल सेनाके साथ समीप आ पहुँचा है, तब वे भयभीत होकर इस दावानलमें घुस गये। मैं समझती हूं कि वे सब इसीमें जल मरे होंगे। राम, कृष्ण तथा समुद्रविजय आदिक दशार्ह भी इससे बड़ी चिन्तामें पड़ गये। उन्हें अपनी रक्षाका कोई उपाय न सूझ पड़ा, इसलिये अभी कुछ ही क्षण पहले उन्होंने भी इस चितामें प्रवेश किया है।

हे भद्र! मैं उन्हींके दुःखसे दुःखित हो रही हूँ और इस चितामें प्रवेश कर अपना प्राण देने जा रही हूँ।"

इतना कह, वह मायाविनी स्त्री उस चितामें कूद पड़ी। उसकी यह हरकत देख, कालकुमारको अपनी प्रतिज्ञाका स्मरण हो आया। उसने अपने पिता तथा बहिनके सामने यह प्रतिज्ञा की थी कि—मैं यादवोंको अग्नि या समुद्रसेभी खींचकर मारूँगा, इसलिये उसने मनमें कहा :—"अब अग्निप्रवेश किये बिना काम नहीं चल सकता। किसी तरह हो, मैं अपनी प्रतिज्ञा अवश्य पूर्ण करूँगा।"

इतना कह कालकुमार अपनी तलवार खींचकर उस चितामें घुस पड़ा। उसके समस्त संगी साथी भी देवताओंकी मायासे मोहित हो रहे थे, इसलिये उन्होंने भी उसे न रोका और वह उनके सामने ही उस चितामें जलकर भस्म हो गया। इतनेहीमें सूर्यास्त होकर रात हो गयी, इसलिये यवन सहदेवने सेना सहित वहींपर वास किया। किन्तु दूसरे दिन सुबह उठकर उन्होंने देखा, तो न कहीं वह पर्वत था, न कहीं वह चिता।

उस स्थान पर केवल कालकुमारकी मुट्ठी भर हड्डियाँ पड़ी हुई थीं। पता लगाने पर उन्हें यह भी मालूम हुआ कि यादव तो इस स्थानसे बहुत दूर निकल गये हैं। और यह सब देव माया थी। यह जानकर यवन सहदेवादिक हताश हो गये और यादवोंका पीछा छोड़कर, राजगृहको लौट आये।

कालकुमारकी मृत्युका समाचार सुनकर जरासन्ध मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। कुछ देरमें जब उसकी मूर्च्छा दूर हुई, तब वह बहुतही करूण क्रन्दन करने लगा। किसीने ठीक ही कहा है, कि संसारमें नाना प्रकारके भयंकर दुःख हैं, किन्तु पुत्र-वियोग उन सबोंमें बढ़कर है!

उधर यादवोंने जब कालकुमारकी मृत्युका समाचार सुना तब उनको कुछ धैर्य आया। उन्होंने आनन्द-पूर्वक क्रोष्टुकी ज्योतिषीका पूजन किया। इसी समय वहाँ अतिमुक्तक मुनिका आगमन हुआ। उन्हें देख, समुद्रविजयने वन्दना करते हुए नम्रतापूर्वक पूछा :—
"हे स्वामिन्! इस संकटके कारण हमलोग बड़ी

चिन्तामें पड़ गये हैं। इससे हमलोग किस प्रकार उद्धार पायेंगे।"

मुनिराजने कहा :—"हे राजन्! भय करनेका कोई कारण नहीं है। यह तुम्हारा अरिष्टनेमी बाईसवाँ तीर्थङ्कर और अद्वितीय बलवान होगा। यह बलराम और कृष्ण भी परम प्रतापी निकलेंगे। द्वारिकापुरीमें रहते हुए वे जरासन्धका वध कर अर्ध भरतके स्वामी होंगे।"

यह सुनकर राजा समुद्रविजयको अत्यन्त आनन्द हुआ और उसने मुनिराजका यथोचित आदर सत्कार कर उन्हें आनन्द-पूर्वक विदा किया। इसके बाद प्रयाण करते हुए यादवोंका यह दल सौराष्ट्र देशमें पहुँचा और वहाँ गिरनारके उत्तर पश्चिममें उसने डेरा डाला। यहीं-पर कृष्णकी पत्नी सत्यभामाने भानु और भामर नामक परम रूपवान दो पुत्रोंको जन्म दिया। इनका जन्म होने पर क्रोष्टुकीके आदेशानुसार कृष्णने स्नान और बलिकर्म कर अष्टम तप किया और उसके साथ ही समुद्रकी भी पूजा की।

इस पूजासे प्रसन्न हो, तीसरे दिन रात्रिके समय सुस्थित नामक लवण समुद्रका अधिष्ठायक देवता उपस्थित हुआ। उसने कृष्णको पञ्च जन्य शंख दिया तथा बलरामको सुघोष नामक शंख और दिव्य रत्न, माला और वस्त्रादिक दिये। तदनन्तर उसने कृष्णसे कहा :—"हे केशव! मैं सुस्थित नामक देव हूँ। आपने मुझे क्यों याद किया है? आपका जो काम हो, वह शीघ्र ही बतलाइये, मैं करनेको तैयार हूँ।

इसपर कृष्णने कहा :—"प्राचीनकालमें यहाँ वासुदेवोंकी द्वारिका नामक जो नगरी थी और जो जलमें विलीन हो गयी थी, उसमें हमलोग बसना चाहते हैं, इसलिये आप उसे समुद्रगर्भसे बाहर निकाल दीजिये!"

सुस्थित, तथास्तु कह, वहाँसे इन्द्रके पास गया और उनसे यह समाचार निवेदन किया। सौधर्मेन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने उसी समय वहाँ बारह योजन लम्बी और नव योजन चौड़ी रत्नमयी द्वारिका नगरी निर्माण कर दी। उसके चारों ओर एक बड़ा भारी किला बनाया। साथही एक खण्डसे लेकर सात खण्ड तकके

बड़े बड़े महल भी बना दिये। और हजारों जिन चैत्य भी निर्माण किये।

इन महलोंमेंसे एक महलका नाम स्वस्तिक था और वह नगरके अग्निकोणमें अवस्थित था। वह सोनेका बना हुआ था और उसके चारों ओर एक किला भी बनाया गया था। यह महल राजा समुद्रविजयके लिये निर्माण किया गया था। इसी महलके समीप अक्षोभ्य और स्तिमितके लिये नन्दवर्त्त तथा गिरिकूट नामक महल बनाये गये थे। नगरके नैऋत्य कोणमें सागरके लिये अष्टाँशनामक महल बनाया गया था। हिमवान और अचलके लिये भी दो अलग महल बनाये गये थे और उनका नाम वर्धमान रक्खा गया था। वायव्य कोणमें धरणके लिए पुष्पपत्र, पूरणके लिये आलोक दर्शन और अभिचन्द्रके लिये विमुक्त नामक महल बनाये गये थे। ईशान कोणमें वसुदेवका विशाल महल अवस्थित था और उसका नाम कुबेरच्छन्द था। इसी तरह नगरके मुख्य मार्ग पर राजा उग्रसेनके लिये भी स्त्री-विहार-क्षम नामक एक भारी महल बनाया गया था। यह सभी

महल गढ़ द्वारा सुरक्षित और कल्पवृक्ष, गजशाला, अश्वशाला, सिंहद्वार तथा ध्वजादिकसे सुशोभित थे।

इन सबोंके मध्यभागमें वसुदेवका पृथ्वीजय नामक बहुत बड़ा महल बनाया गया था। उससे कुछ दूरी पर अठारह खण्डका सर्वतोभद्र नामक महल बलराम और कृष्णके लिये बनाया गया था। इस महलके सामने रत्न और मणि-माणिक्यमय सर्व प्रभासा नामक एक सभागृह भी बनाया गया था, जो बहुत ही मनोरम और दर्शनीय था।

इन चीजोंके अतिरिक्त विश्वकर्माने एक सौ आठ हाथ ऊँचा, जिन प्रतिमासे विभूषित, और मेरु शिखरके समान ऊँचा, एक जैन मन्दिर भी बनाया था। तालाब, कूए, और उद्यान आदि तो स्थान स्थान पर आवश्यकतानुसार बना दिये गये थे। यह सब कुबेरने केवल एकदिन और एक रात्रि अर्थात् २४ घण्टेमें बना दिया। इस नगरीके पूर्वमें गिरनार, दक्षिणमें माल्यवान, पश्चिममें सौमनस और उत्तरमें गन्धमादन नामक बड़े बड़े पर्वत अवस्थित थे। जिस समय यह मनोहर नगरी बनकर

तैयार हुई, उस समय इन्द्रपुरी भी उसके सामने तुच्छ प्रतीत होने लगी।

प्रभात होने पर कुवेरने कृष्णको दो पीताम्बर, नक्षत्रमाला, मुकुट, कौस्तुभ नामक महारत्न, शार्ङ्ग धनुप, अक्षय बाणवाले दो भाथे, नन्दक नामक खड्ग, कौमोदकी नामक गदा और गरूड़ ध्वज नामक रथ दिया तथा बलरामको वनमाला नामक आभरण, हल, मूशल नामक दो आयुध, दो वस्त्र, दो अक्षय भाथे, एक धनुष और तालध्वज नामक रथ आदि वस्तुएँ प्रदान की। इसके बाद अन्यान्य राजा जो कृष्ण और बलरामके पूज्य थे, उन्हें भी उस देवने अनेक रत्न और आभूषण दिये।

तदनन्तर समस्त यादवोंने आनन्द-पूर्वक पश्चिम समुद्रके तट पर कृष्णका राज्याभिषेक कर नगर-प्रवेशकी तैयारी की। बलराम सिद्धार्थ सारथीके साथ और कृष्ण दारुक सारथीके साथ अपने अपने रथ पर आरूढ़ हुए। अन्यान्य राजाओंने भी इच्छानुसार घोड़े, हाथी और रथादिक पर स्थान ग्रहण किया। इसके बाद

उन दोनों वीरोंने गगनभेदी जयध्वनिके साथ नगर प्रवेश किया। इस अवसर पर कुबेरने साढ़े तीन दिन तक नगरमें रत्न, मणि, माणिक्य, काञ्चन, रजत, धन, धान्य और उत्तमोत्तम वस्त्रोंकी वृष्टि की। इसके बाद पूर्व कथित भिन्न भिन्न महलोंमें कुबेरने सबको वासस्थान दिया। इस प्रकार समस्त यादव आनन्द-पूर्वक उस नगरीमें बस गये और कुबेर उनकी मनोकामना पूर्ण करने लगे। थोड़े ही दिनोंमें यह द्वारिका नगरी सुख, शान्ति और सम्पदाकी आगार बन गयी और यादवगण उसमें आनन्द-पूर्वक निवास करने लगे।

तेरहवाँ परिच्छेद

रुक्मिणी-हरण और प्रद्युम्न-जन्म

बलराम और कृष्ण अपने गुरुजनोंकी आज्ञा पालन करते हुए द्वारिकापुरीमें आनन्द-पूर्वक निवास करने

लगे। बालक श्रीनेमिनाथ भगवान भी सब लोगोंके साथ यहीं चले आये थे। उनका शरीर अब दिन प्रतिदिन उसी तरह बढ़ता जाता था, जिस तरह शुक्ल पक्षमें चन्द्रकी कला बढ़ती है। बलराम और कृष्ण आदिक भ्राता बड़े होने पर भी छोटे बनकर उद्यान और पर्वतों पर उनके साथ क्रीड़ा किया करते थे। क्रमशः जब उनका शरीर दस धनुष ऊँचा हुआ, तब उन्होंने यौवनावस्थामें पदार्पण किया ; परन्तु जन्मसे ही कन्दर्प-विजयी होनेके कारण उनके हृदयमें विकारका भाव जरा भी न दिखायी देता था। उनके मातापिता और राम कृष्णादिक बान्धव उनसे नित्य ही ब्याहके लिये प्रार्थना किया करते थे, किन्तु वे किसी भी कन्याका पाणिग्रहण करना स्वीकार न करते थे।

बलराम और कृष्ण अपना सारा समय क्रीड़ा कौतुकमें ही व्यतीत करते थे। उन्होंने आसपासके अनेक छोटे बड़े राजाओंको अपने अधिकारमें कर, द्वारिकामें एक साम्राज्यसा स्थापित कर लिया था। इस साम्राज्य पर कृष्णका एकाधिपत्य था और वे

बलरामकी सहायतासे उसका शासनकार्य सुचारु रूपसे संचालन करते थे।

एक दिन नारद मुनि विचरण करते हुए कृष्णके राज-प्रासादमें जा पहुँचे। उन्हें देख, कृष्ण और बलराम ने उनका बड़ाही आदर सत्कार किया। तदनन्तर वे वहाँसे प्रसन्न हो कृष्णके अन्तःपुरमें गये। वहाँ सत्यभामा दर्पणमें अपना मुख देख रही थी। वह इस कार्यमें इस प्रकार तन्मय हो रही थी, कि नारदकी ओर उसका ध्यान भी आकर्षित न हुआ। इससे नारद रूष्ट हो गये और चुपचाप वहाँसे बाहर निकल आये। वे अपने मनमें कहने लगे :—"वासुदेवके अन्तःपुरमें सदा नारदको सम्मान मिलता रहा है, परन्तु आज सत्यभामाने न तो मुझे आसन ही दिया, न मेरा आदर सत्कार ही किया। एक तो वह रूपवती है, दूसरे अपने पतिको अत्यन्त प्यारी है। मालूम होता है कि इसीसे इसे गर्व हो गया है। यदि कृष्णका ब्याह किसी ऐसी रमणीसे करा दिया जाय, जो इससे भी अधिक सुन्दर हो, तो इसका यह गर्व नष्ट हो

सकता है। मेरा सम्मान करना तो दूर रहा, उसने मेरी ओर आँख उठाकर देखा भी नहीं। इस अपराधके लिये मैं उसे अवश्य दण्ड दूँगा।"

इस प्रकार विचार करते हुए नारद मुनि कुण्डिनपुर पहुँचे। वहाँके राजाका नाम भीष्मक और रानीका नाम यशोमती था। उनके रुक्मी नामक एक पुत्र और रुक्मिणी नामक एक सुन्दर पुत्री थी। भीष्मकके राजमन्दिरमें पदार्पण करते ही रुक्मिणीसे नारद की भेट हो गयी। रुक्मिणीने आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम किया। नारदने उसे आशीर्वाद देते हुए कहा :—"अर्धभरतके स्वामी कृष्ण तुझे वर रूपमें प्राप्त हों!"

रुक्मिणीने चकित हो नम्रतापूर्वक पूछा :—"मुनि-राज! कृष्ण कौन हैं और वे कहाँ रहते हैं?"

रुक्मिणीका यह प्रश्न सुनकर नारदने कृष्णका परिचय देते हुए उनके अद्भूत और असाधारण शौर्या-दिक गुणोंका हाल उसे कह सुनाया। अपना उद्देश पूर्ण करनेके लिये उन्होंने यह सब बातें इस ढंगसे वर्णन कीं कि उनका निशाना ठीक स्थानपर जा लगा और

रुक्मिणी मन-ही-मन कृष्ण पर अनुरक्त हो गयी। उसने स्थिर किया कि जहाँतक हो सके, कृष्णसे ही व्याह करना चाहिये।

इसी समय नारदने एक पटपर रुक्मिणीका चित्र अंकित कर लिया और रुक्मिणीके हृदयमें अनुरागका बीज बोकर वे कृष्णके पास लौट आये। पश्चात् उन्होंने उनको वह चित्र दिखाया। चित्र देखकर कृष्णने पूछा:—"हे भगवन्! यह किस देवीका चित्र है?"

नारदने कहा:—"हे केशव! यह चित्र किसी देवीका नहीं, किन्तु कुण्डिनपुरकी राजकुमारी रुक्मिणी-का है। यह अभी अविवाहिता है।"

इसके बाद नारदने उसके रूप और गुणोंके वर्णन-कर, कृष्णके हृदयमें भी उसके प्रति अनुराग उत्पन्न कर दिया। यही उनका उद्देश था। इतना कर वे अपनी वीणा बजाते हुए अन्यत्रके लिये प्रस्थान कर गये।

नारदके चले जाने पर कृष्णने रुक्मिके पास एक दूत भेजकर, मधुर शब्दोंमें रुक्मिणीकी याचना की। राजा

रूक्मि दूतकी बातें सुनकर हँस पड़ा। उसने कहा :—
"हे दूत! कृष्ण गोपाल अपने हीन कुलका विचार किये बिना, मूढ़तापूर्वक मेरी बहिनकी याचना करता है। उसके साथ मैं अपनी बहिनका व्याह कदापि न करूँगा। मैंने तो उसका व्याह राजा शिशुपालके साथ करना स्थिर किया है। यह योग मणिकाञ्चनकी भाँति शोभाप्रद प्रमाणित होगा।"

रुक्मिके यह वचन सुनकर कृष्णका दूत द्वारिका लौट आया। उधर रुक्मिणीकी धात्रीने यह हाल सुनकर स्नेहपूर्वक रुक्मिणीको अपने पास बुलाया और उससे कहा :—"हे पुत्री! बाल्यावस्थामें तुझे एकबार मेरी गोदमें देखकर अतिमुक्तक मुनिने कहा था कि यह कृष्णकी पटरानी होगी। मैंने पूछा :—"हे भगवन्! कृष्णको हमलोग किस प्रकार पहचानेंगे?" उन्होंने कहा :—"पश्चिम समुद्रतट पर जो द्वारिका नगरी बसाये, उसीको कृष्ण समझना।" तबसे मेरी यही धारणा थी कि तुम्हारा व्याह कृष्णसे ही होगा, परन्तु आज मैंने खेदके साथ सुना है कि तुम्हारे भाईने कृष्णके दूतको

कटु वचन कह कर लौटा दिया है और तुम्हारा व्याह उसने दमघोषके पुत्र शिशुपालके साथ करना स्थिर किया है।"

यह सुनकर रुक्मिणी हँस पड़ी। उसने कहा :—
"माता! क्या मुनिका वचन कभी मिथ्या हो सकता है? क्या प्रातःकालका मेघगर्जन भी कभी निष्फल होता है?"

रुक्मिणीके यह वचन सुनकर धात्री उसका आन्तरिक भाव समझ गयी। उसने गुप्तरूपसे कृष्णके पास एक दूत भेजकर उनसे कहला दिया कि माघ शुक्ल अष्टमीको मैं नागपूजाके बहाने रुक्मिणीके साथ उद्यानकी ओर जाऊँगी। यदि आप उससे व्याह करना चाहते हों, तो वहाँ उपस्थित रहें, वर्ना उसका व्याह शिशुपालके साथ हो जायगा।"

उधर रुक्मिने, रुक्मिणीसे व्याह करानेके लिये शिशुपालको निमन्त्रण दिया और वह यथा समय अपनी सेनाके साथ कुण्डिनपुर आ पहुँचा। कलह प्रेमी नारदने शीघ्रही यह समाचार कृष्णको जा सुनाया। सुनते ही

कृष्ण भी बलरामके साथ एक रथमें बैठकर शीघ्रतापूर्वक कुण्डिनपुर जा पहुँचे। वहाँ वे अपने साथ सेना या नौकर चाकरोंको भी न लाये थे, इसलिये किसीको उनके आगमनका समाचार मालूम न हो सका।

धीरे-धीरे माघ शुक्ल अष्टमीका दिन आ पहुँचा। रुक्मिणीकी धात्री उस दिन अपने वचनानुसार नाग-पूजाके बहाने रुक्मिणीको उद्यानमें लिवा ले गयी। वहाँ पहलेहीसे कृष्णका रथ खड़ा था। कृष्ण उससे उतर कर रुक्मिणीके पास गये। उसको अपना परिचय देते हुए कृष्णने कहा :—"हे सुन्दरि! जिस प्रकार मालतीकी ओर भ्रमर खिंच आता है, उसी प्रकार तुम्हारे रूप और गुणोंपर मुग्ध होकर मैं बहुत दूरसे यहाँ खिंच आया हूँ। अब विलम्ब करनेका समय नहीं है। तुम मेरे रथमें बैठ जाओ। हमलोग शीघ्र ही सुरक्षित रूपमें द्वारिका पहुँच जायँगे।"

धात्रीको तो सब हाल पहलेही से मालूम था, इस-लिये उसने रुक्मिणीको रथपर बैठनेका संकेत किया। रुक्मिणीका समूचा शरीर इस समय रोमाञ्चित हो उठा।

उसे कुछ कुछ लज्जा और संकोच भी हो रहा था, फिर भी वह अपने हृदयको कड़ाकर उस रथमें बैठ गयी। कृष्णने उसी समय घोड़ोंकी लगाम ढीली कर दी और वे रथको यहाँसे ले उड़े।

जब कृष्णका रथ कुछ दूर निकल गया, तब उस धात्री तथा अन्यान्य दासियोंने अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करनेके लिये हल्ला मचाना आरम्भ किया। वे कहने लगीं :—"हे रुक्मिन्! हे रुक्मिन्! देखो, राम और कृष्ण चोरकी भाँति बलपूर्वक तुम्हारी बहिनको हरण किये जा रहे हैं। जल्दी दौड़ो और उसे बचाओ।"

दासियोंकी यह पुकार सुनकर चारों ओर हाहाकार मच गया। महा पराक्रमी रुक्मि और शिशुपाल शीघ्रही अपनी अपनी सेना लेकर कृष्णके पीछे दौड़ पड़े। तूफानकी तरह उनको समीप आते देखकर रुक्मिणी घबड़ा उठी। उसने कृष्णसे कहा :—"हे नाथ! मेरा भाई अत्यन्त क्रूर और महा बलवान है। शिशुपाल भी वैसा ही है। मालूम होता है कि वे दोनों विशाल

सेनाके साथ हमारे पीछे आ रहे हैं। आप तो केवल दो ही जन हैं, इसलिये मुझे चिन्ता हो रही है, कि हमारी न जाने कौन गति होगी।"

कृष्णने हँसकर कहा :—"हे सुन्दरि! तुम्हें चिन्ता करनेका कोई कारण नहीं। तुम क्षत्रिय-पुत्री हो। यदि हमलोगों पर कोई विपत्ति भी आ पड़े, तो तुम्हें धैर्यसे काम लेना चाहिये। वैसे, मैं तुम्हें बतला देना चाहता हूँ कि बेचारे यह रुक्मि आदि मेरे सामने किसी हिसावमें नहीं हैं। देखो, मैं तुम्हें अपने बलका एक छोटासा नमूना दिखलाता हूँ।

इतना कह कृष्णने एक अर्धचन्द्र बाण उठाया और उस एक ही बाणसे ताल वृक्षोंकी एक श्रेणीको कमल-नालकी भाँति काट कर उसे धराशायी बना दिया। इसके बाद उन्होंने अपनी अंगूठीसे एक छोटासा हीरा निकाला और रुक्मिणीके सामने ही चुटकीसे उसे इस तरह मसल दिया, कि वह पके हुए चावलकी भाँति पिस कर चूर्ण-विचूर्ण बन गया। कृष्णका यह बल देखकर रुक्मिणीको अत्यन्त आनन्द हुआ और उसे विश्वास हो गया कि

रुक्मि और शिशुपाल आदि उनका बाल भी बाँका नहीं कर सकते।

इसके बाद कृष्णने बलरामसे कहा :—"भाई! आप रुक्मिणीको लेकर आगे चलिये, मैं रुक्मि आदिको पराजित कर शीघ्र ही आपसे आ मिलूँगा।"

बलरामने कहा :—"नहीं भाई! आप चलिये, उन सबोंको परास्त करनेके लिये मैं ही काफी हूँ!"

कृष्ण और बलरामकी यह बातचीत सुनकर रुक्मिणी डर गयी। उसने कृष्णसे प्रार्थना की :—"प्राणनाथ! चाहे सबको मार डालिये, परन्तु मेरे भाईको अवश्य बचाइये! मैं नहीं चाहती कि मेरे पीछे उसका प्राण जाय और मेरे शिर कलङ्कका टीका लगे!"

रुक्मिणीकी यह प्रार्थना सुनकर कृष्णने इसके लिये बलरामको सूचना दे दी। इसके बाद बलराम वहीं खड़े होकर शत्रु-सेनाकी प्रतीक्षा करने लगे और कृष्ण रुक्मिणीको लेकर शीघ्रताके साथ आगे बढ़ गये।

कुछ ही देरमें रुक्मि और शिशुपाल एक बहुत बड़ी सेना लिये वहाँ आ पहुँचे। बलराम उनके स्वागतके

लिये पहले ही से खड़े थे। उन्होंने मूशलायुध फेंक कर बातकी बातमें समस्त सेनाको अस्तव्यस्त कर डाला। यदि वह हाथी और घोड़ों पर जा गिरता तो वे वहीं कुचल कर रह जाते और यदि रथपर जा गिरता, तो वे घड़ेकी तरह टूट कर चूर्ण-विचूर्ण हो जाते। इस प्रकार बलरामने जब समस्त सेनाको पराजित कर दिया, तब अभिमानी रुक्मिने उनको ललकार कर कहा :—"हे राम! केवल सेनाको ही पराजित करनेसे काम न चलेगा। यदि तू अपनेको वीर मानता हो, तो मेरे सामने आ! मैं तेरा मान मर्दन करनेके लिये यहाँ तैयार खड़ा हूँ!"

रुक्मिकी यह ललकार सुनकर बलरामको बड़ा क्रोध आया। वे चाहते तो उसी समय मूशल-प्रहार द्वारा उसका प्राण ले लेते, परन्तु उन्हें कृष्णकी सूचना याद आ गयी, इसलिये उन्होंने मूशलको किनारे रख, बाणोंसे उसका रथ तोड़ डाला, बख्तर तोड़ डाला और अश्वोंको भी मार डाला। बलरामकी इस मारसे रुक्मि बहुत ही परेशान हो गया। बलरामने इसी समय उस पर क्षुरप्र-बाण छोड़ कर उसके केश मूँड लिये। इसके बाद

उन्होंने हँसते हुए कहा :—"हे रुक्मि ! तुम मेरे भाईकी पत्नीके भाई हो, इसलिये मारने योग्य नहीं हो। तुम अब यहाँसे चले जाओ ! तुम्हारा शिर मूँड कर मैं तुम्हें जीता छोड़ देता हूँ। तुम्हारे लिये इतना ही दण्ड काफी है।"

इतना कह बलरामने उसे छोड़ दिया। किन्तु रुक्मि अपनी इस दुर्दशासे इतना लज्जित हो गया, कि उसे कुण्डिनपुर जानेका साहस ही न हुआ। उसने वहीं भोजकट नामक एक नया नगर बसाया और वहीं अपने बाल-बच्चोंको बुलाकर अपना शेष जीवन व्यतीत किया।

उधर कृष्ण रुक्मिणीके साथ सकुशल द्वारिका पहुँच गये। नगर प्रवेश करते समय कृष्णने रुक्मिणीसे कहा :—"हे देवि ! देखो, यही देव निर्मित रत्नमय मेरी द्वारिका नगरी है। यहाँ कल्प-वृक्षोंसे विराजित सुरम्य उद्यानमें, तुम्हारे रहनेकी व्यवस्था मैं कर दूँगा। तुम वहाँ इच्छानुसार सुख भोग कर सकोगी !"

रुक्मिणीने कहा :—"हे नाथ ! यह सब तो ठीक है, परन्तु आपकी अन्यान्य स्त्रियाँ तो बड़े ठाठ बाठके

साथ यहाँ आयी हैं, उनके पिता तथा गुरुजनोंने बड़ी धूमके साथ, आपको विपुल सम्पत्ति दे कर आपका ब्याह किया है, किन्तु मुझे तो आप अकेले ही एक बन्दिनीकी भाँति यहाँ ले आये हैं। हे प्रियतम! इससे आपकी वह स्त्रियाँ मेरा उपहास तो न करेंगी?"

कृष्णने कहा :—"नहीं प्रिये! तुम्हारा कोई उपहास न करेगा। अन्तःपुरमें मैं तुमको औरोंसे अधिक ऊँचा स्थान प्रदान करूँगा, ताकि किसीको वैसा करनेका साहस ही न होगा!"

इस प्रकार रुक्मिणीको सान्त्वना देते हुए कृष्ण अपने राजमन्दिरमें आ पहुँचे। तदनन्तर उन्होंने सत्यभामाके महलके निकट श्रीप्रासाद नामक महलमें रुक्मिणीके लिये रहनेकी व्यवस्था कर दी और उसके साथ गान्धर्व विवाह कर वह रात्रि क्रीड़ा कौतुकमें व्यतीत की।

कृष्णने रुक्मिणीके वासस्थानमें जानेकी सबको मनाई कर दी थी, इसलिये कोई भी उसे देख न पाता था। यह प्रतिबन्ध सत्यभामाके लिये असह्य हो पड़ा। वह रुक्मिणीके लिये व्याकुल हो उठी, उसने उसे देखनेके

लिये कृष्णसे अत्यन्त आग्रह किया। इसपर कृष्णने कहा :—"अच्छा, कल तुम्हारी यह इच्छा पूर्ण कर दूँगा।"

सत्यभामासे यह वादा करनेके बाद कृष्णको एक दिल्लगी सूझी। श्रीप्रासादमें लक्ष्मीकी एक सुन्दर प्रतिमा थी। उन्होंने सज्जित करानेके बहाने, चतुर कारीगरों द्वारा उस प्रतिमाको वहाँसे हटवा दिया और उस स्थानमें उस प्रतिमाकी ही भाँति रुक्मिणीको बैठा दिया। इसके बाद उन्होंने रुक्मिणीसे कहा :—"सत्यभामाके साथ अन्य रानियाँ जिस समय तुम्हें देखने आयें, उस समय तुम इस तरह स्थिर हो जाना, जिससे वे यह न समझ सकें कि तुम लक्ष्मीकी मूर्ति नहीं हो।"

इस प्रकार व्यवस्था करनेके बाद कृष्णने सत्यभामा आदिसे कह दिया कि :—"तुम श्रीप्रासादमें जाकर रुक्मिणीको सहर्ष देख सकती हो।" कृष्णका यह वचन सुनकर वे सब रुक्मिणीको देखने गयीं। श्रीप्रासादमें प्रवेश करने पर पहले ही श्रीमन्दिर पड़ता था। सत्यभामाने सोचा कि चलो पहले लक्ष्मीजीके दर्शन कर लें। यह सोच कर वे सब लक्ष्मीके मन्दिरमें गयीं और

वहाँ शिर झुका-झुका कर लक्ष्मीकी प्रतिमा (रुक्मिणी) को प्रणाम करने लगीं। सत्यभामाने तो हाथ जोड़ कर यह भी प्रार्थना की कि :—"हे देवि! तुम ऐसा करो कि मैं प्राणनाथकी नवीन पत्नीको रूपमें जीत लूँ। यदि मेरा यह मनोरथ सफल होगा, तो मैं भक्ति-पूर्वक तुम्हारी पूजा करूँगी!"

इस प्रकार मिन्नत मना, सत्यभामा अन्यान्य रानियोंके साथ, रुक्मिणीको देखनेके लिये, श्रीप्रासादमें उसकी खोज करने लगी। वे सब महलका कोना कोना खोज आयीं, परन्तु कहीं भी रुक्मिणीका पता ना चला। पता चल भी कैसे सकता था? रुक्मिणीने तो लक्ष्मीका स्थान ग्रहण कर लिया था। वहाँ वे सब पहले ही हो आयी थीं, किन्तु किसीको खयाल तक न आया था, कि यही रुक्मिणी है। अन्तमें जब वे निराश हो गयीं, तब कृष्णके पास वापस लौट गयीं। वहाँ कृष्णसे अपनी परेशानीका हाल उन्होंने कह सुनाया। सुनकर कृष्ण हँस पड़े। उन्होंने कहा :—"अच्छा चलो, मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ।"

इतना कह, कृष्ण उन सबोंको अपने साथ लेकर श्रीप्रासादमें आये। रुक्मिणी इस समय भी पूर्वकी ही भाँति लक्ष्मीके स्थानमें बैठी हुई थी। किन्तु इस-बार कृष्णको देख कर वह खड़ी हो गयी और उसने कृष्णसे कहा :—"हे नाथ! मुझे मेरी इन बहिनोंका परिचय दीजिये, जिससे मैं अपनी बड़ी बहिनको प्रणाम कर सकूँ।"

कृष्णने यह सुनकर रुक्मिणीको सत्यभामाका परिचय देकर कहा :—"यही तुम्हारी बड़ी बहिन है!"

यह सुनकर रुक्मिणी सत्यभामाको प्रणाम करनेको उद्यत हुई, किन्तु सत्यभामाने उसे रोक कर कहा :— "नाथ! अब यह सर्वथा अनुचित होगा, क्योंकि अज्ञानताके कारण मैं इन्हें पहले ही प्रणाम कर चुकी हूँ!"

कृष्णने हँस कर कहा :—"खैर, कोई हर्ज नहीं। बहिनको प्रणाम करना अनुचित नहीं कहा जा सकता।"

यह सुनकर सत्यभामाको बड़ा ही पश्चाताप हुआ और वह बिलखती हुई अपने स्थानको चली गयी। कृष्णकी इस युक्तिसे रुक्मिणी अनायास पटरानी बन

गयी। कृष्णने उसके लिये ऐश्वर्य और ऐश आरामकी समस्त सामग्रियाँ जुटा दीं और वह वहीं रह कर कृष्णके साथ आनन्द-पूर्वक अपने दिन व्यतीत करने लगी।

कुछ दिनोंके बाद, एक दिन नारदमुनि वहाँ आये। कृष्णने उनका पूजनकर पूछा :—"हे भगवन्! आप तीनों लोकमें सर्वत्र विचरण किया करते हैं। यदि कहीं कोई आश्चर्यजनक वस्तु दिखायी दी हो, तो उसका वर्णन कीजिये।"

नारदने कहा :—"हे केशव! मैंने हालहीमें एक आश्चर्य जनक वस्तु देखी है। वैताढ्य पर्वतपर जाम्बवान नामक एक विद्याधर राजा राज्य करते हैं। उनकी पत्नीका नाम शिवचन्द्रा है। उनके विष्वक्सेन नामक एक पुत्र और जाम्बवती नामक एक पुत्री है। वह अभीतक कुमारी है। उसके समान रूपवती रमणी तीनों लोकमें न तो मैंने देखी है, न सुनी ही है। वह राजहंसीकी भाँति क्रीड़ा करनेके लिये सदा गंगामें जाया करती है। उसका अद्भुत सौन्दर्य देखकर ही मैं तुम्हें उसकी सूचना देने आया हूँ।"

कृष्णको यह संवाद सुनाकर नारद तो अन्यत्रके लिये प्रस्थान कर गये। इधर कृष्णने जाम्बवतीको अपनी रानी बनाना स्थिर किया, इसलिये वे अपनी सेनाको लेकर वैताढ्य पर्वत पर जा पहुँचे। वहाँपर उन्होंने देखा कि जाम्बवती अपनी सखियोंके साथ खेल रही है। वह वास्तवमें वैसी ही रूपवती थी, जैसा नारदने बतलाया था। मौका मिलते ही उसे अपने रथपर बैठा कर कृष्णने द्वारिकाकी राह ली। इससे चारों ओर घोर कोलाहल मच गया। जाम्बवानने तलवार खींचकर कृष्णका पीछा किया, किन्तु अनाधृष्टिने उसे पराजित कर बन्दी बना लिया। वह उसी अवस्थामें उसे कृष्णके पास ले गया। जाम्बवानने देखा कि अब कृष्णसे विरोध करनेमें कोई लाभ नहीं है, तब उसने जाम्बवतीका विवाह उनके साथ सहर्ष कर दिया। इसके बाद, अपने इस अपमानसे खिन्न हो उसने दीक्षा ले ली।

जाम्बवानके पुत्र विष्वक्सेन और जाम्बवतीको अपने साथ लेकर कृष्ण द्वारिका लौट आये। वहाँ

उन्होंने रुक्मिणीके निकट एक पृथक् महलमें रुक्मिणीकी ही भाँति जाम्बवतीके रहनेकी व्यवस्था कर दी। जाम्बवतीका स्वभाव बहुत ही मिलनसार था, इसलिये उसने शीघ्र ही रुक्मिणीसे मित्रता कर ली। इससे उसके दिन भी आनन्दमें कटने लगे।

एकबार सिंहलद्वीपके राजा श्लक्ष्णरोमने कृष्णकी आज्ञा माननेसे इन्कार कर दिया, इसलिये कृष्णने उसे समझानेके लिये उसके पास एक दूत भेजा। कुछ दिनोंके बाद उस दूतने वहाँसे वापस आकर कृष्णसे कहा :—"हे स्वामिन्! श्लक्ष्णरोम आपकी आज्ञा मानने को तैयार नहीं है। परन्तु उसे नीचा दिखाने की एक और युक्ति मैंने खोज निकाली है। उसके श्लक्ष्मणा नामक एक कन्या है, जो बहुत ही सुन्दर है और सर्वथा आपकी रानी बनने योग्य है। वह इस समय द्रुमसेन नामक सेनापतिकी संरक्षतामें सागर-स्नान करनेके लिये यहाँ आयी हुई है। वह सात दिन यहाँ रहेगी। यदि आप चाहें तो इस बीच उसका हरण कर सकते हैं। सम्भव है कि इससे श्लक्ष्णरोम भी आपकी अधीनता स्वीकार कर ले।"

दूतकी यह सलाह कृष्णको पसन्द आ गयी। वे उसी समय बलरामको साथ लेकर समुद्र तट पर गये और सेनापतिको मारकर श्लक्ष्मणाका हरण कर लाये। तदनन्तर द्वारिका आकर उन्होंने उसके साथ ब्याह कर लिया और दास-दासी आदिका प्रबन्ध कर रत्नगृह नामक महलमें उसके रहनेकी व्यवस्था कर दी।

इसके बाद राष्ट्रवर्धन नामक राजाकी पारी आयी। वह सुराष्ट्र देशके आयुस्खरी नामक नगरमें राज्य करता था। उसकी रानीका नाम विजया था। उसके नमुचि नामक एक महा-बलवान पुत्र और सुसीमा नामक परम रूपवती एक कुमारी भी थी। नमुचिने दिव्य आयुध सिद्ध किये थे, उसे अपने बलका बड़ा अभिमान था, इसलिये वह कृष्णकी आज्ञा न मानता था। एकबार सुसीमाको साथ लेकर वह प्रभास तीर्थमें स्नान करने गया। इसी समय कृष्णने उस पर आक्रमण कर उसे मार डाला और सुसीमाका हरण कर लिया। तदनन्तर द्वारिका आने पर कृष्णने उससे विवाह कर उसे रत्नगृहके निकट एक सुन्दर महलमें रहनेको स्थान दिया। कृष्णने

उसके लिये भी दास दासियोंका समुचित प्रबन्ध कर दिया। सुसीमाके विवाहके समय राष्ट्रवर्धन राजाने भी अनेक दास दासी और हाथी घोड़े आदि कृष्णके पास भेजकर उनसे मित्रता कर ली।

इसकेबाद वीतभय नामक नगरके स्वामी मेरु राजाकी गौरी नामक कन्यासे कृष्णने विवाह किया। पश्चात् कृष्णने सुना कि अरिष्टपुरमें राजा हिरण्यनाभकी पद्मावती नामक पुत्रीका स्वयंवर होनेवाला है। इसलिये बलराम और कृष्ण दोनों जन उस स्वयंवरमें भाग लेनेको पहुँचे। राजा हिरण्यनाभ रोहिणीके भाई थे और उस नाते कृष्ण तथा बलराम उनके भानजे लगते थे। इससे हिरण्यनाभने उन दोनों वीरोंका बहुत ही स्वागत किया। हिरण्यनाभके बड़े भाई रैवतने अपने पिताके साथ नमि-नाथ तीर्थमें दीक्षा ले ली थी; किन्तु दीक्षा लेनेके पहले ही उन्होंने रेवती, रामा, सीता और बन्धुमती नामक अपनी चार पुत्रियोंका विवाह बलरामके साथ कर दिया था। इससे कृष्णने समस्त राजाओंके सामने ही पद्मा-वतीका हरण कर लिया। कृष्णके इस कार्यसे स्यंवरमें-

आये हुए राजा रुष्ट हो गये, किन्तु कृष्णने उन सबोंको युद्धमें पराजित कर अपना रास्ता साफ कर लिया। बलरामके साथ द्वारिका लौटने पर कृष्णने पद्मावतीसे विवाह कर लिया और गौरीके महलके निकट उसके रहनेका प्रबन्ध कर दिया।

एक समय गाँन्धार देशकी पुष्कलावती नगरीमें राजा नग्नजीत राज्य करते थे। उनके पुत्रका नाम चारुदत्त था। पिताकी मृत्युके बाद वही अपने पिताका उत्तराधिकारी हुआ, किन्तु शक्तिसम्पन्न न होनेके कारण उसके भाई बन्धुओंने उसका राज्य छीन लिया। इससे वह भागकर कृष्णकी शरणमें आया और अपना राज्य वापस दिलानेके लिये उसने कृष्णसे प्रार्थना की। कृष्ण उसकी प्रार्थना स्वीकार कर गान्धार गये। वहाँ उन्होंने शत्रुओंको मारकर चारुदत्तका राज्य उसे वापस दिलाया। इस उपकारके बदले चारुदत्तने कृष्णके साथ अपनी बहिन गान्धारीका विवाह कर दिया। तदनन्तर कृष्ण पद्मावतीको लिये द्वारिका लौट आये। और उसे एक स्वतन्त्र महलमें रखा। इस प्रकार कृष्णने आठ

रानियोंसे विवाह किया, वे उनकी आठ पटरानियोंके नामसे विख्यात हुई।

एकदिन रुक्मिणीके यहाँ अतिमुक्तक मुनिका आगमन हुआ। उन्हें देखकर सत्यभामा भी वहाँ आ पहुँची। रुक्मिणीने मुनिसे वन्दना कर पूछा कि :—"हे भगवन! मुझे पुत्र होगा या नहीं?" इसपर मुनिराजने आशीर्वाद देते हुए कहा—"हाँ, तुझे श्रीकृष्णके समान एक सुन्दर और बलवान पुत्र होगा!"

यह सुनकर रुक्मिणी बहुत प्रसन्न हुई। उसने भोजनादि द्वारा मुनिका सत्कार कर, बड़े सम्मानके साथ उनको विदा किया। उनके चले जाने पर सत्यभामाने रुक्मिणीसे कहा कि मुनिराजने तो मेरी ओर देखकर कहा था, कि तुझे कृष्णके समान पुत्र होगा, इसलिये पुत्रकी माता बनने का सौभाग्य मुझे ही प्राप्त होगा। यह सुन रुक्मिणीने कहा—"नहीं, मुनिराजने तो मेरे प्रश्नके उत्तरमें मुझसे ही वह बात कही थी। तुम छल कर रही हो, इसलिये तुम्हें कोई लाभ न होगा।"

अन्तमें इस विवादका निर्णय करानेके लिये वे

दोनों कृष्णके पास गयीं। उसी समय वहाँ सत्यभामाका भाई दुर्योधन आया हुआ था। उससे सत्यभामाने कहा—"यदि मेरे पुत्र होगा, तो मैं उसे तुम्हारा दामाद बनाऊंगी।" इस पर रुक्मिणीने कहा—"यदि मेरे पुत्र होगा, तो मैं भी यही करूंगी। दोनों की बात सुनकर दुर्योधनने कहा :—मुझे यह स्वीकार है। तुम दोनोंमें से यदि किसीके भी पुत्र होगा, तो मैं उससे अपनी कन्याका विवाह कर दूँगा।"

सत्यभामाने कहा :—"यह तो होगा ही, किन्तु इतनेही से मुझे सन्तोष नहीं है। मैं यह भी चाहती हूँ कि हम दो में से जिसके पुत्रका विवाह पहले हो, उसके विवाहमें दूसरी अपने केश दे दे। कृष्ण, बलराम और दुर्योधन—यह तीनों जन इसके साक्षी रहें।"

इस प्रकार वाद-विवाद कर वे दोनों अपने अपने स्थानको वापस चली गयीं।

एकदिन प्रभातके समय रुक्मिणीने एक स्वप्न देखा। उसे ऐसा मालूम हुआ, मानो वह धवल वृषभ पर स्थित एक विमानमें बैठी हुई है। यह स्वप्न देखते ही उसकी

निद्रा भङ्ग हो गयी और उसी समय वह महाशुक्र विमानसे च्युत होकर एक महर्द्धिक देव रुक्मिणीके उदरमें आया। सुबह उसने उस स्वप्नका हाल कृष्णसे कह सुनाया। इस पर कृष्णने कहा :—"प्यारी! यह स्वप्न बहुत ही शुभ है। मालूम होता है कि तुम शीघ्र ही एक प्रतापी पुत्रको जन्म दोगी।"

जिस समय कृष्ण और रुक्मिणीमें यह बात चीत हुई, उस समय सत्यभामाकी एक दासी भी वहाँ उपस्थित थी। उसने सत्यभामाके पास जाकर उससे यह सब बातें बतला दीं। इससे सत्यभामाके हृदयमें खलबली मच गयी। उसने कृष्णके पास आकर कहा :—"आज मुझे ऐरावत समान एक हाथी स्वप्नमें दिखायी दिया है।" उसकी बाह्य चेष्टा देखकर कृष्ण समझ गये, कि वास्तवमें इसने कोई स्वप्न नहीं देखा है, बल्कि यह सब योंही ही कह रही है। इसपर भी उन्होंने उसे प्रसन्न रखनेके लिये कह दिया, कि तुम एक अच्छे पुत्रकी माता होगी। यह सुनकर सत्यभामा परम प्रसन्न हुई। यद्यपि उसने कृष्णसे झूठी ही बात कही

थी, फिर भी दैवयोगसे वह भी इसी समय गर्भवती हो गयी।

परन्तु सत्यभामाका गर्भ साधारण होनेके कारण वह ज्यों-ज्यों बड़ा होता गया, त्यों-त्यों उसका उदर भी बढ़ता चला गया। रुक्मिणीका गर्भ उत्तम था, इसलिये गर्भ बढ़ने पर भी उसका उदर जैसेका तैसा ही बना रहा। इस अन्तरको लक्ष्य कर सत्यभामाने कृष्णसे कहा :—"देव! मालूम होता है कि रुक्मिणीने गर्भकी बात आपसे झूठ ही कही है। यदि उसके गर्भ होता, तो क्या मेरी ही तरह उसका भी उदर न बढ़ गया होता!"

जिस समय सत्यभामा कृष्णसे यह बात कह रही थी, उसी समय दौड़ती हुई एक दासी वहाँ आ पहुँची। उसने कृष्णको बधाई देकर कहा :—"राजन्! रुक्मिणीने अभी अभी एक सुन्दर पुत्रको जन्म दिया है। हे स्वामिन्! उसकी कान्ति तपाये हुए स्वर्णके समान है। मानो उसके जन्मसे राजमन्दिर जगमगा उठा है।"

कृष्णको यह संवाद सुनकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई,

परन्तु सत्यभामाका तो चेहरा ही उतर गया। वह झनक कर उसी समय वहाँसे उठकर अपने महलमें चली गयी। वहाँ पहुँचते ही उसने भी एक पुत्रको जन्म दिया, जिसका नाम उसने 'भानुक' रक्खा।

उधर कृष्ण सत्यभामाके पाससे उठकर रुक्मिणीके पास गये। वहाँपर उन्होंने एक सिंहासन पर स्थान ग्रहण किया। तदनन्तर उनके आदेशसे रुक्मिणीकी एक दासी उस नवजात बालकको उनके पास ले आयी। कृष्णने उसे गोदमें लेकर देखा। वह वास्तवमें वैसा ही रूपवान था, जैसा दासीने बतलाया था। उसकी कान्तिसे समस्त दिशाएँ प्रद्योदित हो रही थीं, इसलिये कृष्णने उसका नाम 'प्रद्युम्न' रक्खा।

इसी समय पूर्वजन्मके वैरके कारण, धूमकेतु नामक एक देव रुक्मिणीका वेश धारण कर वहाँ आया और कृष्णके हाथसे उस बालकको लेकर वैताढ्य पर्वत पर चला गया। वहाँ भूतरमण उद्यानकी टंक शिला पर बैठकर वह अपने मनमें कहने लगा—"मैं इस बालकको छलपूर्वक यहाँ तो उठा ले आया, पर अब इसे क्या करूं? मैं इसे

शिलापर पटक कर मार सकता हूँ, परन्तु इससे इसकी शीघ्र ही मृत्यु हो जायगी और इसे कोई कष्ट न होगा। हाँ, यदि मैं इसे इसी शिलापर छोड़कर चला जाऊं, तो यह रो रोकर अवश्य मर जायगा। यही दण्ड इसके लिये उपयुक्त भी है।"

इस प्रकार विचार कर धूमकेतु प्रद्युम्नको उसी शिलापर छोड़कर अपने वासस्थानको चला गया। परन्तु प्रद्युम्न चरम शरीरी और निरूपक्रम आयुषी होनेके कारण, उस शिलासे लुढ़क कर एक ऐसे स्थानमें जा गिरा, जहाँ पत्तोंका ढेर लगा हुआ था। इससे उसे जरा भी चोट न आयी। इसी समय कालसंवर नामक विद्याधर विमानमें बैठकर उधरसे आ निकला। वह अग्निज्वाल नामक नगरसे अपने नगरकी ओर जा रहा था। प्रद्युम्नके पास पहुँचते ही उसका विमान एकायक रुक गया। कालसंवर इसके कारण पर विचार करता हुआ जो भूमिपर उतरा, तो उसकी दृष्टि उस तेजस्वी बालक पर जा पड़ी। उसने अपने मनमें कहा :—मालूम होता है कि यह बालक कोई महात्मा

है और इसीके कारण मेरा विमान रुक गया है।" यह सोचकर उसने उस बालकको उठा लिया और उसे अपने मेघकूट नामक नगरमें लेजाकर अपनी पत्नी कनकमाला-को दे दिया। उसने लोगोंसे कहा कि मेरी पत्नीके गूढ़ गर्भ था और उसीने आज इस पुत्रको जन्म दिया है। बड़े समारोहके साथ उसका जन्मोत्सव मनाकर, उसने भी उसका नाम प्रद्युम्न रक्खा।

उधर थोड़ी देरमें रुक्मिणीने कृष्णके पास आकर पूछा कि :—"हे नाथ! आपका प्यारा पुत्र कहाँ है?"

कृष्णने चकित होकर कहा :—"अभी अभी तो तुम मेरे पाससे ले गयी हो, फिर उसे क्यों माँगने आयी हो?"

रुक्मिणीने कहा :—"नहीं नाथ, मैं कब ले गयी हूँ? आज आप ऐसी बात क्यों कहते हैं?"

रुक्मिणीका यह उत्तर सुनकर कृष्णने दाँतों तले उँगली दबा ली। वे कहने लगे—"मैं जो कहता हूँ, वह ठीक ही कहता हूँ। परन्तु यदि तुम उसे मेरे हाथोंसे नहीं ले गयी हो, तो इसमें कोई सन्देह नहीं

कि कोई दूसरा ही तुम्हारा वेश धारण कर, उसे छल-पूर्वक मेरे हाथोंसे छीन ले गया !"

इतना कह कृष्णने उसी समय दूतोंको चारों ओर दौड़ाकर उस बालककी खोज करायी, किन्तु कहीं भी उसका पता न चला। इससे रुक्मिणी विलाप करने लगी और विलाप करते करते अन्तमें वह मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ी। इससे समस्त यादवोंको दुःख हुआ। समस्त द्वारिका नगरीमें एक सत्यभामा ही ऐसी थी, जिसे इस घटनासे जरा भी दुःख या आश्चर्य न हुआ। बल्कि मन-ही-मन इससे वह आनन्दित हुई, किन्तु अपना यह भाव उसने प्रकट न होने दिया।

प्रद्युम्नके खो जानेसे रुक्मिणीकी प्रसन्नता तो मानो सदाके लिये गायब हो गयी। साथ ही कृष्ण भी रातदिन उदास रहने लगे। इतनेही में एकदिन उनकी राजसभामें कहींसे घूमते घामते नारदमुनि आ पहुँचे। कृष्णको उदास देखकर नारदने उनके उद्वेगका कारण पूछा। कृष्णने कहा :—"भगवन्! आपसे मैं क्या कहूँ, रुक्मिणीके नवजात पुत्रको कोई छलपूर्वक मेरे हाथोंसे हरण कर ले गया है।"

उसी घटनासे हम सबलोग दुःखित हो रहे हैं। यदि आपको उसका कुछ पता मालूम हो, तो बतलाने की दया करें।"

नारदमुनिने कहा :—"हे केशव! यहाँपर अतिमुक्तक मुनि महाज्ञानी थे, किन्तु वे तो मोक्षके अधिकारी हो गये। इस समय भरतक्षेत्रमें उनके समान दूसरा कोई ज्ञानी नहीं है। पर हाँ, सीमन्धर स्वामी अवश्य उसका पता बतला सकते हैं। यदि आप कहें तो मैं पूर्व महा विदेहमें जाकर, उनसे पूछ आऊँ।"

श्रीकृष्ण तथा अन्यान्य यादवोंको यह सुनकर अत्यन्त आनन्द हुआ और उन्होंने नारदमुनिकी पूजा कर, उनसे इतना काम कर देनेकी प्रार्थना की। नारद उनकी प्रार्थना स्वीकार कर तुरन्त सीमन्धर स्वामीके पास गये। वहाँपर उन्होंने उनसे पूछा :—"हे भगवन्! रुक्मिणीका पुत्र इस समय कहाँ है?"

सीमन्धर स्वामीने कहा :—"हे नारद! पूर्वजन्मके वैरके कारण धूमकेतु नामक देव छल पूर्वक उस बालकको हरण कर ले गया था। वह उसे वैताढ्य पर्वतकी टंक शिलापर छोड़ आया था, परन्तु वहाँ

उसकी मृत्यु नहीं हुई, क्योंकि वह चरम शरीरी था और चरम शरीरीका प्राण इन्द्र भी नहीं ले सकते। इसके बाद कालसंवर नामक एक विद्याधर राजाने उसे देखा और उसने उसे घर ले जाकर अपनी पत्नीको दे दिया। वह अब पुत्रकी भाँति उसका लालन-पालन कर रही है। उसे वहाँ किसी प्रकारका कष्ट नहीं है।"

यह सुनकर नारदमुनिने पुनः पूछा :—"हे भगवन्! पूर्व जन्ममें उसके साथ धूमकेतुका वैर क्यों हो गया?"

भगवानने कहा :—"इसी भरतक्षेत्रके मगध देशमें शालिग्राम नामक एक ग्राम है। उसमें एक बहुत ही मनोरम उद्यान था, जिसका अधिष्ठायक सुमन नामक एक यक्ष था। उसी ग्राममें सोमदेव नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्रीका नाम अग्निला था। उसके अग्निभूति और वायुभूति नामक दो पुत्र थे, जो वेदके अच्छे ज्ञाता माने जाते थे। अपनी विद्याके कारण उन दोनोंने ऐसी कीर्ति उपार्जित की, कि उसके कारण वे बहुत ही अभिमानी हो गये।

कुछ दिनोंके बाद एकबार उस मनोहर उद्यानमें

नन्दिवर्धन नामक एक आचार्यका आगमन हुआ। यह जानकर समस्त नगर निवासी उनकी सेवामें उपस्थित हुए और उनको वन्दन किया, किन्तु अग्निभूति वायुभूति दोनोंने वहाँ जाकर अभिमान पूर्वक कहा :—"हे जैनमतसे वासित मतिवाले! हे श्वेताम्बर! यदि तुम्हें कुछ शास्त्रका ज्ञान हो तो हमारे सामने आओ और अपनी विद्वत्ताका परिचय दो, अन्यथा तुम्हारा यह धर्मोपदेश व्यर्थ है!"

उनके यह वचन सुनकर नन्दिवर्धनके सत्य नामक एक अवधिज्ञानी शिष्यने उन दोनोंसे पूछा :—"यहाँ तुम दोनोंका आगमन कहाँसे हुआ है?"

वे तुरन्त बोल उठे—"हम शालिग्रामसे यहाँ आये हैं।"

सत्यमुनिने कहा :—"मैं यह नहीं पूछता। मैं तो यह पूछता हूँ कि तुम्हें किस जन्मके बाद यह मनुष्यत्व प्राप्त हुआ है? यदि तुम्हें अपने पूर्वजन्मका कुछ हाल मालूम हो, तो शीघ्र कहो।"

अग्निभूति और वायुभूति दोनों इस ज्ञानसे वञ्चित थे, इसलिये लज्जाके मारे उन्होंने अपने शिर झुका लिये।

उनकी यह अवस्था देखकर सत्यमुनिने उनके पूर्वजन्मका वृत्तान्त वर्णन करते हुए कहा :—"हे ब्राह्मणो! पूर्व-जन्ममें तुम दोनों माँस-लोलुप शृगाल थे और इसी ग्रामके वनमें रहते थे। एकदिन किसी किसानने अपने खेतमें चमड़ेकी एक रस्सी रख दी। रातमें वृष्टि होनेपर वह पानीसे भीगकर मुलायम हो गयी और उसे वह दोनों शृगाल खा गये। इस अत्याहारके कारण उन दोनोंकी मृत्यु हो गयी। मृत्युके बाद तुम दोनों अपने कर्मानुसार इस जन्ममें सोमदेव विप्रके पुत्र हुए हो। उधर उस किसानने सुबह खेतमें जाकर देखा, तो उसे मालूम हुआ, कि सारी रस्सी शृगाल खा गये हैं, तब वह अपने घर चला गया। और कुछ दिनोंके बाद उसकी मृत्यु भी हो गयी। तदनन्तर वह अपनी पुत्र-वधूके उदरसे पुत्ररूपमें उत्पन्न हुआ। परन्तु जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न होनेके कारण उसे यह हाल मालूम हो गया और वह इस चिन्तामें पड़ गया कि मैं अपनी पुत्रवधूको माता और अपने पुत्रको पिता किस प्रकार कहूँ? इसी कारणसे वह जन्मसे ही कपट पूर्वक मूक बन गया है।

यदि तुम्हें विश्वास न हो तो उसे बुलाकर पूछ लो, वह स्वयं तुम्हें सब हाल कह सुनायेगा।"

सत्यमुनिकी यह बातें सुनकर कुछ लोग तुरन्त उस किसानके यहाँ दौड़ गये और उसके मूक बालकको सत्यमुनिके पास ले आये। तदनन्तर मुनिराजने उससे कहा:—"हे वत्स! तुम अपने पूर्वजन्मका सारा वृत्तान्त इन लोगोंको कह सुनाओ! इस संसारमें न जाने कितनी बार पुत्र पिता और पिता पुत्र होता है। इसलिये ज्ञानी लोग इसे विचित्र कहते हैं। इसमें कोई लज्जा या संकोच करनेकी जरूरत नहीं है। तुम अपना मौन भंगकर सब लोगोंको अपना पूरा वृत्तान्त कह सुनाओ! इससे तुम्हारा कल्याण ही होगा।"

सत्यमुनिके मुखसे अपना यह हाल सुनकर उस बालकको बड़ाही आनन्द हुआ और उसने प्रसन्नतापूर्वक अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त सब लोगोंको कह सुनाया। उसका जन्मवृत्तान्त और संसारकी विचित्रता देखकर अनेक श्रोताओंको वैराग्य आ गया, फलतः उन्होंने भी

उसी समय दीक्षा ले ली। उस किसानको भी इन सब बातोंसे प्रतिबोध हो गया। परन्तु वह दोनों ब्राह्मण इससे अत्यन्त लज्जित हुए और अपनी हँसी सुनते हुए उस समय तो चुपचाप अपने घर चल गये।

परन्तु सत्यमुनिके इस कार्यमें उन दोनोंको अपना अपमान दिखायी दिया, इसलिये उन दोनोंने उनसे बदला लेना स्थिर किया। इस निश्चयके अनुसार रात पड़ते ही वे दोनों तलवार लेकर उस उद्यानमें मुनिराजको मारनेके लिये जा पहुँचे। परन्तु मुनिराजको मारनेके पहले ही सुमन यक्षने उन दोनोंको स्तम्भित बना दिया। इससे उनकी चलने फिरने या कुछ करनेकी शक्ति नष्ट हो गयी और वे जहाँके तहाँ खड़े रह गये। अपनी यह अवस्था देखकर वे दोनों रोने-कलपने लगे। रात तो किसी तरह बीत गयी। सवेरा होते ही उनके माता पिता और नगर-निवासी उनके आस पास आकर इकट्ठे हो गये और उनकी इस दुरवस्थाका कारण पूछने लगे, परन्तु वे उनको कोई उत्तर न दे सके।

अग्निभूति और वायुभूतिको निरुत्तर देखकर, उसी

समय सुमन यक्ष प्रकट हुआ और उसने लोगोंसे कहा कि :—"यह दोनों दुर्मति, मुनिराजको मारने आये थे, इसलिये मैंने इन्हें स्तम्भित कर दिया है। अब यदि यह दोनों दीक्षा ग्रहण करें, तो मैं इन्हें मुक्त कर सकता हूँ, अन्यथा नहीं।"

उन दोनोंने जब देखा कि दीक्षा लेनेके सिवा और कोई गति नहीं है, तब उन्होंने कहा :—"हे यक्ष! साधु धर्म अत्यन्त कठिन है, इसलिये हमलोग श्रावकधर्म ग्रहण करेंगे।"

उनका यह वचन सुनकर यक्षने उन दोनोंको मुक्त कर दिया। उस समयसे वे दोनों यथाविधि जैन धर्मका पालन करने लगे, परन्तु उनके मातापिता तो सर्वथा उससे वञ्चित ही रह गये। कुछ दिनोंके बाद अग्निभूति और वायुभूतिकी मृत्यु हो गयी और वे सौधर्म देवलोकमें छः पल्योपम आयुवाले देवता हुए। वहाँसे च्युत होने पर गजपुरमें वे अर्हद्दास सेठके यहाँ पुत्र रूपमें उत्पन्न हुए और उनके नाम पूर्णभद्र तथा माणिभद्र रक्खे गये। पूर्व संचित पुण्यके कारण इस जन्ममें भी वे दोनों श्रावक ही हुए।

एकदिन उस नगरमें महेन्द्र मुनिका आगमन हुआ। उनका धर्मोपदेश सुनकर अर्हत्‌दास श्रेष्ठीने उनके निकट दीक्षा ले ली। उसी समय पूर्णभद्र और माणिभद्र भी उनको वन्दन करनेके लिये घरसे निकले। रास्तेमें उन्हें एक चाण्डाल मिला, जो अपना कुतियाको भी साथ लिये हुए था। उनको देखकर उन दोनोंके हृदयमें बड़ा ही प्रेम उत्पन्न हुआ, फलतः उन्होंने मुनिराजके पास आकर, उन्हें प्रणाम कर पूछा कि :—"हे भगवन्! वह चाण्डाल और उसकी वह कुतिया कौन थी? उन्हें देखकर हमारे हृदयमें इतना प्रेम क्यों उत्पन्न हुआ?"

मुनिराजने कहा :—"अग्निभूति और वायुभूतिके जन्ममें सोमदेव तुम्हारा पिता और अग्निला तुम्हारी माता थी। तुम्हारे पिताकी मृत्यु होने पर वह इसी भरतक्षेत्रके शंखपुरका जितशत्रु नामक राजा हुआ, जो परस्त्रीमें अत्यन्त आसक्त रहता था। अग्निलाकी मृत्यु होनेपर वह भी उसी नगरमें सोमभूति ब्राह्मणकी रुक्मिणी नामक स्त्री हुई। एक बार जितशत्रुकी दृष्टि रुक्मिणी पर जा पड़ी। उसे देखते ही वह उसपर आसक्त हो

गया। उसने सोमभूतिके शिर मिथ्या दोषारोपण कर रुक्मिणीको अपने अन्तःपुरमें बन्द कर दिया। सोमभूति उसके वियोगसे अत्यन्त व्याकुल हो गया और जीवित अवस्थामें ही मृत मनुष्यकी भाँति किसी तरह अपने दिन बिताने लगा। राजा जितशत्रुने हजार वर्षतक रुक्मिणीके साथ आनन्द-भोग किया। इसके बाद उसकी मृत्यु हो गयी और वह नरकमें तीन पल्योपमकी आयुवाला नारकी हुआ। वहाँसे च्युत होनेपर वह एक मृग हुआ किन्तु शिकारियोंने उसे मार डाला। वहाँसे वह एक श्रेष्ठीका पुत्र हुआ और वहाँसे मृत्यु होने पर वही फिर एक हाथी हुआ। दैवयोगसे इस जन्ममें उसे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ, जिससे अनशनकर अठारहवें दिन उसने वह शरीर त्याग दिया। इसके बाद वह तीन पल्योपमकी आयुष्यवाला वैमानिक देव हुआ। वहाँसे च्युत होनेपर वही अब यह चाण्डाल हुआ है और वह रुक्मिणी अनेक जन्मोंके बाद कुतिया हुई है। इसी पूर्व सम्बन्धके कारण उनको देखकर तुम्हारे हृदयमें प्रेम उत्पन्न हुआ है।"

मुनिराजके मुखसे यह वृत्तान्त सुनकर पूर्णभद्र और माणिभद्रको जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ और उन्होंने उस चाण्डाल तथा कुतियाको धर्मोपदेश दिया। उसे सुनकर उस चाण्डालको वैराग्य उत्पन्न हो गया और वह एक मासके अनशन द्वारा शरीर त्यागकर नन्दीश्वर द्वीपमें एक देव हुआ। धर्मोपदेश सुननेके कारण उस कुतियाको भी ज्ञान उत्पन्न हुआ और वह भी अनशन द्वारा शरीर त्यागकर उसी शंखपुरमें सुदर्शना नामक राजकुमारी हुई।

कुछ दिनोंके बाद फिर वहाँ महेन्द्र मुनिका आगमन हुआ। पूर्णभद्र और माणिभद्रके पूछने पर उस समय भी मुनिराजने उनके गतिका सारा हाल उनको कह सुनाया। इसी समय राजकुमारी सुदर्शनाने मुनिराजका धर्मोपदेश सुन, उनके निकट दीक्षा ले ली, जिससे यथा समय उसे देवलोककी प्राप्ति हुई। उधर पूर्णभद्र और माणिभद्र आजीवन श्रावक धर्मका पालन करते रहे। अन्तमें मृत्यु होने पर वे दोनों सौधर्म देवलोकमें सामानिक देव हुए। वहाँसे च्युत होनेपर वे दोनों

हस्तिनापुरमें विष्वकसेन राजाके मधु और कैटभ नामक पुत्र हुए।

यथा समय नन्दीश्वर द्वीपका वह देव भी च्यवन होकर अनेक जन्मोंके बाद अन्तमें पटपुरका कनकप्रभ नामक राजा हुआ। उधर सुदर्शना स्वर्गसे च्युत होकर अनेक जन्मोंके बाद राजा कनकप्रभकी चन्द्राभा नामक पटरानी हुई।

उधर हस्तिनापुरमें राजा विष्वकसेनने मधुको अपना राज्य और कैटभको युवराज पद देकर स्वयं दीक्षा ले ली, जिसके फलस्वरूप वह ब्रह्मदेवलोकका अधिकारी हुआ।

तदनन्तर मधु और कैटभ दोनों अपने राज्यका प्रबन्ध बड़ी उत्तमतासे करने लगे, परन्तु भीम नामक एक पल्लीपति उनकी अधीनता स्वीकार न करता था और वह उन्हें हमेशाँ तंग किया करता था। इसलिये मधुने उसे दण्ड देनेके लिये एक बड़ी सेनाके साथ हस्तिनापुरसे प्रस्थान किया। मार्गमें उसे वटपुर मिला। वहाँ राजा कनकप्रभने भोजनादिक द्वारा उसका बड़ा सत्कार किया, जिससे मधुको भी अत्यन्त आनन्द हुआ।

भोजनादिसे निवृत्त होने पर कनकप्रभने मधुको अपने महलमें बुलाकर उसे एक सिंहासन पर बैठाया। इसके बाद अपनी स्वामी भक्ति दिखानेके लिये वह अपनी पत्नीके साथ तरह तरहकी भेटें लेकर उसकी सेवामें उपस्थित हुआ। चन्द्राभा तो भेटकी चीजें उसके चरणोंके पास रख, उसे वन्दन कर अन्तःपुरमें वापस चली गयी, किन्तु कनकप्रभ उसके चरणोंके पास बैठकर अपने योग्य कार्य सेवा पूछने लगा। मधु चन्द्राभाको देखकर उसपर आसक्त हो गया था, इसलिये उसने कनकप्रभसे उसकी याचना की। कनकप्रभ उसके इस अनुचित प्रस्तावसे भला कब सहमत हो सकता था? उसने नम्रता-पूर्वक इन्कार कर दिया। इसपर मधु उसे बल-पूर्वक अपने साथ ले जानेको तैयार हुआ, किन्तु उसके मन्त्रीने उसे समझाया कि इस समय हमलोग रण-यात्रा कर रहे हैं, इसलिये इस समय उसे साथ लेना अच्छा न होगा। इससे उस विचारको छोड़ कर वह वहाँसे आगे बढ़ा और शीघ्र ही पल्लीपति भीमके प्रदेशमें जा पहुँचा।

पल्लीपतिको पराजित कर कुछ दिनोंके बाद मधु उसी रास्तेसे वापस लौटा। अभिमानी तो वह था ही, इस बार विजयके कारण वह और भी अधिक उन्मत्त हो रहा था। कनकप्रभने पूर्ववत् इस बार भी उसका स्वागत सत्कार कर उसकी सेवामें बहुमूल्य भेंट उपस्थित की, किन्तु मधुने कहा :—"मुझे तुम्हारी यह भेंट न चाहिये। मुझे चन्द्राभा दे दो, वही मेरे लिये सर्वोत्तम भेंट है।"

कनकप्रभने इसवार भी नम्रतापूर्वक इन्कार किया, किन्तु मधुने उसकी एक न सुनी। वह चन्द्राभाको बल-पूर्वक रथमें बैठा कर अपने नगरकी ओर चलता बना। कनकप्रभमें इतनी शक्ति न थी, कि वह उसके इस कार्यका पूरी तरह विरोध कर सके। वह अपनी प्रियतमाके वियोगसे मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा। कुछ समयके बाद जब उसकी मूर्च्छा दूर हुई, तब वह उच्च स्वरसे विलाप करने लगा। उसके लिये वास्तवमें यह दुःख असह्य था। वह इसी दुःखके कारण पागल होगया और चारों ओर भटक कर अपने दिन बिताने लगा।

उधर मधुराजा चन्द्राभाको अपने अन्तःपुरमें रख, उसके साथ आनन्द करने लगा। एक दिन उसकी राजसभामें एक पर स्त्री हरणका मामला पेश हुआ। मधुने अपने मन्त्रियोंके साथ उसका निर्णय करनेकी बड़ी चेष्टा की, किन्तु वह मामला इतना उलझनदार था, कि उस दिन उसका अन्त न आ सका। निदान, उसे अधूरा ही छोड़ कर, वह राजसभासे चन्द्राभाके पास चला आया। उसे विलम्बसे आया देखकर चन्द्राभाने पूछा :—"आज इतनी देर क्यों हुई ?"

मधुने कहा :—"आज मैं एक स्त्री हरणका मामला निपटा रहा था। उसीमें देर हो गयी।"

चन्द्राभाने हँस कर कहा :—"क्या आप उस अत्याचारीको दण्ड देंगे ? ऐसे पुरुष तो आपके लिये परम पूज्य होने चाहिये।"

मधुने कहा :—"क्यों ? ऐसी बात किसलिये कहती हो ? मैं तो परायी स्त्री भगानेवालेको कभी भी दण्ड दिये बिना नहीं रहता।"

चन्द्राभाने कहा :—"यदि यही बात होती, तो

आप अपनेको भी कोई दण्ड अवश्य देते। क्या आप पर-स्त्री-वंचक नहीं हैं ?"

यह सुनकर मधुको ज्ञान उत्पन्न हुआ और वह लज्जित हो गया। इसी समय गाता, नाचता और पागलोंकी सी चेष्टा करता हुआ कनकप्रभ भी उधरसे आ निकला। उसे बालकोंका एक दल चारों ओरसे घेर कर तंग कर रहा था। उसकी यह—दशा, देखकर चन्द्राभाको बड़ा ही दुःख हुआ। वह अपने मनमें कहने लगी :—"मेरे ही वियोगसे पतिदेवकी यह दुर्दशा हो गयी है। यह आज दुःखितावस्थामें दर दर भटक रहे हैं और मैं राजमहलमें बैठी हुई हूँ! धिक्कार है, मेरे इस जीवन और ऐश्वर्यको!"

कनकप्रभ महलके समीप आया तब मधुको भी उसकी अवस्था दिखायी दी। उसे देखकर मधुको अत्यन्त पश्चाताप हुआ और वह वारंवार अपनी निन्दा करने लगा। अन्तमें इसी घटनाको सोचते हुए उसे वैराग्य आ गया और उसने अपने धुन्धु नामक पुत्रको राज्यभार सौंप, अपने भाई कैटभके साथ विमल वाहन

गुरुके निकट दीक्षा ले ली। तदनन्तर हजारों वर्ष तक उग्र तप कर, द्वादशाङ्गीको धारण करते तथा साधुओंकी वैयावच्च साधते हुए अन्तमें अनशन कर उन दोनोंने आलोचना-पूर्वक शरीर त्याग दिये और महाशुक्र देवलोकमें सामानिक देव हुए।

उधर क्षुधा और तृषाके कारण तीन हजार वर्षोंके बाद राजा कनकप्रभकी भी मृत्यु हो गयी और वह ज्योतिषी देवोंमें धूमकेतु नामक देव हुआ।

धूमकेतुको अवधिज्ञानसे यह बात मालूम हो गयी, कि पूर्वजन्ममें मधुके साथ उसका विकट वैर था। इसलिये उसने मधुका पता लगाया, किन्तु वह महर्द्धिक होनेके कारण, उसे उसका पता न मालूम हो सका। तदनन्तर धूमकेतु वहाँसे च्युत होकर, मनुष्यत्व प्राप्त कर तापस हुआ। वहाँ बाल तप करनेके बाद उसकी मृत्यु हो गयी और वह वैमानिक देव हुआ। इस अवस्थामें भी वह महर्द्धिक मधुको देखनेमें समर्थ न हो सका। कुछ दिनोंके बाद वहाँसे च्युत होकर अनेक जन्मोंके बाद वह कर्म-वशात् फिर ज्योतिषी देवोंमें धूमकेतु नामक देव हुआ।

इसी समय मधुका जीव महाशुक्र देवलोकसे च्युत होकर कृष्णकी पटरानी रुक्मिणीके उदरसे पुत्र रूपमें उत्पन्न हुआ। अब धूमकेतुको अपना बदला लेनेका मौका मिला, इसलिये वह उस बालकको जन्मते ही हरण कर ले गया। उस दुष्टने उसे मार डालनेके लिये टंक शिला पर रख दिया था; परन्तु पूर्व संचित पुण्यके कारण उसका बाल भी बाँका न हुआ। वहाँसे उसे कालसंवर उठा ले गया है। अब वह सोलह वर्षके बाद रुक्मिणीको प्राप्त होगा।"

सीमन्धर स्वामीके यह वचन सुनकर नारदने पुनः पूछा :—"हे भगवन्! इसप्रकार रुक्मिणीको पुत्र वियोग किस कारणसे हुआ है?"

भगवानने कहा :—"इसी भरतक्षेत्रके मगध देशमें लक्ष्मीग्राम नामक एक ग्राम है। वहाँपर एक समय सोमदेव नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्रीका नाम लक्ष्मीवती था। वह एकबार किसी उद्यानमें गयी। वहाँपर मयूरके एक अण्डेको देखकर उसके हृदयमें कुतूहल उत्पन्न हुआ और उसने कुंकुमसे रंगे हुए हाथोंसे उसे

स्पर्श कर लिया। इस स्पर्शके कारण उसके वर्ण और गन्धमें अन्तर आ गया और उसकी माताने यह समझ कर कि यह मेरा अण्डा नहीं है, सोलह घड़ी तक उसे स्पर्श भी न किया। इसके बाद अचानक वृष्टि होनेपर जब वह धुलकर अपने मूल रुपमें आ गया, तब उसकी माताने उसे पहचान कर अपने पास रक्खा।

यथा समय उस अण्डेसे मयूर उत्पन्न हुआ। इसी समय वह लक्ष्मीवती फिर एकदिन उस उद्यानमें आयी और उस मयूरकी रमणीयता देखकर उसपर मुग्ध हो गयी। वह मयूरकी माताको रोती हुई छोड़, उस मयूरको अपने घर पकड़ ले गयी। वहाँ उसे एक सुन्दर पीजड़ेमें बन्द कर वह उसे नानाप्रकारके पदार्थ खिलाने लगी। धीरे धीरे उसने उस मयूरको ऐसा बढ़िया नाच सिखाया, कि उसे जो देखता, वही उसपर मुग्ध हो जाता।

दूसरी ओर उसकी माता मयूरी किसी तरह भी उसे न भूल सकी। पुत्र स्नेहके कारण वह रात दिन करुण पुकार करती हुई उस मकानके चारों ओर चक्कर

काटा करती। उसकी यह अवस्था देखकर आसपासके लोगोंको उसपर दया आ गयी और वे लक्ष्मीवतीसे कहने लगे कि तुम्हारे लिये तो यह मयूर मनोरञ्जनकी एक सामग्री बन गया है, परन्तु इसकी माता इसके वियोगसे मरी जा रही है। यदि तुम इसे छोड़ दोगी तो उसके प्राण बच जायँगे, वर्ना वह इसी तरह किसी दिन मर जायगी।"

लोगोंकी इन बातोंसे उसे भी उस मयूरी पर दया आ गयी और उसने उस सोलह मासके मयूरको बन्धन-मुक्त कर दिया। इसी प्रमादके कारण लक्ष्मीवतीने ऐसा कर्म सञ्चित किया, जिसके फल स्वरूप उसे सोलह वर्ष तक पुत्र-वियोग सहनके लिये बाध्य होना पड़ा।

इसके बाद एकदिन लक्ष्मीवती दर्पणमें अपना रूप और शृंगार देख रही थी। इसी समय समाधिगुप्त नामक एक साधु उसके यहाँ भिक्षा लेने पधारे। लक्ष्मीवतीका पति उन्हें भिक्षा देनेके लिये उससे कह ही रहा था, कि इतनेमें किसीने उसे पुकारा, जिससे वह बाहर चला गया। पीछेसे लक्ष्मीने उस साधुको देखा, किन्तु

भिक्षा देनेके बदले, दुर्वचन कह कर उसने उसे बाहर निकाल दिया और मकानका दरवाजा बन्द कर लिया।

इस निन्दित कर्मके कारण सातवें दिन उसके शरीर-में गलित कुष्ट हो गया। उसकी वेदनासे दुःखित हो वह अग्निमें जल मरी और उसी ग्राममें धोबीके यहाँ एक गधीके रूपमें उत्पन्न हुई। वहाँसे मृत्यु होने पर वह एक शूकरी और शूकरीके बाद एक कुतिया हुई। एक-दिन दावाग्निमें फँस जानेके कारण उसका शिर अध जला हो गया और उसकी वेदनाके कारण अन्तमें उसकी मृत्यु हो गयी।

इसके बाद भृगुकच्छ नगरमें नर्मदाके तटपर वह एक धीवरके यहाँ पुत्री रूपमें उत्पन्न हुई और उसका नाम 'काना' रक्खा गया। परन्तु दुर्गन्धा और दुर्भगा होनेके कारण उसके मातापिता उसे नर्मदाके तटपर छोड़ आये। किसी तरह जब वह बड़ी और समझदार हुई, तब मुसा-फिरोंको नावमें बैठा बैठा कर नदी पार कराने लगी। और उसीसे अपना जीवन-निर्वाह करने लगी।

एकबार शीतकालमें कड़ाकेका जाड़ा पड़ रहा था।

दैवयोगसे उसी समय वही समाधिगुप्त मुनि वहाँ आ पहुँचे, जिन्हें लक्ष्मीवतीने दुर्वचन कह कर घरसे निकाल दिया था। रात्रिके समय पर्वतकी भाँति निष्कम्प अवस्थामें वे वहीं कायोत्सर्ग करने लगे। वह धीवर कन्या काना उन्हें देखकर सोचने लगी कि यह महात्मा सारी रात दुःसह शीत किस प्रकार सहन करेंगे? इस विचारसे उसका हृदय आर्द्र हो उठा और उसने मुनि-राजको तृणसे ढक दिया।

सुबह मुनिराज जब उस तृणसे बाहर निकले, तब वह काना भक्तिपूर्वक उनके चरणों पर गिर पड़ी। मुनिने भी भद्रक जानकर, उसे धर्मोपदेश दिया। उपदेश सुनने पर कानाको ऐसा प्रतीत हुआ, मानो पहले भी इन मुनिको मैंने कहीं देखा है। बहुत देरतक उसने इस बातपर विचार किया, किन्तु जब कोई बात उसे याद न आयी, तब उसने मुनिराजसे प्रश्न किया कि :— "महाराज! मैंने कभी न कभी आपको देखा है।" इसपर मुनिने उसके समस्त पूर्वजन्मोंका वृत्तान्त उसे कह सुनाया। अन्तमें उन्होंने कहा :—"हे भद्रे!

साधुकी निन्दा करनेके कारण तू इस जन्ममें दुर्गन्धा हुई है ; क्योंकि इस संसारमें सब कुछ कर्मानुसार ही होता है। तुझे अब उस कर्मको क्षय करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।"

मुनिराजकी सारी बातें सुनकर कानाको जाति-स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। उसे साधु-निन्दाकी भी वह सब बातें स्पष्ट दिखायी देने लगीं, जो उसने पूर्वजन्ममें की थीं। उसने वारंवार आत्मनिन्दा कर मुनिराजसे अपने अपराधके लिये क्षमाप्रार्थना की। उस समयसे वह श्राविका बन गयी और मुनिराजने उसपर दया कर उसे धर्मश्री नामक आर्याके सिपुर्द कर दिया। तदनन्तर साध्वीके साथ विचरण करती हुई वह सुखसे अपना जीवन व्यतीत करने लगी।

बहुत दिनों तक अपने साथ रखनेके बाद धर्मश्रीने उसे नायल नामक एक श्रावकके सिपुर्द किया। वहाँ एकान्तर उपवास और जिनपूजा करते हुए उसने बारह वर्ष सानन्द व्यतीत किये। अन्तमें अनशन द्वारा शरीर त्याग कर, वह अच्युतेन्द्रकी पचपन पल्योपम आयुवाली

प्रधान इन्द्राणी हुई। वहाँसे च्युत होकर वह कृष्णकी रुक्मिणी नामक पटरानी हुई है। पूर्वजन्ममें मयूरीसे उसके बच्चेका विरह कराया था, इसलिये उसे भी सोलह वर्ष तक पुत्रका विरह सहन करना होगा।"

सीमन्धर स्वामीके मुखसे यह वृत्तान्त सुनकर नारद-मुनि आकाश मार्ग द्वारा वैताढ्य पर्वतके मेघतट नामक नगरमें गये। वहाँपर कालसंवरने उनका आदर सत्कार कर, उन्हें अपने यहाँ पुत्र जन्म होनेका संवाद सुनाया। साथ ही उसने प्रद्युम्नकुमारको भी मुनिराजके पास लाकर उनके चरणोंपर रक्खा। रुक्मिणीसे मिलती जुलती उस बालककी मुखाकृति देखकर नारदको विश्वास हो गया, कि यही कृष्णका पुत्र प्रद्युम्नकुमार है। इसके बाद कालसंवरसे विदा ग्रहण कर वे द्वारिका लौट आये और कृष्णको प्रद्युम्नके सम्बन्धकी सारी बातें कह सुनायी। तत्पश्चात् रुक्मिणी को भी लक्ष्मीवतीसे लेकर अब तकके समस्त जन्मोंका वृत्तान्त कह सुनाया। रुक्मिणीको वह वृत्तान्त सुनकर सीमन्धर स्वामीके प्रति गाढ़ श्रद्धा उत्पन्न हुई और उसने वहींसे हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक

उन्हें प्रणाम किया। सोलह वर्षके बाद वह अपने पुत्रको पुनः देख सकेगी—इस आर्हत वचनसे उसके व्यथित हृदयको बड़ी सान्त्वना मिली और वह अपने दिन शान्तिपूर्वक व्यतीत करने लगी।

चौदहवाँ परिच्छेद

पाण्डव-जन्म और द्रौपदी-स्वयंवर

प्राचीन कालमें श्रीऋषभ स्वामीके कुरु नामक एक पुत्र था, जिसके नाम परसे भारतके एक प्रदेशका नाम कुरुक्षेत्र पड़ा है। कुरुराजके हस्ती नामक एक पुत्र था, जिसके नामसे हस्तिनापुर नगर विख्यात हुआ। उसीके वंशमें आगे चलकर अनन्तवीर्य नामक राजा हुआ, जिससे कृतवीर्य और कृतवीर्यसे सुभूम नामक चक्रवर्ती राजा हुआ। सुभूमके बहुत दिन बाद उसी वंशमें शान्तनु नामक एक राजा हुए, जिनके गंगा और

सत्यवती नामक दो रानियाँ थीं। गंगाके गांगेय नामक एक पुत्र हुआ और सत्यवतीके चित्राङ्गद तथा चित्रवीर्य नामक दो पुत्र हुए। चित्रवीर्यके अम्बिका, अम्बालिका और आम्बा नामक तीन स्त्रियाँ थी। उन तीनोंके तीन पुत्र हुए, जो धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुरके नामसे विख्यात हुए।

धृतराष्ट्र बड़े थे, इसलिये वे गद्दीपर नशीन हुए और पाण्डु शिकारके शौकीन निकले। धृतराष्ट्रने गान्धार देशके राजा सबलकी गान्धारी आदि आठ कन्याओंसे विवाह किया। गान्धारी आदिके शकुनी नामक एक भाई भी था, जो प्रायः हस्तिनापुरमें ही रहता था और अपने प्रपञ्ची स्वभावके कारण बहुत विख्यात था। धृतराष्ट्रके इन आठ पत्नियोंसे दुर्योधन प्रभृति सौ पुत्र उत्पन्न हुए, जो आगे चलकर कौरव नामसे प्रसिद्ध हुए।

पाण्डुकी एक पत्नीका नाम कुन्ती था। उससे युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए। दूसरी पत्नीका नाम माद्री था, जो राजा शल्यकी बहिन

थी। उससे नकुल और सहदेव नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। यह पाँचों भाई पाण्डव कहलाते थे। यह पाँचों सिंहके समान शूरवीर, युद्धमें विद्याधरोंको भी नीचा दिखानेवाले और विद्या तथा बाहुबलमें बहुत बढ़े चढ़े थे। वे अपने बड़े भाइयोंका आदर करते हुए सदा न्याय और नीतिके मार्ग ही पर चलते थे, जिससे प्रजा उन्हें प्राणसे भी अधिक चाहती थी।

एकदिन काम्पिल्य नगरसे राजा द्रुपदका एक दूत हस्तिनापुर आया और उसने राजा पाण्डुको प्रणामकर कहा :—"हे राजन्! यह तो आप जानते ही होंगे कि राजा द्रुपदके धृष्टद्युम्न नामक एक पुत्र और द्रौपदी नामक एक कन्या है। इस समय उस कन्याके स्वयंवरका आयोजन किया गया है। उसमें भाग लेनेके लिये दस-दशार्ह, बलराम, कृष्ण, दमदन्त, शिशुपाल, रुक्मि, कर्ण, दुर्योधन तथा और भी अनेक बलवान राजा एवम् राजकुमार निमन्त्रित किये गये हैं। इनमेंसे अनेक तो पहले ही वहाँ पहुँच गये हैं और जो अभी नहीं पहुँचे हैं, उनके शीघ्रही आ जानेकी आशा है। हमारे महाराजने

आपसे अनुरोध किया है, कि आप भी अपने देवकुमार समान पाँच पुत्रोंको लेकर हमारी नगरीमें अवश्य पधारें और स्वयंवरमें भाग लेकर हमें कृतकृत्य करें।"

दूतके यह वचन सुनकर राजा पाण्डु परम प्रसन्न हुए। पँचबाणों द्वारा सुशोभित कामदेवकी भाँति वे अपने पाँच पुत्रोंको साथ लेकर तुरन्त काम्पिल्यपुर जा पहुँचे। उसी समय और भी राजे वहाँ पधारे थे। राजा द्रुपदने उन सबोंका समुचित सत्कार कर, उन्हें यथायोग्य वासस्थान प्रदान किये।

धीरे धीरे स्वयंवरका दिन भी आ पहुँचा। उस दिन समस्त राजे और राजकुमार वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत हो सभामण्डपमें जा विराजे। यथा समय द्रौपदीने भी दिव्यवस्त्रालङ्कार धारण कर, अरिहन्त भगवानकी पूजा कर देवकन्याकी भाँति स्वयंवरमण्डपमें पदार्पण किया। उसके साथ अनेक सखियाँ भी थीं। प्रधान सखीने उसे मण्डपमें घुमा घुमा कर समस्त राजाओंका परिचय दिया, किन्तु द्रौपदीने किसीको भी पसन्द न किया। अन्तमें वह वहाँ पहुँची जहाँ पञ्च पाण्डव बैठे हुए थे,

उन्हें देखकर वह प्रेमपूर्वक क्षण भरके लिये वहाँ रुक गयी और इसके बाद उसने उन पाँचोंके कण्ठमें एक साथ ही वरमाला पहना दी।

उसका यह कार्य देखकर दर्शक लोग स्तम्भित हो गये और आपसमें कानाफूसी करने लगे, कि क्या द्रौपदी पाँचों भाइयोंको अपना पति बनायेगी? इसी समय एक चारण मुनि वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देख, कृष्णादि राजाओंने उनसे पूछा :—"हे मुनिराज! क्या यह द्रौपदी पाँचों भाइयोंको अपना पति बना सकती है?"

मुनिराजने कहा :—"हाँ, अवश्य ऐसा होगा, क्योंकि कर्मकी गति बड़ी विषम है और इस संसारमें जो कुछ होता है, वह पूर्वोपार्जित कर्मके ही कारण होता है। आप लोगोंका आश्चर्य निवारण करनेके लिये मैं द्रौपदीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त वर्णन करता हूँ, आपलोग ध्यानसे सुनें।"

इस भरतक्षेत्रमें चम्पापुरी नामक एक नगरी है। उसमें एक समय सोमदेव, सोमभूति और सोमदत्त

नामक तीन ब्राह्मण-बन्धु रहते थे। उनकी स्त्रियोंके नाम क्रमशः नागश्री, भूतश्री और यक्षश्री थे। उनमें परस्पर बड़ा प्रेम था और वे धन-धान्यसे सम्पन्न तथा सब बातोंसे सुखी थे। उन लोगोंने एकबार सलाह की कि—आपसमें प्रेम बढ़ानेके लिये सब लोग पारी पारीसे एक दूसरेके यहाँ भोजन किया करें।' इस व्यवस्थानुसार एक दूसरेके यहाँ वे भोजन किया करते थे। एकदिन सोम-देवके यहाँ भोजन करनेकी पारी थी। इसलिये नागश्रीने बड़े प्रेमके साथ सबको भोजन करानेके लिये नाना प्रकारकी चीजें तैयार की। इनमें लौकीकी तरकारी भी थी। नागश्रीने बड़ी विधिके साथ उसे बनाया था, परन्तु उसे यह न मालूम था, कि यह लौकी कड़वी है। तरकारी बनानेके बाद उसने उसे चक्खा, तो वह विषके समान कड़वी मालूम हुई। इससे उसे बड़ा दुःख हुआ और उसने उसे छिपाकर अलग रख दिया। उसके सिवा अन्यान्य समस्त पदार्थ उसने अपने देवर तथा पति आदिको खिलाकर उन्हें सन्तुष्ट किया।

उसीदिन दैवयोगसे उस नगरके सुभूमि-भाग नामक

उद्यानमें ज्ञानवान् धर्मघोष सूरिका आगमन हुआ। सोमदेवादिके चले जाने पर उनका धर्मरुचि नामक शिष्य सोमश्रीके घर आया। उसे पारणके लिये आहार की जरूरत थी। इसलिये नागश्रीने वह कड़वी तरकारी उसीको दे दी। उसे देखकर धर्मरुचिको परम सन्तोष हुआ और उसने समझा कि भिक्षामें आज मुझे अपूर्व पदार्थ मिला है। उसने प्रसन्नतापूर्वक गुरुदेवके पास जाकर उनको वह तरकारी दिखायी। गुरुदेवने उसकी गन्धसे ही उसका दोष जानकर कहा :—"हे वत्स! यदि तू इसे भक्षण करेगा, तो तेरी मृत्यु हो जायगी। इसे तुरन्त फेंक दे और कोई दूसरा आहार लाकर यत्न-पूर्वक पारण कर।"

गुरुदेवका यह वचन सुनकर धर्मरुचि वह तरकारी फेंकनेके लिये उद्यानसे कुछ दूर जंगलमें गया। वहाँ उसने तरकारीका एक कण जमीन पर गिरा दिया। थोड़ी देरमें उसने देखा कि उसमें लगनेवाली समस्त चिउंटियाँ मरी जा रही हैं। यह देखकर उसने अपने मनमें कहा :—"यदि इसके एक कणसे इतने जीव मरे

जा रहे हैं, तो यह सब तरकारी फेंक देनेसे इसके पीछे न जाने कितने जीवोंकी हत्या होगी। इससे तो यही अच्छा है, कि मैं अकेला ही इसे खाकर मर जाऊँ! ऐसा करने पर अन्य जीवोंके लिये कोई खतरा न रहेगा।"

इसप्रकार निश्चयकर धर्मरुचिने स्वस्थचित्तसे प्रसन्नता-पूर्वक वह शाक खा डाला। इसके बाद सम्यक् प्रकारसे आराधना कर, समाधिपूर्वक उन्होंने प्राण त्याग दिये। अपने पुण्य-प्रभावके कारण मृत्युके बाद सर्वार्थ सिद्धके अनुत्तर विमानमें वे अहमिन्द्र नामक देव हुए।

इधर धर्मरुचिको वापस आनेमें जब बड़ी देर हुई, तब धर्मघोष सूरिको उनके लिये चिन्ता हुई और उन्होंने अन्यान्य साधुओंको उनका पता लगानेके लिये भेजा। वे पता लगाते हुए शीघ्र ही उस स्थानमें जा पहुँचे, जहाँ धर्मरुचिका मृत शरीर पड़ा हुआ था। वे उनके रजोहरणादिक लेकर गुरुदेवके पास लौट आये और उनको सारा हाल कह सुनाया। गुरुदेवने अतिशय ज्ञान द्वारा नागश्रीका दुश्चरित्र जानकर सब बातें अपने साधुओंको कह सुनायीं। साधु और साध्वियोंको

इससे बड़ा क्रोध आया और उन्होंने नगरमें जाकर सोमदेव तथा अन्यान्य लोगोंसे यह हाल कह सुनाया। इससे चारों ओर नागश्रीकी घोर निन्दा होने लगी। सोमदेव आदिको भी उस पर बड़ा क्रोध आया और उन्होंने उसे घरसे निकाल दिया। इससे नागश्री बहुत दुःखित हो दर दर भटकने लगी। शारीरिक और मानसिक यातनाके कारण उसे खाँसी, दमाँ, बुखार और कुष्ट आदिक भयंकर सोलह रोगोंने आ घेरा और वह इसी जन्ममें घोर नरक भोग करने लगी। कुछ दिनोंके बाद भोजन और वस्त्र रहित अवस्थामें भटकते भटकते उसकी मृत्यु हो गयी और वह छठें नरककी अधिकारिणी हुई।

नरकमें दीर्घकाल तक घोर यातना सहन करनेके बाद उसने म्लेच्छोंके यहाँ जन्म ग्रहण किया और मृत्यु होने पर वहाँसे सातवें नरकमें गयी। वहाँसे निकलकर वह फिर म्लेच्छोंके यहाँ उत्पन्न हुई और वहाँसे फिर सातवें नरकमें गयी। वहाँसे निकलकर वह मत्स्योंके यहाँ उत्पन्न हुई और वहाँसे सातवें नरकमें गयी। वहाँसे

निकल कर वह फिर मत्स्योंके यहाँ उत्पन्न हुई और वहाँसे फिर उसी नरकमें गयी। इस प्रकार प्रत्येक नरक उसे दो दो बार भोग करना पड़ा।

इसके बाद अनेक बार पृथ्वीकायादिमें उत्पन्न होकर उसने अकाम निर्जराके योगसे अपने अनेक दुष्कर्मोंको क्षय किया। उसके बाद वह इसी चम्पा-पुरीमें सागरदत्त श्रेष्ठीकी सुभद्रा नामक स्त्रीके उदरसे पुत्री रूपमें उत्पन्न हुई, जहाँ उसका नाम सुकुमारीका पड़ा। वहीं जिनदत्त नामक एक महा धनवान सार्थ-वाह रहता था, जिसकी स्त्रीका नाम भद्रा था। भद्राने सागर नामक एक पुत्रको जन्म दिया था, जो रूप और गुणमें अपना सानी न रखता था।

एकदिन जिनदत्त श्रेष्ठी सागरदत्तके मकानके पास होकर अपने घर जा रहा था। अचानक उसकी दृष्टि सुकुमारीका पर जा पड़ी, जो मकानके ऊपरी हिस्सेमें गेंद खेल रही थी। वह रूपवती तो थी ही, यौवनने उसकी शारीरिक शोभा मानो सौगुनी बढ़ा दी थी। जिनदत्त उसे देखकर अपने मनमें कहने लगा कि यह

कन्या मेरे पुत्रके योग्य है। वह इसी विषय पर विचार करता हुआ अपने घर जा पहुँचा। तदनन्तर वह अपने भाईको साथ लेकर सागरदत्तके पास गया और उससे अपने पुत्रके लिये सुकुमारीका की याचना की। इसपर सागरदत्तने कहा :—"यह पुत्री मुझे प्राणसे भी अधिक प्यारी है, इसलिये इसके बिना मेरे लिये जीवन-धारण करना भी कठिन हो जायगा। यदि आपका पुत्र सागर मेरा घरजमाई होकर रहना स्वीकार करे तो मैं उसके साथ सुकुमारीका का ब्याह कर दूँगा।"

यह सुनकर जिनदत्तने कहा :—अच्छा, मैं इस विषय पर विचार करूँगा। यह कह कर वह अपने घर चला आया। घर आकर उसने अपने पुत्र सागरसे इसका जिक्र किया, किन्तु उसने इसका कोई उत्तर न दिया। इसलिये जिनदत्तने "मौनं सम्मति लक्षणम्" मानकर सागरदत्तकी माँग स्वीकार कर ली। उसने सागरदत्तको कहला भेजा कि यदि आप अपनी पुत्रीका विवाह मेरे पुत्रसे कर देंगे, तो मैं उसे आपके यहाँ घरजमाई होकर रहनेकी आज्ञा दे दूँगा।

यह बात तय हो जाने पर सागरदत्तने सुकुमारीका के साथ सागरका व्याह कर दिया। व्याहके बाद सोहागरात मनानेके लिये वे दोनों एक सुन्दर कमरेमें भेजे गये। वहाँ सागरने ज्योंहीं अपनी नव विवाहिता पत्नीसे स्पर्श किया, त्योंही उसके पूर्व कर्मके कारण सागरके अंग-प्रत्यङ्गमें ऐसी ज्वाला उत्पन्न हुई, कि उसके लिये वहाँ ठहरना कठिन होगया, परन्तु किसी तरह कुछ देर तक वह वहाँ रुका रहा और ज्योंही सुकुमारीकाको निद्रा आयी, त्योंहीं वह वहाँसे भाग खड़ा हुआ।

कुछ देर बाद जब सुकुमारीकाकी निद्रा भंग हुई, तब उसने वहाँ पतिदेवको न पाया। इससे वह दुःखित होकर विलाप करने लगी। सुबह सुभद्राने एक दासी द्वारा उन दोनोंके लिये दन्तधावनकी सामग्री भेजी। सुकुमारीका उस समय भी रो रही थी और उसके पतिका कहीं पता न था। उसने तुरन्त सुभद्रासे जाकर यह हाल कहा। सुभद्राने सागरदत्तसे कहा और सागरदत्तने जिनदत्तको उलाहना दिया। इससे जिनदत्तने अपने पुत्रको एकान्तमें बुलाकर कहा:—"हे पुत्र!

तुमने प्रथम रात्रिमें ही सागरदत्तकी कन्याका त्याग कर वहुत ही अनुचित कार्य किया है। खैर, अभी कुछ बिगड़ा नहीं है। तुम इसी समय उसके पास जाओ और उसे सान्त्वना देकर शान्त करो। तुम उसके निकट रहनेके लिये वाध्य हो, क्योंकि मैंने अनेक सज्जनोंके सामने इसके लिये प्रतिज्ञा की है।"

सागरने हाथ जोड़ कर कहा :—"पिताजी! इसके लिये मुझे क्षमा करिये। मैं आपकी आज्ञासे अग्निमें प्रवेश कर सकता हूँ, परन्तु सुकुमारीकाके पास जाना मुझे स्वीकार नहीं है।"

सागरदत्त भी दीवालकी ओटसे अपने जमाईकी यह बातें सुन रहा था, इसलिये वह निराश होकर अपने घर चला गया। उसने सुकुमारीकासे कह दिया कि सागर तुझसे विरक्त है, इसलिये अब उसकी आशा रखनी व्यर्थ है। तू खेद मत कर! मैं शीघ्र ही तेरे लिये अब दूसरा पति खोज दूँगा।"

सागरदत्तने इस प्रकारके वचनों द्वारा अपनी पुत्रीको तो सान्त्वना दी, किन्तु इस घटनासे उसका चित्त रात-

दिन दुःखी रहने लगा। एक दिन वह इस दुःखसे उदास हो अपने मकानके गवाक्षपर बैठा हुआ था, इतनेमें एक भिक्षुक पर उसकी दृष्टि जा पड़ी। मलीनताके कारण उसके शरीर पर सैकड़ों मक्खियाँ भिन भिना रही थीं। सागदत्तको उसपर दया आ गयी इसलिये उन्होंने उसे अपने पास बुलाकर स्नान तथा भोजन करा कर उसके शरीर पर चन्दनका लेप किया। इससे भिक्षुकको बड़ाही आनन्द हुआ और वह सुखसे जीवन विताने लगा।

एकदिन सागरदत्तने उससे कहा :—"हे वत्स! मैं अपनी सुकुमारीका नामक कन्या तुम्हें प्रदान करता हूँ। तुम उसे पत्नी रूपमें ग्रहण कर आनन्द-पूर्वक उसके साथ रहो। तुम्हें अपने भोजन-वस्त्रकी चिन्ता न करनी होगी। तुम दोनोंका सारा खर्च मैं ही चलाऊँगा।"

सागरदत्तकी यह वात सुनकर वह भिक्षुक आनन्द पूर्वक सुकुमारीकाके साथ उसके कमरे में गया, किन्तु उसको स्पर्श करते ही, उसके शरीरमें भी ऐसा दाह उत्पन्न हो गया, मानो वह आगमें जल गया हो।

इस यातनासे व्याकुल हो, वह भी उस ऐश्वर्यको ठुकरा कर वहाँसे भाग खड़ा हुआ। इस घटनासे सुकुमारीका और भी दुःखित हो गयी। उसके पिताने यह सब समाचार सुना तो उन्होंने कहा :—"हे वत्से! यह तेरे पूर्व कर्मोंका उदय है, और कुछ नहीं। तू अब धैर्य धारण कर और दानादिक सत्कर्ममें अपना समय बिताया कर!"

पिताके इस आदेशानुसार सुकुमारीका धर्म-ध्यानमें तत्पर हो, अपना समय व्यतीत करने लगी। एकदिन उसके यहाँ गोपालिका आदि साध्वियोंका आगमन हुआ। सुकुमारीकाने शुद्ध अन्नपानादिक द्वारा उनका सत्कारकर धर्मोपदेश सुना और ज्ञान उत्पन्न होने पर उन्हींके निकट दीक्षा ले ली। इसके बाद वह छठ और अट्ठम आदि तप करती हुई गोपालिका प्रभृति साध्विओंके साथ विचरण करने लगी।

एकबार सुभूमिभाग उद्यानमें रविमण्डलको देख कर उसने साध्वियोंसे कहा :—"मेरी इच्छा होती है, कि मैं यहाँ आतापना लूँ।" साध्वियोंने इसका

विरोध करते हुए कहा :—"हे वत्से ! आगममें कहा गया है, कि साध्वियोंको बस्तीके बाहर आतापना लेनी उचित नहीं है।" परन्तु सुकुमारीका इन बातोंको सुनी अनसुनी कर सुभूमिभाग उद्यानमें चली गयी और सूर्यकी ओर दृष्टिकर आतापना करने लगी।

इस उद्यानमें पाँच आदमी पहलेहीसे देवदत्ता नामक एक वेश्याको साथ लेकर क्रीड़ा करने आये थे। वे सब उद्यानके एक भागमें बैठे हुए थे। एक आदमी उस वेश्याको अपनी गोदमें लिये बैठा था, दूसरा छत्र धारण कर उसके शिर पर छाया कर रहा था, तीसरा एक वस्त्रसे उसे हवा कर रहा था, चौथा उसके केश सँवार रहा था और पाँचवाँ उसके चरणोंपर हाथ फेर रहा था। आतापना करते करते सुकुमारीकाकी दृष्टि उस वेश्या पर जा पड़ी। उसकी भोग-अभिलाष पूर्ण न हुई थी, इसलिये उसे देखते ही उसका चित्त चञ्चल हो उठा। उसने मन-ही-मन कामना की कि इस तपके प्रभावसे इस रमणीकी भाँति मुझे भी पाँच पति प्राप्त

हों ! इसके बाद वह अपने शरीरको साफ़ रखनेमें बहुत तत्पर रहने लगी। यदि आर्याएँ इसके लिये उसे मना करतीं, तो वह उनसे झगड़ा कर बैठती।

कुछ दिन तक उसकी यही अवस्था रही। अन्तमें वह अपने मनमें कहने लगी, कि पहले जब मैं गृहस्थ थी, तब यह आर्याएँ मेरा बड़ाही सम्मान करती थीं। इस समय मैं भिक्षाचारिणी और इनके वेशमें हो गयी हूँ, इसलिये इनके जीमें जो आता है वही कहकर यह मेरी अवज्ञा किया करती हैं। मैं अब इनके साथ कदापि न रहूँगी।"

इस प्रकार विचार कर वह उनसे अलग हो गयी और अकेली रहने लगी। इसी अवस्थामें उसने चिरकाल तक दीक्षाका पालन किया। अन्तमें आठ महीनेकी संलेखना कर, अपने पापोंकी आलोचना किये बिनाही उसने वह शरीर त्याग दिया। इस मृत्युके बाद सौधर्म देवलोकमें देवी हुई और उसे नव पल्योपमकी आयु प्राप्त हुई। वहाँसे च्युत होकर वही अब द्रौपदी हुई है। पूर्वजन्मकी आन्तरिक भावनाके कारण इस जन्ममें

इसे पाँच पति प्राप्त हो रहे हैं, इसलिये इसमें किसीको आश्चर्य न करना चाहिये।

मुनिराजके मुखसे यह वृत्तान्त सुनकर कृष्णादिक समस्त राजाओंको सन्तोष हो गया और वे द्रौपदीके इस कार्यकी प्रशंसा करने लगे। इसके बाद पाण्डवोंने स्वयंवरमें पधारे हुए समस्त राजाओंके सामने ही बड़े समारोहके साथ द्रौपदीसे विवाह किया। वहाँसे राजा पाण्डु, दशार्ह, राम-कृष्ण तथा अन्यान्य राजाओंको उनका स्वागत-सम्मान करनेके लिये अपने नगर लिवा ले गये। पाण्डुओंकी शादीके उपलक्षमें वहाँ भी बहुत दिनोंतक धूम मची रही। यह महोत्सव समाप्त होनेपर दशार्ह, राम-कृष्ण तथा अन्यान्य राजाओंने अपने अपने नगर जानेकी इच्छा प्रकट की, इसलिये पाण्डुने उन्हें सम्मान-पूर्वक विदा किया।

इसके बाद राजा पाण्डु युधिष्ठिरको अपना राज्य देकर परलोक सिधार गये। उनके बाद माद्रीने भी अपने दोनों पुत्रोंको कुन्तीके सिपुर्द कर अपनी इहलोक लीला समाप्त की। पाण्डुकी मृत्युके बाद धृतराष्ट्रके

लड़के पाण्डवोंको हीन दृष्टिसे देखने लगे; क्योंकि वे सब परम अभिमानी, राज्य-लोलुप और प्रपञ्ची थे। दुर्योधनने पाण्डवोंके वृद्ध मन्त्री और पुरोहितादिकको विनय आदिसे वशीभूत कर पाण्डवोंको जूआ खेलने लिये प्रेरित किया और जुएँके दावमें उनका समस्त राज्य तथा द्रौपदीको भी जीत लिया।

युधिष्ठिर आदिके चार भाइयोंने तो यह विषका घूंट पी लिया; किन्तु भीमसेनकी आँखे इस अपमानके कारण क्रोधसे लाल हो गयीं। उनको तेवर बदलते देख कौरव भयभीत हुए और उन्होंने द्रौपदीको वापस दे दिया। इसके बाद कौरवों द्वारा अपमानित पाँचों पाण्डवोंने वनवास स्वीकार किया। वे दीर्घकाल तक एक वनसे दूसरे वनमें भटकते रहे। अन्तमें दशार्हकी छोटी बहिन कुन्ती उन्हें द्वारिका लिवा ले गयी।

तदनन्तर पाण्डव वहाँ सबसे पहले समुद्रविजयके घर गये। वहाँपर समुद्रविजय तथा आक्षोभ्यादिक दशार्हौंने अपनी बहिन तथा भानजोंका बड़ा सत्कार किया। उन्होंने कहा :—"कौरवोंने आप लोगोंको

जीता छोड़ दिया और आपलोग सकुशल यहाँ तक आ पहुँचे—यही परम सौभाग्यकी बात है।"

कुन्तीने विनयपूर्वक इसका उत्तर देते हुए कहा :—"हे बन्धुओ! मैं तो मर ही चुकी थीं, किन्तु आप लोगोंपर मुझे जो आशा भरोसा है, उसीके कारण मैं अपने पुत्रोंके साथ अबतक जीवित रह सकी हूँ। मैं समय समय पर तुम्हारे और राम-कृष्णके अद्भुत बल-विक्रमकी बातें सुना करती थी। उन्हींके कारण मैं उनको देखनेके लिये लालायित हो उठी थी और उसीसे मार्गकी इतनी कठिनाइयाँ सहकर मैं अपने पुत्रोंके साथ यहाँ आयी हूँ।"

इसके बाद कुन्ती अपने पुत्रोंके साथ कृष्णसे मिलनेके लिये उनके राजमन्दिरमें गयीं। वहाँ बलराम और कृष्णने भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम कर उनका बड़ा आदर सत्कार किया। पाण्डवोंको भी उन्होंने गले लगा कर समुचित आसन पर बैठाया। तदनन्तर कृष्णने नम्रतापूर्वक कुन्तीसे कहा :—"आप यहाँ चलीं आयीं, सो बहुत ही अच्छा किया। यादवोंकी समस्त श्री

और सम्पत्ति आप अपनी ही समझिये। हमसे भेद भाव रखनेकी कोई आवश्यकता नहीं।"

कृष्णके यह वचन सुनकर युधिष्ठिरने कहा :—"हे कृष्ण! जिस पर तुम्हारी दया हो, उसे संसारमें किसी बातकी कमी नहीं रह सकती। आपके जन्मसे मेरा मातृ-कुल धन्य हो गया है। निःसन्देह, आप हमारे लिये एक अभिमानकी वस्तु हैं। आपके कारण हमलोग संसारमें अपनेको सबसे अधिक बलवान मानते हैं।"

इस प्रकारकी बातें करते हुए कृष्णने कुन्ती और उनके पुत्रोंको सम्मान-पूर्वक पृथक् पृथक् प्रासादमें ठहराया। इसके बाद दशार्हौंने लक्ष्मीवती, वेगवती, सुभद्रा, विजया और रति नामक अपनी पाँच कन्याओं-का विवाह पाँचो पाण्डवोंके साथ कर दिया। पाण्डवों-को इस सुख और सम्मानसे अत्यन्त आनन्द हुआ और वे अपना दुःख भूल कर आनन्द-पूर्वक वहाँ निवास करने लगे।

उधर प्रद्युम्न कुमारने समस्त विद्या और कलाओंमें

पारदर्शिता प्राप्त कर धीरे धीरे यौवनकी सीमामें पदार्पण किया। उस समय उसका शरीर विकसित पुष्पकी भाँति श्रीसम्पन्न बन गया। काल-संवरकी स्त्री कनकमालाने यद्यपि पुत्रकी भाँति उसका लालन-पालन किया था, किन्तु एक दिन उसके शरीरकी अपूर्व शोभा देखकर वह उसपर मुग्ध हो गयी और अपने मनमें कहने लगी—"मुझे तो कोई विद्याधर भी ऐसा रूपवान नहीं दिखायी देता। देवताओंमें भी कोई ऐसा रूपवान होगा या नहीं, इसमें सन्देह है। यह मेरा ही पाला हुआ वृक्ष है, इसलिये इसके यौवनका फल भी पहले मैं ही भोग करूँगी। ऐसा करनेमें कोई दोष भी नहीं है।"

इस प्रकार विचार कर एकदिन उसने प्रद्युम्नसे कहा :—"हे युवक शिरोमणि! यहीं उत्तर श्रेणीमें नलपुर नामक एक नगर है। वहाँपर गौरीवंशका निषध नामक राजा राज्य करता है। मैं उसकी पुत्री हूँ। मेरे नैषधि नामक एक भाई भी है। मेरे पिताने बाल्यावस्थामें ही मुझे गौरी नामक एक विद्या दी थी। इसके बाद कालसंवरने विवाह करनेके पहले मुझे प्रज्ञप्ति

नामक विद्या दी थी। इन दो विद्याओंके कारण मुझमें असीम शक्ति है और उसके कारण मैं किसीकी परवाह नहीं करती। हे प्रद्युम्न! तुम्हारा यह सुन्दर स्वरूप देखकर मैं तुम पर आशिक हो गयी हूँ। मेरी इच्छा है कि तुम मुझसे विवाह कर लो! हे सुभग! मेरी धारणा है कि इस कार्यके लिये तुम्हें कभी भी पछताना न पड़ेगा!"

कनकमालाका यह प्रस्ताव सुनकर प्रद्युम्नको मानो काठ मार गया। उसने कहा :—"अहो! तुम क्या कह रही हो? क्या तुम यह नहीं जानती हो, कि मैं तुम्हारा पुत्र और तुम मेरी माता हो! यह कार्य हम दोनोंके लिये परम निन्दनीय और त्याज्य है!"

कनकमालाने कहा :—"हे सुन्दर! तुम मेरे पुत्र नहीं हो! किसीने जन्मते ही तुमको त्याग दिया था। अग्निज्वालपुरसे यहाँ आते समय मार्गमें कालसंवरने तुम्हें देखा था और वह तुम्हें यहाँ उठा लाया था। उस समय हमारे एक भी पुत्र न था, इसलिये हमने तुमको अपना पुत्र बना लिया था। इसीलिये मैं कहती

हूँ कि मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लेनेमें कोई दोष नहीं है।"

प्रद्युम्नने कहा :—"हे भद्रे! संभव है कि तुम्हारी यह बातें सच हों, परन्तु तुम्हारा प्रस्ताव स्वीकार कर लेनेसे कालसंवर और तुम्हारे पुत्र मुझे कदापि जीता न छोड़ेंगे!"

कनकमालाने कहा :—"हे सुभग! उनसे डरनेका कोई कारण नहीं है। तुम मेरे पाससे गौरी और प्रज्ञप्ति—इन दो महाविद्याओं को ग्रहण कर लो। फिर किसकी सामर्थ्य है जो तुम्हारे शरीरको हाथ लगा सके। यह विद्याएँ सिद्ध करनेवाला किसीसे हार नहीं सकता।"

प्रद्युम्नने सोचा कि इन विद्याओंको हाथ करनेका मौका खोना ठीक नहीं। विद्या ग्रहण करनेके बाद भी यदि मैं इसकी बात न मानूं तो यह मेरा क्या बिगाड़ सकती है? यह सोच कर उसने कहा :—"अच्छा, पहले मुझे यह दोनों विद्याएँ दे दो, फिर मैं तुम्हारी बातपर विचार करूँगा!"

कनकमाला उस समय कामान्ध हो रही थी, इस-लिये उसकी विचार शक्ति नष्ट हो गयी थी। उसने प्रद्युम्नको उसी समय अपनी दोनों विद्याएँ दे दीं। प्रद्युम्नके पुण्ययोगसे वह उसे तुरन्त सिद्ध भी हो गयीं। विद्याएँ सिद्ध हो जाने पर कनकमालाने पुनः प्रद्युम्नके सामने वही बातें कहनी आरम्भ की। इसपर प्रद्युम्नने कुछ सोच कर कहा :—"हे अनघे! तुमने मुझे पाल पोसकर बड़ा किया है, इसलिये पहले तो तुम केवल मेरी माता ही थीं, किन्तु अब तुमने मुझे यह विद्याएँ दी हैं, इसलिये तुम मेरी गुरुणी बन भी गयी हो। इसी कारणसे मैं तुम्हारे इस पापकार्यमें योग देनेको तैयार नहीं हूँ!"

प्रद्युम्नके इस उत्तरसे कनकमालाके ऊपर मानो घड़ों पानी पड़ गया। प्रद्युम्न जानते थे कि वह अब कोई अनर्थ किये बिना न रहेगी, इसलिये वे उसी समय नगरके बाहर निकल कर एक बावलीके किनारे जा बैठे और खिन्नता-पूर्वक इस घटना पर विचार करने लगे।

उधर कनकमालाने अपने ही नखोंसे अपना शरीर नोच-खसोट कर क्षत-विक्षत बना लिया, कपड़े फाड़

डाले और केश खोल दिये। इसके बाद उसने भयंकर कोलाहल मचाया। उसका वह कोलाहल सुनते ही उसके पुत्र दौड़ आये और मातासे इस दुर्दशाका कारण पूछने लगे। इसपर कनकमालाने रोषपूर्वक अश्रुधारा बहाते हुए कहा :—"दुरात्मा प्रद्युम्नकुमार आज मुझ पर बलात्कार करना चाहता था। उसी नीचने मुझे नोच खसोट कर मेरी यह अवस्था कर डाली है।"

कनकमालाका यह वचन सुनते ही उसके समस्त पुत्र प्रद्युम्नको खोजते हुए, नगरके बाहर उस बावली पर जा पहुँचे, जहाँ वह बैठा था। उसे देखते ही वे उस पर टूट पड़े और उस पर प्रहार करनेकी चेष्टा करने लगे। परन्तु प्रद्युम्न तो विद्याओंके बलसे बलवान हो रहा था, इसलिये अकेला होने पर भी वह भयभीत न हुआ। केसरी जिस प्रकार मृगोंको मार डालता है, उसी प्रकार प्रद्युम्नने कालसंवरके उन पुत्रोंको क्षणमात्रमें मार डाला।

कालसंवरने जब यह समाचार सुना, तब वह क्रोधके कारण आपेसे बाहर हो गया और उसी समय प्रद्युम्नको मारनेके लिये वहाँ जा पहुँचा। उसने भी वहाँ जाते ही

प्रद्युम्न पर वार किया, परन्तु अपनी विद्याओंके बलसे उसने उसे भी पराजित कर दिया। अपनी इस पराजयसे काल संवर बहुत उदास हो गया और शिर पकड़ कर वहीं बैठ गया। तदनन्तर उसने प्रद्युम्नसे कहा :—"मैं न जानता था कि मेरे उपकारोंका बदला तुम इस तरह चुकाओगे! अज्ञात कुलशीलवाले व्यक्तियोंको इसीलिये आश्रय देना बुरा माना गया है। वे सर्पकी भाँति अनेकबार अपने पालनेवालोंका ही सर्वनाश करने पर तुल जाते हैं!"

प्रद्युम्नकुमारने अब तक कनकमालाकी घृणित कहानी किसी पर प्रकट न की थी। परन्तु अपनेको कलंक लगता देख, उन्होंने अब कालसंवरको सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उसे सुनकर कालसंवरको अपने कार्यके लिये बड़ा पश्चाताप हुआ और उसने प्रद्युम्नको प्रेम-पूर्वक गले लगा लिया।

इसी समय वहाँ नारदमुनि आ पहुँचे। प्रद्युम्नने प्रज्ञप्ति विद्यासे उन्हें पहचान कर उनका पूजन किया और उन्हें भी कनकमालाका वृत्तान्त कह सुनाया। उसे सुननेके बाद नारदमुनिने भी सीमन्धर स्वामीने बतलाया हुआ

प्रद्युम्न और रुक्मिणीका सब हाल प्रद्युम्नको कह सुनाया। साथ ही उन्होंने कहा :—"तुम्हारी माता और सत्यभामामें यह बाजी लग चुकी है, कि यदि पहले सत्यभामाके पुत्रका पाणिग्रहण होगा तो उसमें रुक्मिणी अपने केश देगी और रुक्मिणीके पुत्रका पहले पाणिग्रहण होगा, तो सत्यभामा अपने केश देगी। इस समय सत्यभामाके भानुक पुत्रका विवाह हो रहा है। तुम्हारी माताको उसमें अवश्य अपने केश देने पड़ेगे। तुम्हारे जीवित रहते उसे इस प्रकार अपमानित होना पड़े यह ठीक नहीं। इससे वह अपना प्राण तक दे देगी। मैं समझता हूँ कि तुम्हें वहाँ चलकर शीघ्र ही इस दुर्घटनाको रोकना चाहिये। कृष्णादिक भी तुम्हारे दर्शनके लिये लालायित हो रहे हैं।"

नारदकी यह बातें सुनकर प्रद्युम्नके मनमें भी माता-पिताका प्रेम उमड़ आया। उन्होंने उसी समय प्रज्ञप्ति विद्या द्वारा एक विमान बनाया और उसीमें बैठकर नारदमुनिके साथ कुछ ही देरमें वे द्वारिकापुरीके निकट पहुँच गये। जब द्वारिकापुरी दिखायी दी, तब

नारदने हर्षपूर्वक कहा :—"हे प्रद्युम्न कुमार! यही तुम्हारे पिताकी द्वारिका नगरी है, जिसे स्वयं कुबेरने बनाकर धनधान्य-सम्पन्न किया है।"

प्रद्युम्नकुमारने प्रसन्न हो कर कहा :—"हे मुनि-राज! यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो, कुछ देर इसी विमानमें आप ठहरिये, मैं तब तक द्वारिकामें जाकर अपना कुछ चमत्कार दिखला आऊँ!"

नारदने इसमें कोई आपत्ति न की, इसलिये प्रद्युम्न कुमार विमानसे उतर पड़े और पैदल ही नगरकी शोभा देखते हुए आगे बढ़े। कुछ दूर जाने पर उन्होंने देखा कि चारों ओर भानुकके विवाह की तैयारी हो रही है। यह देखकर वे सबसे पहले उस कन्याको हरण कर नारदके पास छोड़ आये, जिसके साथ भानुकका विवाह होने वाला था। वह बेचारी प्रद्युम्न और नारदको देखकर बहुत भयभीत हुई, किन्तु नारदने उसे सान्त्वना देकर प्रद्युम्नका परिचय दिया, जिससे उसका भय दूर हो गया।

इसके बाद प्रद्युम्न, बन्दर नचानेवालेका वेश धारण

कर अपने बन्दरोंके साथ वनपालकके पास गये और उससे उन बन्दरोंके लिये फल माँगने लगे। इसपर वन-पालकने कहाः—"इस उद्यानमें फलोंकी कमी नहीं है, परन्तु यह सब फल भानुकके विवाहके लिये सुरक्षित रक्खे गये हैं, इसलिये इनमेंसे एक भी फल मैं नहीं दे सकता।"

उसका यह उत्तर सुन, प्रद्युम्नने उसे विपुल धन देकर अपने बन्दरोंके साथ उद्यानमें प्रवेश किया और देखते ही देखते समस्त वृक्षोंको फल रहित बना दिया।

इसके बाद वे घोड़ेके सौदागरका रूप बना कर घासके बाजारमें गये और वहाँ अपने घोड़ोंके लिये अत्यधिक परिमाणमें घास खरीदनेकी इच्छा प्रकट की। घासके व्यापारियोंने भी उसे भानुकके निमित्त सुरक्षित बतलाकर देनेसे इन्कार कर दिया। इसपर प्रद्युम्नने उन्हें भी धनका प्रलोभन दे, सब घास ले ली और उसे अपनी विद्याके बलसे इस प्रकार नष्ट कर दी कि कहीं उसका नाम निशान भी न बचने पाया।

इसके बाद उन्होंने जलाशयोंकी ओर ध्यान दिया

और विद्याके बलसे एक स्थान पर बैठे ही बैठे इस प्रकार जल सोख लिया, कि कूप, बावली और तालाव आदि जहाँ कहीं मीठा जल था, वहाँ कीचड़के सिवा पानीका नामतक न रह गया।

इसके बाद प्रद्युम्न, अपनी मायासे एक उत्तम अश्व बनाकर, उसे मैदानमें नचाने लगे। उस अश्वको देख कर भानुक उसपर मुग्ध हो गया। उसने प्रद्युम्नसे पूछा :—"क्यों सौदागर! यह तुम्हारा ही अश्व है?" प्रद्युम्नने कहा :—"हाँ", इसपर भानुकने कहा :— "यह अश्व तुम मुझे दे दो, मैं इसका मुँह माँगा मूल्य देनेको तैयार हूँ।" प्रद्युम्नने कहा :—"अच्छा, मूल्यकी बात पीछे होगी, पहले आप परीक्षा करके इसे देख लीजिये, यदि आपको यह पसन्द होगा, तो मैं सहर्ष दे दूँगा।"

प्रद्युम्नकी यह बात सुन भानुकने ज्योंही उसपर सवारी की, त्योंही उसने इतनी उछल कूद, मचायी, कि भानुक जमीन पर आ गिरा। उसके सब कपड़े खराब हो गये और आँख, नाक तथा मुख आदिकमें भी बेतरह

धूल भर गयी। भानुकने किसी तरह खड़े हो, आँखे मलकर देखा, तो वहाँ न उस अश्वका ही पता था न प्रद्युम्नका ही। वह लज्जित हो, अपना शिर धुनाता हुआ अपने वासस्थानको चला गया।

इसके बाद प्रद्युम्नने एक विदूषकका रूप धारण किया और एक भैंड़े पर सवार हो, नगर निवासियोंको हँसाते हुए वे वसुदेवकी राजसभामें पहुँचे। उनका विचित्र वेश देखकर वहाँ जितने मनुष्य थे, वे सब ठठाकर हँस पड़े। प्रद्युम्नने अपने विविध कार्योंद्वारा उन लोगोंको और भी हँसाया। जब सब लोग हँसते हँसते थक गये, तब प्रद्युम्नने अपना वह रूप पलटकर एक वेदपाठी ब्राह्मणका वेश धारण कर लिया।

इसी वेशमें प्रद्युम्न बहुत देर तक नगरमें विचरण करते रहे। अन्तमें सत्यभामाकी एक कुब्जा दासीसे उनकी भेंट हो गयी। उन्होंने अपनी विद्याके बलसे उसका कुबड़ापन दूर कर दिया। इससे कुब्जाको बड़ा ही आनन्द हुआ और वह भक्तिपूर्वक उनके चरणोंपर गिर कर कहने लगी :—

"हे भगवन्! आप कौन हैं और कहाँ जा रहे हैं?"

प्रद्युम्नने कहा :—"मैं वेदपाठी ब्राह्मण हूं और भोजनके लिये बाहर निकला हूँ। मुझे जहाँ इच्छानुसार भोजन मिलेगा, वहींपर अब मैं जाऊँगा।"

कुब्जाने कहा :—"यदि ऐसीही बात है, तो हे महाराज! आप मेरे साथ मेरी स्वामिनी सत्यभामाके घर चलिये। वहाँ राजकुमार भानुकका विवाह होनेवाला है, इसलिये विविध प्रकारके मोदकादिक तैयार किये गये हैं। उनमेंसे कुछ पक्वान्न खिलाकर मैं आपको सन्तुष्ट करूँगी।"

दासीकी यह बात सुनकर प्रद्युम्न उसके साथ सत्यभामाके घर गये। वहाँ उन्हें बाहर बैठाकर वह दासी अन्दर गयी, सत्यभामाको उसे पहचाननेमें भ्रम हो गया। उसने पूछा :-"तू कौन है?" दासीने कहा :-"हे स्वामिनी! मैं आपकी वही कुब्जा दासी हूं, जो नित्य आपके पास रहती हूँ। क्या आप मुझे नहीं पहचान सकीं?"

सत्यभामाने कहा :—"क्या तू वही कुब्जा है? तेरा वह कूबड़ कहाँ चला गया? सचमुच, आज तुझे कोई न पहचान सकेगा।"

यह सुनकर कुब्जा हँस पड़ी और उसने सत्यभामा-

को उस ब्राह्मणका सब हाल कह सुनाया। सत्यभामा भी उस ब्राह्मणको देखनेके लिये लालायित हो उठी। उसने पूछा :—"वह ब्राह्मण कहाँ है?

कुब्जाने कहा :—"वह महलके बाहर बैठा हुआ है।"

सत्यभामाने कहा :—"जा तू, उस महात्माको शीघ्र ही मेरे पास ले आ!"

कुब्जा तुरन्त बाहर गयी और उस मायावी ब्राह्मणको अन्दर ले आयी। वह आशीर्वाद देकर एक आसन पर बैठ गया। तदनन्तर सत्यभामाने उससे कहा :—"हे ब्रह्मदेवता! आपने इस कुब्जाका कूबड़ अच्छा कर अपनी असीम शक्ति-सामर्थ्यका परिचय दिया है। अब आप मुझ पर भी दया करिये और मुझे रुक्मिणीकी अपेक्षा अधिक सुन्दर बना दीजिये। आपके लिये यह जरा भी कठिन नहीं है। हे भगवन्! आपकी इस कृपाके लिये मैं चिरऋणी रहूँगी।"

मायाविप्रने कहा :—"तुम्हें क्या हुआ है? मुझे तो तुम परम रूपवती दिखायी देती हो। मैंने तो अन्य स्त्रियोंमें ऐसा रूप कहीं नहीं देखा!"

सत्यभामाने कहा :—"हे भद्र ! आपका कहना यथार्थ है। मैं अन्य स्त्रियोंको देखते हुए अवश्य रूपवती हूँ, परन्तु अब मैं ऐसा रूप चाहती हूँ, जो अलौकिक और अनुपम हो, जिसके सामने किसीका भी रूप ठहर न सके।"

मायाविप्रने कहा :—"यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो पहले अपने समूचे शरीरको कुरूप बना डालो। कुरूप होने पर विशेष रूपसे सुन्दर बनाया जा सकता है।"

सत्यभामाने कहा :—"हे भगवन् ! शरीरको कुरूप बनानेके लिये मुझे क्या करना चाहिये।"

मायाविप्रने कहा :—"पहले तुम अपना शिर मुंड़वा डालो, फिर समूचे शरीरमें कालिख लगाकर फटे पुराने कपड़े पहन लो। इससे तुम कुरूप दिखायी देने लगोगी। ऐसा रूप धारण कर जब तुम मेरे सामने आओगी, तब मैं तुरन्त तुम्हें रूप लावण्य और सौभाग्यकी आगार बना दूँगा।"

सत्यभामाने स्वार्थवश ऐसा ही किया। इसके बाद वह जब मायाविप्रके पास गयी, तब उसने कहा :—

"मैं तो इस समय भूखों मर रहा हूँ! भूखके कारण मेरा चित्त ठिकाने नहीं है। पहले मुझे पेट भर खानेको दो, तब मैं दूसरा काम करूँगा।"

यह सुनकर सत्यभामाने रसोईदारिनोंको उसे भोजन करानेकी आज्ञा दी। इसपर ब्राह्मण देवता भोजन करने चले, किन्तु चलते समय उन्होंने सत्यभामाके कानमें कहा:—"हे अनघे! जब तक मैं भोजन करके न लौटूं, तब तक तुम कुलदेवीके सामने बैठ कर "रुडु बुडु रुडु बुडु स्वाहा" इस मन्त्रका जप करो।" सत्यभामाने ब्राह्मणदेवताकी यह आज्ञा भी चुपचाप सुन ली और मन्त्र-जप करना भी आरम्भ किया।

उधर ब्राह्मणदेवता भोजन करने गये और अपनी विद्याके बलसे वहाँ भोजनकी जितनी सामग्री थी, वह सब चट कर गये। उनका यह हाल देखकर बेचारी रसोईदारिनें घबड़ा गयीं। वे डरने लगीं, कि सत्यभामा यह हाल सुनेगी, तो न जाने क्या कहेंगी? अन्तमें जब वहाँ जलके सिवा भोजनकी कोई भी सामग्री शेष न बची, तब लाचार होकर उन्हें मायाविप्रसे कहना पड़ा,

कि भोजन-सामग्री समाप्त हो गयी है, इसलिये महाराज अब दया करिये! महाराज तो यह सुनकर चिढ़ उठे। उन्होंने कहा :-"यदि भरपेट खिलानेकी सामर्थ्य न थी, तो व्यर्थ ही मुझे यहाँपर क्यों बुलाया? मेरा पेट अभी नहीं भरा। अब मुझे कहीं अन्यत्र जाकर अपनी उदर-पूर्ति करनी पड़ेगी।"

इस प्रकार रोष दिखाकर वह ब्राह्मणवेश धारी प्रद्युम्न वहाँसे चलते बने और इधर बेचारी सत्यभामा सौन्दर्य प्राप्त करनेकी आशा में अपने रूपको विरूप बना, उस मन्त्रका जप करती ही रह गयी।

सत्यभामाके महलसे निकल, प्रद्युम्न एक बाल-साधुका वेश धारण कर, उसी वेशमें रुक्मिणीके महलमें पहुँचे। नेत्रोंको आनन्द देनेवाला उनका चन्द्र समान रुप देखकर रुक्मिणी उठकर खड़ी हो गयीं और उनको आसन देनेके लिये अन्दर गयीं। इतनेहीमें वे वहाँ रक्खे हुए कृष्णके सिंहासन पर बैठ गये। आसन लेकर बाहर आनेपर रुक्मिणीने देखा, कि साधु महाराज कृष्णके आसन पर बैठे हुए हैं, तब उनके नेत्र आश्चर्यसे विकसित

हो गये। उन्होंने नम्रतापूर्वक कहा :—"महाराज! मुझे एक बात कहनेके लिये क्षमा कीजियेगा। मैं ने सुना है कि इस सिंहासन पर श्रीकृष्ण या उनके पुत्रके सिवा यदि कोई और बैठेगा, तो देवतागण उसे सहन न करेंगे और उसका अनिष्ट होगा।'

माया साधुने मुस्कुरा कर कहा :—"माता! आप चिन्ता न करें। मेरे तपके प्रभावसे देवता मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते।"

उसका यह उत्तर सुनकर रुक्मिणी शान्त हो गयीं। थोड़ी देर बाद उन्होंने पूछा :—"महाराज! यहाँ आपका आगमन किस उद्देश्यसे हुआ है? मेरे योग्य जो कार्यसेवा हो, वह निःसंकोच होकर कहिये।"

माया साधुने कहा :-हे भद्रे! मैं सोलह वर्षसे निराहार तप कर रहा हूँ। यहाँ तक, कि मैं ने माताका दूध भी नहीं पिया। आज मैं पारण करनेके लिये यहाँ आया हूँ। आप मुझे जो कुछ दे सकती हों, सहर्ष दें।"

रुक्मिणीने कहा :—"हे मुने! आज तक मैं ने

सोलहवर्षका तप कहीं भी नहीं सुना। हाँ, उपवाससे लेकर एक वर्षका तप अवश्य सुना है।"

माया साधुने कुछ रुष्ट होकर कहा :—"आपको इन सब बातों पर विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। यदि आपके घरमें कुछ हो और आप मुझ देना चाहती हों तो दे दें, अन्यथा मैं सत्यभामाके यहाँ चला जाऊँगा।"

रुक्मिणीने कहा :—"नहीं महाराज, आप नाराज न होइये। असल बात तो यह है कि आज मैंने चिन्ताके कारण कुछ भी भोजन नहीं बनाया है। इसलिये ऐसी अवस्थामें आपको मैं क्या दूँ?"

माया साधुने गंभीरता पूर्वक पूछा :—"आज आपको इतनी चिन्ता क्यों है?"

रुक्मिणीने कहा :—"महाराज! मुझे एक पुत्र हुआ था पर उसका वियोग हो गया है। अबतक मैं उसके मिलनकी आशामें कुल देवीकी आराधना कर रही थी। आज मैंने कुल देवीके समक्ष अपने शिरका बलिदान चढ़ाना स्थिर किया और तदनुसार ज्योंहीं मैंने अपनी

मदन पर प्रहार किया, त्योंहीं देवीने प्रसन्न होकर कहा :—"हे पुत्री! इतनी शीघ्रता मत कर! जिस दिन तुम्हारे इस आम्रवृक्ष पर असमयमें बौर आवेंगे, उसी दिन तुम्हारा पुत्र तुमसे आ मिलेगा।" मैं देखती हूँ कि इस आम्रवृक्षमें तो बौर लग गये, परन्तु मेरा पुत्र न आया। इसीसे मेरा जी दुःखी है। हे महात्मन्! लग्न और राशि आदिक देखकर क्या आप मुझे यह बतला सकते हैं, कि मेरा पुत्र कब आयगा?"

माया साधुने कहा :—"जो मनुष्य विना कुछ भेंट दिये ज्योतिषीसे प्रश्न करता है, उसे लाभ नहीं होता।"

रुक्मिणीने कहा :—"अच्छा महाराज! बतलाइये, मैं आपको क्या दूँ?"

माया साधुने कहा :—"तपश्चर्याके कारण मेरी पाचनशक्ति बहुत कमजोर हो गयी है, इसलिये मुझे मण्डु (माँड) बना दो!"

रुक्मिणीने श्रीकृष्णके लिये कुछ लड्डू बना रक्खे थे। उन्हींको तोड़ कर वह मण्डु बनानेकी तैयारी करने लगी, परन्तु माया साधुने अपनी विद्याके प्रभावसे ऐसी

युक्ति कर दी कि, किसी तरह आग ही न सुलग सकी। इससे रुक्मिणी बहुत चिन्तित हो उठी। यह देखकर माया साधुने कहा :—"यदि मण्डु तैयार नहीं हो सकता, तो मुझे लड्डू ही दे दो। भूखके कारण मेरे प्राण निकले जा रहे हैं।"

रुक्मिणीने कहा :—"मुझे यह लड्डू देनेमें कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु यह बहुत ही गरिष्ट हैं। कृष्णके सिवा इन्हें शायद ही कोई दूसरा पचा सके! मुझे भय है कि आपको यह लड्डू खिलानेसे मुझे कहीं ब्रह्म-हत्याका पाप न लग जाय।"

माया साधुने कहा :—"तपश्चर्याके कारण मुझे कभी अजीर्ण नहीं होता।"

यह सुनकर रुक्मिणी उसे डरते-डरते लड्डू देने लगीं और वह एकके बाद एक अपने मुँहमें रखने लगा। उसको इस तरह अनायास लड्डू खाते देखकर रुक्मिणी को अत्यन्त आश्चर्य हुआ और उन्होंने हँसकर कहा :—"धन्य है महाराज! आप तो बड़ेही बलवान मालूम होते हैं।"

उधर सत्यभामा अब तक कुल देवीके सामने बैठी हुई मायाविप्रके आदेशानुसार मन्त्रका जप ही कर रही थी। उसका यह जप न जाने कब तक चला करता, परन्तु इतनेहीमें कुछ अनुचरोंने आकर पुकार मचायी कि :—
"हे स्वामिनी! नगरमें आज महा अनर्थ हो गया है। फलसे लदे हुए वृक्षोंको न जाने किसने फल रहित कर दिये हैं। घासकी दूकानोंको घास रहित और जलाशयोंको भी जल रहित बना दिया है। इसके अतिरिक्त भानुकको न जाने किसने एक उत्पाती अश्व दे दिया, जिसपर बैठनेसे उनकी दुर्गति हो गयी। पता लगाने पर न उस घोड़ेका ही पता मिलता है, न उसके मालिकका हीं। हमलोग इन सब घटनाओंसे पूरी तरह परेशान हो रहे हैं।"

यह सब बात सुनकर सत्यभामाका ध्यान भंग हुआ। उसने दासियोंसे पूछा :—"वह ब्राह्मण कहाँ है?" उत्तरमें दासियोंने डरते डरते उसके भोजन करने और नाराज होकर चले जानेका हाल उसे कह सुनाया। इससे सत्यभामा मन-ही-मन जल कर खाक हो गयी। उसे

इस बातसे बड़ा ही दुःख हुआ कि वह ब्राह्मण उसे रूपवती बनानेका प्रलोभन देकर उलटा उसे विरूप बनाकर चला गया। इसलिये वह अपने मनमें कहने लगी कि :—"अब तो मुझे रुक्मिणीके सामने और भी नीचा देखना पड़ेगा।" उसे यह भली भाँति खयाल था कि आज रुक्मिणीका शिर मुड़ाया जायगा, परन्तु अब तक वह चुपचाप बैठी हुई थी। ब्राह्मण देवताकी कृपासे जब वह अपना शिर मुड़ाकर विरुप बन गयी, तब वह कहने लगी, कि अब रुक्मिणीका शिर मुड़ानेमें भी विलम्ब न करना चाहिये। यह सोचकर उसने उसी समय कई दासियोंको एक टोकरी देकर आज्ञा दी कि इस टोकरीमें रुक्मिणीके केश ले आओ।

सत्यभामाके आदेशानुसार दासियाँ रुक्मिणीके पास गयीं और उनसे कहने लगीं कि हमारी स्वामिनीने आपके केश ले आनेके लिये हमें आपकी सेवामें भेजा है। उस समय मायामुनि भी वहाँ बैठे हुए थे। दासियोंका उपरोक्त वचन सुनकर वे उठ खड़े हुए और अपनी विद्याके बलसे क्षणमात्रमें उन सबोंके शिर मूँड,

उन्हींके केशोंसे वह टोकरी भर, उन्हें सत्यभामाके पास वापस भेज दिया।

दासियोंकी यह दुरवस्था देखकर सत्यभामाको बड़ा ही क्रोध आया। उसने दासियोंसे पूछा :—"तुम्हारी ऐसी अवस्था किसने की?"

दासियोंने झनक कर कहा :—"आप यह प्रश्न ही क्यों करती हैं? जैसा स्वामी होता है, वैसा ही उसका परिवार भी होता है!"

सत्यभामाने इससे भ्रमित होकर इस बार कई हजामोंको रुक्मिणीके केश लानेका आदेश दिया। तदनुसार वे भी रुक्मिणीके पास पहुँचे; पर मायामुनिने उनकी भी वही गति की जो दासियोंकी की थी। दासियोंके तो उन्होंने केवल केश ही मूँड़े थे, परन्तु अबकी बार नाइयोंके तो उन्होंने शिरका चमड़ा तक छील लिया!

दासियोंकी तरह यह हजाम भी रोते कलपते सत्यभामाके पास पहुँचे। सत्यभामा इसबार और भी क्रुद्ध हुई। उसने कृष्णके पास जाकर कहा :—"मैंने

आपके सामने केश देनेकी बाजी लगायी थी। आज वह दिन आ पहुँचा है। यदि रुक्मिणीके पुत्रका विवाह होता, वह आज मुझे छोड़ न देती। अब आप उसे बुलाकर मुझे शीघ्र ही उसके केश दिलाइये !"

कृष्णने हँसकर कहा :—"प्यारी ! मैं उसके केश क्या दिलाऊँ ? तुमने तो उसके बदले पहलेही से अपना शिर मुँड़वा लिया है !"

सत्यभामाने कहा :—"आज मुझे ऐसी दिल्लगियाँ अच्छी नहीं लगतीं। आप शीघ्र ही मुझे रुक्मिणीके केश दिलाइये !"

कृष्णने कहा :—"अच्छा, मैं बलरामको तुम्हारे साथ भेजता हूँ। उनके साथ जाकर तुम स्वयं रुक्मिणीके केश ले आओ !"

कृष्णके आदेशानुसार बलराम सत्यभामाके साथ रुक्मिणीके वासस्थानमें गये। वहाँ प्रद्युम्नने अपनी विद्यासे कृष्णका एक रूप उत्पन्न किया। बलराम उन्हें देखते ही लज्जित हो उठे और बिना कुछ कहे सुने ही चुपचाप पूर्व स्थानमें लौट आये। वहाँ भी कृष्णको

देखकर वे कहने लगे :—"आप यह क्या दिल्लगी कर रहे हैं? मुझे सत्यभामाके साथ रुक्मिणीके केश लेने भेजा और आप स्वयं मेरे पहले ही वहाँ पहुँच गये। फिर, न वहाँ जाते देरी, न यहाँ आते देरी! मेरे वापस आनेके पहले ही आप भी यहाँ वापस आ गये! रुक्मिणीके यहाँ आपको देखकर मेरे साथ साथ बेचारी सत्यभामा भी लज्जित हो गयी!"

बलरामके यह वचन सुनकर कृष्ण बड़े ही चक्करमें पड़ गये। वे शपथ-पूर्वक कहने लगे कि :—"मैं वहाँ नहीं गया, तुम मुझपर क्यों संदेह करते हो।" यह सुनकर बलराम तो शान्त हो गया; किन्तु सत्यभामाको जरा भी विश्वास न हुआ। वह क्रुधित होकर कहने लगी कि :—"यह सब तुम्हारी ही माया है!" यह कहती हुई वह अपने महलको चली गयी। कृष्ण इससे बड़े असमंजसमें पड़ गये और वे उसके भवनमें जाकर उसे समझाने बुझाने और अपनी सत्यता पर विश्वास कराने लगे।

इधर रुक्मिणीके वहाँ नारदने आकर उससे कहा

कि :—"हे भद्रे ! तुम अपने पुत्रको भी नहीं पहचान सकती हो ? यही तो तुम्हारा पुत्र प्रद्युम्न कुमार है !"

नारदने जब यह भेद खोल दिया, तब प्रद्युम्नने भी साधुका वेश परित्याग कर अपना देव समान असली रूप धारण कर लिया। इसके बाद वे प्रेम-पूर्वक माताके पैरोंपर गिर पड़े। रुक्मिणीके स्तनोंसे भी उस समय वात्सल्यके कारण दूधकी धारा बह निकली। उन्होंने अत्यन्त स्नेह-पूर्वक प्रद्युम्नको गलेसे लगा लिया और हर्षाश्रुओंसे उसका समूचा शरीर भिगो डाला।

इस प्रेम-मिलनके बाद प्रद्युम्नने रुक्मिणीसे कहा :- "हे माता ! जब तक मैं अपने पिताको कोई चमत्कार न दिखाऊँ तब तक आप उनको मेरा परिचय न दें !"

हर्षके आवेशमें रुक्मिणीने इसका कुछ भी उत्तर न दिया। प्रद्युम्न उसी समय एक माया-रथ पर रुक्मिणी-को बैठा कर वहाँसे चल पड़े। वे मार्गमें शंख बजा बजाकर लोगोंसे कहते जाते थे कि मैं रुक्मिणीको हरण किये जाता हूँ। यदि कृष्णमें शक्ति हो, तो इसकी रक्षा

करे। उनके इस कार्यसे चारों ओर हाहाकार मच गया। शीघ्रही कृष्णने भी यह समाचार सुना। वे कहने लगे कि, न जाने कौन दुर्मति अपना प्राण देने आया है। यह कहते हुए वे तुरंत बलराम और कुछ सैनिकोंको साथ लेकर प्रद्युम्नके पीछे दौड़ पड़े। प्रद्युम्न तो उनके आगमनकी बाट ही जोह रहा था। उसने एक ही बारमें समस्त सैनिकोंके दाँत खट्टे कर, कृष्णको शस्त्र रहित बना दिया। इससे कृष्णको बहुत ही आश्चर्य और दुःख हुआ।

इसी समय कृष्णकी दाहिनी भुजा फड़क उठी। कृष्णने यह हाल बलरामसे कहा। इसी समय नारदने उनके पास आकर कहा :—"हे कृष्ण! अब युद्धका विचार छोड़ दीजिये और रुक्मिणी सहित अपने इस पुत्रको अपने मन्दिरमें लिवा ले जाइये। यही आपका वह खोया हुआ धन—प्रद्युम्नकुमार है!"

ज्योंही नारदमुनिने कृष्णको प्रद्युम्नका यह परिचय दिया, त्यों ही प्रद्युम्न भी रथसे उतर कर कृष्णके चरणों पर गिर पड़ा। कृष्णने अत्यन्त प्रेमसे उसे उठा कर अपने गलेसे लगा लिया। पिता और पुत्रका यह मिलन

भी दर्शनीय था। जिसने उस दृश्यको देखा, उसीके नेत्र धन्य हो गये।

प्रद्युम्नकुमारको वारंवार आलिङ्गन और चुम्बन करनेके वाद कृष्ण, और रुक्मिणी प्रद्युम्नके साथ एक रथ पर सवार हुए और बड़ी धूमके साथ नगरके प्रधान मार्गोंसे होकर उनको अपने मन्दिरमें लिवा ले गये। नगर निवासियोंने उस समय उनपर पुष्पवर्षा कर, उनके जयजय कारसे आकाश गुँजा दिया। आज रुक्मिणीकी आराधना सफल हो गयी—देवीका वचन सत्य हो गया—उसकी सूनी गोद भर गयी।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

शाम्ब-चरित्र

प्रद्युम्नके आगमनसे द्वारिका नगरीमें चारों ओर आनन्दकी हिलोरें उठने लगीं। भानुकका व्याह तो था ही, प्रद्युम्नके आनेके उपलक्षमें भी कृष्णने एक महोत्सव मनानेका आयोजन किया। परन्तु इतने ही में दुर्योधनने

आकर कृष्णसे कहा :—"हे स्वामिन्! मेरी पुत्री जो शीघ्रही आपकी पुत्रवधू होनेवाली थी—जिसका व्याह भानुककुमारके साथ होने वाला था, उसे कोई हरण कर ले गया है। आप शीघ्रही उसका पता लगवाइये, वर्ना भानुकका व्याह ही रुक जायगा।"

कृष्णने कहा :—"मैं सर्वज्ञ नहीं हूँ, जो बतला दूँ कि इस समय वह कहाँ है? यदि मैं सर्वज्ञ होता, तो जिस समय प्रद्युम्नको कोई हरण कर ले गया था, उस समय मैं उसे क्यों न खोज निकालता!"

कृष्णकी भाँति अन्यान्य लोगोंने भी इस विषयमें अपनी असमर्थता प्रकट की। अन्तमें प्रद्युम्नने कहा :— "मैं अपनी प्रज्ञप्ति विद्यासे उसका पता लगाकर उसे अभी लिये आता हूँ। मेरे लिये यह बायें हाथका खेल है।"

प्रद्युम्नके यह वचन सुनकर दुर्योधन तथा कृष्णादिकको अत्यन्त आनन्द हुआ। प्रद्युम्न उसी समय उठ खड़ा हुआ और थोड़ी ही देरमें उस कन्याको लाकर सबके सामने हाजिर कर दिया। यह देख कर कृष्ण परम प्रसन्न हुए। उन्होंने प्रद्युम्नसे कहा :—तुमने इस

कन्याका पता लगाया है, इसलिये यदि तुम कहो तो इससे तुम्हारा व्याह कर दिया जाय। परन्तु प्रद्युम्नने कहा कि :—"यह मेरे भाईकी पत्नी है, इसलिये मैं इससे व्याह कदापि नहीं कर सकता। निदान, उसका व्याह भानुकके साथ कर दिया गया। प्रद्युम्नकी इच्छा न होने पर भी कृष्णने उसी समय कई विद्याधर राजकुमारियोंके साथ प्रद्युम्नका भी व्याह कर दिया। नारदमुनिने प्रद्युम्नका पता लगाने और उसे कालसंवरके यहाँसे लिवा लानेमें बड़ा परिश्रम किया था, इसलिये कृष्ण और रुक्मिणी उनके परम आभारी थे। विवाहोत्सव पूर्ण होने पर उन्होंने यथाविधि उनका पूजन कर सम्मान पूर्वक उन्हें विदा किया।

उधर प्रद्युम्नकी सम्पत्ति और प्रशंसासे सत्यभामाको बड़ाही सन्ताप हुआ और वह कोप गृहमें जाकर एक कोनेमें लेट रही। कृष्ण जब उसके भवनमें गये, तब उनको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा :—"हे सुभगे! तुम इस प्रकार दुःखी क्यों हो रही हो? क्या किसीने तुम्हारा अपमान किया है।

सत्यभामाने सजल नेत्रोंसे कहा :—"नहीं, किसीने मेरा अपमान नहीं किया है, परन्तु एक आन्तरिक पीड़ाके कारण मेरा हृदय विदीर्ण हुआ जा रहा है। मैं आपसे सत्य कहती हूँ, कि यदि मेरे प्रद्युम्नके समान पुत्र नहीं होगा, तो मैं अवश्य प्राणत्याग दूँगी।"

उसका यह आग्रह देखकर कृष्णने उसे सान्त्वना दी। इसके बाद उन्होंने हरिणीगमेषीदेवको उद्देश कर अट्ठम तप करते हुए पौषध व्रत ग्रहण किया। इससे हरिणीगमेषीने प्रकट होकर पूछा—"हे राजन् कहिये, आपका क्या काम है? आपने मुझे क्यों याद किया है?"

कृष्णने कहा :—"भगवन्! सत्यभामाको प्रद्युम्नके समान एक पुत्र चाहिये। आप उसकी यह इच्छा पूर्ण कीजिये।"

हरिणीगमेषीने कृष्णके हाथमें एक पुष्पहार देकर कहा :—"राजन्! यह हार पहनाकर आप जिस रमणीसे रमण करेंगे, उसीके मनवाञ्छित पुत्र होगा।"

इतना कह वह देव तो अन्तर्धान हो गया। इधर

प्रद्युम्नको अपनी प्रज्ञप्ति विद्याके कारण यह सब हाल मालूम हुआ। इसलिये उसने अपनी माताको उस हारकी बात जतला कर कहा कि :—"हे माता! यदि आप मेरे समान दूसरा पुत्र चाहती हों तो किसी तरह वह हार अपने हाथ कीजिये!"

रुक्मिणीने कहा :—"हे पुत्र! मैं अकेले तुमको ही पुत्र रूपमें पाकर धन्य हो गयी हूँ। अब मुझे अन्य पुत्रोंकी जरूरत नहीं है।"

प्रद्युम्नने कहा :—"अच्छा, तब यह बतलाइये, कि मेरी अन्य माताओंमें कौन माता आपको अधिक प्रिय है? जो आपको अधिक प्रिय हो और जिसे आप कहें, उसीको मैं वह हार दिलवा दूँ!"

रुक्मिणीने कहा :—"हे पुत्र! तुम्हारे वियोगसे जिस प्रकार मैं दुःखित रहती थी, उसी प्रकार जाम्बवती भी दुःखित रहती थी। तुम उसे वह हार दिला दो। उसके पुत्र होनेसे मुझे प्रसन्नता ही होगी!"

इसके बाद प्रद्युम्नके कहनेसे रुक्मिणीने जाम्बवतीको अपने पास बुला भेजा। उसके आनेपर प्रद्युम्नने अपनी

प्रज्ञप्ति विद्याके बलसे उसे सत्यभामाके सदृश बना दिया। इसके बाद रुक्मिणीने सब बातें समझा कर सन्ध्याके समय उसे कृष्णके शयनागारमें भेज दिया। कृष्णने उसे सत्यभामा समझ कर उसे सहर्ष वह हार देकर उसके साथ समागम किया। इसके बाद जाम्बवतीने सिंहका एक स्वप्न देखा और महाशुक्र देवलोकसे कैटभ का जीव च्युत होकर उसके उदरमें आया। जाम्बवतीको इससे अत्यन्त आनन्द हुआ और वह मन-ही-मन रुक्मिणी तथा प्रद्युम्नको धन्यवाद देती हुई अपने महलको चली गयी।

उधर कृष्णने दिनके समय सत्यभामासे उस हारका हाल बतला कर, रात्रिके समय उसे अपने शयनगृहमें बुलाया था। उनके इस आदेशानुसार, जाम्बवतीके चले जानेपर, सत्यभामा आ खड़ी हुई। उसे देखकर कृष्ण अपने मनमें कहने लगे :—"अहो! स्त्रियोंमें कितनी भोगासक्ति होती है? यह अभी मेरे पाससे गयी है और फिर मेरे पास आपहुँची है। साथही उन्हें यह भी विचार आया कि सत्यभामाका रूप धारण कर पहले किसीने मुझे धोखा तो नहीं दिया है? कुछ भी हो,

उन्होंने सत्यभामाको निराश करना उचित न समझा। वैसा करनेसे अवश्य ही उसका जी दुःखित हो जाता। कृष्णने यही सोचकर उसे भी रति-दान देना स्थिर किया।

सत्यभामाका रति समय जानकर प्रद्युम्नने इसी समय कृष्णकी भेरी बजा दी। उसकी ध्वनि सुनते ही चारों ओर खलबली मच गयी। कृष्णको मालूम हुआ कि प्रद्युम्नने ही सत्यभामाको छकाया है, क्योंकि सपत्नीका एक पुत्र दस सपत्नीके बराबर होता है। खैर, भवितव्यताको कौन रोक सकता है? सत्यभामाने भीत भावसे सहवास किया है इसलिये निःसन्देह वह भीरु पुत्रको जन्म देगी।"

दूसरे दिन सुबह कृष्ण रुक्मिणीके भवनमें गये तो वहाँ जाम्बवतीको उस दिव्य हारसे विभूषित देखा। उन्हें अपनी ओर निर्निमेष दृष्टिसे देखते देखकर जाम्बवतीने कहा :—"स्वामिन्! आज मेरी ओर आप इस तरह क्यों देख रहे हैं? मैं तो आपकी वह पत्नी हूँ, जिसे आप अनेकबार देख चुके हैं।"

कृष्णाने कहा :—"यह तो सब ठीक है, परन्तु यह हार तुमने कहाँसे पाया है ?"

जाम्बवतीने हँसकर कहा :—"आपहीने तो मुझे दिया था ! क्या आप अपने हाथोंका किया हुआ काम भी भूल जाते हैं ?"

यह सुनकर कृष्ण हँस पड़े। इसपर जाम्बवतीने उन्हें अपना सिंह विषयक स्वप्न कह सुनाया। सुनकर कृष्णाने कहा :-"यह स्वप्न बहुत ही उत्तम है। हे देवि ! प्रद्युम्नके समान तुम्हें भी एक पुत्र-रत्न होगा।" इतना कह कृष्ण उस समय वहाँसे चले गये।

तदनन्तर जाम्बवतीने गर्भकाल पूर्ण होनेपर शुभ मुहूर्त्तमें सिंहके समान अतुल बलशाली शाम्ब नामक पुत्रको जन्म दिया। इसी समय सारथीके जयसेन और दारुक तथा मन्त्रीके सुबुद्धि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। सत्यभामा भी भीतावस्थामें गर्भवती हुई थी, इसलिये उसने भीरु नामक एक पुत्रको जन्म दिया। कृष्णाकी अन्यान्य पत्नियोंने भी इसी समय एक एक पुत्रको जन्म दिया। परन्तु इन सबोंकी अपेक्षा सारथी और मन्त्रीके

पुत्रोंके साथ शाम्बकुमारकी विशेष मित्रता थी। इसलिये वह उन्हींके साथ खेलता कूदता हुआ बड़ा होने लगा। जब उसकी अवस्था पढ़ने लिखने योग्य हुई, तब उसने बहुत ही अल्प समयमें अनेक विद्या और कलाओंमें पारदर्शिता प्राप्त कर ली।

कुछ दिनोंके बाद रुक्मिणीको अपने भाई राजा रुक्मिकी याद आयी। उसके वैदर्भी नामक एक रूपवती पुत्री थी। रुक्मिणीने सोचा कि उसका व्याह प्रद्युम्नके साथ हो जाय तो बहुत अच्छा हो। यह सोचकर उसने भोजकटपुरमें राजा रुक्मिको कहलाया कि :—"आप अपनी पुत्री वैदर्भीका विवाह प्रद्युम्नकुमारके साथ कर दें, तो अत्युत्तम हो। इसके पहले मेरा और कृष्णका योग हो चुका है, वह दैव योगसे ही हुआ है। अब उसके सम्बन्धमें किसी तरहकी विशंका न करें। आप अपने हाथसे वैदर्भी और प्रद्युम्नकुमारका भी योग मिला दें। इससे हमलोगोंका पुराना प्रेमसम्बन्ध फिरसे नया हो जायगा।"

रुक्मिणीका यह सन्देश सुनकर रुक्मिको अपनी

पुरानी शत्रुता याद आ गयी। इसलिये उसने दूतसे कहा :—"हे दूत ! मैं चाण्डालोंके यहाँ अपनी पुत्रीका विवाह कर सकता हूँ परन्तु कृष्णके वंशमें उसका विवाह कदापि नहीं कर सकता।"

उसका यह उत्तर सुनकर दूत वापस लौट आया और उसने रुक्मिणीको सब हाल कह सुनाया। भाईका यह अपमानजनक उत्तर सुनकर रुक्मिणीको इतना दुःख हुआ कि रातको उसे नींद भी न आयी। उसकी यह अवस्था देखकर प्रद्युम्नने पूछा :—"माता ! आज तुम इतनी उदास क्यों हो ?" रुक्मिणीने इसके उत्तरमें रुक्मि राजाका सब वृत्तान्त उसे कह सुनाया। सुनकर प्रद्युम्नने कहा :—"हे माता ! तुम चिन्ता न करो। रुक्मि मामा पर मधुर वचनोंका प्रभाव नहीं पड़ सकता। इसीलिये तो पिताजीने आपके विवाहके समय दूसरी युक्तिसे काम लिया था। मैं भी प्रतिज्ञा करता हूँ कि अब वैदर्भीके साथ ही विवाह करूँगा। यदि जरूरत हुई तो मैं भी पिताजीकी तरह इस मामलेमें किसी युक्तिसे ही काम लूँगा।"

इसके बाद दूसरेही दिन शाम्बकुमारको अपने साथ लेकर प्रद्युम्नकुमार भोजकटपुरमें जा पहुँचे। वहाँ वे दोनों चाण्डालका वेश धारणकर नगरमें घूम-घूमकर किन्नरकी भाँति मधुरस्वरसे गायन करने लगे। उनका गायन इतना सुन्दर, इतना मधुर और इतना मोहक होता था कि उसे जो सुनता था वही मुग्ध हो जाता था। धीरे धीरे इनकी बात राजा रुक्मिके कानोंतक पहुँची। फलतः उसने भी उनको राज भवनमें बुलाकर सपरिवार इनका गायन सुना।

गायन समाप्त होनेपर उसने उन दोनोंको काफी ईनाम देकर पूछा :—"तुम लोग यहाँ किस स्थानसे आ रहे हो?"

माया चाण्डालोंने कहा :—"राजन्! हमलोग स्वर्गसे द्वारिका नगरी देखने आये थे और इस समय वहींसे आ रहे हैं।"

इधर अपने पिताके पास ही राजकुमारी वैदर्भी बैठी हुई थी। उसने उत्सुकतापूर्वक उनसे पूछा :—"क्या तुमलोग कृष्ण-रुक्मिणीके पुत्र प्रद्युम्न भी जानते हो?"

शाम्बने कहा :—"कामदेवके समान उस महा रूपवान् और बलवान् प्रद्युम्नको कौन नहीं जानता ? उसको देखते ही दर्शकके नेत्र शीतल हो जाते हैं।",

प्रद्युम्नकी यह प्रशंसा सुनकर वैदर्भी रागयुक्त और उत्कंठित बन गयी। इतनेहीमें एक मदोन्मत्त हाथी अपने बन्धन तुड़ाकर गजशालासे भाग आया और नगरमें चारों ओर उत्पात मचाने लगा। किसीको वह पैरोंसे कुचल डालता, किसीको सूंढ़से पकड़कर आकाश में फेंक देता और किसीको इतनी तेजीसे खदेड़ता, कि उसे भाग कर प्राण बचाना भी कठिन हो जाता। राजा रुक्मिके यहाँ जितने महावत थे, वे सभी उसे वश करनेमें विफल हो गये।

अन्तमें, जब उसके उत्पातके कारण चारों ओर हाहाकार मच गया, तब राजा रुक्मिने घोषणा की कि :—"जो इस हाथीको वश कर लेगा, उसे मुँहमाँगा ईनाम दिया जायगा।" रुक्मिकी यह घोषणा सुनकर शाम्ब और प्रद्युम्न इसके लिये कटिबद्ध हुए और उन्होंने मधुर संगीत द्वारा उस हाथीको स्तम्भित कर दिया।

इसके बाद वे दोनों उसीपर सवार हो, उसे गजशालामें ले गये और वहाँ उन्होंने उसे मजबूत जंजीरोंसे जकड़ दिया।

शाम्ब और प्रद्युम्नके इस पराक्रमकी बात सुनकर रुक्मिने प्रसन्नतापूर्वक उन दोनोंको अपने पास बुलाया और उनके कार्यकी प्रशंसा कर कहा :—"तुमलोग अपने इस कार्यके बदले मुझसे इच्छित वस्तु माँग सकते हो!"

चाण्डाल वेशधारी शाम्ब और प्रद्युम्नने कहा :— "हमारे पास कोई रसोई बनानेवाली नहीं है। इससे हमें बड़ा ही कष्ट होता है और अनेक बार भूखों भी मरना पड़ता है। यदि आप वास्तवमें हमारे कार्यसे सन्तुष्ट हैं, तो हे राजन्! अपनी राजकुमारी वैदर्भीको हमें देनेकी कृपा कीजिये।"

रुक्मि तो यह सुनते ही आगबबूला हो उठा। उसने उसी समय उन दोनोंको भला बुरा कह कर, नगरसे बहार निकलवा दिया।

प्रद्युम्न और शाम्ब नगरके बाहर एक वृक्षके नीचे

बैठकर इस बात पर विचार करने लगे, कि अब क्या करना चाहिये। प्रद्युम्नने कहा :—"मेरी माता दुःखित हो रही होगी, इसलिये अब वैदर्भीसे विवाह करनेमें विलम्ब न करना चाहिये।" शाम्ब की भी यही राय हुई, कि अब इस कार्यको शीघ्रही निपटा डालना चाहिये। उस समय रात्रि हो चली थी। कुछ देर बाद जब सब लोग घोर निद्रामें पड़कर खुर्राटे लेने लगे, तब प्रद्युम्नने अपनी विद्याके बलसे वैदर्भीके शयनागारमें प्रवेश कर उसे रुक्मिणीका एक कृत्रिम पत्र दिया। उसमें प्रद्युम्नके लिये उसकी याचना की गयी थी। वैदर्भी उस पत्रको पढ़कर प्रसन्न हो उठी। उसने प्रेम पूर्वक प्रद्युम्नसे कहा :—"हे भद्र! तुमने यह पत्र लाकर मुझ पर बड़ा ही उपकार किया है। बतलाओ, इस उपकारके बदले अब तुम मुझसे क्या चाहते हो?"

प्रद्युम्नने कहा :—"सुलोचने! इस उपकारके बदले तुम अपना तन-मन मुझे अर्पण कर दो! इस पत्रमें जिसके लिये तुम्हारी याचना की गयी है, वह प्रद्युम्न मैं ही हूँ।"

प्रद्युम्नका परिचय पाकर वैदर्भीके आनन्दका वारा-पार न रहा। उसने कहा :—"अहो! मालूम होता है कि मेरे मनकी बात जान कर विधाताने ही आपको मेरे पास भेज दिया है।" वह तुरन्त प्रद्युम्नके प्रस्तावसे सहमत हो गयी। प्रद्युम्नने उसी समय अपनी विद्याके बलसे अग्नि और विवाहोपयोगी सामग्री प्रकट कर वैदर्भीके साथ विवाह कर लिया। इसके बाद उन दोनोंने वह रात्रि इच्छानुसार हास्य-विलास करनेमें व्यतीत की। पिछली रातमें प्रद्युम्नने वैदर्भीसे कहा :—"हे सुन्दरि! अब मैं शाम्बके पास जाता हूँ। तुम्हारे मातापिता या अन्य लोग तुम्हारे शरीर पर कंकणादिक वैवाहिक चिन्ह देखकर तुमसे चाहे जितना पूछे, किन्तु इस विवाहका हाल किसी हालतमें भी अपने मुखसे कहना तुम्हारे लिये उचित न होगा। हाँ, यदि इसके कारण तुम पर कोई विपत्ति आये, तो मुझ पर विश्वास रखना, मैं उस विपत्तिसे तुम्हारी रक्षा अवश्य करूँगा।" इतना कह प्रद्युम्नकुमार वहाँसे चले आये और वैदर्भी रात्रि जागरण तथा रति-श्रमसे श्रान्त होकर वहीं सो

यी। सुबह सूर्योदय हो जाने पर भी जब उसकी निद्रा ंग न हुई, तब उसकी धात्रीने आकर उसे जगाया। जगाते समय अचानक उसकी दृष्टि उसके हाथमें बँधे हुए कंकण पर जा पड़ी। उसे देखते ही वह मानो चौंक पड़ी। उसने वैदर्भीसे उसके सम्बन्धमें अनेक प्रश्न किये, किन्तु प्रद्युम्नके आदेशानुसार उसने उसके प्रश्नोंका कुछ भी उत्तर न दिया।

इससे धात्री बहुत भयभीत हुई। उसने अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करनेके लिये उसी समय यह हाल राजा और रानीसे कह सुनाया। उन दोनोंने भी उसी समय उसके पास आकर उससे अनेक प्रकारके प्रश्न किये, किन्तु उसने एकका भी उत्तर न दिया। राजा और रानी इससे बड़ी चिन्तामें पड़ गये। वैदर्भीके शरीर पर विवाह और पति-समागमके अनेक चिह्न स्पष्ट रूपसे दिखायी दे रहे थे, किन्तु वह इस विषयमें कुछ भी न बतलाती थी।

अन्तमें रुक्मि राजाको वैदर्भी पर क्रोध आ गया। वह अपने मनमें कहने लगा :—"यह कन्या दुराचारिणी

और कुलटा है। मालूम होता है कि वह अविवाहित अवस्थामें ही गुप्त रूपसे किसी पुरुषके साथ क्रीड़ा करती है। ऐसी कन्याका तो मुख देखना भी महा पाप है। उसदिन उन चाण्डालोंने इसकी याचना की थी। यदि मैंने इसे उन्हींको दे दिया होता, तो आज मुझे यह मनःकष्ट न होता। खैर, मैं समझता हूँ कि वह दोनों अभी भी नगरके बाहर कहीं न कहीं मौजूद होंगे। यदि वे मिल जायें, तो इसको उन्हींके सिपुर्द कर देना चाहिये। इस पापिनीके लिये यही उपयुक्त दण्ड होगा--यही इसके पापका प्रायश्चित होगा।"

इस प्रकार विचार कर रुक्मिने उन चाण्डालोंको खोज लानेके लिये चारों ओर अपने आदमी रवाना कर दिये। वे अभी तक नगरके बाहर ही थे, इसलिये उनको लानेमें उन्हें कुछ भी विलम्ब न हुआ। उनको देखते ही रुक्मिने कहा :—"तुमने मेरी कन्याकी याचना की थी, इसलिये मैं तुम्हें सहर्ष उसे देता हूँ। अब तुम उसे लेकर ऐसे स्थानमें चले जाओ, जहाँ मैं तुम्हें देख न सकूँ।"

इतना कह, राजा रुक्मिने रोष पूर्वक वैदर्भीको उन चाण्डालोंके साथ जानेकी आज्ञा दे दी। चाण्डालोंने वैदर्भीका हाथ पकड़ते हुए पूछा :—"हे राजपुत्री! हमारे यहाँ पानी भरना, रस्सियाँ बनाना, चमड़ा बेचना—यही सब काम रहते हैं। क्या तू यह सब कर सकेगी?"

वैदर्भीने आँसू बहाते हुए कहा :—"विधाता मुझसे जो जो काम करायेगा, वह मैं अवश्य करूँगी। विधाताकी आज्ञा दुर्लंघ्य है।" उसके इस उत्तरसे सन्तुष्ट हो, वे दोनों उसे अपने साथ लेकर वहाँसे चलते बने।

राजा रुक्मिने क्रोधके आवेशमें वैदर्भीको चाण्डालों के साथ तो भेज दिया, किन्तु शीघ्र ही इसके लिये उसे घोर पश्चाताप होने लगा। वह अपनी तबियत बहलानेके लिये राज-सभामें जा बैठा, किन्तु वहाँ भी उसे शान्ति न मिल सकी। वैदर्भीके स्मरणसे उसके नेत्रोंमें आँसू भर आये। वह अपने मनमें कहने लगा :—"हा वत्से! हे वैदर्भी! इस समय तू न जाने कहाँ होगी? मैंने तुझे चाण्डालोंके सिपुर्द कर निःसन्देह बड़ा ही

अनुचित कार्य किया है। तूने तो इसके विरोधमें एक शब्द भी न कहा, तू तो गरीब गायकी तरह उन लोगोंके पीछे चल पड़ी, किन्तु मैं अब अपने चित्तको किस प्रकार सान्त्वना दूँ ? वास्तवमें क्रोधसे बढ़कर इस संसारमें मनुष्यका दूसरा शत्रु नहीं है। क्रोधने ही मेरे हाथोंसे अनुचित कार्य कराया! रुक्मिणीने प्रद्युम्नके लिये तेरी याचना की थी, परन्तु मैंने उसे अस्वीकार कर दिया था। अब मैं सोचता हूँ कि इससे तो वही अच्छा था। हा दैव! अब मैं क्या करूँ ? संसार को मैं अपना कौन मुँह दिखाऊँ ?"

राजा रुक्मी राज-सभामें बैठा हुआ इसी तरह पश्चाताप कर रहा था। इतनेहीमें उसे वाद्योंकी मधुर और गंभीर ध्वनि कहींसे आती हुई सुनायी दी। उसके सम्बन्धमें पूछ ताछ करने पर कई राज-कर्मचारियोंने पता लगाकर बतलाया कि :—"हे स्वामिन्! नगरके बाहर एक विशाल प्रासादमें प्रद्युम्न और शाम्ब वैदर्भीके साथ बैठे हुए हैं। वहींपर यह मनोहर बाजे बज रहे हैं और सुन्दर नाटक हो रहा है। हे प्रभो! संगीत और

बाजोंकी मधुर ध्वनि सुनकर, हमारी समस्त प्रजा सागर-की भाँति उसी ओर चली जा रही है!"

यह संवाद सुनकर राजा रुक्मीको अत्यन्त आनन्द हुआ। वह समझ गया कि वैदर्भी चाण्डालोंके नहीं, बल्कि यदु-कुल-भूषण प्रद्युम्न और शाम्बके ही हाथोंमें जा पड़ी है। हाँ, यह आश्चर्य घटना कैसे घटित हुई, वह चाण्डाल कौन थे, प्रद्युम्न आदि यहाँ कैसे आ पहुँचे, नगरके बाहर प्रासाद कहाँसे आ गया,—आदि बातें उस समय उसकी समझमें न आ सकी। उसने इनको समझनेकी चेष्टा भी न की। वह उसी समय राज-सभासे उठ कर, उस प्रासादमें गया और वहाँसे सम्मान-पूर्वक प्रद्युम्न, शाम्ब तथा वैदर्भीको अपने राज-मन्दिरमें लिवा लाया। वहाँ सबोंकी पूजा कर उसने जी खोलकर उनका आदर सत्कार किया। प्रद्युम्न आदिको भी इससे परम सन्तोष और आनन्द प्राप्त हुआ।

इसके बाद राजा रुक्मीसे विदा ग्रहण कर प्रद्युम्न और शाम्ब दोनों वैदर्भीके साथ द्वारिका लौट आये। वैदर्भीको पुत्रवधूके रूपमें पाकर और उसके विवाहका

हाल सुनकर रुक्मिणीको भी अत्यन्त आनन्द हुआ। प्रद्युम्नकुमार इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर, अपनी नव-विवाहिता पत्नीके साथ आनन्द-पूर्वक अपने दिन व्यतीत करने लगे।

जिस समय प्रद्युम्न और वैदर्भीका विवाह हुआ, उसी समय शाम्बने सुहारिणी नामक एक सुन्दर रमणीका पाणिग्रहण किया। सुहारिणी हेमाङ्गद राजाकी पुत्री थी और एक वेश्याके उदरसे उत्पन्न हुई थी, किन्तु वह इतनी सुन्दर थी कि अप्सराएँ भी उसका रूप देखकर लज्जित हो जाती थीं। इसलिये विवाह करने पर शाम्बके दिन भी आनन्दमें कटने लगे।

शाम्ब स्वभावसे बहुत ही विनोदप्रिय और कुतूहली था। कुछ कुछ उत्पाती भी था। इसी कारणसे वह कभी कभी सत्यभामाके पुत्र भीरुको मार बैठता था और कभी जूएमें उसका धन भी जीत लिया करता था।

एक दिन द्यूतके सम्बन्धमें तोतेने कहा :—

"सकृज्जल्पन्ति राजानः, सकृज्जल्पन्ति पण्डिताः।
सकृत्कन्याः प्रदीयन्ते, त्रिण्येतानि सकृत्सकृत्॥"

अर्थात् :—"राजागण एकही बार बोलते हैं, पण्डितगण एकही बार बोलते हैं और कन्या एकही बार दी जाती है। यह तीनों एकही बार होते हैं—इनकी पुनरावृत्ति नहीं होती।"

इसपर शाम्ब द्वारा प्रेरित मैनाने कहा :—

"शतेषु जायते शूरः, सहस्रेषु च पण्डितः।
वक्ता दशसहस्रेषु, दाता भवति वा न वा॥"

अर्थात् :—"सैकड़ों आदमियोंमें एकाध शूरवीर उत्पन्न होता है। हजारोंमें एकाध पण्डित उत्पन्न होता है। दस हजारमें एकाध वक्ता होता है। और दाता तो होता है, या नहीं भी होता है।"

इसके बाद मैनाने दूसरी बार कहा :—

"न रणे निर्जितः शूरो, विद्यया न च पण्डितः।
न वक्ता वाक्पटुत्वेन, न दाता धनदानतः॥"

अर्थात् :—"युद्धमें विजय प्राप्त करनेसे कोई शूरवीर नहीं कहा जा सकता। विद्यासे पण्डित नहीं कहा जा सकता। वाक्पटुतासे वक्ता नहीं कहा जा सकता। और धनदानसे दाता नहीं कहा जा सकता।"

इसके बाद मैनाने तीसरी बार कहा :—

"इन्द्रियाणां जये शूरो, धर्मं चरति पण्डितः ।
सत्यवादी भवेद्वक्ता, दाता भूताऽभयप्रदः ॥"

अर्थात् :—"जो इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करता है, वही शूरवीर होता है। धर्मकार्यमें तत्पर रहता है, वही पण्डित कहलाता है। सत्यवादी होता है, वही वक्ता कहलाता है। और जो अभयदान देता है, वही दाता कहलाता है।"

मैना और तोतेकी इन बातोंमें आकर एकदिन भीरु जुएमें लाख रूपये हार गया। कृष्णको यह हाल मालूम होनेपर उन्होंने इतना धन उसे भण्डारसे दिला दिया। दूसरे दिन गन्धकी बाजी लगी। भीरु कृष्ण-विलेपना कर राज्यसभामें गया, इसपर शाम्बने हींग और लहसुन आदिकी दुर्गन्धसे उसे जीत लिया। इससे भीरु दो लाख हार गया। तीसरे दिन दोनोंमें फिर बाजी लगी कि अलङ्कार-धारणमें जो हार जाय, वह विजेताको तीन लाख रूपये दे। इसपर भीरु कृष्णके अलङ्कार धारण कर सभामें गया किन्तु शाम्बने श्रीनेमि-

नाथके इन्द्रदत्त अलङ्कार धारण कर उसे जीत लिया। इस बाजीमें भी भीरु हार गया और उसे तीन लाख रुपये देने पड़े।

भीरुकी यह द्यूतप्रियता कृष्णको अच्छी न मालूम हुई, इसलिये उन्होंने उसे इस तरहकी बाजियाँ लगानेसे मना किया। किन्तु भीरु कृष्णकी यह शिक्षा सुनी अनसुनी कर फिर शाम्बके साथ बाजी लगाने गया, फलतः शाम्बने उसे पीटा। इससे भीरु रोता हुआ सत्य-भामाके पास गया और सत्यभामाने कृष्णसे इसकी शिकायत की। इसपर कृष्णने कहा :—"यह बड़ाही शरारती है, और जुआ खेलता रहता है।" यह सुनकर जाम्बवती कहने लगी कि :—"अब तक शाम्बकी ऐसी शिकायत मैंने कभी न सुनी थी। आज आप ऐसा क्यों कहते हैं?"

कृष्णने कहा :—"सिंहिणी अपने पुत्रको सदा सरल और सौम्य ही मानती है, परन्तु उसकी क्रीड़ाको तो हाथी ही जानते हैं। देखो, आज मैं तुम्हें शाम्बकी कुछ लीला दिखाता हूँ।"

इतना कह कृष्णने ग्वालेका रूप धारण कर, जाम्ब-वतीको एक ग्वालिनका रूप धारण कराया। इसके बाद उन दोनोंने गोरस बेचते हुए द्वारिकामें प्रवेश किया। शाम्बकुमारने उस ग्वालिनको देखते ही कहा :—"हे ग्वालिन! तुम मेरे साथ चलो, मुझे गोरस खरीदना है।" इससे वह ग्वालिन शाम्बके साथ हो गयी। वह ग्वाल भी उनके पीछे चला। शाम्बने कुछ दूर जानेके बाद एक देवकुलमें प्रवेश किया और उसीके अन्दर उस ग्वालिनको भी बुलाया। किन्तु ग्वालिनने अन्दर जानेसे इन्कार करते हुए कहा :—"भाई! मैं वहाँ न आऊँगी, मेरे गोरसका मूल्य यहींपर दे दो।" इसपर शाम्बने कहा कि :—तुझे भीतर आना ही पड़ेगा।" यह कहते हुए, वह उसका हाथ पकड़ कर उसे अन्दर खींचने लगा। यह देखकर ग्वाल वहाँ दौड़ आया। उसने शाम्बकी खूब मरम्मत की। अन्तमें जब झगड़ा बहुत बढ़ गया तब कृष्ण और जाम्बवतीने अपना असली रूप प्रकट कर दिया। इस तरह अचानक अपने मातापिताको देखकर शाम्ब लज्जित हो गया और मुँह छिपाकर न जाने कहाँ भाग गया।

शाम्बकी यह शरारत दिखाकर कृष्णने जाम्बवतीसे कहा :-"प्यारी! अपने पुत्रका कार्य देखा? अब तुम्हें मेरी बातपर विश्वास हुआ?" जाम्बवती निरुत्तर बन गयी। उसने कृष्णकी इन बातोंका कोई उत्तर न दिया।

दूसरे दिन कृष्ण शाम्बको बलपूर्वक जाम्बवतीके पास पकड़ लाये। वह पिताके साथ जिस समय माताके पास पहुँचा, उस समय वह काठकी एक कील बना रहा था। यह देख, कृष्णने उससे पूछा :—"यह कील क्यों बना रहे हो?" इसपर शाम्बने कहा कि :—"जो मनुष्य कलकी बात आज कहेगा, उसके मुँहमें यह कील ठोक दूँगा। इसीलिये बना रहा हूँ।"

उसका यह मूर्खतापूर्ण उत्तर सुनकर कृष्णको क्रोध आगया! उन्होंने कहा :—"तू वास्तवमें बड़ाही शैतान है। एक तो नगरमें नित्य ही कुकर्म करता है और दूसरे ऐसी मूर्खतापूर्ण बातें कहता है! जा, तू इसी समय नगरसे बाहर निकल जा! तेरे समान पातकीको नगरमें रखनेसे मेरी भी बदनामी होगी!"

कृष्णका यह आदेश शिरोधार्य करनेके सिवा शाम्बके पास दूसरा उपाय न था, इसलिये वह नगर-त्याग करनेको तैयार हुआ, परन्तु प्रद्युम्न पूर्वजन्मका उसका भाई था। इसलिये वह उससे बहुतही प्यार करता था। जब वह नगर छोड़कर चलने लगा तब प्रद्युम्नने उसे प्रज्ञप्ति विद्या प्रदान करके कहा :—"भाई! इस विद्याको सिद्ध कर लेनेसे तुम्हारा बड़ाही उपकार होगा और तुम जहाँ भी रहोगे, सुखी रहोगे।"

शाम्बके चले जाने पर प्रद्युम्न अकेले पड़ गये। भीरुसे उनकी भी न पटती थी, इसलिये कभी वे भी उसे मार बैठते थे। एकदिन उसे मारने पर सत्यभामाने कहा :—"प्रद्युम्न! तू भी शाम्बकी तरह दुर्बुद्धि मालूम होता है। उसके चले जानेसे नगर-वासियोंका आधा दुःख दूर हो गया है। अब तू भी चला जाय तो सारा नगर सुखी हो जाय!"

प्रद्युम्नने कहा :—"माता! मैं कहाँ चला जाऊँ?"

सत्यभामाने क्रुद्ध कर कहा :—"तू श्मशानमें चला जा, और कहाँ जायगा?"

प्रद्युम्नने हँसकर पूछा :—"माता! और मैं वहाँसे कब आऊँगा?"

सत्यभामाने कहा :—जब मैं शाम्बको हाथ पकड़ कर यहाँ ले आऊँ तब तू आना!"

प्रद्युम्नने कहा :—"अच्छा माता, मैं ऐसा ही करूँगा।"

इतना कह प्रद्युम्न उसी समय श्मशान चले गये। घूमता घामता शाम्बकुमार भी वहीं उनसे आ मिला। दोनोंने वहाँ भी आमदनीका एक जरिया निकाल लिया। अब वे गहरा कर वसूल किये बिना किसीको वहाँपर मुर्दे जलाने न देते। इसमें आवश्यकतानुसार वे बल-प्रयोग भी करते। इससे उन्हें खासी आमदनी होने लगी और इसीसे उनका निर्वाह होने लगा।

इधर सत्यभामाने भीरुका विवाह करनेके लिये निन्यानवे सुन्दर कन्याएँ एकत्र की। उसकी इच्छा थी कि अब एक कन्या और मिल जाय तो, उनकी संख्या पूरी सौ हो जाय।

इधर प्रद्युम्नको प्रज्ञप्ति विद्याके कारण यह बात

मालूम हो गयी, इसलिये वह स्वयं मायावी जितशत्रु नामक राजा हुआ और शाम्बकुमार उसकी कन्या बना।

एकदिन भीरुकी धात्रीने उस कन्याको अपनी सखियोंके साथ खेलते देख लिया। उसे वह बहुत पसन्द आ गयी, इसलिये उसने सत्यभामासे कहा। सत्यभामाने उसी समय जित शत्रुके पास आदमी भेजकर भीरुके लिये उसकी याचना की। इसपर जितशत्रुने कहा :—
"यदि सत्यभामा मेरी कन्याका हाथ पकड़ कर द्वारिकामें प्रवेश करे, साथ-ही विवाहके समय, भीरुके हाथमें इसका हाथ देते वक्त, इसका हाथ ऊपर रक्खा जाय, तो मैं भीरुके साथ अपनी कन्याका विवाह कर सकता हूँ।"

सत्यभामाको तो किसी तरह अपने दिलका हौंसला पूरा करना था, इसलिये उसने जितशत्रुकी यह दोनों शर्तें स्वीकार कर लीं। यथासमय वह उस कन्याको लिवानेके लिये राजा जितशत्रुकी छावनीमें गयी। उसे देखकर शाम्बने प्रज्ञप्ति विद्यासे कहा कि :—सत्यभामा तथा उसके सम्बन्धी लोग मुझे कन्यारूपमें देखें और अन्यान्य लोग शाम्बके रूपमें देखें!" इसपर प्रज्ञप्ति

विद्याने वैसा ही किया। सत्यभामाने शाम्बका दाहिना हाथ पकड़ कर, नगर प्रवेश किया। इसके बाद वह उसे उस स्थानमें ले गयी, जहाँ समस्त कन्याओंके साथ भीरुका विवाह होनेवाला था। सत्यभामाके हाथमें शाम्बका हाथ देखकर नगरके स्त्री पुरुष "आश्चर्य! आश्चर्य!!" पुकार उठे, परन्तु उस समय सत्यभामाका ध्यान उनके कथनकी ओर आकर्षित न हो सका।

इसके बाद जब विवाहका समय उपस्थित हुआ, तब पहलेकी शर्तके अनुसार भीरुके दाहिने हाथ पर शाम्बका बायाँ हाथ रक्खा गया। शाम्बने इसी समय एक और चालाकी की। वह अपने दाहिने हाथसे एक ही समय निन्यानवे कन्याओंके हाथ पकड़ कर, उनके साथ भाँवर (फेरे) फिरने लगा। शाम्बको देखकर उन कन्यओंने समझा कि यही हमारे पति हैं। उसका देव समान सुन्दर रूप देखकर उन्हें अत्यन्त आनन्द हुआ। ऐसा सुन्दर पति प्राप्त करनेके कारण वे मन-ही-मन अपने भाग्यकी सराहना करने लगीं।

वैवाहिक विधि पूर्ण होने पर शाम्बने उन स्त्रियोंके

साथ शयनगृहमें प्रवेश किया। साथ ही भीरुने भी वहाँ पदार्पण किया, किन्तु शाम्बने उसे आखें दिखा कर वहाँसे भगा दिया। भीरुने सत्यभामाके पास जाकर इसकी शिकायत की। सत्यभामाको उसकी बातों पर विश्वास ही न हुआ। उसने कहा कि शाम्ब यहाँ कहाँ है ? तुझे किसी प्रकारका भ्रम हुआ होगा। परन्तु उसने जब फिर वही बातें कहीं, तब वह स्वयं उसे देखने गयी। शाम्बकुमारको देखते ही उसके बदनमें मानों आग लग गयी। उसने गरजकर कहा :—"हे धृष्ट! तुझे यहाँपर कौन लाया है ?"

शाम्बने उत्तर दिया :—"हे माता! आप ही मुझे यहाँ लायी हैं और आपहीने इन कन्याओंका पाणिग्रहण कराया है। समस्त नगर निवासी इसके साक्षी हैं!"

शाम्बकी यह बातें सुनकर सत्यभामा चक्करमें पड़ गयी। उसने आसपासके लोगोंसे इस सम्बन्धमें पूछताछ की, तो उन्होंने भी शाम्बका ही समर्थन करते हुए कहा कि :—"हे देवि! तुम व्यर्थ ही क्रोध क्यों करती हो।

शाम्बकी बातें बिलकुल सत्य हैं। तुम्हींने सबके सामने उन कन्याओंसे उसका व्याह कराया है!"

सत्यभामाको इससे बड़ा ही क्रोध आया। वह इस कपट-व्यवहारके लिये शाम्बकी भर्त्सना करती हुई अपने महल चली गयी।

इधर शाम्बकी यह बुद्धिमत्ता देखकर जाम्बवतीको बड़ाही आनन्द हुआ और उसने उसके विवाहोपलक्षमें एक महोत्सव मनाया, जिसमें कृष्णने भी समुचित भाग लिया।

इसी समय एक दिन शाम्बकुमार अपने पितामह वसुदेवको वन्दन करने गया। वह कुछ अविवेकी तो था ही, बात ही बातमें वसुदेवसे कहने लगा :—"आपने तो पृथ्वीमें भ्रमण करनेके बाद न जाने कितने दिनोंमें इतनी स्त्रियोंसे विवाह किया था, परन्तु मैंने तो घर बैठे ही एक साथ निन्यानवे स्त्रियों से विवाह कर लिया है। देखिये, आपमें और मुझमें कितना अधिक अन्तर है!"

उसके यह मूर्खतापूर्ण वचन सुनकर वसुदेव हँस पड़े। उन्होंने कहा :—"हे कूपमण्डूक! तेरे पिताने नगरसे

तुझे निकाल दिया था, फिर भी तू यहाँ चला आया! तुझे मानापमानका जरा भी खयाल नहीं है, परन्तु मैं तो भाईके अपमानसे अप्रसन्न होकर स्वयं वीरता-पूर्वक बाहर चला गया था। घरसे निकलकर मैंने श्मशान-कर द्वारा उदर-पूर्ति नहीं की। मैंने वीरता-पूर्वक देश-विदेशमें भ्रमण किया और वीरोचित ढंगसे ही अनेक कन्याओंका पाणिग्रहण किया। इसके बाद जब बन्धु-ओंसे भेट हुई और इन्होंने मुझसे आग्रह किया, तभी मैंने अपने देशमें पैर रक्खा। तेरी तरह निर्लज्ज होकर मैं अपने आप वापस नहीं आया!"

पितामहकी यह फटकार सुनकर शाम्बकुमारको होश आया और उसने अपनी मूर्खताके लिये क्षमा प्रार्थना करते हुए उनसे कहा :—"हे तात! यह सब मैंने अज्ञानतासे ही कहा था। आप मेरी इन अनुचित बातोंके लिये मुझे क्षमा करिये। आप वास्तवमें बड़ेही गुणवान हैं और अपने गुणोंके ही कारण आपने यह स्थान प्राप्त किया है।"

इसके बाद शाम्बने अपने पिता कृष्णसे भी विनय

अनुनय कर अपना अपराध क्षमा कराया। साथ ही उसने उन दुर्गुणोंको भी सदाके लिये जलाञ्जलि दे दी, जिनके कारण जब तब उसकी निन्दा हुआ करती थी। इतना करने पर उसका चरित्र भी निर्मल बन गया और एक देवताकी भाँति सांसारिक सुख उपभोग करते हुए वह अपने दिन आनन्द पूर्वक व्यतीत करने लगा।

सोलहवाँ परिच्छेद

जरासन्ध और शिशुपाल वध

कुछ दिनोंके बाद यवन द्वीपसे जलमार्ग द्वारा बहुतसा बहुमूल्य किराना लेकर कुछ वणिकलोग द्वारिका नगरी आये। वहाँपर उन्होंने और सब चीजें तो बेच डाली, परन्तु बहुमूल्य रत्न कम्बलोंका कोई अच्छा ग्राहक उन्हें वहाँ न मिल सका। इसलिये विशेष लाभकी

आशासे वे राजगृह नगर गये। वहाँके प्रसिद्ध व्यापारी उन्हें राजेन्द्र जरासन्धकी पुत्री जीवयशाके पास लिवा ले गये। उन्होंने उसे वह कम्बल दिखाये जो छूनेसे बहुत ही कोमल प्रतीत होते थे। जीवयशाने उनको देख सुनकर, उनकी जो कीमत लगायी वह उनकी लागतसे भी आधी थी। यह देख कर वणिक लोग कहने लगे कि :—"हे देवि! हमलोग तो विशेष लाभ की इच्छासे द्वारिका छोड़कर यहाँ आये थे, किन्तु यहाँ तो हमें वह मूल्य भी नहीं मिल रहा है जो द्वारिकामें मिलता था।"

जीवयशाने आश्चर्यपूर्वक पूछा :—"द्वारिकानगरी कहाँ है और वहाँपर कौन राज्य करता है।"

वणिकोंने कहा :—"भारतके पश्चिम तटपर समुद्रके देवताओंने एक नयी नगरी निर्माणकी है। उसीको लोग द्वारिका कहते हैं। वहाँ देवकी और वसुदेवके पुत्र कृष्ण राज्य करते हैं।"

कृष्णका नाम सुनते ही जीवयशा मानो महान शोकसागरमें जा पड़ी। उसकी आखोंमें आंसू भर आये।

वह कहने लगी :—"अहो ! मेरे पतिदेवको मारनेवाला अब तक इस संसारमें जीवित है और राज्य कर रहा है ! मेरेलिये इससे बढ़कर दुःखका विषय और क्या हो सकता है ?"

इस प्रकार जीवयशाको विलाप करते देख, जरासन्धने उससे इसका कारण पूछा। इसपर उसने कृष्णका सब हाल उसे कह सुनाया। साथही उसने कहा :—"हे तात ! मैंने कृष्णका सर्वनाश करनेकी प्रतिज्ञा की थी। वह प्रतिज्ञा पूरी न हो सकी, इसलिये अब मुझे अग्नि प्रवेश करनेकी आज्ञा दीजिये। मुझे अब यह जीवन भार रूप मालूम होता है।"

यह सुनकर जरासन्धने कहा :—"हे पुत्री ! तू रुदन मत कर। मैं कंसके शत्रुकी बहिनों और स्त्रियोंको अवश्य ही रुलाऊँगा।"

इसके बाद मगधपति जरासन्ध यदावोंसे युद्ध करनेकी तैयारी करने लगा। उसके चतुर मन्त्रियोंने उसे भरसक समझानेकी चेष्टा की, किन्तु उसने किसीकी एक न सुनी। उसने न केवल अपनी सेनाको ही प्रस्थान

करनेकी आज्ञा दी, बल्कि अपनी आज्ञा मानने वाले अनेक राजा और सामन्तोंको भी अपनी अपनी सेनाके साथ इस लड़ाईमें भाग लेनेके लिये निमन्त्रित किया।

जरासन्धका रण-निमन्त्रण पाकर उसके परम बल-वान सहदेवादिक पुत्र, महापराक्रमी चेदिराज, शिशुपाल, राजा हिरण्यनाभ, सौ भाइयोंके बलसे गर्विष्ट कुरुवंशी राजा दुर्योधन तथा और न जाने कितने राजा और सामन्त उसकी सेनामें उसी तरह आ मिले जिस प्रकार समुद्रमें विविध नदियाँ आकर मिलती हैं।

यथा समय समुद्र समान इस विशाल सेनाके साथ जरासन्धने राजगृहीसे प्रस्थान करनेकी तैयारी की। प्रयाण करते समय उसके शिरका मुकुट सरक पड़ा, हृदय-हार टूट गया, बायीं आँख फड़क उठी, वस्त्रके छोरमें पैर फँसकर रुक गया, सामने छींक हुई, महा भीषण सर्प रास्ता काट गया, बिल्ली भी सामनेसे निकल गयी, उसके बड़े हाथीने मलमूत्र विसर्जन कर दिया, वायु प्रतिकूल हो गया और गृद्ध शिरके ऊपर मँड़राने

लगे। जरासन्धने इन सब अशुभसूचक अपशकुनोंको देखा, किन्तु फिर भी उसने रणयात्रासे मुख न मोड़ा। बल्कि यों कहना चाहिये कि उसने अपने हृदयमें इनका विचार तक न आने दिया। निर्दिष्ट समय पर कूचका डंका बजा और जरासन्ध अपने गन्ध हस्तीपर सवार हो, अपनी विशाल सेनाके साथ पश्चिमकी ओर चल दिया।

जरासन्धके प्रस्थानका यह समाचार शीघ्रही कलह-प्रेमी नारद मुनि और राजदूतोंने कृष्णको कह सुनाया। कृष्णने भी उसे सुनते ही रणभेरी बजा दी। जिस प्रकार सौधर्म देवलोकमें सुघोषा घण्टेका आवाज सुनकर समस्त देव एकत्र हो जाते हैं, उसी प्रकार रणभेरीका नाद सुनकर समस्त यादव और राजे इकट्ठे हो गये। राजा समुद्रविजय इनमें सर्व प्रधान थे। उनके महानेमि, सत्यनेमि, दृढ़नेमि, सुनेमि, तीर्थंकर श्रीअरिष्टनेमि, जय-सेन, महीजय, तेजसेन, नय, मेघ, चित्रक, गौतम, श्वफल्क, शिवनन्द और विष्वक्सेन आदि पुत्र भी बड़े रथोंपर महारथियोंकी भाँति शोभा दे रहे थे। समुद्र-विजयका छोटा भाई अक्षोभ्य भी अपने उद्धव, धव,

क्षुभित, महोदधि, अंभोनिधि, जलनिधि, वामदेव और दृढ़व्रत नामक आठ पुत्रोंको साथ लेकर आया था। यह सभी अत्यन्त बलवान और युद्धविद्यामें परम निपुण थे।

इसी प्रकार सभी दशार्ह अपने अपने पुत्र और सेनाको लेकर इस युद्धमें भाग लेनेको उपस्थित हुए, जिनकी नामावली नीचे दी जाती है :—

तीसरे दशार्ह स्तिमित और उनके पाँच पुत्र, यथा—(१) उर्मिमान (२) वसुमान (३) वीर (४) पाताल (५) स्थिर।

चौथे दशार्ह सागर और उनके छः पुत्र, यथा—(१) निष्कम्प (२) कम्पन (३) लक्ष्मीवान (४) केसरी (५) श्रीमान और (६) युगान।

पाँचवें दशार्ह हिमवन् और उनके तीन पुत्र यथा—(१) विद्युत्प्रभ (२) गन्धमादन और (३) माल्यवान।

छठे दशार्ह अचल और उनके सात पुत्र, यथा—(१) महेन्द्र (२) मलय (३) सह्य (४) गिरि (५) शैल (६) नग और (७) बल।

सातवें दशार्ह धरण और उनके पाँच पुत्र, यथा—

(१) कर्कोटक (२) धनञ्जय (३) विश्वरूप (४) श्वेतमुख (५) वासुकी।

आठवें दशार्ह पूरण और उनके चार पुत्र, यथा—(१) दुष्पूर (२) दुर्मुख (३) दुर्दर्श और (४) दुर्धर।

नवें दशार्ह अभिचन्द्र और उनके छः पुत्र, यथा—(१) चन्द्र (२) शशाङ्क (३) चन्द्राभ (४) शशि (५) सोम और (६) अमृतप्रभ।

दसवें दशार्ह साक्षात् देवेन्द्रके समान परम बलवान वसुदेव भी इसी तरह अपने अनेक पुत्रोंके साथ शत्रु-सेनासे लोहा लेनेके लिये उपस्थित हुए। उनके पुत्रोंके नाम इस प्रकार थे :—

विजयसेनाके अक्रूर और क्रूर। श्यामाके ज्वलन और अशनिवेग। गन्धर्वसेनाके वायुवेग, अमितगति और महेन्द्रगति। मन्त्रीसुता पद्मावतीके सिद्धार्थ, दारुक और सुदारु। नीलयशाके सिंह और मतंगज। सोमयशाके नारद और मरुदेव। मित्रश्रीका सुमित्र। कपिलाका कपिल। पद्मावतीके पद्म और कुमुद। अश्वसेनाका अश्व-सेन। पुंड्राका पुंड्र। रत्नवतीके रत्नगर्भ और वज्रबाहु।

सोमराजकी पुत्री सोमश्रीके चन्द्रकान्त और शशिप्रभ। वेगवतीके वेगसान और वायुवेग। मदनवेगाके अनाधृष्टि, दृढ़मुष्टि और हिममुष्टि। बन्धुमतीके बन्धुषेण और सिंहसेन। पियंगुसुन्दरीका शिलायुध। प्रभावतीके गन्धार और पिङ्गल। जरारानीके जरत्कुमार और वाहलीक। अवन्तिदेवीके सुमुख और दुर्मुख। रोहिणीके बलराम, सारण और विदूरथ। बालचन्द्राके वज्रदंष्ट्र और अमितप्रभ। यह सभी बड़े ही बलवान और पूरे लड़ाकु थे।

बलरामके साथ बलरामके अनेक पुत्र भी आये थे, जिनमेंसे उल्मूक, निषध, प्रकृति, द्युति, चारुदत्त, ध्रुव, शत्रुदमन, पीठ, श्रीध्वज, नन्दन, श्रीमान, दशरथ, देवनन्द, आनन्द, विप्रथु, शान्तनु, पृथु, शतधनु, नरदेव, महाधनु और दृढ़धन्वा मुख्य थे।

इसी प्रकार कृष्णके भी अनेकानेक पुत्र वहाँ उपस्थित थे, जिनकी संख्या एक हजारसे भी अधिक थी। उनमें भानु, भामर, महाभानु, अनुभानु, वृहद्ध्वज, अग्निशिखा, धृष्ण, संजय, अकंपन, महासेन, धीर, गंभीर,

उदधि, गौतम, वसुधर्मा, प्रसेनजित्, सूर्य, चन्द्रवर्मा, चारुकृष्ण, सुचारु, देवदत्त, भरत, शंख प्रद्युम्न और शाम्ब आदिक मुख्य थे।

राजा उग्रसेन भी बड़े उत्साहके साथ इस युद्धमें भाग लेनेको उपस्थित हुए और अपने साथ अपने घर, गुणधर, शक्तिक, दुर्धर, चन्द्र और सागर—इन छः पुत्रोंको भी लेते आये। इनके अतिरिक्त ज्येष्ठ राजाके काका शाम्बन और उनके महासेन, विषमित्र, अजमित्र, तथा दानमित्र नामक चार पुत्र, महासेनाका पुत्र सुषेण, विषमित्रके हृदिक, सिनि और सत्यक, हृदिकके कृतवर्मा और दृढ़वर्मा सत्यकके युयुधान और युयुधानका गन्ध नामक पुत्र भी उपस्थित हुआ। इसी तरह दशार्होंके अन्यान्य पुत्र, बलराम और कृष्णके अगणित पुत्र, बुआ और बहिनोंके पुत्र तथा और न जाने कितने वीर पुरुष वहाँ आ आकर एकत्र हो गये।

इसके बाद क्रोष्टुकी ज्योतिषीके बतलाये हुए शुभ मुहूर्त्तमें दारुक सारथीवाले गरुड़ध्वज रथपर सवार हो, कृष्ण अपनी नगरीसे ईशान कोणकी ओर चलने लगे।

द्वारिकासे पैंतालिस योजन दूर निकल जाने पर सिनपल्ली नामक एक ग्राम मिला। वहींपर वे अपनी सेनाके साथ रुक गये।

उधर जरासन्ध भी तूफानकी तरह उत्तरोत्तर समीप आता जाता था। जब उसकी और कृष्णकी सेनामें केवल चार ही योजनका अन्तर रह गया, तब कई खेचर राजा समुद्रविजयके पास आकर कहने लगे कि :— "हे राजन्! हमलोग आपके भाई वसुदेवके अधीन हैं। आपके कुलमें भगवान श्री अरिष्टनेमि, जो इच्छामात्रसे जगतकी रक्षा या क्षय कर सकते हैं, बलराम और कृष्ण, जो असाधारण बलवान हैं तथा प्रद्युम्न और शाम्ब जैसे हजारों पुत्र पौत्र भी मौजूद हैं। ऐसी अवस्थामें निःसन्देह आपको किसीकी सहायता आवश्यक नहीं हो सकती। फिर भी यह समझ कर हम लोग उपस्थित हुए हैं कि शायद इस अवसर पर हमारी कोई सेवा आपके लिये उपयोगी प्रमाणित हो। हे प्रभो! हम चाहते हैं कि आप हमें भी अपने सामन्त समझ कर, हमारे योग्य कार्यसेवा सूचित करें।"

राजा समुद्रविजयने सम्मानपूर्वक कहा :—"आप-लोगोंने इस संकटके समय हमें सहायता देनेके विचारसे विना बुलाये ही यहाँ आनेका जो कष्ट उठाया है, तदर्थ मैं आपलोगोंको अन्तःकरणसे धन्यवाद देता हूँ। मैं सदैव आपका स्मरण रक्खूँगा और आपके योग्य कोई कार्य दिखायी देगा, तो अवश्य आपको कष्ट दूँगा।

यह सुनकर खेचर राजा बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने पुनः हाथ जोड़कर कहा :—"हे राजन् आप स्वयं युद्ध-निपुण हैं, इसलिये आपको किसी प्रकारकी सलाह देना—आपका अपमान करना है। फिर भी एक बात आपसे निवेदन कर देना हम अपना कर्त्तव्य समझते हैं। वह यह कि राजा जरासन्धसे आपलोगोंको घबड़ानेकी जरा भी जरूरत नहीं। उसे पराजित करनेके लिये अकेले कृष्ण ही पर्याप्त हैं। परन्तु वैताढ्य पर्वत पर कुछ ऐसे विद्याधर रहते हैं, जो उसके परम आज्ञा-कारी हैं। यदि वे यहाँ आ जायँगे, तो उनसे जीतना बहुत कठिन हो जायगा। यदि आप प्रद्युम्न और शाम्ब सहित वसुदेवको हमारा सेनापति बना दें, तो हमलोग

सामने जाकर उनको वहीं रोक सकते हैं। इससे जरा-सन्धका बल टूट जायगा और उसे जीतना सहज हो जायगा।

विद्याधरोंके यह वचन सुनकर समुद्रविजयने कृष्णसे सलाह कर, उनके कथनानुसार सब व्यवस्था कर दी। जन्म स्नात्रके समय श्री अरिष्टनेमिके हाथमें देवताओंने शस्त्रवारिणी औषधि बाँध दी थी। वही औषधि श्री अरिष्टनेमि भगवानने, विद्याधरोंके साथ प्रस्थान करते समय वसुदेवके हाथमें बाँध दी, जिससे शत्रुके शस्त्रास्त्रोंसे उनकी रक्षा हो सके।

उधर जरासन्धके शिविरमें भी युद्ध-मन्त्रणा हो रही थी। व्यूह रचनाके लिये अनेक राजा और सामन्त भिन्न भिन्न प्रकारकी सूचनाएँ दे रहे थे। परन्तु हंस नामक मन्त्रीश्वर आरम्भसे ही इस युद्धका विरोधी था। उसने अन्यान्य मन्त्रियोंके साथ आकर जरासन्धसे कहा :—

"हे स्वामिन्! आप अपने जमाई कंसका बदला लेना चाहते हैं, परन्तु आप यह नहीं सोचते, कि उसने जो अविचारपूर्ण कार्य किया था, उसीका उसको फल

भोगना पड़ा था। यदि मनुष्यमें विचार शक्ति नहीं होती, तो उसका उत्साह और उसकी प्रभुता उसके लिये विषरूप हो पड़ती है। हे प्रभो! नीतिशास्त्रका कथन है कि शत्रु अपने समान या अपनेसे दुर्बल भी हो, तो उसे अपनेसे बढ़कर समझना चाहिये। ऐसी अवस्थामें, महाबलवान कृष्ण, जो हमसे कहीं प्रबल हैं— उनसे युद्ध करना युक्ति-संगत नहीं कहा जा सकता। फिर, यह तो आप स्वयं भी देख चुके हैं, कि रोहिणीके स्वयंवरमें दसवें दशार्ह वसुदेवने समस्त राजाओंको चक्करमें डाल दिया था। उस समय उससे युद्ध करनेका किसीको भी साहस न हुआ। हमें यह भी न भूलना चाहिये, कि उसके बड़े भाई समुद्र विजयने ही उस समय हमारे सैन्यकी रक्षा की थी।

इसके अतिरिक्त यह तो आपको याद ही होगा, कि आप बहुत दिनोंसे वसुदेवकी खोजमें थे। द्यूत-क्रीड़ामें करोड़ रुपये जीतने और आपकी पुत्रीको जीवन-दान देनेपर हमलोगोंने उसे पहचाना और हमारे आद-मियोंने उसे मारनेकी चेष्टा भी की, किन्तु अपने प्रभाव

से उसका बाल भी बॉका न हुआ। अब तो उसके राम और कृष्ण जैसे दो बलवान पुत्र भी हो गये हैं। उन दोनोंने इतनी उन्नति की है, कि स्वयं कुबेरने उनके लिये द्वारिका नगरी बना दी है। वे दोनों महाशूरवीर हैं। महारथी पञ्च पाण्डवोंने भी संकटमें उनकी शरण स्वीकार की है। कृष्णके प्रद्युम्न और शाम्ब नामक दो पुत्र भी अपने पिता और पितामहकी ही भाँति बड़े पराक्रमी हैं। भीम और अर्जुन अपने बाहुबलसे यमको भी नीचा दिखा सकते हैं। इन सबोंको जाने दीजिये, केवल अरिष्टनेमि ही ऐसे हैं जो अपने भुज-दण्डसे क्षण-मात्रमें समस्त पृथ्वीको अपने अधिकारमें कर सकते हैं। साधारण योद्धाओंकी तो गणना भी नहीं की जा सकती।

हे मगधेश्वर! अब आप अपनी शक्ति पर विचार कीजिये। आपकी सेनामें शिशुपाल और रुक्मी अग्रगण्य हैं, परन्तु उनका बल तो रुक्मिणी-हरणके समय बलरामके युद्धमें देखा ही जा चुका है। कुरुवंशी दुर्योधन और गन्धारदेशके शकुनि राजा छल और प्रपञ्चमें जितने चढ़े बढ़े हैं, उतने बलमें नहीं। सच पूछिये तो वीरपुरुषोंमें

इनकी गणना ही न होनी चाहिये। अंग देशके राजा कर्ण अवश्य ही एक अच्छे योद्धा हैं, परन्तु कृष्णके लाखों महारथी और सुभटोंको देखते हुए वे भी किसी हिसाबमें नहीं हैं। यादव सेनामें बलराम, कृष्ण और अरिष्टनेमि—यह तीनों एक समान बली हैं, किन्तु इधर आपके सिवा इनके जोड़का और कोई नहीं है। इसी-लिये मैं कहता हूँ कि उनकी और हमारी सेनामें बहुत अधिक अन्तर है। समुद्रविजयके पुत्र श्रीअरिष्टनेमि, जिसे अच्युतादिक इन्द्र भी नमस्कार करते हैं, उनसे युद्ध करनेका साहस भी कौन कर सकता है?

इसके अतिरिक्त हे राजन्! यह तो आप देख ही चुके हैं कि कृष्णके अधिष्ठायक देवता आपके प्रतिकूल हैं और उन्होंने छलपूर्वक आपके पुत्र कालकुमारका प्राण लिया है। दूसरी ओर मैं यह देखता हूँ कि यादवलोग बलवान होनेपर भी न्यायानुकूल आचरण करते हैं। यदि ऐसी बात न होती तो वे मथुरासे द्वारिकामें क्यों भाग जाते? अब जब आपने उन्हें युद्ध करनेके लिये बाध्य किया है, तब वे अपनी सारी शक्ति संचय कर

आपके सामने आ उठे हैं। उनका वास्तविक उद्देश्य आपसे युद्ध करना नहीं, अपनी रक्षा करना है। मेरी धारणा है कि यदि आप अब भी युद्धका विचार छोड़ दें, तो यह सब लोग द्वारिका वापस चले जायँगे। मेरी समझमें इससे दोनों दलोंको लाभ हो सकता है।"

मन्त्रीकी यह बातें सुनकर जरासन्ध क्रुद्ध हो उठा। वह कहने लगा :—"हे दुराशय! मालूम होता है कि कपटी यादवोंने तुझे फोड़कर अपने हाथमें कर लिया है। इसीलिये तू उनके बलकी प्रशंसा कर मुझे डराता है। परन्तु यह सब व्यर्थ है। हे कायर! शृगालोंकी आवाज सुनकर सिंह कभी डर सकता है? हे दुर्मते! यदि तुझमें युद्ध करनेका साहस न हो, तो तू युद्धसे दूर रह सकता है, किन्तु ऐसी बात कहकर दूसरोंको युद्धसे दूर रखनेकी चेष्टा क्यों करता है? मैं तो अकेला ही इनके लिये काफी हूँ।"

जरासन्धके यह वचन सुनकर बेचारा हँसक मन्त्री चुप हो गया। किन्तु डिम्भक नामक खुशामदी मन्त्रीने कहा :—"हे राजन्! आपका कहना यथार्थ है।

हमलोगोंको इस युद्धसे कदापि मुख न मोड़ना चाहिये। युद्धसे विमुख होनेकी अपेक्षा संग्राममें मर जाना भी अच्छा है, क्योंकि उसमें यश मिलता है। क्षत्रियोंके लिये तो युद्धसे बढ़कर दूसरी प्रिय वस्तु और हो ही नहीं सकती। इसलिये हे राजन्! हमलोगोंको निरुत्साह न होकर अब व्यूह रचनामें तत्पर होना चाहिये। मेरी समझमें चक्रव्यूह हमलोगोंके लिये परम उपयुक्त होगा। इससे हमलोग आसानीसे शत्रुसंहार कर सकेंगे।"

डिम्भककी यह बातें जरासन्धको अत्यन्त प्रिय मालूम हुईं। उसने कहा :—"हाँ, तुमने समयोचित बातें कही हैं। मैं तुम्हारे विचारोंको पसन्द करता हूँ। कल हमलोग चक्रव्यूहकी रचना कर, लड़ाईकी सब तैयारियाँ पूरी कर लेंगे।"

दूसरे दिन सूर्योदय होतेही जरासन्धने प्रधान सेना-पतिको चक्र-व्यूह सजानेकी आज्ञा दे दी। तदनुसार शीघ्र ही सेनापतिने समस्त सेना और उसके संचालकोंको चक्र-व्यूहके रूपमें सजाना आरम्भ किया। समस्त चक्रमें एक हजार नोकें निकाली गयीं और उस प्रत्येक नोक

पर एक राजाकी अधीनतामें सौ हाथी, दो हजार रथ, पाँच हजार घोड़े और सोलह हजार पैदल—इतनी सेना नियुक्त की गयी। चक्रके मध्यभागमें पाँच हजार राजाओंके साथ स्वयं मगधाधिप जरासन्ध जा बैठा और उसकी रक्षाके लिये उसके चारों ओर सवा छ-हजार राजे अपनी अपनी सेनाके साथ नियुक्त किये गये। जरासन्धके पीछे गान्धार और सैंधव राजाकी सेना नियुक्त की गयी। दाहिनी ओर सौ कौरव, बायीं ओर मध्यदेशके राजा और आगेकी ओर कई सेनापति नियुक्त किये गये। चक्रव्यूहके मुखपर शकटव्यूहकी रचनाकर चक्रनाभिकी सन्धियों पर पचास राजे और बीच बीचमें चतुर्विध सेना खड़ी की गयी। शेष सेनापति और बलवान राजागण चक्रव्यूह बनाकर खड़े हो गये। यह सब व्यवस्था पूर्ण होनेपर राजा जरासन्धने कोशलाधिपति राजा हिरण्यनाभको इस चक्रव्यूहका सेनापति बनाया। इतनेमें शाम हो गयी, इसलिये शेष कार्य दूसरे दिनपर छोड़कर सब लोग शिविरमें लौट आये।

यादवोंको जब मालूम हुआ कि जरासन्धने चक्र-

व्यूहकी रचना की है, तब उन्होंने उसीके सामने दुर्भेद्य गरुड़व्यूहकी रचना की। इस व्यूहके मुख पर महा तेजस्वी अर्धकोटि कुमार नियुक्त किये गये। सबके सामनेका मोर्चा बलराम और कृष्णने अपने अधिकारमें रक्खा। वसुदेवके अक्रूर, कुमुद, पद्म, सारण, विजयी, जय, जरत्कुमार, सुमुख, दृढ़मुष्टि, विदूरथ, अनाधृष्टि, दुर्मुख, और सुमुख नामक पुत्र एक लाख रथोंके साथ कृष्णके अंगरक्षक नियुक्त हुए। उनके पीछे कोटि रथ सहित राजा उग्रसेन खड़े किये गये और उनके अंग रक्षकका काम उनके चार पुत्रोंको दिया गया। इन सबके पीछे धर, सारण, चन्द्र, दुर्धर और सत्यक नामक पाँच राजे नियुक्त किये गये, जिनका काम अपने आगेके वीरोंकी रक्षा करना था।

दाहिनी ओरका स्थान राजा समुद्रविजयने अपने भाई और पुत्रोंके साथ अपने अधिकारमें रक्खा। महानेमि, सत्यनेमि, दृढ़नेमि, सुनेमि, अरिष्टनेमि, विजयसेन, मेघ, महीजय, तेजसेन, जयसेन, जय और महाद्युति आदिक कुमार तथा पचीस लाख रथ राजा समुद्रविजयके अगल-बगलमें नियुक्त किये गये। बायीं ओर बल-

रामके पुत्र तथा महायोद्धा युधिष्ठिर आदि पाण्डवोंकी नियुक्ति की गयी। उनके पीछे पचीस लाख रथोंके साथ उल्मूक, निषध, शत्रुदमन, प्रकृति द्युति, सात्यकि, श्रीध्वज, देवानन्द, आनन्द, शान्तनु, शतधन्वा, दशरथ, ध्रुव, पृथु, विपृथु, महाधनु, दृढ़धन्वा, अतिवीर और देवनन्दन आदिक योद्धा नियुक्त किये गये। यह सब बड़े ही बलवान थे और कौरवोंका वध करनेके लिये भी अत्यन्त उत्सुक रहते थे।

इन सबके पीछे चन्द्रयशा, सिंहल, बर्बर, काम्बोज, केरल और द्रविड़—यह छः राजे साठ हजार रथोंके साथ नियुक्त किये गये। उनके पीछे पर्वतके समान धीर राजा शाम्बन नियुक्त किये गये। उनके बादमें भानु, भामर, भीरुक, असित, संजय, भानुक, धृष्णु, कंपित, गौतम, शत्रुञ्जय, महासेन, गंभीर, बृहद्ध्वज, वसुवर्मा, कृतवर्मा, उदय, प्रसेनजित्, दृढ़वर्मा, विक्रान्त और चन्द्रवर्मा आदि रक्खे गये। गरुड़ व्यूहकी यह सब रचना कृष्णके आदेशानुसार उन्हींकी निगरानीमें पूर्ण की गयी।

उधर सौधर्मेन्द्रको जब यह मालूम हुआ, कि बन्धु-

प्रेमके कारण श्रीअरिष्टनेमि भी इस युद्धमें भाग लेने जा रहे हैं, तब उन्होंने मातलि नामक सारथीके साथ शस्त्रोंसे भरा हुआ अपना रथ उनके पास भेज दिया। वह रथ सूर्यके समान प्रकाशवान, नाना रत्नोंसे सुशोभित और परम तेजस्वी था। श्रीअरिष्टनेमि प्रभु मातलिकी प्रार्थना स्वीकार कर, सहर्ष उस पर सवार हो गये। इसके बाद राजा समुद्रविजयने कृष्णके ज्येष्ठ पुत्र अनाधृष्टिको इस व्यूहका सेनापति नियुक्त किया। इस अवसर पर यादवोंकी सेनामें गगनभेदी जय जयकार ध्वनि हुई, जिसे सुनकर जरासन्धकी सेना क्षुब्ध हो उठी।

दूसरे दिन सुबह, युद्धकी तैय्यारी पूर्ण होते ही दोनों दलोंमें घोर युद्ध आरम्भ हो गये। दोनों दलोंके सुभट धीरे धीरे अपने स्थानसे आगे बढ़ने लगे। इसके बाद ज्योंही एक दलसे दूसरे दलकी भेट हुई, त्योंही उनमें भयंकर मारकाट मच गयी। तरह तरहके शस्त्र उछलने लगे। दोनों दल एक दूसरेके व्यूहमें घुसनेकी जी जानसे चेष्टा करने लगे। परन्तु वे इस प्रकार दुर्भेद्य थे, कि किसीकी चेष्टा सफल न हो सकी।

कुछ देर तक इसी प्रकार युद्ध होता रहा, परन्तु कुछ देरके बाद जरासन्धके सैनिकोंने कृष्णके सैनिकोंकी अगली पंक्ति भंग कर दी। यह देखकर कृष्णने अपने पताका युक्त हाथको ऊँचा उठा दिया। यह संकेत पाते ही वह सैनिक, कि जिनके पैर उखड़ गये थे, अपने अपने स्थान पर हिमालयकी भाँति अचल होकर खड़े हो गये। इधर अपनी पंक्तिको भंग होते देख, महानेमि, अर्जुन, अनाधृष्टि तीनों जने अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने अपनी अपनी सेनाको सजग कर उसी समय अपने अपने शंख फूँक दिये। महानेमिने सिंहनाद नामक, अनाधृष्टिने वलाहक नामक और अर्जुनने देवदत्त नामक शंख बजाया। इसी समय और भी अनेक शंख और रणवाद्य बज उठे। उन सबोंकी आवाजसे शत्रुसेनामें बड़ी खलबली मच गयी और समस्त सैनिक जलचरोंकी भाँति क्षुब्ध हो उठे।

इसके बाद शीघ्रही महानेमि, अनाधृष्टि और अर्जुन इन तीनों सेनापतियोंने प्रलयकालके समुद्रकी भाँति शत्रुसेनाको घेर लिया। शत्रुओंके लिये उनका भुजबल सहन करना अत्यन्त कठिन था, इसलिये वे भयसे व्याकुल

हो उठे। देखते ही देखते उन तीनों महारथियोंने तीन स्थानसे उस चक्रव्यूहको तोड़ डाला। जिस प्रकार जंगल में मदोन्मत्त हाथी सरिता-तटको छिन्न भिन्न कर डालते हैं और जिस प्रकार नदीकी धारा स्वयं अपने लिये मार्ग बना लेती है, उसी प्रकार वह तीनों शत्रुओंके व्यूहको छिन्न भिन्न कर, अपना रास्ता बनाते हुए, चक्रव्यूहमें घुस पड़े। उनके बाद और भी अनेक सैनिकोंने उनका अनुसरण किया। शत्रु-सेनामें इससे खलबली मच गयी और सैनिकगण युद्ध-भूमिसे भागनेकी तैयारी करने लगे।

अपनी सेनाको विचलित होते देखकर दुर्योधन, रुक्मी और रुधिरराजाके पुत्रने उन तीनोंसे लोहा लेनेकी तैयारी की। अनेक महारथियोंसे घिरे हुए दुर्योधनने अर्जुनको, रुधिर पुत्रने अनाधृष्टिको और रुक्मीने महानेमिको रोका। इससे उन छःओंमें द्वन्द्व युद्ध आरम्भ हो गया। उनकी सेनामें भी इसी तरह परस्पर घोर युद्ध होने लगा। राजा रुक्मी अपनेको बड़ा ही वीर मानता था और अभिमान पूर्वक महानेमिको युद्धके लिये ललकार रहा था। यह देख, महानेमिको उस पर

क्रोध आ गया और उन्होंने उसी समय बाण वर्षाकर उसे पराजित कर दिया।

अब रुक्मीको मालूम हुआ कि महानेमिके सामने ठहरना सहज काम नहीं है। उन्होंने उसके दाँत खट्टे कर दिये थे। यदि कुछ देर और वह उनके सामने खड़ा रहता, तो शायद उसकी जीवन-लीला वहीं समाप्त हो जाती, परन्तु इतनेही में उसकी दुर्दशा देखकर शत्रुन्तप आदि सात राजा उसकी सहायताके लिये वहाँ दौड़ आये। महानेमि इससे जरा भी विचलित न हुए। वे और भी मुस्तैदीसे उनसे युद्ध करने लगे। थोड़ी ही देरमें उन्होंने उनके समस्त शस्त्र कमल-नालकी भाँति तोड़-फोड़ डाले।

यह देखकर शत्रुन्तप राजाको बड़ा ही क्रोध आ गया। उसने बड़ी देर तक महानेमिके साथ बाण युद्ध किया। परन्तु इस युद्धका जब कोई फल न हुआ, तब उसे और भी क्रोध आया और उसने महानेमि पर एक महा भयंकर शक्ति छोड़ दी। उस शक्तिको देखकर समस्त यादव चिन्तित हो उठे; क्योंकि उस शक्तिके

अधीन विविध शस्त्रधारी और अत्यन्त क्रूरकर्मी हजारों किंकर थे, जो प्रकट हो होकर नाना प्रकारका उत्पात मचा रहे थे। उनको देखकर मातलिने भगवान अरिष्ट-नेमिसे कहा :—"हे भगवन्! जिस प्रकार प्राचीन कालमें रावणको धरणेन्द्रके पाससे अमोघ विजया शक्ति प्राप्त हुई थी, उसी प्रकार तप करने पर इस राजाको भी बलीन्द्रसे यह शक्ति प्राप्त हुई है। इसलिये वज्रके सिवा और किसी भी शस्त्रसे यह शक्ति नहीं भेदी जा सकती।

मातलिका यह वचन सुनकर श्री अरिष्टनेमिने मातलिको महानेमिके धनुष पर वज्र बाण चढ़ानेकी आज्ञा दी और महानेमिने उसी बाणको छोड़कर तत्काल उस शक्तिको काट डाला। इसके बाद उन्होंने राजा शक्रन्तपको शस्त्र और रथ रहित बनाकर, उसके समस्त संगियोंके भी धनुष काट डाले। इतने समयमें रुक्मी सावधान हो गया और दूसरे रथ पर सवार हो पुनः युद्ध करनेके लिये महानेमिके सामने आ पहुँचा। इसबार रुक्मी तथा शक्रन्तप आदि आठ राजाओंने साथ मिलकर

महानेमिसे युद्ध आरम्भ किया। रुक्मी जिस जिस धनुष-को उठाता, उसीको महानेमि छेद डालते। इस प्रकार रुक्मीके क्रमशः इक्कीस धनुष उन्होंने काट डाले। इससे उसने क्रुद्ध होकर उन पर कौबेरी नामक गदाका वार किया, किन्तु महानेमि कुमारने उसे आग्नेय बाणसे भस्म कर डाला। इससे रुक्मी और भी क्रुद्ध उठा। इसबार उसने मेघकी भाँति लाखों बाणोंकी वृष्टि करनेवाला विरोचन बाण छोड़ा, किन्तु महानेमिने माहेन्द्र बाणसे उसे भी रोक दिया। इसकेबाद उन्होंने एक दूसरा बाण छोड़ा, जिससे रुक्मीके ललाटमें गहरा जख्म हो गया और वह शिर पकड़ कर वहीं बैठ गया। उसकी यह अवस्था देखकर वेणुदारी उसे तुरन्त शिविरमें उठा ले गया।

इसके बाद विविध शस्त्रोंकी वर्षाकर महानेमिने उन सात राजाओंको भी परेशान कर डाला। समुद्र-विजयने राजा द्रुमको, स्तिमितने भद्रराजको और अक्षोभ्यने वसुसेनको यम पुरी भेज दिया। सागरने पुरिमित्रको, हिमवानने धृष्टद्युम्नको, धरणने अष्टक नृपको,

अभिचन्द्रने उत्कट शतधन्वाको, पूरणने द्रुपदको, सुनेमिने कुन्ति भोजको, सत्यनेमिने महापद्मको और दृढ़नेमिने श्रीदेवको मार डाला। तदनन्तर इन सवोंकी सेना अपने सेनापति राजा हिरण्यनाभकी शरणमें जाकर रहने लगी।

इसी तरह दूसरी ओर भीम, अर्जुन तथा बलरामके वीर पुत्रोंने कौरवोंको परेशान कर डाला। अर्जुनने उन पर इतनी बाण वृष्टि की, कि चारों ओर अन्धकार छा गया। गाण्डीव धनुषके निर्घोषने सबको बधिर सा बना दिया। उस समय अर्जुनकी चपलता और स्फूर्ति भी देखने योग्य हो रही थी। वे बाणको कब हाथमें लेते थे, कब धनुष पर चढ़ाते थे और कब उसे छोड़ते थे—वह आकाशके निमेष-रहित देवताओंको भी ज्ञात न हो सकता था। उनकी स्फूर्तिके कारण सबको ऐसा मालूम होता था, मानो यह सब काम वे एक साथ ही कर डालते हैं।

अर्जुनकी इस बाणवर्षासे व्याकुल हो, दुर्योधन, कासि, त्रिगर्त, सबल, कपोत, रोमराज, चित्रसेन, जयद्रथ, सौवीर, जयसेन, शूरसेन और सोमक—यह सभी

राजा, क्षत्रिय धर्मको भूलकर एक साथ ही अर्जुनसे युद्ध करने लगे। इसी समय सहदेव शकुनिसे, भीम दुःशासनसे, नकुल उलूकसे, युधिष्ठिर शल्यसे, पाण्डव पुत्र दुर्मर्षणादिक छः योद्धाओंसे और बलरामके पुत्र अन्यान्य राजाओंसे भिड़ गये।

अर्जुन पर दुर्योधन और उसके संगी राजाओंने एक साथ ही अगणित बाणोंकी वृष्टि की, किन्तु अर्जुनने क्षणमात्रमें उन सबोंको कमलनालकी भाँति काट डाला। इसके बाद अर्जुनने दुर्योधनके सारथीको मार डाला, रथ और अश्वको छिन्न भिन्न कर डाला और उसका बख्तर भूमिपर गिरा दिया। इससे अंगशेष दुर्योधन बहुत ही लज्जित हुआ और उछल कर शकुनिके रथ पर जा बैठा। इसके बाद अर्जुनने कासि प्रभृति दस राजओं पर बाणवृष्टि कर उन्हें भी उसी तरह व्याकुल बना दिया, जिस तरह ओलेकी मारसे हाथी व्याकुल हो उठता है।

उधर राजा शल्यने एक बाणसे राजा युधिष्ठिरके रथ की पताका छेद डाली। इसपर युधिष्ठिरने शर सहित उसका धनुष छेद डाल। शल्यको इससे बड़ा ही

क्रोध आया और उसने दूसरा धनुष लेकर युधिष्ठिर पर इतनी वाणवृष्टि की, कि वे उनके कारण वर्षाकालके सूर्यकी भाँति छिप गये। युधिष्ठिर इससे कुछ विचलित हो उठे और उन्होंने उस पर विजलीके समान एक भयं-कर शक्ति छोड़ दी। जिस प्रकार अग्निकी लपटमें पड़ने पर गोह तत्काल जल मरती है, उसी प्रकार उस शक्तिने शल्यकी जीवन-लीला समाप्त कर दी। उस शक्तिके डरसे और भी अनेक राजा उस समय रणक्षेत्रसे भाग खड़े हुए। भीमने भी दुर्योधनके भाई दुःशासनको द्यूत कपटकी याद दिलाकर क्षणमात्रमें मार डाला।

इसी प्रकार शकुनि और सहदेवमें भी बहुत देर तक माया और शस्त्रयुद्ध होता रहा। अन्तमें सहदेवने भी उस पर एक घातक वाण छोड़ा, परन्तु वह शकुनि तक न पहुँचने पाया। दुर्योधनने क्षत्रिय व्रतका त्याग कर वीचहीमें तीक्ष्ण वाणसे उसे काट डाला। यह देखकर सहदेवने ललकार कर उससे कहा :—"हे दुर्योधन! द्यूतकी भाँति रणमें भी तू छल करता है! परन्तु यह कायरोंका काम है, वीरपुरुषोंका नहीं। तुम दोनों

परम कपटी हो और इस समय एकसाथ ही मेरे हाथ लग गये हो। अब तुम दोनोंकी जीवनलीला मैं एकसाथ ही समाप्त करूँगा, जिससे तुम दोनोंको एक दूसरेका वियोग न सहन करना पड़े।

इतना कह सहदेवने तीक्ष्ण बाणोंसे दुर्योधनको ढक दिया। दुर्योधनने भी बाणवर्षा कर सहदेवको बहुत तंग किया। उसने न केवल उनका धनुष दण्ड ही काट डाला, बल्कि उनका नाश करनेके लिये यमके मुख समान एक ऐसा बाण छोड़ा, जो शायद उनका प्राण लेकर ही मानता, परन्तु अर्जुनने उस बाणको अपने गरुड़ बाणसे बीचमें ही रोक दिया। शकुनिने भी सहदेवको उसी तरह बाणों द्वारा चारों ओरसे घेर लिया, जिस तरह मेघ चारों ओरसे पर्वतको घेर लेते हैं। इससे सहदेवने क्रुद्ध होकर उसके सारथी और अश्वको मार डाला, रथको तोड़ डाला और अन्तमें शकुनिका भी मस्तक काट डाला।

उधर नकुलने भी क्षणमात्रमें उलूकको रथसे नीचे गिरा दिया। इससे उसने भागकर दुर्मर्षण राजाके रथ

पर आश्रय ग्रहण किया। परन्तु दुर्मर्षण आदि छःओं राजाओंको द्रौपदीके पुत्रोंने पराजित कर दिया, इसलिये उन सबोंने भागकर दुर्योधनका आश्रय लिया।

इसके बाद दुर्योधन कासि प्रभृति राजाओंको साथ लेकर अर्जुनसे युद्ध करने लगा। किन्तु बलरामके पुत्रोंसे घिरे हुए अर्जुनने भयंकर बाण वर्षा कर शत्रुसेनाके छक्के छुड़ा दिये। जयद्रथ इस युद्धमें दुर्योधनका दाहिना हाथ हो रहा था, इसलिये अर्जुनने मौका मिलते ही उसको भी समाप्त कर दिया। इससे जरासन्धकी सेनामें घोर हाहाकार मच गया, क्योंकि उसकी गणना बड़े-बड़े वीरोमें की जाती थी।

जयद्रथके वधसे क्रुद्ध हो, वीर कर्ण अर्जुनको मारनेके लिये दौड़ आया। कर्ण अर्जुनके मुकाबलेका वीर माना जाता था और वह वास्तवमें ऐसा ही था। उन दोनोंमें बहुत देर तक ऐसा बाणयुद्ध होता रहा, कि आकाशमें देवता भी उसे देखकर स्तम्भित हो गये। अर्जुनने अनेक बार कर्णको रथ और शस्त्र रहित बनाया, किन्तु इससे विचलित न हो, कर्णने नये नये रथ और

शस्त्र ग्रहण कर, अर्जुनसे लड़ना चालू रक्खा। अन्तमें जब उसके समस्त शस्त्रास्त्र समाप्त हो गये, तब वह तलवार लेकर रथसे कूद पड़ा और आसपासके सैनिकोंको मारता हुआ अर्जुनकी ओर आगे बढ़ा। अर्जुनने इस समय बाणोंकी घोर वर्षा की, जिससे वीरकुञ्जर कर्ण घबड़ा उठा। उसका समूचा शरीर पहलेहीसे चलनी हो रहा था। इस बार अर्जुनके कई बाण छातीमें लगते ही वह भूमि पर गिर पड़ा और उसके प्राण निकल गये।

कर्णके गिरते ही भीम और अर्जुनने जय-सूचक शंखनाद किया, जिससे उनकी सेनाका उत्साह चौगुना बढ़ गया। जयद्रथ और कर्णके मारे जानेसे दुर्योधनको बड़ा क्रोध आया और उसने हस्तियोंकी बड़ी सेना लेकर भीमसेन पर आक्रमण कर दिया। उसका यह साहस देखकर भीमको भी बड़ा जोश आगया और उन्होंने रथके ऊपर रथ अश्वके ऊपर अश्व और हाथीके ऊपर हाथीको पटककर दुर्योधनकी सेना नष्ट-भ्रष्ट कर दी। परन्तु इतनेहीसे भीमकी युद्ध कामना पूर्ण न हुई। वे इसी

तरह सेनाका संहार करते हुए महामानी दुर्योधनके निकट जा पहुँचे।

दुर्योधनकी सेना भीमसेनकी विकट मारके कारण अस्त व्यस्त हो रही थी, इसलिये उसे धैर्य देकर, दुर्योधन भीमकी ओर झपट पड़ा। केसरीके समान क्रुद्ध हो, मेघ की भाँति गर्जना करते हुए वह दोनों वीर एक दूसरेके सामने डट गये और दीर्घकाल तक विविध शस्त्रों द्वारा युद्ध करते रहे। अन्तमें द्यूतके वैरको स्मरण कर भीमसेनने अपनी विशाल गदा द्वारा दुर्योधनको मारकर यम-सदन भेज दिया। उसकी मृत्यु होते ही उसके सैनिक भागकर सेनापति हिरण्यनाभकी शरणमें गये और पाण्डव तथा यादवगण सेनापति अनाधृष्टिके निकट चले गये।

अपनी सेनाको स्थान स्थान पर पराजित होते देखकर सेनापति हिरण्यनाभ बेतरह चिढ़ उठा और यादवोंको ललकारता हुआ सेनाके अग्रभागमें आ खड़ा हुआ। उसे देखकर राजा अभिचन्द्रने कहा :—"हे नृपाधम! एक नीच पुरुषकी भाँति तू बकवाद क्या करता है? क्षत्रिय वचन शूर नहीं होते, बल्कि पराक्रमशूर होते हैं।"

अभिचन्द्रके यह वचन सुनकर हिरण्यनाभने क्रोधपूर्वक उसपर कई बाण छोड़े, परन्तु अर्जुनने उनको बीचहीमें काट दिया। अर्जुनका यह कार्य देखकर हिरण्यनाभने उनपर भी कई बाण छोड़े, परन्तु इसी बीच भीमसेन वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने गदाका प्रहार कर हिरण्यनाभको रथसे नीचे गिरा दिया। हिरण्यनाभ इससे लज्जित होकर दूसरे रथपर बैठ गया और क्रोधपूर्वक यादव सेना पर ऐसी बाणवृष्टि करने लगा, कि जिससे एक भी ऐसा आदमी न बचा, जिस पर कहीं चोट न आयी हो। उसकी इस बेढब मारसे यादवसेनामें खलबली मच गयी।

हिरण्यनाभकी यह उद्दण्डता देखकर समुद्रविजयका पुत्र जयसेन क्रुद्ध हो उठा और धनुष खींच कर उससे युद्ध करनेको तैयार हुआ। यह देखकर हिरण्यनाभने कहा :—"हे जयसेन! तू व्यर्थ ही मरनेके लिये क्यों तैयार हुआ है?" यह कहनेके साथ ही उसने जयसेनके सारथीको मार डाला। इससे जयसेनने तुरन्त उसके कवच, धनुष और ध्वजको छेद कर उसके सारथीको मार डाला। जयसेनके इस कार्यने हिरण्यनाभकी क्रोधाग्निमें

आहुतीका काम दिया। उसने जयसेनको मारनेके लिये उसपर दस मर्मवेधी बाण छोड़े, जिससे जयसेनका प्राणान्त हो गया। भाईकी यह अवस्था देखकर महीधर अपने रथसे कूद पड़ा और ढाल तलवार लेकर हिरंण्यनाभको मारने दौड़ा, परन्तु हिरण्यनाभने दूरसे ही देखकर क्षुरप्र बाणसे शिर काट डाला।

अपने दो भाइयोंकी यह गति देखकर अनाधृष्टिको क्रोध आ गया! इसलिये वह हिरण्यनाभके सामने आकर उससे युद्ध करने लगा। उधर जरासन्ध आदिक राजा भी भीम और अर्जुनादिक सुभटोंके साथ पृथक पृथक द्वन्द्वयुद्ध करने लगे।

प्रागज्योतिष्कका भगदत्त नामक राजा भी जरासन्धकी ओरसे रण-निमन्त्रण पाकर इस युद्धमें भाग लेने आया था। वह अपने हाथी पर बैठकर महानेमिके सामने आ उठा और उनको ललकार कर कहने लगा :—
"मैं तेरे भाईके साले रुक्मी या अश्मकके समान नहीं हूँ। मैं तो नारकियोंका वैरी यम हूँ। इसलिये अब तू सावधान हो जा।"

इतना कह उसने अपने हाथीको वेगपूर्वक महा-नेमिकी ओर बढ़ाया। महानेमि भी सावधान ही थे। उनके सारथीने उनके रथको कई बार मण्डलाकार घुमा-कर अन्तमें उसे एक स्थानपर खड़ा कर दिया। इस बाद महानेमिने शीघ्रही उस हाथीके पैरोंमें बाण मारक उसे जर्जरित कर दिया, फलतः वह भगदत्त सहित भूमि-पर गिर पड़ा। उसकी यह दुर्गति देखकर महानेमिको उसपर दया आ गयी। उन्होंने हँसकर उससे कहा :—"क्यों तुम तो रुक्मी नहीं हो!" यह कहते हु उन्होंने धनुषके अग्रभागसे स्पर्श कर उसे जीता ह छोड़ दिया।

अब भूरिश्रव और सात्यकिमें भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ। पहले वह दोनों दिव्य शस्त्रों द्वारा युद्ध कर रहे। शस्त्र पूरे हो जाने पर दोनोंमें घोर मुष्टि यु हुआ। यह युद्ध परम दर्शनीय था। दोमेंसे एक भी वी जिस समय भूमिपर गिरता, उस समय पृथ्वी हिल उठत थी और जिस समय वे ताल ठोंकते थे, उस समय सबको मेघ गर्जनका भ्रम होता था। यह युद्ध भी बहु

देर तक होता रहा। अन्तमें जब भूरिश्रव थक गया, तब सात्यकिने उसे जमीन पर पटक, उसकी छाती पर दोनों घुटने रख, उसकी गर्दन पीछेको मोड़ दी, जिससे तुरन्त उसका प्राणान्त हो गया।

दूसरी ओर वीर अनाधृष्टिने राजा हिरण्यनाभका धनुष काट डाला। इससे हिरण्यनाभने उसपर भयंकर मुद्गर छोड़ा। वह मुद्गर जिस समय ज्वाला समूहकी भाँति अनाधृष्टिकी ओर अग्रसर हुआ, उस समय दसों दिशाएँ उसके प्रकाशसे आलोकित हो उठीं। वह मुद्गर वास्तवमें बड़ा ही घातक शस्त्र था, परन्तु अनाधृष्टिने तीक्ष्ण बाणोंसे उसे बीचहीमें काट डाला।

अपने मुद्गरका प्रहार व्यर्थ जाते देखकर हिरण्यनाभको बड़ा ही क्रोध आया। वह अपने रथपरसे कूद पड़ा और ढाल तलवार लेकर अनाधृष्टिको मारने दौड़ा। उसे अपनी ओर आते देखकर अनाधृष्टि भी रथसे कूदकर उसके सामने आ गया। दोनोंमें बड़ी देर तक युद्ध हुआ। जब अनाधृष्टिसे युद्ध करते करते हिरण्यनाभ थक गया, तब अनाधृष्टिने मौका देखकर तलवारसे उसका शिर काट

लिया। उसकी मृत्यु होते ही जरासन्धकी सेनामें हाहाकार मच गया। उस समय सूर्यास्त भी हो चला था। इसलिये जरासन्धके सब सैनिक जरासन्धके पास और कृष्णके सैनिक कृष्णके पास चले गये।

दूसरे दिन सूर्योदय होते ही फिर दोनों दलोंमें घोर युद्ध आरंभ हो गया। जरासन्धने आज महाबली शिशुपालको अपना सेनापति बनाया। यादवोंने पहले दिनकी तरह आज भी गरुड़व्यूह और शिशुपालने चक्रव्यूह बनवाया। युद्ध आरम्भ होनेके पहले जरासन्ध रण-भूमिमें उपस्थित हो, सब व्यवस्था देखने लगा। अपने सैन्यकी सब व्यवस्था देखनेके बाद उसने हिंसकमन्त्रीसे यादव सेनाके सुभटोंका परिचय पूछा। हिंसकने उंगली उठा उठाकर उन सबोंका परिचय देते हुए कहा :—"महाराज! देखिये, उस श्याम अश्ववाले रथमें अनाधृष्टि हैं, जिसे यादवोंने अपना सेनापति बनाया है। उसका ध्वजामें गजका लाञ्छन है, जिससे वह तुरन्त पहचाना जा सकता है। उस नील अश्ववाले रथमें युधिष्ठिर हैं। श्वेत अश्व और कपिध्वजवाला वह रथ अर्जुनका है।

यह नील कमलके पत्र समान कान्तिवाले अश्व जिस रथमें जुते हैं, उसमें भीमसेन बैठे हैं। वह देखो, राजा समुद्रविजय हैं। उनके अश्वोंका वर्ण सुवर्णके समान और ध्वजा पर सिंहका चिह्न है। वह शुभ्रवर्ण अश्ववाले रथमें अरिष्टनेमि हैं। उनकी ध्वजामें वृषभका चिह्न है। उस कबरे अश्ववाले रथमें अक्रूर हैं। उनकी ध्वजामें कदलीका चिह्न है। वह देखिये, सात्यकिका रथ है, जिसमें तीतर और उड़द जैसे वर्णके अश्व जुते हुए हैं। कुमुद समान कान्तिवाले वह अश्व जिस रथमें जुते हुए हैं, उसमें वह महानेमिकुमार हैं। उस शुक-चञ्चु जैसे अश्ववाले रथमें राजा उग्रसेन बैठे हुए हैं। वह देखिये, जरत्कुमारका रथ है। उसके अश्वोंका पृष्ठ भाग कनकके समान और ध्वजा पर मृगका चिह्न है। उस कम्बोज देशके अश्वोंवाले रथपर राजा श्लक्ष्णरोमका पुत्र सिंहल बैठा हुआ है। इस कजले और रक्त-वर्णवाले जल-कपिध्वज रथमें सिन्धु देशके मण्डन रूप श्री वीतभय पत्तनके स्वामी मेरु राजा हैं। वह देखिये, पद्मरथ नगरके राजा पद्मरथ हैं, जिनके अश्वोंकी कान्ति पद्मके समान

है। उस कमलध्वज रथपर राजा सारण दिखायी दे रहे हैं। वह बलरामके भ्राता विदूरथका रथ है, जिसमें पंच-तिलक वाले अश्व जुते हुए हैं और जिसकी ध्वजा पर कुंभका चिह्न अंकित है। सेनाके मध्यभागमें सफेद घोड़े-वाले उस गरुड़ध्वज रथमें आपका परम शत्रु कृष्ण है। कृष्णकी दाहिनी ओर जंगम कैलासके समान वह बल-राम है। इनके अतिरिक्त यादवसेनामें और भी अनेक सुभट हैं, जिनका परिचय देना इस समय कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव है।

यादवसेनाके सैनिकोंका यह परिचय पाकर जरासंन्ध की आँखें लाल हो गयीं। उसने सारथीको अपना रथ बलराम और कृष्णके सामने ले चलनेका आदेश दिया। जरासन्धका पुत्र युवराज यवनकुमार इसी समय वसुदेवके पुत्र अक्रूरादिसे जा भिड़ा। जिस प्रकार अष्टापदके हाथी और सिंहोंमें घोर युद्ध होता है, उसी प्रकार महाभुज यवन और अक्रूरादिमें भीषण संग्राम होने लगा। कुछ देरके बाद बलरामके लघु भ्राता सारणने विविध शस्त्रोंकी घोर वर्षाकर चारों ओरसे यवनका रास्ता रोक दिया।

इसपर यवनने हाथी पर सवार हो, सारणका रथ तोड़ डाला। इससे सारण को भी बड़ा ही क्रोध आगया और उसने उसी समय यवनकुमारका शिर काट लिया। साथ ही उसने उस हाथीको भी काट डाला, जिसपर यवनकुमार बैठे थे। सारणका यह अद्भुत कार्य देखकर यादवसेना मारे आनन्दके मत्तमयूरकी भाँति नाच उठी।

इस तरह अपने युवराजको अपनी आँखोंके सामने मरते देखकर जरासन्धके क्रोधका वारापार न रहा। वह यादवोंका संहार करनेके लिये उसी तरह झपट पड़ा, जिस तरह सिंह हरिणोंके दलपर टूट पड़ता है। उसने देखते ही देखते आनन्द, शत्रुदमन, नन्दन, श्रीध्वज, ध्रुव, देवानन्द, पीठ, हरिषेण, नरदेव और चारुदत्त नामक बलरामके दस पुत्रोंको मार डाला। उसके इस कार्यसे यादव सेनामें आतङ्क छा गया और वह युद्ध-भूमिको छोड़कर इधर उधर भागने लगी। जरासन्ध जिधर जाता, उधर ही मैदान साफ हो जाता। कुछ लोगोंको तो वह मार डालता और कुछ लोग उसके

भयके कारण मैदान छोड़कर भाग जाते। इससे कृष्णकी समूची सेनामें खलबली मच गयी।

यादव-सेनाकी यह अवस्था देखकर सेनापति शिशुपालको हँसी आ गयी। उसने कृष्णसे व्यंगमें कहा :—"हे कृष्ण! यह गोकुल नहीं है। यह तो क्षत्रियोंका संग्राम है!"

कृष्णने मुस्कुराकर कहा :—बेशक, इसीलिये मैं कहता हूँ कि आप अभीसे भाग जाइये, वर्ना आगे पीछे आपको भागना ही पड़ेगा। रुक्मिणी हरणके समय आपने कितनी-देरतक संग्राम किया था, यह क्या आपको याद नहीं है?

कृष्णके यह मर्म वचन शिशुपालके हृदयमें बाणकी तरह चुभ गये। उसने कृष्णको मारनेके लियेर उनप तीक्ष्ण बाण छोड़े, किन्तु कृष्णने उन बाणोंसे अपनी रक्षा कर, अपने बाणोंसे उसके धनुष, कवच और रथको तोड़फोड़ डाला। इससे शिशुपाल तलवार खींचकर बकवाद करता हुआ कृष्णको मारने दौड़ा। कृष्णने अब विलम्ब करना उचित न समझा। उन्होंने उसी

समय उसका शिर काटकर उसकी जीवन-लीला समाप्त कर दी।

शिशुपालके इस वचसे जरासन्ध और भी क्रुद्ध हो गया। उसने यम समान भीषण मुखाकृति बनाकर यादवोंसे कहा :—"अरे! तुमलोग व्यर्थ ही अपना प्राण क्यों दे रहे हो? अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं है। उन दोनों दुर्मति गोपालोंको मुझे सौंप दो, मैं सहर्ष वापस चला जाऊँगा।"

उसके यह वचन सुनकर यादवगण कुचले हुए सर्पकी भाँति झल्ला उठे। वे विविध शस्त्र उठाकर जरासन्धको मारनेके लिये दौड़ पड़े। जरासन्ध तो तैयार ही था। अकेला होनेपर भी वह चारों ओरके यादवोंसे इस प्रकार युद्ध करने लगा, मानो उसने अनेक रूप धारण किये हों। उसने भीषण बाण वर्षा कर अनेक यादवोंको आहत कर डाला। वह अपने शत्रुओं पर इतनी तेजीसे वार करता था, कि उसके सामने किसीको भी खड़े रहनेका साहस न पड़ता था। एक ओर उसकी विकट बाण वर्षासे समस्त यादव सेना त्रस्त व्यस्त हो गयी,

दूसरी ओर जरासन्धके अट्ठाइस पुत्रोंने बलरामके दाँत खट्टे कर दिये और तीसरी ओर उसके ६९ पुत्रोंने कृष्णको मार डालनेके विचारसे उनको चारों ओरसे घेर लिया।

जरासन्ध और उसके पुत्रोंकी यह रण-निपुणता देखकर बलराम और कृष्ण विशेष सावधानीके साथ युद्ध करने लगे। इस समय दोनों ओरसे इतनी बाणवर्षा होती थी, कि वे मार्गहीमें परस्पर टकरा जाते थे। इस प्रकार बाणोंके टकराने पर उनसे चिनगारियाँ निकल पड़ती थीं, जो सैनिकों पर गिरनेसे अग्निवर्षाका काम करती थीं।

जरासन्धके पुत्रोंको विशेष उपद्रव करते देख, इसी समय बलरामने उसके २८ पुत्रोंको हलसे खींचकर मूशल से चावल की भाँति कूट डाला। यह देख, जरासन्ध थोड़ी देरके लिये सहम गये और अपने मनमें कहने लगे कि :—"मैं ज्यों-ज्यों इस गोपालकी उपेक्षा करता हूँ, त्यों-त्यों इसका मिजाज चढ़ता जा रहा है। अब मैं इसे कदापि जीता न छोड़ूँगा।" इतना कह, जरासन्धने

बलरामके हृदय पर वज्र समान गदाका प्रहार किया, जिससे वे व्याकुल हो रक्त वमन करने लगे। बलरामकी यह अवस्था देखकर यादव सेनामें घोर हाहाकार मच गया। जरासन्धने इसी अवस्थामें बलराम पर पुनः प्रहार करनेकी इच्छा की, परन्तु इसी समय अर्जुन बीचमें पड़कर उससे युद्ध करने लगे, इसलिये उसकी वह इच्छा पूर्ण न हो सकी।

बलरामकी व्याकुलता देखकर कृष्णको बड़ा ही क्रोध आया। उन्होंने इसी समय जरासन्धके ६९ पुत्रोंको, जो उनसे युद्ध कर रहे थे, मार डाला। अपने इन पुत्रोंकी मृत्युसे जरासन्धका ध्यान कृष्णकी ओर आकर्षित हो गया। वह अपने मनमें कहने लगा कि :— बलराम तो मर ही जायगा और अर्जुनको मारनेसे लाभ भी क्या है ? इसलिये अब सबसे पहले कृष्णकी ही खबर लेनी चाहिये।"

यह सोचकर जरासन्ध कृष्णकी ओर झपटा। यह देखकर लोग कहने लगे, कि अब कृष्णकी खैर नहीं। इसी समय मातलिने श्रीनेमिनाथ प्रभुसे कहा :—"हे

भगवन् ! जिस तरह अष्टापदके सामने हाथीका बच्चा किसी हिसाबमें नहीं होता, उसी प्रकार आपके सामने यह जरासन्ध किसी हिसाबमें नहीं है। आज आप उसकी उपेक्षा कर रहे हैं, तभी तो वह संसारसे यादवोंका नाम मिटा देनेको तैयार हुआ है। इसलिये हे जगदीश ! आज आप अपने बलकी कुछ लीला दिखलाइये। हे प्रभो ! यद्यपि आप जन्मसे ही सावद्य कर्मसे विमुख हैं, तथापि शत्रुओं द्वारा पीड़ित अपने कुलकी आपको उपेक्षा न करनी चाहिये।"

सारथीके यह वचन सुनकर श्रीनेमिनाथ प्रभुने पौरन्दर शंखको हाथमें लेकर उसे इस तरह फूँका, कि उसकी प्रबल ध्वनिसे दसों दिशाएँ व्याप्त हो गयीं। मेघनादसे भी अधिक भयंकर वह नाद सुनकर जरासन्धके सैनिक क्षुब्ध हो उठे और यादव सेनामें उत्साह और उमंगकी नयी लहर दौड़ गयी।

इसके बाद श्रीनेमिकी आज्ञासे मातलिने उनके रथको समरभूमिमें मण्डलाकार घुमाया और वे इन्द्रधनुष धारण कर शत्रुसेना पर भयंकर बाणवर्षा करने लगे।

कुछ ही देरमें उन्होंने समस्त रणभूमिको बाणोंसे व्याप्त कर दिया। इससे शत्रुसेनामें हाहाकार मच गया और बड़े बड़े सैनिक प्राण लेकर भागने लगे। श्रीनेमिनाथ प्रभुने अनेक सैनिकोंके शिर काट डाले, अनेकोंके धनुष और रथ तोड़ डाले और अनेकोंके मुकुट भूमिपर गिरा दिये। परन्तु उनका कोई कुछ भी न कर सका। उनपर प्रहार करना दूर रहा, बल्कि उनकी ओर आँख उठाकर देखनेका भी किसीको साहस न हुआ। उछलते हुए महासागरके सामने क्या पर्वत कभी ठहर सकते हैं? श्रीनेमिनाथ प्रभुने अकेले ही एकलाख मुकुटधारी राजाओंको मार डाला। जरासन्ध प्रतिवासुदेव था। इसलिये प्रभुने सोचा कि प्रतिवासुदेव की मृत्यु तो वासुदेवके ही हाथसे होनी चाहिये, यह सोचकर उसे न मारा। थोड़ी ही देरमें यह अद्भुत पराक्रम दिखाकर प्रभुने अपना रथ फेर लिया।

शत्रुसेनाके अस्त व्यस्त हो जानेसे यादव सेनाका उत्साह चौगुना बढ़ गया और वह शत्रुओंकी शेष सेनाको उसी तरह काटने लगी, जिस तरह किसान

खेतका नाज काटता है। पाण्डवोंने भी शेष कौरवोंको इसी समय समाप्त कर अपने वैरका बदला ले लिया। बलराम भी इतने समयमें स्वस्थ हो गये और उन्होंने अपने हल-मूशल द्वारा जरासन्धके अनेक सैनिकोंको यमधाम भेज दिया।

इससे जरासन्ध कुछ हताश हो गया। वह समझ गया कि यादवोंको जीतना बहुत ही कठिन है। कोई दूसरा उपाय न देख, अन्तमें उसने अपनी जराविद्याका प्रयोग कर समस्त यादव सेनाको वृद्ध बना दिया। इससे सब लोग निर्बल बन गये और उनमें शस्त्र उठाने की भी शक्ति न रह गयी। सेनाका यह हाल देखकर कृष्ण चिन्तित हो उठे। उन्हें यह न समझ पड़ा, कि सेनाका यह वृद्धत्व कैसे दूर किया जाय। अन्तमें अरिष्ट-नेमिको समर्थ जानकर वे उनके पास गये और उनसे सेनाका सब हाल कह सुनाया।

अरिष्टनेमिको अपने स्नपन (स्नात्र) जलका महात्म्य मालूम होने पर भी, अपने ही मुखसे उसके सम्बन्धमें उन्होंने कुछ कहना उचित न समझा। इसलिये उन्होंने

जरा निवारणका एक दूसरा ही उपाय कृष्णको बतलाते हुए कहा :—"हे भ्राता! आप पाताल लोकके नायक धरणेन्द्र नागेन्द्रको उद्देश्य कर अट्ठम तप कीजिये। उनके देवगृहमें सुरासुर, विद्याधर और राजाओं द्वारा पूजित भविष्यमें होनेवाले तेईसवें तीर्थंकर श्रीपार्श्वनाथका बिम्ब विद्यमान है। उसके स्नात्र-जलसे निःसन्देह समस्त यादवोंका बुढ़ापा दूर हो सकता है। आप अट्ठम तप कर उनसे उस बिम्बकी याचना कीजिये। आपके पुण्य प्रतापके कारण वे आपकी यह इच्छा अवश्य पूर्ण करेंगे।"

नेमिनाथ प्रभुके यह वचन सुनकर कृष्णकी बहुत कुछ चिन्ता दूर हो गयी। उन्होंने उसी समय अट्ठम तप द्वारा धरणेन्द्रको प्रसन्न कर उनसे पार्श्वनाथका बिम्ब प्राप्त किया। इसके बाद उसका स्नात्र-जल उन्होंने अपनी सेनापर तीनबार छिड़क दिया। जलके छींटे पड़ते ही समस्त सेना जरा-मुक्त हो, शत्रुओंसे पूर्ववत् युद्ध करने लगी।

यह जरामोचनका अधिकार शंखेश्वर-पार्श्वनाथके

तीर्थकल्प और और श्राद्धविधि आदिक ग्रन्थोंमें विद्यमान है, इसलिये इसके सम्बन्ध में किसीको सन्देह न करना चाहिये।

जरामुक्त यादवसेनाके हाथसे पुनः अपनी सेनाका संहार होते देखकर जरासन्ध बेतरह क्रुद्ध उठा। उसने कृष्णके सामने आकर कहा :—"हे गोपाल! इतने दिनोंतक तू अपनी मायासे ही जीवित रह सका है। मायासे ही तूने मेरे जामाता कंसको मारा था और मायासे ही तूने कालकुमारका प्राण लिया था। तू अस्त्र-विद्यासे रहित है, इसलिये तेरे साथ युद्ध करना मैं अनावश्यक समझता था, परन्तु अब तेरी मायाका अन्त लाना आवश्यक है, इसलिये मैं तेरे जीवनके साथ ही अब तेरी मायाका भी अन्त लाऊँगा और अपनी पुत्री जीवयशाकी प्रतिज्ञा पूर्ण करूँगा।"

उसके यह अभिमानपूर्ण वचन सुनकर कृष्णको हँसी आ गयी। उन्होंने कहा :—"हे राजन्! आपका कहना यथार्थ है। मैं वास्तवमें अस्त्र-विद्यासे रहित हूँ, किन्तु आपकी अस्त्रविद्या देखनेके लिये मैं आज अत्यन्त

उत्सुक हूँ। मैं आपकी तरह आत्म-प्रशंसा नहीं करता, परन्तु इतना अवश्य कहता हूँ कि आपकी पुत्रीकी प्रतिज्ञा अल्प समयमें अवश्य पूरी होगी, किन्तु वह पूरी होगी अग्नि प्रवेश द्वारा, किसी दूसरे कार्यद्वारा नहीं। मेरे इस कथनमें सन्देहके लिये जरा भी स्थान नहीं है।"

कृष्णके इन वचनोंसे क्रुद्ध होकर जरासन्धने उनपर कई तीक्ष्ण बाण छोड़े, किन्तु कृष्णने उन सबोंको काट डाला। इसके बाद वे दोनों क्रोधपूर्वक अष्टापदकी भाँति स्थिर हो युद्ध करने लगे। उस समय उनके धनुर्दण्डके शब्दसे दसों दिशाएँ व्याप्त हो गयीं, युद्धके वेगसे समुद्र क्षुब्ध हो उठे और आकाशमें विद्याधर भी त्रसित हो गये। पर्वतके समान उनके रथोंके इधर उधर दौड़नेके कारण पृथ्वी भी क्षणभरके लिये काँप उठी। वह युद्ध क्या था, मानो प्रलयकाल उपस्थित हो गया था।

थोड़ी ही देरमें कृष्णने जरासन्धके समस्त अस्त्रोंको क्षणभरमें काट डाले। यह देख, अभिमानी जरासन्धने अपने अमोघास्त्र चक्ररत्नको याद किया, इसलिये वह

उसी समय आ उपस्थित हुआ। क्रोधान्ध जरासन्धने उसको भी चारों ओर घुमाकर कृष्ण पर छोड़ दिया।

वेगके कारण वह चक्र हाथसे छूटकर जिस समय आकाशमें पहुँचा, उस समय उसे देखकर विद्याधर भी काँप उठे। कृष्णकी समस्त सेना व्याकुल हो, एक दूसरेका मुँह ताकने लगी। उस चक्रको रोकनेके लिये कृष्ण, बलराम, पञ्च पाण्डव तथा अन्यान्य योद्धाओंने अपने अपने अस्त्र छोड़े, किन्तु वे सब बेकार हो गये। लोगोंने समझा कि अब कृष्णकी खैर नहीं। यह अवश्य ही उनके प्राण ले लेगा। सब लोग चिन्तित और व्याकुल भावसे यह देखनेके लिये कृष्णकी ओर दौड़ पड़े, कि वह चक्र लगने पर उनकी क्या अवस्था होती है।

चक्र वास्तवमें दुर्निवार्य था। उसकी गति कोई भी न रोक सकता था। साथ ही वह अमोघ भी था। यह भला कब हो सकता था कि वह कृष्ण तक न पहुँचे? वह कृष्ण तक पहुँचा और उनके भी लगा, किन्तु शस्त्रकी तरह नहीं, फूलोंके एक गेंदकी तरह। उसका स्पर्श कृष्णके लिये मानो सुख और शान्तिदायक बन-

गया। वह चक्र क्या था, मानो कृष्णका मूर्तिमान प्रताप था। कृष्णने छातीमें लगते ही उसे एक हाथसे पकड़ लिया। उनका यह कार्य देखते ही देवतागण पुकार उठे—"भरतक्षेत्रमें नवे वासुदेव उत्पन्न हो गये। नवम वासुदेवकी जय हो!" यह कहकर उन्होंने कृष्ण पर सुगन्धित जल और पुष्पोंकी वृष्टि भी की।

कृष्णने उस चक्रको हाथमें ही लिये हुए कहा :—"हे अभिमानी जरासन्ध! क्या यह भी मेरी माया है? यदि तू अपना कल्याण चाहता हो, तो मेरी बात मानकर अब भी वापस चला जा और वहाँ जाकर पूर्ववत् राज्य कर। तू वृद्ध है, इस संसारमें चन्द दिनोंका मेहमान है, इसलिये मैं तेरा प्राण नहीं लेना चाहता। यदि तू मेरे इन वचनों पर ध्यान न देगा तो यह तेरा ही चक्र तेरे प्राणोंका ग्राहक बन जायगा।"

मानी जरासन्धने कहा :—"अपने ही चक्रसे मुझे इस तरह डरनेका कोई कारण नहीं। यह तो मेरे लिये कुम्हारके चक्रके समान है। तेरी आज्ञा मानकर मैं रणसे विमुख होना भी पसन्द नहीं कर सकता। यदि

तू चक्र चलाना चाहता है, तो सहर्ष चला, मैं तुझे मना नहीं करता।"

जरासन्धके यह वचन सुनकर कृष्णने रोषपूर्वक वह चक्र जरासन्ध पर छोड़ दिया। किसीने ठीक ही कहा है कि पराया हथियार भी पुण्यवानके हाथमें पड़ने पर अपना बन जाता है। चक्र लगते ही जरासन्धका शिर धड़से अलग हो गया और वह चौथे नरकका अधिकारी हुआ। कृष्णकी इस विजयसे चारों ओर आनन्द छा गया और देवताओंने भी उनकी जय मनाकर उनपर पुष्प-वृष्टि की।

सत्रहवाँ परिच्छेद

कृष्ण वसुदेवका राज्याभिषेक

युद्ध समाप्त हो जानेपर नेमिनाथ प्रभुने कृष्णके शत्रु राजाओंको बन्धन-मुक्त कर दिया। फलतः वे हाथ जोड़, प्रभुको प्रणाम कर कहने लगे :—"हे नाथ! यदुवंशमें तीनों लोकके स्वामी आपका अवतार होनेसे ही

हम और हमारे स्वामी जरासन्ध पराजयको प्राप्त हुए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वासुदेव प्रति वासुदेवको मारते ही हैं, फिर भी आप जैसे भ्राता जिसके सहायक हो, उसके लिये तो कहना ही क्या है? किन्तु भवितव्यताको कौन टाल सकता है? संसारमें जो कुछ होता है, वह विधाताके करने पर ही होता है। अब हम सब लोग आपकी शरणमें आये हैं, ताकि हमारा कल्याण हो, क्योंकि संसारमें केवल आपही निष्कारण बन्धु हैं। जो आपकी शरणमें आता है, उसका सदैव मंगल ही होता है। इसीलिये हम आपके निकट अपने मंगलकी याचना करते हैं।

राजाओंके यह वचन सुनकर नेमिकुमार उन्हें कृष्णके पास लिवा ले गये। कृष्ण नेमिकुमारको देखते ही रथसे उतर कर उनको भेट पड़े। इसके बाद नेमिकुमारकी बात मानकर कृष्णने सब राजाओंका अपराध क्षमा कर दिया। साथही उन्होंने अपने काका समुद्रविजयकी आज्ञासे जरासन्धके पुत्र सहदेवको मगधदेशका चतुर्थ भाग देकर, उसे उसके पिताके सिंहासन पर बैठाया। इसी तरह

उन्होंने समुद्र विजयके पुत्र महानेमिको शौरपुरमें, हिरण्य-नाभके पुत्र रुक्मनाभको कोशला नगरीमें और उग्रसेनके पुत्र धरको मथुरा नगरीमें राजसिंहासन पर स्थापित किया। इतनेहीमें सूर्यास्त हो गया। नेमिकुमारने अब कोई काम न होनेके कारण मातलिको रथ सहित स्वर्गके लिये बिदा कर दिया। तदनन्तर कृष्ण और नेमिकुमार भी अपने समस्त सैनिकोंके साथ शिविरमें चले गये। इधर राजा समुद्रविजय भी शिविरमें जाकर वसुदेवके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे।

दूसरे दिन समुद्रविजय और वासुदेवके निकट तीन विद्याधरियोंने आकर कहा :—"हे प्रभो! प्रद्युम्न, शाम्ब तथा अनेक विद्याधरोंके साथ वसुदेव शीघ्र ही आपके पास आ रहे हैं। उनकी विचित्र कथा भी सुनिये। वसुदेव जब यहाँसे वैताढ्य पर्वत पर गये थे, तब वहाँ उन्होंने शूर्पक, नीलकण्ठ, अंगारक और मानसवेग आदि अपने समस्त पूर्व वैरियोंको घेर घेरकर उनके साथ घोर युद्ध किया। इतनेही में कल एक देवताने खबर दी कि जरासन्धको मारकर कृष्ण वासुदेव हो गये हैं।

यह सुनकर सब विद्याधर अपने अपने हथियार छोड़कर अपने स्वामी मन्दरवेगके पास गये। मन्दरवेगने सब हाल सुनकर उनको आज्ञा दी, कि यदि तुमलोग अपना कल्याण चाहते हो तो युद्धका विचार छोड़कर इसी समय सुन्दर भेंटें ले आओ। हमलोग वसुदेवको मध्यस्थ बनाकर हरिकी शरणमें जायेंगे।"

विद्याधरपतिकी यह बात सब विद्याधरोंने सहर्ष मान ली। वे उसी समय अपने अपने घरसे सुन्दर और बहुमूल्य भेंटें ले आये। विद्याधरपति उन सबोंको साथ लेकर वसुदेवके पास गया। वसुदेवने उसकी प्रार्थना सुनकर अपने शत्रुओंका अपराध क्षमा कर दिया। इससे समस्त विद्याधरोंको अत्यन्त आनन्द हुआ। इसी समय विद्याधर पतिने अपनी बहिनका व्याह प्रद्युम्नके साथ कर दिया। त्रिपथर्षभ नामक एक दूसरे राजाने भी अपनी पुत्रीका विवाह प्रद्युम्नके साथ कर दिया। देवर्षभ और वायुपथ नामक दो राजाओंने अपनी अपनी पुत्री शाम्ब-कुमारसे ब्याह दी। यह विवाह-कार्य सम्पन्न हो जानेके बाद वे सब यहाँ आनेके लिये वैताढ्य पर्वतसे चल चुके

हैं। उन्होंने पहलेसे यह समाचार आपको सूचित करनेके लिये हमें यहाँ भेजा है। वे अब थोड़ी ही देरमें यहाँ आ पहुँचेंगे।"

विद्याधरियोंके मुखसे यह समाचार सुनकर कृष्ण और समुद्रविजयको बड़ा ही आनन्द हुआ। वे उत्सुकतापूर्वक वसुदेवकी राह देखने लगे। थोड़ी देरमें वसुदेव भी दोनों राजकुमार, उनकी नव-विवाहिता पत्नियों और विद्याधरोंके साथ वहाँ आ पहुँचे। समुद्रविजयने उन सबका यथोचित सत्कार किया। इसके बाद समस्त विद्याधरोंने सुवर्ण, रत्न विविध मुक्ताफल, हाथी, घोड़े आदि बहुमूल्य चीजें कृष्णकी सेवामें भेट स्वरूप रख कर उनकी अधीनता स्वीकार की।

इसके बाद कृष्णने जयसेन आदिकी और सहदेवने जरासन्ध आदिकी उत्तर क्रिया की। जीवयशा परम अभागिनी थी। उसने पति और पिताका कुल सहित संहार अपनी आँखोंसे देखनेके बाद अब अग्नि प्रवेश कर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की। यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि यादवोंने जिस स्थान पर शिविर स्थापित

किया था, उस स्थान पर सेनपल्ली नामक एक ग्राम था। युद्धमें विजय होनेके कारण यादवोंको वहाँपर अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ था, इसलिये कृष्णने उस ग्रामका नाम आनन्दपुर रख दिया। उससे थोड़ी दूर पर उन्होंने शंखपुर नामक एक नवीन नगर बसाया और उसमें एक सुन्दर प्रासाद बनवा कर वहाँ उन्होंने पार्श्व-नाथ भगवानका बिम्ब स्थापित किया।

इसके बाद अनेक यक्ष और विद्याधरोंके साथ उसी स्थानमें रहते हुए कृष्णने छः मासमें अर्धभरतको अपने अधिकारमें कर लिया। इसके बाद वे मगध देशमें गये। वहाँ कोटिशिला नामक एक महाशिला थी, जो एक योजन लम्बी, एक योजन चौड़ी और अर्धभरतके देव देवियों द्वारा अधिष्ठित थी। उसे कृष्णने अपने बायें हाथ द्वारा पृथ्वीसे चार अंगुल ऊंचे उठाकर, संसार को अपनी अलौकिक शक्तिका परिचय दिया। इस महाशिलाके सम्बन्धमें कहा गया है कि प्रथम वासुदेव उसे भुजाके अग्रभाग तक, दूसरे वासुदेव मस्तक तक, तीसरे कण्ठ तक, चौथे छाती तक, पाँचवें हृदय तक,

छठे कमर तक, सातवें जंघाओं तक, आठवें जानु तक और नवें वासुदेव भूमिसे चार अंगुलकी ऊंचाई तक ऊपरको उठा सकते हैं, क्योंकि अवसर्पिणी कालमें क्रमशः उनका बल क्षीण होता जाता है।

इसके बाद कृष्ण द्वारिका नगरीमें लौट आये। वहाँ सोलह हजार राजा तथा देवताओंने भक्तिपूर्वक वासुदेवके पद पर उनका अभिषेक किया। इसके बाद कृष्णने पाण्डवोंको कुरुदेशकी ओर तथा अन्यान्य मनुष्य तथा विद्याधरोंको अपने अपने स्थानके लिये विदा किया।

वासुदेवके पद पर कृष्णका अभिषेक होनेपर समुद्र-विजयादिक दश दशार्ह, बलदेव आदिक पाँच महावीर उग्रसेन आदिक सोलह हजार राजे, प्रद्युम्न आदिक साढ़े तीन कोटि कुमार, दुर्दान्त शाम्बादिक साठ हजार कुमार, वीरसेन आदिक इकीस हजार वीर, महासेन आदिक पचास हजार आज्ञाकारी महर्द्धिक, तथा हजारों सेठ शाहूकार और सार्थवाह सदा कृष्णकी आज्ञा शिरोधार्य करनेके लिये उनकी सेवामें उपस्थित रहने लगे।

राज्याभिषेकके समय सोलह हजार राजाओंने कृष्ण

को भक्तिपूर्वक अनेक रत्न तथा दो दो कन्याएं प्रदान की थीं। उन बत्तीस हजार कन्याओंमें से सोलह हजार कन्याओंके साथ कृष्णने, आठ हजारके साथ बलदेवने तथा आठ हजारके साथ अन्यान्य कुमारोंने ब्याह किया। इसके बाद कृष्ण, बलराम तथा समस्त राज-कुमार अपनी अपनी पत्नियोंको लेकर क्रीड़ा उद्यान तथा क्रीड़ा पर्वतोंमें आनन्दपूर्वक विचरण करने लगे।

इन सबोंको क्रीड़ा करते देख, राजा समुद्रविजय तथा शिवादेवीने नेमिकुमारसे प्रेमपूर्वक मधुर शब्दोंमें कहा:—"हे वत्स! तुमको देखकर हमारे नेत्र सदा शीतल हो जाया करते हैं। अब तुम यदि किसी योग्य कन्याका पाणिग्रहण कर लो, तो हमारे मनकी साध पूरी हो जाय।"

माता पिताके यह वचन सुनकर जन्मसे ही संसारके प्रति वैराग्य धारण करनेवाले तीनों ज्ञानसे युक्त नेमिनाथ प्रभुने कहा:—"मुझे कोई योग्य कन्या नहीं दिखायी देती। यह तो सब दुःखमें डालने वाली हैं। ऐसी स्त्रियोंकी मुझे आवश्यकता नहीं है। जब कोई योग्य

कन्या दिखायी देगी, तब मैं उससे सहर्ष ब्याह कर लूंगा। इसके लिये मुझसे बारंबार आग्रह करनेकी जरूरत नहीं।" इस प्रकार नेमिकुमारने गम्भीरतापूर्वक अपने सरल प्रकृति माता-पिताको विवाहके लिये आग्रह करनेसे मना कर दिया।

इसके कुछ दिन बाद यशोमतीका जीव अपराजित विमानसे च्युत होकर उग्रसेन राजाकी धारिणी रानीके उदरमें आया। गर्भकालपूर्ण होने पर उसने एक सुन्दर पुत्रीको जन्म दिया। पिताने उसका नाम राजीमती रक्खा। माता-पिताके लालन-पालनसे वह शीघ्रतापूर्वक बड़ी होने लगी।

इसके कुछ ही दिन बाद द्वारिका निवासी धनसेन श्रेष्ठीने अपनी कमलामेला नामक पुत्रीका व्याह उग्रसेनके पुत्र नभसेनके साथ करना स्थिर किया। जिस समय यह बातचीत चल रही थी, उसी समय कहींसे घूमते घामते नारदमुनि नभसेनकुमारके घर आ पहुंचे। उस समय नभसेन अन्य कार्यमें फँसा था, इसलिये वह नारदमुनिका सत्कार न कर सका। इससे नारदमुनि उसपर असन्तुष्ट

हो गये और उन्होंने उसे विपत्तिमें डाल देनेका संकल्प किया। वे उसी समय सागरचन्द्रके घर गये। सागर-चन्द्र शाम्ब आदिका मित्र था और उन्हें अत्यन्त प्रिय था। सागरचन्द्रने नारदमुनिका सत्कार कर उनसे पूछा :—"हे मुनिराज! आप रातदिन सर्वत्र विचरण करते हुए आश्चर्य जनक चीजें देखा करते हैं। यदि कहीं कोई कौतुक दिखायी दिया हो तो उसका वर्णन कीजिये!"

नारदमुनिने कहा :—"मैंने एक आश्चर्यजनक वस्तु आज इसी नगरमें देखी है और वह धनसेन श्रेष्ठीकी पुत्री कमलामेला है। वह बड़ी ही रूपवती है। ऐसी रूपवती कन्याएँ देव और विद्याधरोंके यहाँ भी शायद ही दिखायी देती हैं। शीघ्र ही नभसेनके साथ उसका विवाह भी होनेवाला है।"

इतना कह नारदमुनि तो वहाँसे चल दिये, किन्तु सागरचन्द्र उसीक्षणसे कमलामेला पर अनुरक्त हो गया। उठते बैठते उसीका चिन्तन करने लगा। जिसप्रकार पित्त-रोगसे पीड़ित मनुष्यको सर्वत्र पीला ही पीला दिखायी

देता है, उसी तरह उसे सर्वत्र कमलामेला ही दिखायी देने लगी। उसकी जिह्वापर भी मन्त्रकी भाँति सदा उसीका नाम रहने लगा।

इस प्रकार सागरचन्द्रको व्याकुल बनाकर कूटमुनि नारद कमलामेलाके घर गये। उसने भी नारदमुनिको प्रणाम कर उनसे आश्चर्यजनक वस्तुओंके सम्बन्धमें प्रश्न किया। इसपर नारदमुनिने मुस्कुराकर कहा :—"हे भद्रे! मैंने आज ही यहाँ दो आश्चर्य देखे हैं। एक आश्चर्य कुमार सागरचन्द्र है, जिससे बढ़कर कोई दूसरा रूपवान नहीं और दूसरा आश्चर्य नभसेन है, जिससे बढ़कर कोई दूसरा कुरूप नहीं है।"

नारदमुनिके यह वचन सुनकर कमलामेला नभसेनको भूल कर सागरचन्द्र पर आसक्त हो गयी। इसके अनुरागका यह हाल जानकर नारदमुनि सागरचन्द्रके पास गये और उससे भी यह सब बातें बतला आये। अपने ऊपर कमलामेलाका अनुराग जानकर सागरचन्द्रका अनुराग दूना हो गया। परन्तु उससे मिलन न होनेके कारण वह बहुत ही उदास रहने लगा। उसकी यह

अवस्था देखकर उसकी माता तथा राजकुमारोंको अत्यन्त दुःख हुआ।

इसी दरम्यान एकदिन शाम्बकुमार सागरचन्द्रसे मिलनेके लिये उसके घर आये। सागरचन्द्र उस समय भी कमलामेलाके ध्यानमें उदास बैठा हुआ था। शाम्बकुमारने पीछेसे आकर दोनों हाथोंसे उसकी आँखें बन्द कर लीं। यह देख, सागरने अपनी आँखोंपरसे उसका हाथ हटाते हुए कहा :—"अहो! क्या तुम कमलामेला हो?"

शाम्बने कहा :—"हाँ, मैं कमलामेला—लक्ष्मीसे मिलानेवाला हूँ।"

सागरचन्द्रने कहा :—"तब तो तुम अवश्य ही कमलामेलासे मुझे मिला दोगे। अब मुझे कोई दूसरा उद्योग करनेकी आवश्यकता नहीं।"

इस प्रकार शाम्बकुमार सागरकी बातोंमें फँस गया। परन्तु उसने कोई स्पष्ट वचन न दिया, इसलिये समस्त कुमारोंने शाम्बको मद्य पिलाकर, उसके नशेमें उसपर जोर डाल कर इसकेलिये उसका वचन ले लिया। नशा

दूर होने पर शाम्बकुमार अपने मनमें कहने लगा :—
"अहो! यह दुष्कर कार्य मैंने अपने शिर क्यों ले लिया? परन्तु अब तो मैं वचन बद्ध हो चुका हूँ, इसलिये किसी न किसी तरह यह कार्य पार लगाना ही होगा।"

शीघ्र ही नभसेनके विवाहका दिन आ पहुँचा। उस दिन शाम्बकुमार प्रज्ञप्ति विद्याको याद कर अन्य कई कुमारोंको साथ लेकर एक उद्यानमें गया और वहीं सुरंग द्वारा कमलामेलाको उसके घरसे मँगाकर सागर-चन्द्रके साथ विधिवत् उसका व्याह करा दिया। वह तो सागरचन्द्र पर पहलेहीसे अनुरक्त थी, इसलिये इस कार्यमें उसने कोई बाधा न दी।

उधर व्याहका समय हुआ, तब घरमें उसकी खोज होने लगी, परन्तु वहाँ उसका पता कहाँ? इससे उसके पितृ और श्वसुरकुलमें हाहाकार मच गया और वे लोग उसकी खोज करते हुए उसी उद्यानमें जा पहुँचे, जिस उद्यानमें सागरचन्द्रके साथ उसका व्याह हुआ था। वहाँ सब यादव विद्याधरोंका रूप धारण कर आनन्दसे

बैठे हुए थे और उन्हींके बीचमें कमलामेला भी बैठी हुई हँस रही थी। यह हाल देखकर सब लोग कृष्णके पास गये और उनसे इस विषय की शिकायत करते हुए कहने लगे कि :—"महाराज! विद्याधरोंका एकदल कमलामेलाको हरण कर ले गया है, इसलिये आप उसका उद्धार करनेकी कृपा कीजिये।"

विद्याधरोंकी धृष्टताका यह हाल सुनकर कृष्णको उनपर बड़ा ही क्रोध आया, इसलिये वे उसी समय लोगोंके साथ उस उद्यानमें जा पहुँचे; क्योंकि वे ऐसा अन्याय कदापि सहन न कर सकते थे। उन्होंने वहाँ पहुँचते ही उन विद्याधर वेशधारी यादवोंको युद्ध करनेके लिये ललकारा। इससे यादवगण भयभीत हो काँपने लगे। शाम्ब अपना प्रकृत रूप प्रकट कर कमलामेला और सागरचन्द्र सहित कृष्णके चरणोंपर गिर पड़ा। यह देखकर कृष्ण चकित हो गये। उन्होंने शाम्बसे कहा :—"अरे! तूने यह क्या किया? नभसेन तो हम-लोगोंका आश्रित है। उसे इस तरह धोखा देकर तूने अच्छा काम नहीं किया।"

इसप्रकार शाम्बके कार्यकी निन्दा करनेके बाद कृष्णने नभसेनको समझाया, कि शाम्बने यह कार्य अवश्य बेजा किया है, परन्तु जो होना था वह हो चुका। अब शाम्बको क्या किया जाय। खैर, अब तुम सन्तोष करो। तुम्हारा ब्याह शीघ्रही किसी दूसरी कन्याके साथ कर दिया जायगा।"

इसप्रकार नभसेनको सान्त्वना दे, कमलामेलाको सागरचन्द्रके घर भेज दिया। नभसेनको यह बहुतही बुरा लगा, परन्तु शक्ति और सामर्थ्य हीन होनेके कारण सागरचन्द्रके लिये बदला लेना संभव न था। इसलिये वह उस दिनसे उसके छिद्रान्वेषण कर उसीमें सन्तोष मानने लगा।

इधर प्रद्युम्नकी वैदर्भी नामक स्त्रीने अनिरुद्ध नामक एक सुन्दर पुत्रको जन्म दिया, जो यथा समय यौवनको प्राप्त हुआ।

उस समय वैताढ्य पर्वतपर शुभनिवास नामक नगरमें महा बलवान और महामानी बाण नामक एक राजा राज्य करता था। उसके अत्यन्त रूपवती उषा नामक

एक कन्या थी। उसने अपने अनुरूप वर प्राप्त करनेके लिये गौरी नामक विद्याकी आराधना की। इसलिये गौरीने प्रसन्न होकर उससे कहा कि कृष्ण-वासुदेवका पौत्र अनिरुद्ध, जो रूप और गुणमें देव समान है, वही तुम्हारा पति होगा। यह सुनकर उषा परम प्रसन्न हुई और अपने भावी पतिके ध्यानमें मग्न रहने लगी।

इसी समय बाणने भी गौरी विद्याके प्रिय शंकर नामक देवकी आराधना की। उसके प्रसन्न होनेपर बाणने कहा :—"मुझे ऐसा वर दीजिये, जिसके प्रभावसे संसारमें मुझे कोई भी जीत न सके।" उसकी यह याचना सुनकर गौरीने शंकरसे कहा :—"इसे ऐसा वर देना ठीक नहीं; क्योंकि मैं इससे पहलेही इसकी पुत्रीको यह वर दे चुकी हूँ कि अनिरुद्ध तुझे पतिरूपमें प्राप्त होगा। यदि उस समय युद्ध हुआ तो आपके इस वरके कारण घोर अनर्थ हो जायगा।" यह सुनकर प्रिय शंकरने बाणसे कहा :—"स्त्री विषयक कार्यको छोड़कर और सभी कार्योंमें सर्वत्र तेरी जय होगी।" बाणने इस वरदानसे भी सन्तोष मान लिया।

उधर उषा ज्यों-ज्यों बड़ी होती जाती थी, त्यों त्यों उसका रूप सौन्दर्य बढ़ता जाता था। उसके उस अलौकिक रूप पर मुग्ध हो, अनेक विद्याधर और मानव राजाओंने उससे व्याह करनेकी इच्छा प्रकट की, परन्तु उषाकी नापसन्दगीके कारण उसने किसीकी भी याचना स्वीकार न की। उषाके मनमें तो अनिरुद्ध बसा हुआ था, इसलिये किसी दूसरेकी प्रार्थना वह स्वीकार ही कैसे कर सकती थी? एकदिन उसने चित्रलेखा नामक विद्याधरीको अनिरुद्धके पास भेजकर उसे चुपचाप अपने महलमें बुलवा लिया और उसके साथ गान्धर्व विवाह कर डाला।

विवाह करनेके बाद अनिरुद्ध उसे अपने साथ लेकर द्वारिकानगरीकी ओर चलने लगा। चलते समय उसने घोषित कर दिया, कि मैं उषाको हरण किये जा रहा हूँ। बाणको यह हाल मालूम होने पर उसने एक बड़ी सेना लेकर अनिरुद्धको चारों ओरसे घेर लिया। यद्यपि अनिरुद्ध भी अपने पिता और पितामहकी ही भाँति परम बलवान था, परन्तु बाणके सामने ठहरना कोई

साधारण काम न था। उषाको उसकी यह कमजोरी मालूम होने पर उसने अनिरुद्धको एक पाठ-सिद्ध विद्या दी, जिससे बलिष्ट होकर उसने दीर्घकाल तक बाणसे युद्ध किया।

परन्तु अन्तमें बाणने अनिरुद्धको नाग-पाशसे जकड़ दिया। यह देखकर उषाको बड़ी चिन्ता हुई, इसलिये उसने प्रज्ञप्ति विद्या द्वारा यह हाल कृष्णके पास भेजा। कृष्ण बलराम, प्रद्युम्न और शाम्ब आदिकको साथ लेकर तुरन्त वहाँ आ पहुँचे। अनिरुद्धका नागपास गरुड़-ध्वजके दर्शनमात्रसे ही छिन्न-भिन्न हो गया। परन्तु बाणको इतने पर भी चेत न हुआ। वह आत्मबल और शंकर प्रदत्त वरदानके कारण परम गर्विष्ठ और मदोन्मत्त हो रहा था। इसलिये उसने कृष्णसे कहा :—"तुझे क्या मेरे बलका हाल मालूम नहीं है? तूने सदा परायी कन्याओंका हरण किया है, इसलिये तेरे पुत्र पौत्रोंको भी वैसी ही आदत पड़ गयी है, परन्तु आज तुझे और तेरे इन परिवारवालोंको मैं इसका फल चखाये बिना कदापि न रहूँगा।"

उसके यह गर्वपूर्ण वचन सुनकर कृष्णने कहा :— "हे दुष्टाशय! यह तू कैसी बात कहता है? कन्या तो किसी न किसीको देनी ही पड़ती है, इसलिये उससे व्याह करनेमें कोई दोष नहीं है।"

कृष्णके इस वचन पर क्रोधी बाणने कोई ध्यान न दिया। उसने रोष पूर्वक अपना धनुष उठाया। कृष्ण भी युद्धके लिये तैयार होकर आये थे, इसलिये दोनों ओरसे भयंकर बाणवर्षा होने लगी। यह युद्ध बहुत देर तक होता रहा। अन्तमें कृष्णने बाणको पराजित कर, उसे यमधाम भेज दिया। अभिमानी बाणकी ठीक वही दशा हुई जो गरुड़से युद्ध करने पर सर्पकी होती है। अन्तमें कृष्ण राज, उषा, अनिरुद्ध और प्रद्युम्न आदिको साथ लेकर द्वारिका नगरीको लौट आये।

अठारहवाँ परिच्छेद

नेमिनाथ भगवानकी बल-परीक्षा

एक दिन नेमिकुमार अपने मित्रोंके साथ घूमते हुए वासुदेवकी आयुधशालामें जा पहुँचे। वहाँपर उन्होंने

पहले नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र देखे। पश्चात् उन्होंने वह शंख भी देखा जिसकी ध्वनिसे तीनोंलोकमें हाहाकार मच जाता था। उसे देखते ही प्रभुके मनमें कौतूहल ऊपज आया, इसलिये वे उसे उठानेकी चेष्टा करने लगे। यह देखकर शस्त्रागारके रक्षक चारुकृष्णने कहा :—"हे प्रभो! यद्यपि आप कृष्णके भ्राता हैं और बड़े ही बलवान हैं तथापि मेरी धारणा है कि इसे बजाना तो दूर रहा, आप इसे उठा भी न सकेंगे। इस शंखको कृष्णके सिवा और कोई भी उठा या बजा नहीं सकता। अतएव आप इसे उठानेकी व्यर्थ चेष्टा न करें।"

चारुकृष्ण इस तरहकी बातें कही रहा था कि इतने हीमें नेमिकुमारने हँसते हुए वह शंख उठा लिया और उसे इतने जोरसे बजाया कि उसकी आवाजसे आकाश और पृथ्वी पूरित हो गयी। दुर्ग, पर्वत शिखर और राज-प्रासाद गजकर्णकी भाँति काँप उठे और बलराम, कृष्ण, दशार्ह तथा अन्यान्य सुभट क्षुब्ध हो उठे। बड़े बड़े हाथियोंने जंजीरें तोड़ डालीं और घोड़े भी बन्धनोंको तोड़कर भाग खड़े हुए। नगर-निवासी इस प्रकार

मूर्च्छित हो गये, मानों उन पर वज्रपात हुआ हो और शस्त्रागारके रक्षक भी मूर्च्छित होकर अपने अपने स्थान पर गिर पड़े।

शंखकी विकट ध्वनि सुनकर कृष्ण भी अपने मनमें कहने लगे :—"अहो! यह शंख किसने बजाया? क्या कोई चक्रवर्ती उत्पन्न हुआ या इन्द्र पृथ्वीपर उतर आये? मैं जब शंख बजाता हूँ, तब साधारण राजागण क्षुब्ध हो उठते हैं, परन्तु यह ध्वनि तो ऐसी है, कि इसने मुझको और बलरामको भी विचलित कर दिया है।"

कृष्ण इस प्रकारकी चिन्ता कर ही रहे थे कि इतनेमें आयुधशालाके रक्षकोंने आकर उनसे कहा :—"हे प्रभो! आपको यह सुनकर बड़ाही आश्चर्य होगा, कि अरिष्टनेमिने खेलते खेलते अनायास आपका शंख उठा कर उसे बजा दिया। हम तो समझते थे कि आपके सिवा और किसीमें भी उसे उठाने या बजानेकी सामर्थ्य नहीं है।"

इसी समय नेमिकुमार भी वहाँ आ पहुँचे। कृष्णने एक सुन्दर आसन पर उन्हें सम्मानपूर्वक बैठाकर पूछा :-

"भाई ! क्या आज तुमने यह शंख बजाया है, जिसके कारण समूची पृथ्वी अब तक काँप रही है ?"

नेमिकुमारने कहा :-"हाँ, मैंने ही उसे बजाया है।"

उनके यह वचन सुनकर कृष्णको उनका भुज-बल देखने की भी इच्छा हुई, इसलिये उन्होंने उनका गौरव बढ़ाते हुए कहा :—"मैं अब तक यही समझता था कि मेरे सिवा और कोई भी इस शंखको नहीं बजा सकता, किन्तु आज मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई, कि तुम उसे अनायास बजा सकते हो। यदि इसी तरह तुम अपने भुजबलका भी परिचय मुझे दे सको, तो मैं विशेष प्रसन्न हो सकता हूँ। हे बान्धव ! इसके लिये क्या तुम मुझसे बाहुयुद्ध करना पसन्द कर सकते हो ?"

नेमिकुमारने कहा :-"हाँ, इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है।"

यह सुनकर कृष्ण उनको अपने साथ आयुधशालामें ले गये। वहाँपर नेमिप्रभु अपने दयालु स्वभावके कारण अपने मनमें कहने लगे, कि कृष्ण मेरा भुजबल देखना चाहते हैं, परन्तु मेरे हृदय भुजा या पैरसे दबने पर उनकी

क्या अवस्था होगी ? मुझे कोई, ऐसा उपाय करना चाहिये, जिससे उन्हें मेरा भुजबल तो मालूम हो जाय, किन्तु उन्हें किसी प्रकार कष्ट न हो। यह सोचकर उन्होंने कृष्णसे कहा :—"आप जो बाहुयुद्ध पसन्द करते हैं, वह बहुतही मामूली है। बारंबार जमीनपर लोटनसे भली भाँति बलकी परीक्षा नहीं हो सकती। मेरी समझमें, हमलोग एक दूसरेकी भुजाको झुकाकर अपने अपने भुजबलका परिचय दें, तो वह बहुतही अच्छा हो सकता है।"

कृष्णने नेमिकुमारका यह प्रस्ताव स्वीकार कर वृक्ष शाखाकी भाँति पहले अपनी भुजा फैला दी और नेमिकुमारने उसे कमल-नालकी भाँति क्षणमात्रमें झुका दी। इसके बाद उसी तरह नेमिकुमारने अपनी भुजा कृष्णके सामने फैला दी, किन्तु अपना समस्त बल लगा देने पर भी कृष्ण उसे झुका न सके। इससे वे कुछ लज्जित हो गये, किन्तु इस लज्जाको उन्होंने मनमें ही छिपाकर नेमिकुमारको आलिङ्गन करते हुए कहा :—"भाई! तुम्हारा यह बल देखकर आज मुझे असीम आनन्द हुआ

समस्त बल लगा देने पर भी कृष्ण उसे झुका न सके (पृष्ठ ७१८)

है। जिस प्रकार बलराम मेरे बलसे इस संसारको तृणवत् मानता है उसी प्रकार अब मैं आपके बलसे जगतको तृणवत् समझूँगा।"

इतना कह कृष्णने नेमिकुमारको बिदा कर दिया। इसके बाद उन्होंने बलरामसे कहा :—"हे बन्धु! तुमने नेमिकुमारका बल देखा? मैं समझता हूँ कि त्रिभुवनमें कोई भी इसके बलकी समता नहीं कर सकता। मैं वासुदेव होने पर भी उसकी भुजामें उसी तरह लटक कर रह गया, जिस प्रकार पक्षी वृक्षकी शाखामें लटक कर रह जाते हैं। निःसन्देह चक्रवर्ती या सुरेन्द्र भी अब नेमिकुमारके सामने नहीं ठहर सकते। यदि इस बलके कारण वह समूचे भरतक्षेत्रको अपने अधिकारमें करले, तो उसमें भी हमें आश्चर्य न करना चाहिये। और वह कुछ न कुछ ऐसा उद्योग जरूर करेगा; क्योंकि यह कभी सम्भव नहीं कि वह अपना सारा जीवन यों ही बिता दे।

बलरामने कहा :—"आपका कहना यथार्थ है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि नेमिकुमार बड़ेही बलवान हैं,

परन्तु वे जिस तरह बलवान हैं, उसी तरह राज्यादिक विषयोंमें निस्पृह भी हैं। इसीलिये मेरी धारणा है कि वे राज्यादिकको अपने अधिकारमें करनेकी कभी कोई चेष्टा न करेंगे।"

बलरामके यह सब कहनेपर भी कृष्णकी चिन्ता दूर न हुई। वे नेमिकुमारको शंकाकी दृष्टिसे ही देखते रहे। उनकी यह अवस्था देखकर एकदिन कुलदेवीने प्रकट होकर उनसे कहा :—"हे कृष्ण! आप किसी तरह चिन्ता न कीजिये। नेमिकुमारके विषयमें श्रीनमि भगवान पहलेही बतला चुके हैं, कि वे शादी न करेंगे और कुमारावस्थामें ही तीर्थंकर होंगे। उनको राज-लक्ष्मीकी आवश्यकता न होगी। वे आजीवन ब्रह्मचारी बने रहेंगे और यथा समय दीक्षा भी ले लेंगे, इसलिये उनकी ओरसे आपको सर्वथा निश्चिंत रहना चाहिये।"

देवीके यह वचन सुनकर कृष्णकी चिन्ता दूर हो गयी और उस दिनसे वे नेमिकुमारको विशेष आदरकी दृष्टिसे देखने लगे।

एक दिन कृष्णने अन्तःपुरके समस्त कर्मचारियोंसे

कहा :—यह मेरा भाई नेमिकुमार मुझे प्राणसे भी अधिक प्यारा है, इसलिये यदि यह मेरे अन्तःपुरमें जानेकी इच्छा करे, तो उसमें किसीको बाधा न देनी चाहिये। वह बड़ाही सदाचारी है, इसलिये अपनी भाभियोंके साथ वह हास्य-विलास या बातचीत करे तो उसमें दोष नहीं।"

इसके बाद कृष्णने अपनी सत्यभामा आदि पत्नियोंसे भी कह दिया कि तुम्हारा देवर नेमिकुमार यहाँ आये, तो उससे बोलने चालनेमें कोई हर्ज नहीं है, क्योंकि वह मुझे प्राणसे भी अधिक प्रिय है।

इधर कृष्णकी अनुमति मिल जाने पर नेमिकुमार उनके अन्तःपुरमें जाने आने लगे। वहाँ कृष्णकी समस्त पत्नियाँ उनको अत्यन्त सत्कार करतीं और वे निर्विकार भावसे उनसे बातचीत कर अपने वासस्थानको लौट आते। धीरे धीरे यह प्रेम इतना घनिष्ट हो गया, कि कृष्ण अपनी पत्नियोंको साथ लेकर क्रीड़ाके लिए पर्वतादि पर विचरण करने जाते, तो वहाँ भी नेमिकुमारको वे अपने साथ लेते जाते थे।

एक दिन वसन्त ऋतुमें दस दशार्ह कुमार, नेमि-कुमार, अन्तःपुर तथा अनेक नगरजनोंको साथ लेकर कृष्ण रैवताचलके उद्यानमें गये। वहाँपर नन्दनवनमें जिसप्रकार सुरासुरके कुमार क्रीड़ा करते हैं, उसीप्रकार समस्त राजकुमार तथा नगरजन क्रीड़ा करने लगे। कई लोग हाथमें वीणा लेकर वसन्तके गायन गाने लगे, कई मदोन्मत्त युवक किन्नरकी भाँति स्त्रियों सहित नृत्य करने लगे, कई लोग अपना स्त्रियोंके साथ चम्पक, बकुल आदि वृक्षोंके पुष्प चुनने लगे, कई लोग कुशल मालियोंकी तरह पुष्पाभरण बनाकर उनसे अपनी प्रिय-तमाओंको सजाने लगे, कई लोग लता गृहमें नव पल्ल-वोंकी शैयापर अपनी स्त्रियोंके साथ कान्दर्पिक देवता-ओंकी भाँति क्रीड़ा करने लगे, कई लोग जलाशयके तट-पर बैठ, शीतल मन्द और सुगन्धित समीरका सेवन करने लगे, कई लोग अपनी रूपवती रमणियोंके साथ वृक्षोंमें लगे हुए झूलनोंमें बैठ कर झूलेका आनन्द लेने लगे। इस प्रकार सब लोग तरह तरहकी क्रीड़ामें लीन हो, आनन्द उपभोग करने लगे।

कृष्ण भी इसी उद्यानमें सत्यभामा आदि पत्नियोंके साथ इधर उधर विचरण कर रहे थे। इतनेहीमें नेमिकुमारको देखकर कृष्ण अपने मनमें कहने लगे :—"यदि नेमिकुमारका मन विषय भोग पर लग जाय तो मेरी सम्पदा और मेरा बन्धुत्व सार्थक हो सकता है। इसके लिये मैं बारंबार प्रयत्न करूँगा। संभव है कि ऐसा करनेपर मेरा मनोरथ पूर्ण हो जाय।"

यह सोचकर कृष्णने फूलोंका एक सुन्दर हार बनाकर नेमिकुमारके गलेमें पहना दिया। कृष्णका यह कार्य देखकर उनकी सत्यभामा आदि पत्नियाँ भी विविध फूलोंके गहने लेकर नेमिकुमारके पास आ पहुँचीं। उनमेंसे कोई सुन्दरी उनके पीछे खड़ी हो अपने पीन और उन्नत स्तनोंसे उनके अंगको स्पर्श करती हुई स्नेह पूर्वक उनके पुष्प-गुच्छ बाँधने लगी, कोई सामने आकर बाहुमूलको प्रकट करती हुई उनके शिरपर मुकुट रखने लगी, कोई अपने हाथसे उनका कान पकड़ कर मदन जयध्वजके समान कानके कुण्डलकी रचना करने लगी और कोई नूतन पुष्पोंका बाजुबन्ध बना कर उनकी

भुजाओंमें पहनाने लगी। इस प्रकार उन रमणियोंने ऋतुके अनुकूल नाना प्रकारके उपाय किये, परन्तु नेमिकुमारके हृदय पर उनका जरा भी प्रभाव न पड़ा। उन्होंने भी निर्विकार भावसे अपनी भाभियोंके साथ वैसा ही व्यवहार किया जिससे उन सबोंको बड़ा ही आनन्द हुआ।

इस प्रकार क्रीड़ा करते हुए उन सब लोगोंने एक रात और एक दिन उस उद्यानमें व्यतीत किया। इसके बाद कृष्ण सब लोगोंके साथ द्वारिका नगरीको लौट आये। इसी तरह और भी कई बार विविध उपवनोंमें जाकर उन लोगोंने वसन्तोत्सव मनाया और वहाँ तन-मनसे इस बातकी चेष्टा की, कि, नेमिनाथकी प्रवृत्ति पलट जाय, परन्तु इसका कोई भी फल न हुआ। फिर भी राजा समुद्रविजय, अन्य दशार्ह, बलराम, कृष्ण तथा अन्यान्य यादव इससे निराश न हुए और उन्होंने भविष्यमें भी इन्हीं युक्तियोंसे काम लेना जारी रक्खा।

वसन्तके बाद यथा समय ग्रीष्म ऋतुका आगमन हुआ। ग्रीष्मके कारण लोगोंको कहीं भी शान्ति न

मिलती थी, इसलिये सबलोग शीतल और सुगन्धित जलसे बारंबार अपने शरीरको सिञ्चित करने लगे और कामिनियाँ भी मुक्ता हारकी भाँति अपने हृदय पर कमलनालोंको धारण करने लगीं। ग्रीष्मका यह भीषण उत्पात देखकर कृष्ण, नेमिकुमारको तथा अपने अन्तः-पुरको साथ लेकर रैवताचलके सरोवर पर चले गये और वहाँपर जल क्रीड़ा द्वारा शारीरिक और मानसिक शान्ति उपलब्ध करने लगे।

एक दिन जल-क्रीड़ा करनेके लिये कृष्णने नेमि-कुमार तथा अपनी पत्नियोंको साथ लेकर हँसकी भाँति जलाशयमें प्रवेश किया। इतनेहीमें कृष्णने किसी कामिनी-की ओर एक अंजलि जल फेंक दिया, जिसके उत्तरमें उसने भी जल उछाल उछाल कर कृष्णको तर कर दिया। इसके बाद भाँति भाँतिसे वे सब लोग जल क्रीड़ा करने लगे। पानीसे डरकर सुन्दर ललनाएँ जब कृष्णके बदनसे जाकर चिपट जातीं, तब कृष्ण पुतलि युक्त स्तम्भके समान प्रतीत होने लगते थे। कभी कभी कल्लोलकी भाँति उछलकर वह मृगाक्षियाँ वेगपूर्वक कृष्णकी कमर

या छातीसे भिड़ जाती थीं। स्नान करते करते कृष्ण और वनिताओंके नेत्र लाल हो जाते थे, जिससे ऐसा प्रतीत होता था मानो क्रोधके ही कारण उनकी यह अवस्था हुई हो। इसी तरह सपत्नीके नामसे बुलाने पर कोई सुन्दरी कृष्णको हरे कमलसे मारने लगती, कभी कृष्ण किसी दूसरी सुन्दरीकी ओर देखते तो सत्यभामा आदि पटरानियाँ असन्तुष्ट हो जातीं और कृष्णको पराग मिश्रित जलसे मारने लगतीं, कभी कभी वह सब सुन्दरियाँ कृष्णके चारों ओर इस प्रकार भ्रमण करतीं, कि उनको देखकर गोपियोंकी रास लीलाका स्मरण हो आता था।

कृष्णकी पत्नियाँ नेमिकुमारसे भी हास्यविनोद और जलक्रीड़ा करनेकी चेष्टा करती थीं, इसलिये उनमेंसे कई स्त्रियें नेमिकुमारसे कहने लगतीं कि :—"हे देवर! अब तुम कहाँ जाओगे?" यह कहती हुई वे चारों ओरसे उन्हें घेर लेतीं और जल उछाल उछाल कर उन्हें खूब तर कर दिया करती थीं।"

इसके बाद और भी अनेक प्रकारकी जलक्रीड़ा

हुई। कभी कोई रमणी जलक्रीड़ाके बहाने उनके गलेमें अपनी भुजाओंको डाल देती, कभी कोई छाती स्पर्श कर लेती और कभी कोई अन्यान्य अंगोंमें हाथ लगा देती। कोई रमणी सहस्रदल कमल लेकर उनके शिरपर छत्रकी तरह धारण करती, तो कोई उनके कंठमें कमल-नाल डाल देती। कोई रमणी कमल लेकर उनके उस हृदय पर आघात करती, जिस पर अभी मदनबाण की चोट न लगी थी, तो कोई हास्यविनोद द्वारा उनको हँसानेकी चेष्टा करती। निर्विकारी नेमिकुमार भी इन क्रियाओंकी प्रतिक्रिया कर अपनी भाभियोंका मनोरंजन करते थे।

नेमिकुमारको जलक्रीड़ामें भाग लेते देखकर कृष्णको अत्यन्त आनन्द हुआ। नन्दीश्वर हाथीकी भाँति दीर्घ-काल तक जलमें रहनेके बाद कृष्ण उससे बाहर निकल आये। यह देखकर रुक्मिणी और सत्यभामा आदि भी बाहर निकल आयीं। सब लोगोंके बाहर निकल आने पर नेमिकुमार भी राजहंसकी भाँति जलसे बाहर निकल कर, रुक्मिणीके निकट जाकर खड़े हो गये। यह देख-

कर रुक्मिणीने उनको रत्नमय आसन पर बैठा कर अपने उत्तरीय वस्त्रसे उनका शरीर पोंछ दिया।

इसी समय सत्यभामाने हास्य और विनयपूर्वक नेमिसे कहा :—"हे देवर! तुम सदा हमारी बातें सहन करते हो, इसलिये मैं निर्भीकतापूर्वक आज तुमसे दो चार बातें कहती हूँ। हे सुन्दर! तुम सोलह हजार पतियोंके स्वामी कृष्णके भाई होकर एक भी कन्याका पाणिग्रहण क्यों नहीं करते? तुम्हारा रूप तीनों लोकमें सर्वोत्कृष्ट और चरित्र परम निर्मल है। यौवन भी अभी नवीन ही है? फिर तुम्हारी यह अवस्था क्यों? तुम्हारे माता पिता, भाई, भाभी आदि सभी लोग विवाहके लिये तुमसे प्रार्थना करते हैं। ऐसी अवस्थामें तुमको उनका मनोरथ पूर्ण करना चाहिये। तुम्हीं अपने मनमें विचार करो, कि आखिर तुम इस तरह कितने दिन अविवाहित रह सकते हो? हे कुमार! क्या तुम अज्ञ हो या नीरस हो या नपुंसक हो? यदि तुम विवाह न करोगे, तो तुम्हारा जीवन अरण्य पुष्पका भाँति निरर्थक हो जायगा। इसलिये मैं तुमसे अनुरोध

करती हूँ कि तुम पहले विवाह कर सांसारिक सुख उपभोग करो। उसके बाद यथासमय तुम ब्रह्मव्रत भी ग्रहण कर सकते हो, परन्तु गृहस्थावस्थामें ब्रह्मव्रतका पालन उसी प्रकार अनुचित है, जिस प्रकार अपवित्र स्थानमें मन्त्रका जप करना अनुचित है।"

सत्यभामाकी यह बातें सुनकर नेमिकुमार कुछ विचारमें पड़ गये। इतनेही में जाम्बवती उनके पास आकर कहने लगी :—"हे देवर! तुम्हारे वंशमें सुव्रत मुनि तीर्थंकर हो गये हैं। वे भी विवाहित और पुत्र परिवार वाले थे। इसी तरह प्राचीनकालमें और भी अनेक महापुरुष ऐसे हुए हैं, जो विवाह करने पर भी मोक्षके अधिकारी हुए हैं। मैं देखती हूँ कि तुम्हीं एक ऐसे अनोखे मुमुक्षु उत्पन्न हुए हो, जो पूर्व प्रचलित प्रथाको छोड़कर जन्मसे ही स्त्रीसे विमुख हो बैठे हो!"

जाम्बवतीको यह सब बातें कहते देख, सत्यभामाने बाह्य कोप दिखाकर कहा :—"सखी! तुम इन्हें मधुर वचनोंसे क्या समझाती हो? यह सीधी तरह बात मानने वाले नहीं है, क्योंकि इनके पिता, बड़े भाई

तथा अन्यान्य लोगोंने भी ब्याहके लिये इन्हें कई बार समझाया है, परन्तु इन्होंने किसीकी बात पर ध्यान नहीं दिया है। आओ, आज हम सब लोग चारों ओरसे इनको घेर लें और तब तक इन्हें कहीं जाने न दें, जब तक यह हमारी बात न मान लें।

यह सुनकर लक्ष्मणाने लज्जो त्रप्यो करते हुए कहा :—"सखी! ऐसी बातें क्यों कहती हो? यह देवर तो आराधना करने योग्य हैं। इन्हें तंग न कर, समझा बुझाकर ही ब्याहके लिये राजी करना चाहिये।"

इसके बाद रुक्मिणी आदि कृष्णकी अनेक रानियाँ ब्याहके लिये प्रार्थना करती हुई नेमिकुमारके चरणों पर गिर पड़ीं। उचित अवसर देखकर कृष्णने भी इसी समय उनसे बहुत अनुरोध किया। अन्यान्य यादव, जो यह सब देख रहे थे, वे भी आग्रहपूर्वक कहने लगे :— "हे नेमिकुमार! तुम्हें अपने भाईकी यह बात मान लेनी चाहिये। तुम्हारे माता पिता तथा अन्यान्य स्वजनोंको भी इससे आनन्द और परम सन्तोष होगा।"

इस प्रकार सबके कहने पर नेमिकुमार बड़ी चिन्तामें

पड़ गये। वे अपने मनमें कहने लगे :—"अहो! यह लोग कितने अज्ञान हैं! इस अज्ञानताके कारण यह लोग स्वयं तो भवसागरमें पड़ते ही हैं, दूसरोंको भी स्नेह रूपी पाषाण-शिला बाँधकर उसमें घसीट ले जाते हैं। खैर, इन लोगोंका अब इतना आग्रह है, तो वचन द्वारा मुझे स्वीकृति देनी ही होगी। फिर यथासमय आत्मकल्याण तो करना ही है। बाकी, अन्यान्य तीर्थ-करोंने जो विवाह किया था, वह तो भोगावली कर्मके कारण ही किया था, क्योंकि कर्मोंकी गति भिन्न भिन्न होती है।"

इस प्रकार विचार कर, प्रभुने सबकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। यह सुन, राजा समुद्रविजयादिक समस्त परिवारको भी बड़ाही आनन्द हुआ।

इस प्रकार ग्रीष्म ऋतु व्यतीत कर कृष्ण सब लोगोंके साथ द्वारिका लौट आये और नेमिकुमारके लिये एक योग्य कन्या की खोज करने लगे। इतनेहीमें एकदिन सत्यभामाने कृष्णसे कहा :—"हे प्रियतम! मेरी छोटी बहिन राजीमती अभी तक अविवाहिता ही है। उससे

यदि नेमिकुमारका विवाह हो जाय तो मणिकाञ्चन-योगकी उक्ति चरितार्थ हो सकती है।"

यह सुनकर कृष्ण प्रसन्न हो उठे। राजीमती उनकी देखी सुनी कन्या थी, इसलिये उन्होंने कहा :—"हे सत्यभामा! इस समय तुमने यह बात कहकर मेरा बड़ाही उपकार किया है। योग्य कन्याके लिये मैं चारों ओर दृष्टि दौड़ा रहा था, बहुत चिन्तित हो रहा था, परन्तु कोई अच्छी कन्या दिखायी न देती थी। इस समय तुमने राजीमतीकी याद दिलाकर मेरी समस्त चिन्ता दूर कर दी है।"

इसके बाद कृष्ण वहाँसे उठकर उसी समय उग्रसेनके घर गये। उग्रसेनने कृष्णका सत्कार कर, उन्हें सिंहासन पर बैठाकर, उनके आगमनका कारण पूछा। इसपर कृष्णने कहा :—"हे राजन्! आप मेरे लघु भ्राता नेमिकुमारको तो जानते ही होंगे। वह अवस्थामें मुझसे छोटा है; किन्तु गुणोंमें मुझसे बहुतही बड़ा है। मैं उसके लिये आपकी राजीमती नामक कन्याकी याचना करने आया हूँ।"

उग्रसेनने नम्रतापूर्वक कहा :—"हे प्रभो! यह हमारा अहोभाग्य है, जो आपने यहाँ आकर हमें कृतार्थ किया है। हमारा यह मकान, यह सम्पदा, हमलोग, हमारी यह कन्या और हमारा सर्वस्व निःसन्देह आपही का है। अतः जो वस्तु अपनी है, उसके लिये याचना कैसी? मैं आपकी आज्ञा पालन करनेके लिये सहर्ष तैयार हूँ।"

उग्रसेनके इन वचनोंसे कृष्णको बड़ाही आनन्द हुआ। वे वहाँसे उठकर राजा समुद्रविजयके पास आये। राजा समुद्रविजयको भी कृष्णके मुखसे यह सब समाचार सुनकर परम प्रसन्नता हुई। उन्होंने प्रेमपूर्वक कृष्णसे कहा :—"हे वत्स! गुरुजनोंके प्रति तुम्हारा जो भक्तिभाव और भ्राताओंके प्रति जो गाढ़ वात्सल्य है, वह वास्तवमें सराहनीय है। तुम्हारे इस गुणके कारण ही तुम्हें नेमिकी मनोवृत्ति बदलनेमें सफलता प्राप्त हुई है। वर्ना मैं तो इस ओरसे सर्वथा निराश ही हो गया था, क्योंकि बारंबार समझाने पर भी नेमिकुमारने मेरी बात पर कभी ध्यान न दिया था।

इसके बाद क्रोष्टुकी ज्योतिषीको बुलाकर राजा समुद्रविजयने नेमिकुमार और राजीमतीके विवाहका मुहूर्त्त पूछा। इसपर क्रोष्टुकीने कहा :—"हे राजन्! वर्षाकालमें मामूली उत्सव भी नहीं किया जाता है, तो फिर विवाह जैसे उत्तम कार्यके लिये प्रश्न करनाही बेकार है।"

समुद्रविजयने कहा :—"महाराज! आपका कहना यथार्थ है, परन्तु हमलोग इस कार्यमें जरा भी विलम्ब नहीं करना चाहते। कृष्णने न जाने कितनी मुश्किलसे अरिष्टनेमिको विवाहके लिये तैयार किया है। विलम्ब करनेसे शायद उसकी मनोवृत्ति फिर बदल जाय और वह इन्कार कर दे। इसलिये आप ऐसा मुहूर्त्त बतलाइये, जो बहुत ही नजदीकका हो।

क्रोष्टुकीने सोच विचार कर कहा :—"हे राजन्! यदि ऐसी ही बात है, तो श्रावण शुक्ला षष्ठीका दिन इस कार्यके लिये बहुत ही उत्तम होगा।"

राजा समुद्रविजयने व्याहके लिये यही दिन निर्धारित कर, क्रोष्टुकीको सत्कार-पूर्वक बिदा कर दिया।

इसके बाद उन्होंने उग्रसेनको भी इस मुहूर्त्तकी सूचना दे दी। शीघ्र ही दोनों ओर जोरोंके साथ विवाहकी तैयारियाँ होने लगीं। कृष्णने इस अवसर पर स्थान स्थानमें सुन्दर मञ्च और तोरणादिक बनवाकर नगरको विशेष रूपसे सजा दिया।

धीरे धीरे जब विवाहका दिन नजदीक आगया, तब दसों दशार्ह, बलराम, कृष्ण, शिवादेवी, रोहिणी और देवकी आदि माता, रेवती आदि बलरामकी पत्नियाँ, सत्यभामा आदि कृष्णकी रानियाँ तथा धात्रियोंने मिलकर नेमिनाथको पूर्वाभिमुख एक बड़े आसन पर बैठाया। इसके बाद कृष्ण और बलरामने प्रेमपूर्वक उनको स्नान कराया। तत्-पश्चात् रक्षा बन्धन कर, हाथमें बाण धारण कराकर कृष्ण उग्रसेनके घर गये। वहाँ पूर्णिमाके चन्द्र समान मुखवाली राजीमतीको भी कृष्णने उसी विधिसे बैठाया। इसके बाद वे अपने वासस्थानको लौट आये।

तदनन्तर नेमिकुमार गहने-कपड़ोंसे सुसज्जित हो एक सुन्दर रथ पर सवार हो, अपने महलसे चलने लगे।

उनके आगे आगे करोड़ों यादव अश्वारूढ़ हो चलते थे। दोनों ओर हाथियों पर बैठे हुए हजारों राजा, पीछे दस दशार्ह तथा बलराम और कृष्ण चलते थे। उनके पीछे सुन्दर पालकिओं पर बैठ कर अन्तःपुर तथा नगरकी रमणियाँ सुन्दर गीत गाती हुई जा रही थीं।

रास्तेमें दोनों ओर मकानकी छतोंपर नगर-ललनाएं बैठी हुईं मंगल-गान गा रही थीं। ज्योंही नेमिकुमार उधरसे निकलते त्योंहीं उनकी दृष्टियाँ उनपर गड़ जातीं थीं और वे मंगलाक्षत तथा पुष्पवृष्टि कर अपनी शुभ-कामना व्यक्त करती थीं। इसी तरह नगर-निवासी तथा स्वजनोंको आनन्दित करते हुए नेमिकुमार उग्र-सेनके महलके समीप जा पहुँचे।

इधर नेमिकुमारके आगमनकी तुमुल ध्वनिसे कमल लोचना राजीमती उसी प्रकार आनन्दित हो उठी, जिस प्रकार मेघ गर्जनसे मयूर आनन्दित हो उठता है। उसका हृदय उनको देखनेके लिये छटपटाने लगा। चतुर सखियोंने उसका यह मनोभाव जानकर कहा :—

"हे सुन्दरि! नेमिकुमार तुम्हारा पाणिग्रहण करनेवाले

हैं, इसलिये तुम धन्य हो! हे कमललोचने! यद्यपि नेमिकुमार यहीं आ रहे हैं, तथापि हमलोग उत्सुकताके कारण गवाक्षमें बैठकर उनको देखना चाहती हैं। तुम्हारी इच्छा हो तो तुम भी गवाक्षमें बैठकर देख सकती हो।

राजीमती तो पहलेहीसे इसके लिये व्याकुल हो रही थी। सखियोंके आग्रह करने पर वह तुरन्त उनके साथ एक गवाक्षमें जाकर बैठ गयी। सुन्दर और सुशोभित वस्त्रालङ्कारोंके कारण उस समय उसकी शारीरिक शोभा देखते ही बनती थी। शिर पर उसने मालती पुष्पोंके साथ धम्मिल (पुष्प-गुच्छ) धारण किया था, जो मेघोंके बीचमें चन्द्रकी भाँति शोभा देता था। इस प्रकार वह साक्षात् देवाङ्गनाके समान सुन्दर प्रतीत होती थी।

कुछ ही देरमें साक्षात् कामदेवकी भाँति हृदयमें मदनको जागृत करनेवाले नेमिकुमार राजीमतीको दूरसे आते हुए दिखायी दिये। उनको देख कर वह अपने मनमें कहने लगी:—"अहो! यह तो तीनों लोकके

भूषण रूप हैं। इनको वर रूपमें पाकर मेरा जीवन सफल हो जायगा। परन्तु क्या सचमुच इनसे मेरा विवाह होने जा रहा है? हाँ इसमें कोई सन्देह नहीं कि विवाह के लिये तो वे आ ही रहे हैं, परन्तु न जाने क्यों मुझे इस बात पर विश्वास ही नहीं होता। मैंने ऐसा कौन पुण्य किया है, जिससे वह मुझे पति रूपमें प्राप्त होंगे? मेरा ऐसा भाग्य कहाँ कि यह दुर्लभ वर मुझे प्राप्त हो?"

राजीमती यह बातें सोच ही रही थी, कि इतनेही में उसकी दाहिनी आँख और दाहिनी भुजा फड़क उठी। इससे राजीमती बड़ी चिन्तामें पड़ गयी और उसके दोनों नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी। उसने गद् गद् कंठसे सब हाल अपनी सखियोंसे कह सुनाया। इस पर सखियोंने सान्त्वना देते हुए कहा:—"हे सखी! तुम व्यर्थ ही इस समय अमंगलकी चिन्ता कर व्याकुल हो रही हो! नेत्रस्फुरण आदि तो शरीरके स्वाभाविक धर्म हैं। तुम्हें इनका ख्याल न करना चाहिये। कुल-देवियोंका स्मरण करो, वे सब अमंगल दूर कर तुम्हारा कल्याण करेंगी। देखो, तुम्हारे पतिदेव द्वारपर खड़े

हैं, मंगल गान हो रहे हैं, बाजे बज रहे हैं, और चारों ओर धूम मची हुई है, ऐसे समय आँखमें यह आँसू कैसे? अमंगलकी यह चिन्ता कैसी? इस समय ऐसी नादानी तुम्हें शोभा नहीं देती।"

राजीमतीने सखियोंकी इन बातोंका कोई उत्तर न दिया। उसने अपने आँसू पोंछ डाले और अपना हृदय कठिन बना लिया, फिर भी न जाने क्यों, किसी अज्ञात शङ्काके कारण, बीच बीचमें उसका हृदय काँप उठता था, जिससे उसकी व्यग्रता और भी बढ़ जाती थी।

नेमिकुमार धीरे धीरे जब उग्रसेनके द्वारके निकट आ पहुँचे, तब उन्हें कई पशुओंका करुण स्वर सुनायी दिया। उसे सुनकर नेमिकुमार सारा मामला समझ गये, तिस पर भी उन्होंने सारथीसे पूछा:—"नाना प्रकारके प्राणियोंका यह करुण स्वर कहाँसे सुनायी दे रहा है?"

सारथीने कहा:—"हे भगवन! क्या आप नहीं जानते कि आपके विवाहके बाद हमारे आतिथ्यके लिये इनका वध किया जायगा। इनमें भेंड, बकरी आदि

अनेक पशु तथा तीतर आदि अनेक पक्षी हैं। वही सब व्याकुल हो चिल्ला रहे हैं।"

सारथीकी यह बातें सुनकर दयावीर नेमिकुमारने कहा :—"हे सारथी! तुम मेरे रथको पहले उस स्थानमें ले चलो, जहाँ यह सब पशु-पक्षी रक्खे गये हैं। मैं जरा उन्हें देखना चाहता हूँ।"

सारथीने नेमिकुमारकी यह आज्ञा तत्काल शिरोधार्य की। नेमिकुमारने वहाँ जाकर देखा तो उन्हें अनेक पशु-पक्षी चिल्लाते हुए दिखायी दिये। उनमेंसे कुछकी गर्दनें बँधी हुई थीं, कुछके पैर बँधे हुए थे, कुछ पिंजड़ों में बँधे हुए थे, और कुछ जालमें जकड़े हुए थे। नेमिकुमारको देखते ही वे सब काँपते और नेत्रोंसे दीनता प्रकट करते हुए मुख उठा उठाकर अपनी भाषामें "त्राहिमाम्! त्राहिमाम्!!" कहने लगे। नेमिकुमारसे यह हृदय-विदारक दृश्य अधिक समय तक देखा न गया। इसलिये उन्होंने उसी समय सारथीको आज्ञा देकर उन सबोंको बन्धन-मुक्त करवा दिया।

बन्धन-मुक्त होते ही वे सब नेमिकुमारको आशी-

र्वाद देते हुए अपने अपने स्थानको चले गये। इधर नेमिकुमारने सारथीको आज्ञा दी, कि अब अपना रथ वापस लौटा लो! तदनुसार सारथीने ज्योंही रथको घुमाया, त्योंहीं चारों ओर घोर हाहाकार मच गया। राजा समुद्रविजय, बलराम, कृष्ण, शिवादेवी, रोहिणी, देवकी तथा अन्यान्य स्वजन भी अपने अपने वाहनसे उतर कर उनके पास दौड़ गये। राजा समुद्रविजय तथा शिवादेवीने आँसू बहाते हुए पूछा:—"हे पुत्र! अचानक इस तरह तुम वापस क्यों जा रहे हो? आज विवाहकी अन्तिम घड़ी है, ऐसे समय रंगमें भंग क्यों कर रहे हो?"

नेमिकुमारने गंभीरतापूर्वक कहा:—"पिताजी! मुझे आप लोग क्षमा करिये, मैं व्याह नहीं करना चाहता। यह सब प्राणी अब तक जिस प्रकार बन्धनसे बँधे हुए थे, उसी प्रकार हमलोग भी कर्म बन्धनसे बँधे हुए हैं। जिस प्रकार यह अब बन्धन-मुक्त हुए हैं, उसी प्रकार मैं भी अपने आत्माको कर्म-बन्धनसे रहित करनेके लिये समस्त सुखोंकी कारण रूप दीक्षा ग्रहण करूँगा।"

नेमिकुमारका यह वचन सुनतेही शिवादेवी और समुद्रविजय मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर पड़े। अन्यान्य स्वजनोंके नेत्रोंसे भी दुःखके कारण अश्रुधारा बहने लगी। यह देखकर कृष्णने सब लोगोंको सान्त्वना देकर शान्त किया। तदनन्तर उन्होंने नम्रतापूर्वक नेमिकुमारसे कहा :—"हे बन्धो! हम सबलोग तुम्हें सदा आदरकी दृष्टिसे देखते आयें हैं। इस समय भी हमलोगोंने कोई ऐसा कार्य नहीं किया, जिससे तुम्हें किसी प्रकारका दुःख हो। तुम्हारा रूप अनुपम और यौवन नूतन है। तुम्हारी वधू राजीमती भी रूप और गुणोंमें सर्वथा तुम्हारे अनुरूप ही है। ऐसी अवस्थामें ठीक विवाहके समय, तुम्हें यह वैराग्य क्यों आ रहा है? जो लोग निरामिष भोजी नहीं हैं, उनके यहाँ ऐसे समयमें पशु-पक्षियोंका वध होता ही है, इसलिये उसका संग्रह भी एक साधारण घटना थी। परन्तु अब तो तुमने उनको बन्धन-मुक्त कर दिया है, इसलिये उस सम्बन्धमें अब कोई शिकायतका स्थान नहीं हैं। अतएव अब तुम्हें अपने माता-पिता और बन्धुओंका मनोरथ

पूर्ण करना चाहिये। यदि तुम ऐसा न करोगे, तो तुम्हारे माता-पिताको बड़ाही दुःख होगा। जिस प्रकार तुमने प्राणियोंको बन्धन-मुक्त कर उनको आनन्दित किया है, उसी प्रकार अपना विवाह दिखाकर अपने स्वजन स्नेहियोंको भी आनन्दित करना तुम्हें उचित है।"

नेमिकुमारने नम्रतापूर्वक कहा :—प्रिय बन्धु! मुझे मातापिता और आपलोगोंके दुःखका कोई कारण नहीं दिखायी देता है। मेरा वैराग्यका कारण तो चारगति रूप यह संसार है, जहाँ जन्म होने पर प्राणीको प्रत्येक जन्ममें दुःख ही भोगना पड़ता है। जीवको प्रत्येक जन्ममें माता, पिता, भाई तथा ऐसे ही अनेक सम्बन्धी प्राप्त होते हैं, परन्तु इनमेंसे कोई भी उसका कर्मफल नहीं बँटाता। उसे अपना कर्म स्वयं ही भोग करना पड़ता है। हे बन्धो! यदि एक मनुष्य दूसरेका दुःख बँटा सकता हो, तो विवेकी पुरुषको चाहिये, कि अपने माता पिताके लिये वह अपना प्राण तक दे दे, परन्तु पुत्रादि होनेपर भी प्राणीको जन्म, जरा और मृत्युका दुःख तो

स्वयं ही भोगना पड़ता है। इससे कोई किसीकी रक्षा नहीं कर सकता। यदि आप यह कहें कि पुत्र पिताकी दृष्टिको आनन्द देनेवाले होते हैं, तो मैं कहूँगा कि महानेमि आदिक मेरे कई भाई इस कार्यके लिये विद्यमान हैं। मैं तो बुढ़े मुसाफिरकी भाँति इस संसार मार्गके गमनागमनसे ऊब गया हूँ। इसीलिये मैं उसके हेतुरूप कर्मोंका अब नाश करना चाहता हूँ। परन्तु दीक्षाके बिना यह नहीं हो सकता, इसलिये सर्व प्रथम मैं उसीको ग्रहण करने जा रहा हूँ। हे बन्धो! आप अब मेरे इस कार्यमें व्यर्थ ही बाधा न दीजिये।"

इधर राजा समुद्रविजय भी यह बातें सुन रहे थे, इसलिये वे नेमिसे कहने लगे :—"प्यारे पुत्र! तुम तो गर्भसे ही ईश्वर हो, किन्तु तुम्हारा शरार अत्यन्त सुकुमार है, तुम इस व्रतका कष्ट किस प्रकार सहन करोगे? हे पुत्र! ग्रीष्मकाल की कड़ी धूपका सहना दूर रहा, तुम तो अन्य ऋतुकी साधारण धूप भी बिना छातेके सहन नहीं कर सकते। भूख प्यासका परिषह वे लोग भी सहन नहीं कर सकते, जो अत्यन्त परिश्रमी और कष्ट

सहिष्णु होते हैं, तब इस देवभोगके योग्य शरीरसे तुम इन्हें कैसे सहन करोगे?"

नेमिकुमारने कहा—"पिताजी! उत्तरोत्तर दुःखों के समूहको भोगते हुए नारकी जीवोंको जाननेवाले पुरुष क्या इसे दुःख कह सकते हैं? तपके दुःखसे तो अनन्त सुख देनेवाले मोक्षकी प्राप्ति होती है और विषय-सुखसे तो अनन्त दुःखदायी नरक मिलता है। इसलिये आपही विचार करके बतलाइये कि मनुष्यको क्या करना उचित है? विचार करने पर यह तो सभी समझ सकते हैं कि क्या भला और क्या बुरा है, किन्तु दुःखका विषय यह है कि विचार करनेवाले विरले ही होते हैं।"

नेमिकुमारकी यह बातें सुनकर उनके माता पिता, कृष्ण, बलराम तथा समस्त स्वजनोंको विश्वास हो गया, कि वे अब दीक्षा लिये बिना नहीं रह सकते, इसलिये सब लोग उच्च स्वरसे विलाप करने लगे। किन्तु नेमिकुमार तो कुञ्जर की भाँति स्नेह-बन्धनोंको छिन्न भिन्न कर अपने वासस्थानको चले गये। यह देख, लोकान्तिक देवोंने प्रभुके पास आकर कहा:—"हे नाथ!

अब आप तीर्थ प्रवर्तित कीजिये।" इसके बाद इन्द्रके आदेशानुसार जृम्भक देवताओंके भरे हुए द्रव्यसे भगवान वार्षिक दान देने लगे।"

उधर राजीमतीने जब सुना कि नेमिकुमार दीक्षा लेना चाहते हैं और इसीलिये वे द्वार परसे लौटे जा रहे हैं, तब वह व्याकुल हो पृथ्वी पर गिर पड़ी। यह देख कर उसकी सखियाँ अत्यन्त चिन्तित हो गयीं। उन्होंने समुचित उपचार कर शीघ्र ही उसे सावधान किया। उस समय राजीमतीके युगल कपोलों पर केश लटक रहे थे और अश्रुओंसे उसकी कञ्चुकी भीग गयी थी। होशमें आते ही उसे सब बातें फिर स्मरण हो आयीं, और वह विलाप करते हुए कहने लगी—"हा दैव! मैंने तो कभी स्वप्नमें भी यह मनोरथ नहीं किया था कि नेमिकुमार मेरे पति हों। फिर तूने किसकी प्रार्थनासे उनको मेरा पति बनाया? और यदि उनको मेरा पति बनाया, तो असमयमें वज्रपात की भाँति तूने यह विपरीत घटना क्यों घटित कर दी? निःसन्देह तू महा कपटी और विश्वास घातक है। मैंने तो अपने

भाग्य विश्वाससे पहले ही यह जान लिया था कि कहाँ परम प्रतापी नेमिकुमार और कहाँ हतभागिनी मैं ? मेरा और उनका योग कैसा ? परन्तु हे नेमिकुमार ! यदि तुम मुझे अपने लिये उपयुक्त न समझते थे, तो फिर मेरे पाणिग्रहण की बात स्वीकार कर मेरे मनमें व्यर्थ ही मनोरथ क्यों उत्पन्न किया ? हे स्वामिन् ! यदि मनोरथ उत्पन्न किया, तो उसे बीचहीमें नष्ट क्यों कर दिया ? महापुरुष तो प्राण जाने पर भी अपने निश्चयसे नहीं टलते। फिर आपने मेरे साथ ऐसा व्यवहार क्यों किया ? हे प्रभो ! यदि आप अपनी प्रतिज्ञासे इस प्रकार विचलित होंगे, तो समुद्र भी अवश्य मर्यादा छोड़ देगा। परन्तु नहीं, मैं भूल करती हूँ, यह आपका नहीं, मेरे ही कर्मका दोष है। मेरे भाग्यमें केवल वचनसे ही आपका पाणिग्रहण बदा था। यह मनोहर मातृगृह, यह रमणीय और दिव्य मण्डप, यह रत्नवेदिका तथा हमारे विवाहके लिये जो जो तैयारियाँ की गयी हैं, वे सब अब व्यर्थ हो गयीं। 'मंगलगानोंमें जो गाया जाता है, वह सब सत्य नहीं होता'—यह

लोकोक्ति भी आज यथार्थ प्रमाणित हो गयी ; क्योंकि पहले आप मेरे पति कहलाये, किन्तु बादको कुछ भी न हो सका। मैंने पूर्व जन्ममें दम्पतियोंका वियोग किया होगा, इसीलिये इस जन्ममें मुझे आपके समागमका सुख उपलब्ध न हो सका!"

इस प्रकार विलाप करती हुई राजीमती पुनः जमीन पर गिर पड़ी। होश आने पर उसने अपनी छाती पीटते पीटते अपना हार तोड़ डाला और अपने कङ्कण भी फोड़ डाले।

उसकी यह व्याकुलता देखकर उसकी सखियोंने नेमिकुमार की ओरसे उसका ध्यान हटानेके उद्देशसे कहा :—"हे सखी! नेमिनाथका स्मरण कर अब तुम व्यर्थ ही अपने जीको दुःखित क्यों करती हो? उससे अब तुम्हें प्रयोजन ही क्या है? वह तो स्नेह रहित, स्पृहा रहित, और लोक व्यवहारसे विमुख है। जिस तरह जंगलके पशु बस्तीसे डरते हैं, उसी तरह वह भी गार्हस्थ्य जीवनसे डरता है। वह दाक्षिण्य रहित, स्वेच्छाचारी और निष्ठुर था। यदि चला गया तो उसे जाने दो।

यह अच्छा हुआ, जो उसके गुण आरम्भमें ही प्रकट हो गये। व्याहके बाद यदि उसने ऐसी निष्ठुरता दिखलायी होती, तो निःसन्देह वह कुएँमें उतार कर रस्सी काट देनेका सा काय होता। अब उसे जाने दो। शाम्ब, प्रद्युम्न आदि और भी अनेक राजकुमार हैं। उनमेंसे जिसके साथ इच्छा हो, उसके साथ तुम्हारा व्याह किया जा सकता है। हे सखी! संकल्प मात्रसे तुम नेमिको दी गयी थीं, परन्तु उसके स्वीकार न करने पर तुम अब भी कन्या ही हो!"

सखियोंके यह वचन राजीमतीको बहुत ही अप्रिय मालूम हुए। उसने क्रुद्ध होकर कहा:—"तुमलोग कुलटाकी भाँति कुलको कलङ्कित करनेवाली यह कैसी बातें कहती हो? नेमि तो तीनों लोकमें उत्कृष्ट हैं। संसारमें क्या कोई भी पुरुष उनकी बराबरी कर सकता है? और यदि कर भी सकता हो, तो उनसे मुझे क्या प्रयोजन?—क्योंकि कन्यादान एक ही बार किया जाता है। मैंने मन और वचनसे नेमिकुमारको ही पति माना था और उन्होंने भी गुरुजनोंके अनुरोधसे मुझे

गृहिणी रूपमें स्वीकार किया था, फिर भी यदि किसी कारणवश उन्होंने मुझसे ब्याह न किया, तो अब मुझे अनर्थकारी भोगोंकी ही क्या आवश्यकता है? यदि विवाहमें उनका हस्तस्पर्श मुझे नहीं हो सका, तो दीक्षा में उनका हस्त मुझे अवश्य ही स्पर्श करेगा।"

राजीमतीके यह वचन सुनकर उसकी सब सखियाँ मौन हो गयीं। तदनन्तर राजीमती नेमिकुमारके ध्यान में मग्न रहते हुए अपना समय व्यतीत करने लगी।

उधर नेमिकुमार अपना सारा समय दान देनेमें ही व्यतीत करते थे और राजा समुद्रविजय आदि स्वजनोंको उनके दीक्षा विषयक निश्चयसे घोर दुःख होता था, अतः वे बालककी भाँति रात दिन रोया करते थे। नेमिकुमारको लोगोंके मुखसे तथा अपने त्रिज्ञान द्वारा राजीमतीकी प्रतिज्ञाका हाल भी ज्ञात हुआ, किन्तु वे जरा भी विचलित न हुए। क्रमशः वार्षिक दान पूर्ण होने पर शक्रादि देवेन्द्रोंने भगवानका दीक्षाभिषेक किया। दीक्षाभिषेक होने पर प्रभु उत्तर कुरु नामक रत्नशिबिका पर आरूढ़ हुए, जिसे देवता तथा मनुष्योंने

उठाया। इसके बाद उनके आगे सौधर्मेन्द्र और ईशानेन्द्रने दो चमर धारण किये। सनत्कुमारने छत्र, माहेन्द्र ने खड्ग, ब्रह्मेन्द्रने दर्पण, लान्तकेन्द्रने पूर्ण कुम्भ, महाशक्रेन्द्रने स्वस्तिक, सहस्रारेन्द्रने धनुष, प्राणतेन्द्रने श्रीवत्स, अच्युतेन्द्रने नन्दावर्त्त और शेष चमरेन्द्र आदिने शास्त्र धारण किये।

इसके बाद माता पिता, गुरुजन और कृष्ण बलराम आदि भ्राताओंसे घिरे हुए महामना भगवान राजमार्गसे चलने लगे। चलते चलते जब वे राजीमतीके महलके निकट पहुँचे, तब उनपर राजीमतीकी दृष्टि जा पड़ी। उनको देखते ही उसके हृदयमें फिर दुःख-सागर उमड़ पड़ा, जिसके वेगको सम्हाल न सकनेके कारण वह मूर्च्छित हो जमीन पर गिर पड़ी।

इसके बाद भगवान रैवताचलके सहस्राम्र नामक वनमें आ पहुँचे। यह आम्रवन रैवताचलका भूषण रूप था। उसकी शोभा नन्दनवनको भी मात करती थी। नवीन केतकी पुष्पोंके कारण वह उस समय मानों हँस रहा था। जामुनके वृक्षोंसे पके हुए जामुन फल भूमि

पर गिरनेके कारण ऐसा प्रतीत होता था मानो चारों ओरकी भूमि नीलरत्न द्वारा निर्माण की गयी है। कदम्ब पुष्पोंकी शैय्यामें शयन करनेसे मधुकर मानो उन्मत्त हो रहे थे। कहीं मयूरोंका केकारव और नृत्य मनको मुग्ध कर रहा था, तो कहीं कुटज पुष्प कामदेवके शस्त्रोंसे गिरी हुई चिनगारियोंका दृश्य उपस्थित कर रहे थे। कहीं मालती और जुईके पुष्प अपनी सुगन्ध से वायुको सुगन्धित बना रहे थे तो कहीं वृक्षोंकी घोर घटा पथिकोंको विश्राम करनेका मानो निमन्त्रण दे रही थी। समूचे वनमें चारों ओर प्रकृतिकी अनुपम छटा फैली हुई थी, जिसे देखकर वैरागी मनुष्य भी कुछ देरके लिये मुग्ध हो जाते थे।

इस रमणीय स्थानमें पहुँचने पर प्रभुने शिविकासे उतर कर अपने शरीरसे गहने-कपड़े उतार डाले, जिन्हें इन्द्रने उठाकर कृष्णको दे दिये। जन्मसे तीन सौ वर्ष व्यतीत होनेपर श्रावण शुक्ला छठके दिन सूर्योदयके बाद चित्रानक्षत्रके साथ चन्द्रका योग होने पर छट्ठ तप कर, भगवानने पंच मुष्टिसे लोच किया। लोच

करने पर शक्रेन्द्रने भगवानके केश ले लिये और उनके कंधे पर देवदूष्य वस्त्र रक्खा। इसके बाद शक्रेन्द्र वह केश क्षीरसागरमें डाल आये। वहाँसे वापस आने पर उन्होंने जब लोगोंका कोलाहल शान्त किया, तब भगवानने सर्व सामायिक ग्रहण कर लिया। उस समय जगद्गुरुको चौथा मनःपर्यव ज्ञान उत्पन्न हुआ, और नारकी जीवोंने भी क्षणभर सुख अनुभव किया। नेमि-कुमारके साथ और भी एक हजार राजाओंने दीक्षा ग्रहण की। इसके बाद इन्द्र तथा कृष्णादिक नेमिभगवानको वन्दन कर अपने स्थानको वापस चले गये।

दूसरे दिन भगवानने गोष्ठमें जाकर वरदत्त ब्राह्मणके यहाँ, परमान्न-क्षीर द्वारा पारण किया। उस समय गन्धोदक वृष्टि, दुंदुभी नाद, पुष्पवृष्टि, वस्त्रवृष्टि और धनवृष्टि—यह पञ्च दिव्य प्रकट कर देवता लोक वारंवार आकाशसे अहोदान! अहोदान! कहने लगे। उसके बाद भगवान, जो कर्म-बन्धनसे निवृत्त हो चुके थे और घाति-कर्मका क्षय करनेमें सचेष्ट थे, अन्य स्थानमें विहार कर गये।

इधर नेमिनाथ भगवानका छोटा भाई रथनेमि

राजीमतीको देख कर उस पर आशिक हो गया था। इसलिये वह उसे अपने हाथमें करनेके लिये नित्य अच्छी अच्छी चीजें उसके पास भेजने लगा। भोली-भाली राजीमती उसके भावको न समझकर वह सब चीजें स्वीकार करती गयी। उसने समझा कि अपने भाईके स्नेहके कारण ही यह मुझसे प्रेम करता है। उधर रथ-नेमिने यह मान लिया, कि राजीमती अनुरागके ही कारण मेरी सब चीजें ग्रहण करती है। इसलिये वह नित्य राजीमतीके घर आने-जाने लगा और भौजाईके नाते उससे दिल्लगियाँ करने लगा।

एकदिन एकान्त पा कर उसने राजीमतीसे कहा :— "हे मुग्धे! मेरी आन्तरिक इच्छा है कि तुम अपना यौवन वृथा न खोकर मुझसे विवाह कर लो। मेरा भाई सांसारिक सुखोंका स्वाद न जानता था, इसलिये उसने तुमसे विवाह न किया, परन्तु मैं नहीं समझता, कि उसके पीछे अब तुम अपना जीवन व्यर्थ क्यों खो रही हो? हे सुन्दरी! उसने तो प्रार्थना करने पर भी तुम्हें ग्रहण न किया, किन्तु मैं तो अब उलटा तुमसे प्रार्थना

कर रहा हूँ। मुझे विश्वास है कि तुम सोच-विचार कर मेरी प्रार्थना अवश्य स्वीकार करोगी।"

रथनेमीके यह वचन सुनते ही राजीमतीको उसके पहलेके व्यवहार की बातें याद आ गयीं। उसके हृदयमें तो नाम मात्रके लिये भी विकार न था, इसलिये उसने धर्मोपदेश द्वारा उसे समझानेकी बहुत चेष्टा की, परन्तु इसका कोई फल न हुआ। रथनेमि बराबर उसके पास आकर उसे अपनी बात पर राजी करनेकी चेष्टा करता रहा।

राजीमतीने जब देखा कि उस पर कोई असर नहीं होता, तब उसने एक दूसरी ही युक्तिसे उसे समझानेका विचार किया और एकदिन जब रथनेमीके आनेका समय हुआ, तब उसने खूब पेट भर कर दूध पी लिया। इसके बाद ज्योंही रथनेमी आया, त्योंहीं उसने कय करानेवाला मदन-फल सूंघ लिया। मदन-फल सूंघते ही उसे कय होने लगी। यह देखकर उसने रथ-नेमीसे कहा :—"जल्दी एक सुवर्ण थाल ले आ!" रथनेमी उसी समय नोकरकी भाँति एक थाल उठा

लाया। और उसी थालमें राजीमतीने वह सब दूध वमन कर दिया।

इसके बाद राजीमतीने रथनेमीसे कहा :—"हे रथनेमी! तू इसे पी जा।"

रथनेमीने चिढ़कर कहा :—"क्या मैं कुत्ता हूँ, जो तुम मुझसे वमन-पान करनेको कहती हो।"

राजीमतीने पूछा :—"क्या तू इसे पीने योग्य नहीं समझता है?"

रथनेमीने कहा :—"मैं क्या, यह तो बालक भी बतला सकते हैं, कि यह पीने योग्य नहीं है।"

राजीमतीने कहा :—"यदि तू यह जानता है, तो नेमिकुमारकी वमन (त्याग) की हुई मुझको फिर क्यों भोगना चाहता है? तू नेमिकुमारका भाई है, इसलिये तुझे तो और भी ऐसे कार्यसे दूर रहना चाहिये। जा, अब नरकमें डालनेवाला ऐसा प्रस्ताव स्वप्नमें भी मेरे सामने न करना।"

राजीमतीके मुखसे अपनी यह निन्दा सुनकर रथनेमी अत्यन्त लज्जित हुआ और वह मन-ही-मन पश्चाताप
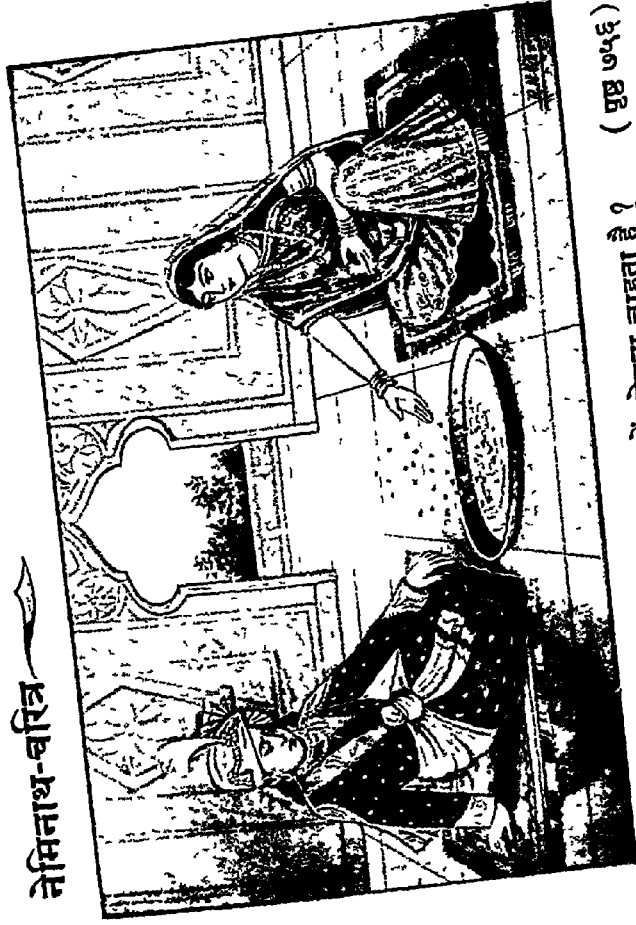
(पृष्ठ ७५६)

वमन (त्याग) की हुई मुझको फिर क्यों भोगना चाहता है?

करता हुआ चुपचाप अपने घर चला गया। इधर राजीमतीकी लगन तो नेमि भगवान्‌से ही लगी हुई थी, इसलिये वह उन्हींके ध्यानमें पूर्ववत् अपने दिन व्यतीत करने लगी।

उधर व्रतके दिनसे आरम्भ कर [illegible]वन दिन तक इधर उधर घुमकर नेमि भगवान पुनः रैवतगिरिके सहस्राम्र वनमें आ पहुँचे [illegible] वेतस-वृक्षके नीचे अट्ठम तप और ध्यान[illegible] जलधरे [illegible] भगवानके चार घातिकर्म जीर्ण रज्जुकी भाँति छिन्न हो गये। उनके छिन्न होने पर आश्विन मासकी अमावस्याके दिन चित्रा नक्षत्रके साथ चन्द्रका योग होनेपर भगवानको केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ। फलतः सुरेन्द्रोंके आसन चलायमान हुए और वे तुरन्त भगवानकी सेवामें आ उपस्थित हुए। उसी समय उन्होंने तीन गढ़ोंसे युक्त समवसरणकी रचना की।

समवसरण बन जानेपर नेमिनाथ भगवानने पूर्व-द्वारसे उसमें प्रवेश कर, वहाँ अवस्थित एक सौ बीस धनुष ऊँचे चैत्य वृक्षकी प्रदक्षिणाकर 'तीर्थाय नमः' कहते हुए पूर्व सिंहासन पर पूर्वाभिमुख अवस्थामें स्थान

ग्रहण किया। शेष तीन दिशाओंके सिंहासनों पर देवताओंने नेमिनाथके तीन प्रतिरूप व्यन्तर उत्पन्न कर उन्हें स्थापित कर दिया, जिससे ऐसा मालूम होने लगा, मानो चार दिशाके चारों सिंहासन पर प्रभु चार रूप धारण कर विराजमान हो रहे हैं।

इसके बाद चारों प्रकारके देव-देवियोंने स्वामीके मुख चन्द्र पर चकोरकी भाँति अपनी दृष्टि स्थापित कर यथास्थान आसन ग्रहण किया। [illegible] ्पय भगवानके शुभागमनका हाल उद्यान रक्षकोंने कृष्णको कह सुनाया। सुनकर कृष्णको इतना आनन्द हुआ, कि उन्होंने संवाद लानेवालोंको साढ़े बारह क्रोड़ रुपये इनाम दिये। इसके बाद वे हाथी पर सवार हो, नेमिनाथ भगवान की वन्दना करनेके लिये उस उद्यानकी ओर चलने लगे। चलते समय दस दशार्ह, एक क्रोड़ राजकुमार, समस्त अन्तःपुर की रानियें और सोलह हजार राजा भी उनके साथ हो गये।

क्रमशः वे सबलोग समवसरणके पास जा पहुँचे। वहाँपर समस्त राज-चिन्होंको त्याग कर कृष्णने उत्तर

द्वारसे समवसरणके प्राकारमें प्रवेश किया और तीनवार प्रभुकी प्रदक्षिणा तथा वन्दन कर सौधर्मेन्द्रके पीछे स्थान ग्रहण किया। उनके समस्त संगी भी इसी प्रकार प्रदक्षिणा और वन्दन कर यथोचित स्थानमें बैठ गये। इसके बाद इन्द्र और कृष्ण पुनः प्रभुको वन्दन कर उनकी भक्तिपूर्वक स्तुति करने लगे। वे कहने लगे :—"हे जगन्नाथ! समस्त जगतके उपकारी, जन्मसे बाल-ब्रह्मचारी, करुणारूप लताके लिये जलधरके समान तथा भव्य-जीवोंके रक्षक आपको नमस्कार है। हे प्रभो! आपने भाग्यवश चौवन दिनमें ही शुक्ल ध्यानसे घातिकर्मोंको क्षय किया है। हे नाथ! आपने न केवल युदुकुलको ही विभूषित किया है, परन्तु अपने सूर्य समान केवल ज्ञानसे तीनों लोकको अलंकृत किया है। हे जिनेन्द्र! हे यदुकुल-गगन-दिवाकर! यह भवसागर अथाक होने पर भी आपके पाद-प्रसादसे वह निःसन्देह गोष्पद मात्र प्रतीत होने लगता है। हे तीर्थनाथ! हे यदुवंशमण्डन! ललनाओंके लालित्यसे सभीका चित्त विचलित हो उठता है, परन्तु यदि किसीका हृदय वज्र समान अभेद्य हो तो वह तीनों

लोकमें आपहीका है। हे स्वामिन्! आपको व्रत लेनेसे रोकनेके लिये आपके बन्धुओंने जो चेष्टा की थी, उसके कारण इस समय आपकी यह सम्पत्ति देखते हुए हमें अत्यन्त पश्चाताप हो रहा है। यह अच्छा ही हुआ कि आपके दुराग्रही स्वजनोंको आपके मार्गमें बाधक होनेमें सफलता न मिल सकी। अब जगतके पुण्यसे उत्पन्न अखण्ड केवल ज्ञानवाले हे प्रभो! संसार-सागरके पतनसे हमारी रक्षा कीजिये। हम चाहे जहाँ हों, चाहे जो कार्य करते हों, पर आप हमारे हृदयमें सदा विराजमान रहें। यही एकमात्र हमारी आन्तरिक अभिलाषा है। इसके सिवा हमें और किसी वस्तुकी जरूरत नहीं है।"

इन्द्र और कृष्णकी यह स्तुति पूर्ण होने पर, भगवानने सब लोगोंको धर्मोपदेश देते हुए कहा :—"हे भव्य प्राणियो! जीवोंकी समस्त सम्पदा विद्युत्से भी अधिक चपल है, संयोग स्वप्नोंके समान हैं, यौवन वृक्षोंकी छायाके समान चंचल है, प्राणियोंके शरीर भी जल बुद्बुद्वत् हैं, इसलिये इस असार संसारमें सार रूप वस्तु कुछ भी नहीं है। केवल दर्शन, ज्ञान और

चारित्रका आचरण ही सार है। नवतत्वोंपर श्रद्धा रखना सम्यग्दर्शन कहलाता है। भली भाँति उन तत्वोंका बोध होना ही ज्ञान कहलाता है। सावद्ययोगसे विरमण होता है और मोक्षका कारण रूप तो चारित्र बतलाया गया है। यह चारित्र साधुओंको सर्व विरतिसे और गृहस्थोंको देशसे होता है। जो देशचारित्रमें व्यस्त रहता है, विरतियोंकी सेवा करता है और संसारके स्वरूपको भली भाँति जानता है, वह श्रावक कहलाता है। श्रावकके लिये मद्य, मांस, मक्खन, मधु, पाँच प्रकारके गूलर, अनन्तकाय, अनजाने फल, रात्रि-भोजन, कच्चे गोरस (दूध, दही या मठा) में मिलाया हुआ द्विदल अन्न, बासी भात, दो दिनसे अधिक समयका दही और सड़ा गला अन्न—यह पदार्थ निषिद्ध माने गये हैं। श्रावकको यत्नपूर्वक इनका त्याग करना चाहिये। जो विचारशील श्रावक भोजनमें भी इस विचारको स्थान देता है, वह धीरे धीरे इस संसार-सागरको पार कर जाता है।"

भगवानका यह उपदेश सुनकर राजा वरदत्तको

परम वैराग्य आ गया और वह दीक्षा लेनेके लिये उत्सुक हो उठा। इतनेही मैं कृष्णने प्रभुको प्रणाम करके पूछा :— "हे प्रभो! यद्यपि आपको सभी लोग प्रेम करते हैं, तथापि राजीमती आप पर विशेष अनुराग रखती है, उसका क्या कारण है? भगवानने इस प्रश्नके उत्तरमें धन और धनवतीके जन्मसे लेकर अपने आठ जन्मोंका वृत्तान्त और उसके साथका अपना सम्बन्ध भी सबको कह सुनाया।

इसके बाद वरदत्त राजाने खड़े हो, हाथ जोड़ कर प्रभुसे प्रार्थना की कि :—"हे नाथ! जिस प्रकार स्वाती नक्षत्रका जल सीपमें गिरनेसे वह मुक्ताफल हो जाता है, उसीप्रकार आपसे प्राप्त श्रावकधर्म भी प्राणियोंके लिये महा फलदायक होता है। मैंने आपको गुरु मान लिया है और आपके श्रीमुखसे श्रावक धर्मके लक्षण सुनकर उसे ग्रहण कर लिया है तथापि मुझे इतनेहीसे सन्तोष नहीं है। कल्पवृक्ष हाथ लगने पर केवल हाथके ही पात्रमें वस्तु लेकर भला कौन सन्तोष मान सकता है? इसीलिये हे प्रभो! मैं आपका प्रथम शिष्य होना

चाहता हूँ। आप मुझ पर दया कर इस संसारसे पार लगानेवाली दीक्षा मुझे दीजिये।"

राजा वरदत्तकी यह अभिलाषा देखकर प्रभुने उसे दीक्षा देकर अपना शिष्य बना लिया। इसके बाद और भी दो हजार क्षत्रियोंने उनके निकट दीक्षा-ग्रहण की। धनके जन्ममें धनदत्त और धनदेव नामक जो भाई थे और अपराजितके जन्ममें विमल बोध नामक जो मन्त्री था, वे तीनों भगवानके साथ संसारमें भ्रमण करते हुए इस जन्ममें राजा हुये थे। वे तीनों इस समवसरणमें आये थे। भगवानके मुखसे राजीमतीके पूर्व-जन्मोंका वृत्तान्त सुनते समय उनको जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ और वैराग्य आ जानेके कारण उन्होंने भी भगवानके निकट दीक्षा ले ली।

भगवानने उन तीनोंके साथ वरदत्तादिकको यथा-विधि ग्यारह गणधरोंके पदों पर स्थापित किया। इसके बाद उन्होंने उनको उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यरूप त्रिपदी प्रदान की और त्रिपदीके अनुसार उन्होंने द्वादशाङ्गीकी रचना की। इसके बाद अनेक कन्याओंके साथ यक्षिणी

राजकन्याने दीक्षा ली। उसे स्वामीने प्रवर्तिनीके पद पर स्थापित किया। दस दशार्ह, बलराम, कृष्ण, राजा उग्रसेन, प्रद्युम्न तथा शाम्ब आदिकने श्रावक धर्म स्वीकार किया। शिवादेवी, रोहिणी, देवकी, रुक्मिणी आदि रानियों तथा अन्यान्य स्त्रियोंने भी श्रावक धर्म स्वीकार किया। इस प्रकार समवसरणमें प्रभुका संघ हुआ। दूसरे दिन सुबह प्रथम पोरुषीमें प्रभुने उपदेश दिया और द्वितीय पोरुषीमें वरदत्त गणधरने धर्मोपदेश दिया। इसके बाद शक्रादि देवता तथा कृष्णादिक राजा भगवानको वन्दन कर अपने अपने वासस्थानको चले गये।

तदनन्तर उसी तीर्थमें गोमेध नामक भगवानका एक शासनदेव उत्पन्न हुआ और अम्बिका नामक उनकी एक शासनदेवी उत्पन्न हुई। गोमेधके तीन मुख, वर्ण श्याम, पुरुष वाहन, दाहिनी ओरके तीन हाथोंमें बीज पूर (बिजौरा)। परशु और चक्र नामक तीन आयुध तथा बायीं ओरके तीन हाथोंमें नकुल, त्रिशुल और शक्ति नामक आयुध थे। अम्बिकाकी कान्ति सुवर्ण समान, सिंह वाहन, दाहिनी ओरके दो हाथोंमें आम्रका

गुच्छ, और पाश तथा बायीं ओरके दोनों हाथोंमें नरमुण्ड और अंकुश शोभित हो रहे थे। अम्बिकाका दूसरा नाम कुष्माण्डी भी था।

इस प्रकार देव देवीसे अधिष्ठित नेमिनाथ भगवानने दो ऋतुओंके चार मास (वर्षाकाल) उपवनमें व्यतीत किये। इसके बाद वे अन्य देशकी ओर विहार कर गये।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

द्रौपदी-हरण

इधर पञ्च पाण्डवों पर जबसे कृष्णकी कृपादृष्टि हुई, तबसे उनके समस्त दुःख दूर हो गये। अब वे आनन्दपूर्वक हस्तिनापुरमें रहते हुए द्रौपदीके साथ भोगविलास करते थे। एकदिन कहींसे घूमते घामते नारदमुनि द्रौपदीके घर आ पहुँचे। द्रौपदीने उनको विरक्त समझ कर न तो उनको सम्मान ही दिया, न उनका आदर-

सत्कार ही किया। इससे नारद मुनि क्रुद्ध हो उठे और द्रौपदीको किसी विपत्तिमें फँसानेका विचार करते हुए उसके महलसे बाहर निकल आये।

नारदने सोचा कि यदि किसीके द्वारा द्रौपदीका हरण करा दिया जाय तो मेरी मनोकामना सिद्ध हो सकती है। परन्तु पाण्डव कृष्णके कृपापात्र थे, इसलिये नारद यह अच्छी तरह समझते थे कि उनके भयसे भरत-क्षेत्रमें कोई द्रौपदीका हरण करनेको तैयार न होगा। निदान, बहुत कुछ सोचनेके बाद वे धातकी खण्डके भरतक्षेत्रमें गये। वहाँपर अमरकंका नगरीमें पद्मनाभ नामक राजा राज्य करता था; जो चम्पा नगरीके स्वामी कपिल वासुदेवका सेवक था। नारदको देखते ही वह खड़ा हो गया और उनका आदर सत्कार कर उन्हें अपने अन्तःपुरमें लिवा ले गया। वहाँ अपनी रानियोंको दिखाकर उसने नारदसे पूछा :—"हे नारद! क्या ऐसी सुन्दर स्त्रियाँ आपने और भी कहीं देखी हैं?"

नारदमुनिने हँसकर कहा :—"हे राजन्! कूप-मण्डूककी भाँति तुम इन स्त्रियोंको देखकर व्यर्थही

आनन्दित होते हो। जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें हस्तिनापुर नामक एक नगर है। वहाँके पञ्च पाण्डवोंकी पटरानी द्रौपदी इतनी सुन्दर है, कि उसके सामने तुम्हारी यह सब रानियाँ दासी तुल्य प्रतीत होती हैं।"

इतना कह नारद तो अन्तर्धान हो गये, परन्तु पद्मनाभके हृदयमें इतनेहीसे उथलपुथल मच गयी। वह द्रौपदीको अपने अन्तःपुरमें लानेके लिये अत्यन्त उत्सुक हो उठा। परन्तु द्रौपदीको लाना कोई सहज काम न था। इसलिये वह अपने पूर्वपरिचित एक पातालवासी देवकी आराधना करने लगा। आराधनासे प्रसन्न हो, उस देवने प्रकट होकर पूछा :—"हे पद्मनाभ! तुमने मुझे किसलिये याद किया है?"

पद्मनाभने कहा :—"नारद मुनिने जबसे द्रौपदीके रूपकी प्रशंसा की है तभीसे मैं उसपर अनुरक्त हो रहा हूँ। अतएव आप मुझपर दयाकर, जैसे भी हो, उसे मेरे पास ला दीजिये।"

देवने कहा :—"द्रौपदीकी गणना महासतियोंमें की जाती है। यह पाण्डवोंके सिवा स्वप्नमें भी अन्य

पुरुषकी इच्छा नहीं कर सकती। फिर भी तुम्हारी इच्छा है, तो मैं उसे तुम्हारे पास लिये आता हूँ।"

इतना कह, वह देव हस्तिनापुरमें गया और द्रौपदीको अवस्वापिनी निद्रामें डालकर, उसे वहाँसे पद्मनाभके पास उठा लाया। सुबह जब द्रौपदीकी निद्रा भंग हुई, तब वह अपनेको एक अपरिचित स्थानमें पाकर कहने लगी :—"अहो! मैं कहाँ हूँ? यह तो मेरा वह महल नहीं है, जहाँ रातको मैं सोयी थी। यह स्वप्न है या इन्द्रजाल?"

पद्मनाभ द्रौपदीके पास ही था। उसकी व्याकुलता देखकर वह कहने लगा :—"हे सुन्दरि! तुम्हें भय करनेका कोई कारण नहीं है। मैंने ही तुम्हें यहाँ उठवा मँगाया है। तुम मेरे अन्तःपुरमें रहकर इच्छानुसार सुख भोग सकती हो। यह अमरकंका नगरी है। मैं यहाँका राजा हूँ। मैं तुम्हें अपनी पटरानी बनाकर अपने पास रखना चाहता हूँ।

पद्मनाभके यह वचन सुनकर द्रौपदी चिन्तामें पड़ गया। वह अपने मनमें कहने लगी कि सतीत्व रक्षाके

लिये अब किसी युक्तिसे काम लेनेके सिवा और कोई उपाय नहीं है। यह सोचकर वह पद्मनाभसे कहने लगी कि :—"यदि एक मासमें मेरा कोई रिस्तेदार यहाँ न आयेगा, तो मैं तुम्हारा प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लूँगी।"

पद्मनाभकी प्रकृति बहुत ही नीच थी। वह द्रौपदी-की यह बात कदापि न मानता, परन्तु उसने सोचा कि जम्बूद्वीपके आदमियोंका यहाँ आना असम्भव है, इस-लिये द्रौपदीकी बात मान लेनेमें कोई हर्ज नहीं। उधर द्रौपदीने मन-ही-मन प्रतिज्ञा की कि एक मास बीत जाने पर भी यदि मेरे पति नहीं आयेंगे तो मैं अन्न-जल ग्रहण न करूँगी।

इधर द्रौपदीको महलमें न देखकर पाण्डवोंको बड़ी चिन्ता हो पड़ी और वे चारों ओर उसकी खोज करने लगे। उन्होंने दूर दूर तकके जल, स्थल, वन, पर्वत और गुफा आदि स्थान छान डाले, परन्तु कहीं भी उसका पता न चला। अन्तमें उनकी माता कुन्तीने कृष्णके पास आकर उनसे यह हाल कह सुनाया, इसपर कृष्णने

हँसकर कहा :—"अहो! तुम्हारे पुत्र कैसे बलवान हैं, कि वे अपनी स्त्रीकी भी रक्षा नहीं कर सकते! खैर, अब आप चिन्ता छोड़ दीजिये और अपने घर जाइये, मैं शीघ्रही द्रौपदीको खोजकर आपके पास पहुँचा दूँगा।"

कृष्णके यह वचन सुनकर कुन्ती अपने घर लौट आयीं। उनके चले जानेपर कृष्ण किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो बैठे हुए थे, इतनेहीमें अपने लगाये हुए अनर्थ रूपी वृक्षका फल देखनेके लिये नारदमुनि वहाँ आ पहुँचे। कृष्णने उनका सत्कार कर पूछा :—"हे मुनिराज! आजकल द्रौपदीका पता नहीं है। क्या आपने उसे कहीं देखा है?"

नारदमुनिने हँसकर कहा :—"मैं हालहीमें धातकी खंडकी अमरकंका नामक नगरीमें गया था। वहाँपर राजा पद्मनाभके महलमें द्रौपदीके समान एक स्त्री मुझे दिखायी दी थी। इसके सिवा मैं इस सम्बन्धमें और कुछ नहीं जानता।"

इतना कह नारदमुनि तो अन्तर्धान हो गये। किन्तु

उनकी भाव-भंगी देखकर कृष्ण अपने मनमें कहने लगे कि हो न हो, यह कलह प्रेमी नारदहीका काम मालूम होता है। इसलिये उन्होंने पाण्डवोंको बुलाकर कहा :— "हे बान्धव! द्रौपदीको पद्मनाभ हर ले गया है, परन्तु आपलोग जरा भी चिन्ता न करें। हमलोग शीघ्रही उसे यहाँ ले आयँगे।"

इसके बाद पाण्डवों सहित एक महान सेनाको लेकर कृष्ण मगध नामक पूर्व समुद्रके तटपर गये। वहाँपर समुद्रको देखकर पाण्डवोंने कहा :—"हे प्रभो! यह समुद्र भी संसारकी भाँति महा भीषण और अगाध मालूम होता है। यह इतना गहरा है, कि इसमें बड़े बड़े पर्वत भी डूब सकते हैं। कच्छ, मच्छ आदिक इसमें कितने जलचर हैं, इसका कोई ठिकाना नहीं। ऐसी अवस्थामें हमलोग इसे कैसे पार करेंगे?"

कृष्णने कहा :—"आपलोग चिन्ता न कीजिये। हमलोग यहाँ तक आ पहुँचे हैं, तो अब समुद्र पार करनेका भी कोई न कोई उपाय निकल ही आयगा।"

इतना कह कृष्णने समुद्रके तटपर बैठ, निर्मल

चित्तसे अट्ठम तप द्वारा सुस्थित देवकी आराधना की। इसपर सुस्थितने तुरन्त प्रकट होकर कृष्णसे कहा :—"हे केशव! मैं इस समुद्रका अधिष्ठायक देवता हूँ। आपकी आराधनसे आकर्षित होकर मैं यहाँ आया हूँ। मेरे योग्य जो कार्य हो, वह मुझे शीघ्र सूचित कीजिये!"

कृष्णने कहा :—"अधम पद्मनाभ द्रौपदीको हरण कर ले गया है। इसलिये आप कोई ऐसा उपाय कीजिये, जिससे धातकी खण्डसे उसे शीघ्राति शीघ्र लाया जा सके।"

देवने कहा :—आप कहें तो जिस प्रकार पद्मनाभका परिचित देव उसको यहाँसे हरण कर ले गया है, उसी प्रकार मैं भी वहाँसे उसे आपके पास ला दूँ या आप कहें तो सैन्य और वाहन सहित पद्मनाभको समुद्रमें डालकर द्रौपदीको आपके पास ले आऊँ!

कृष्णने कहा :-"हे देव! आप ऐसा न कर मेरे और पाण्डवोंके छः रथोंको निर्विघ्न रूपसे समुद्र पार करनेका मार्ग दीजिये, जिससे हमलोग स्वयं उसको जीतकर द्रौपदीको ले आयें। यही मार्ग हमारे लिये उत्तम है।"

सुस्थित देवने ऐसी ही व्यवस्था कर दी, इसलिये

पाण्डवों सहित कृष्ण समुद्र पार कर पद्मनाभकी राजधानी अमरकंका नगरीमें जा पहुँचे। वहाँपर सब लोग नगरके बाहर एक उद्यानमें ठहर गये। कृष्णने युद्ध घोषणा करनेके पहले पद्मनाभको एक दूत द्वारा सन्देश भेज देना उचित समझा। उन्होंने इस कार्यके लिये दारुक सारथीको उपयुक्त समझ कर, उसे सब मामला समझा, एक पत्र दे, पद्मनाभके पास जानेका आदेश दिया।

सारथी दारुक विशालकाय तो था ही, इस समय ललाट पर त्रिवलि डाल लेने और भृकुटियोंको चक्र बना लेनेके कारण वह देखनेमें और भी भयंकर प्रतीत होने लगा। उसने यथा समय पद्मनाभ की सभामें उपस्थित हो कृष्णका पत्र उसके हाथमें रक्खा। साथ ही उसने पद्मनाभसे कहा :—"हे राजन्! यह तो आप जानते ही होंगे, कि कृष्णके साथ पाण्डवोंकी अत्यन्त घनिष्ठता है। इसलिये किसी भी मामलेमें वे एक दूसरेसे पृथक नहीं किये जा सकते। आप पाण्डवोंकी पटरानी द्रौपदीको जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रसे हरण कर लाये हैं। उसीको पुनः प्राप्त करनेके लिये कृष्ण पाण्डवों सहित,

स्थलकी भाँति समुद्रको पार कर यहाँ आए हुए हैं। यदि आप अपना कल्याण चाहते हों, तो शीघ्र ही उस सतीको उन्हें सौंप दीजिये, अन्यथा मेरे स्वामीके इस पत्रको रण-निमन्त्रण समझिये।"

दारुकके यह वचन सुनकर पद्मनाभको बड़ा ही क्रोध आया, वह कहने लगा :—"हे दारुक! तेरे कृष्ण भारतके वासुदेव हैं, न कि यहाँके! मैं उनको अपने सामने कुछ भी नहीं समझता। मुझे रण-निमन्त्रण स्वीकार है। तुम अपने स्वामीके पास जाकर उसे भी युद्धके लिये तैयार करो।"

यह उत्तर सुनकर दारुक कृष्णके पास लौट आया और कृष्णको सब हाल कह सुनाया। उसके पीछे ही पद्मनाभ भी अपनी सेनाके साथ वहाँ आ धमका। शत्रु सेनाको अपनी ओर आते देखकर कृष्णने पाण्डवोंसे पूछा :—"मालूम होता है कि पद्मनाभ युद्ध करनेके लिये हमलोगोंकी ओर आ रहा है। मैं जानना चाहता हूँ कि आपलोग उससे युद्ध करेंगे या अपने अपने रथ पर बैठ कर मुझे युद्ध करते हुए देखेंगे?"

पाण्डवोंने कहा :—"हे प्रभो ! पद्मनाभके साथ हमलोग स्वयं युद्ध करेंगे और देखेंगे कि पद्म राजा है या हम हैं ?

पाण्डवोंके यह वचन सुनकर कृष्णने उनको युद्ध करने की अनुमति दे दी। शीघ्र ही दोनों ओरसे घोर युद्ध आरम्भ हो गया। एक ओर पाँचों पाण्डव थे और दूसरी ओर पद्मनाभ तथा उसकी महान सेना थी। पद्मनाभने आशातीत पराक्रम दिखाकर शीघ्र ही पाण्डवोंके दाँत खट्टे कर दिये। फलतः वे कृष्णके पास आकर कहने लगे कि :—"हे स्वामिन् ! यह पद्मनाभ तो सोचनेसे भी अधिक बलवान निकला। इसकी सेना भी वैसी ही बलवान है, इसलिये युद्धमें इसे पराजित करना हमारे लिये बहुत ही कठिन है। किन्तु हमारी धारणा है कि आप इसे अनायास पराजित कर सकते हैं, इसलिये अब आपकी जो इच्छा हो, वह कीजिये।"

पाण्डवोंकी यह बातें सुनकर कृष्ण हँस पड़े। वे कहने लगे—"आपलोग तो उसी समय पराजित हो गये थे, जिस समय आपलोगोंने यह कहा था कि पद्म राजा

है या हम ? तुम्हारे मनमें सन्देह था, इसीलिये तुम्हें पराजित होना पड़ा। मैं तो यही कह कर युद्ध करूँगा, कि राजा मैं ही हूँ, पद्म नहीं।"

इसके बाद कृष्णने पद्मनाभसे युद्ध करनेके लिये प्रस्थान किया। उसके सामने पहुँचते ही उन्होंने सर्व-प्रथम मेघ गर्जन की भाँति अपने पाँच जन्य शंखका घोष किया। जिस प्रकार सिंहनाद सुनकर मृगादिक भाग खड़े होते हैं, उसी प्रकार उस शंखकी भयानक ध्वनि सुनकर पद्मकी सेनाका तीसरा भाग रणभूमिसे पलायन कर गया। इसके बाद कृष्णने अपने शार्ङ्ग धनुषका टंकार किया, जिसे सुनकर फिर पद्मकी उतनी ही सेना रणसे भाग गयी। शेष जो सैनिक वहाँ रह गये, वे भी इतने डर गये, कि उनमें लड़नेका साहस ही न रह गया। अपने सैनिकों की यह अवस्था देखकर पद्मकी भी हिम्मत टूट गयी और वह भी वहाँसे भागकर अपनी नगरीमें जा छिपा।

नगरमें छिप जानेके बाद पद्मनाभने अन्दरसे किलेके दरवाजे मजबूतीके साथ बन्द करवा दिये। यह देखकर

कृष्णको बड़ा ही क्रोध आया। उसी समय उन्होंने रथसे उतर कर वैक्रिय समुद्घातसे नरसिंह रूप धारण किया। इसके बाद यमकी तरह मुख फैलाकर घोर गर्जना करतेहुए उन्होंने इतने जोरसे भूमिपर पदाघात किया, कि शत्रुओंके हृदयके साथ साथ पृथ्वी भी हिल उठी, किलेके कंगूरे गिर पड़े, देवालय धराशायी हो गये और बड़े बड़े महल ताशके घरोंकी तरह ढह पड़े। नरसिंहके भयसे नगरमें चारों ओर हाहाकार मच गया, कोई गढ़ेमें छिप गया, कोई पानीमें घुस गया और कोई मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़ा। इसी तरह वारंवार पदाघात और गर्जना करनेसे ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो शीघ्र ही पृथ्वी उलट पुलट हो जायगी और मनुष्योंकी कौन कहे, पशु-पक्षी भी जीते न बचेंगे।

राजा पद्मनाभ भी इस उत्पातसे भयभीत हो उठा, और द्रौपदीके पास जाकर प्रार्थना करने लगा कि :— "हे देवि! मेरा अपराध क्षमा करो और इस यम समान कृष्णसे किसी तरह मेरे प्राण बचाओ!"

द्रौपदीने कहा :—"हे पद्म! तुम्हारी प्राण-रक्षाका

केवल एक ही उपाय है। वह यह कि, तुम मुझे आगे कर, स्त्रीका वेश पहन कर कृष्णकी शरणमें चलो और उनसे क्षमा प्रार्थना करो! इसके सिवा तुम्हारी प्राण-रक्षाका कोई दूसरा उपाय नहीं है।"

मरता क्या न करता! पद्मनाभको प्राण रक्षाके लिये अन्तमें यही करना पड़ा। उसने द्रौपदीके साथ कृष्णकी सेवामें उपस्थित हो उनके पैरोंमें गिरकर क्षमा प्रार्थना की। कृष्णने द्रौपदीसे इस महिलाका परिचय पूछा तो उसने कहा :—"राजन्! यही आपका अपराधी राजा पद्म है। अब यह आपकी शरणमें आया है, इसलिये इसे जीवन-दान दीजिये।"

पद्मका नाम सुनते ही कृष्णको अत्यन्त क्रोध आ गया। उन्होंने पद्मसे कहा :—"नराधम! निःसन्देह तेरा अपराध अक्षम्य है। तेरे दुस्साहसके लिये मृत्यु दण्ड ही उपयुक्त हो सकता है। परन्तु तू स्त्रीका वेश पहन कर मेरी शरणमें आया है और देवी द्रौपदी की इच्छा है कि तुझे जीवनदान दिया जाय, इसलिये मैं तुझे छोड़ देता हूँ। जा, अब फिर कभी ऐसा दुष्कृत्य न करना!

कृष्णके यह वचन सुन, पद्मनाभको बड़ाही आनन्द हुआ। वह बारंबार कृष्ण, द्रौपदी और पाण्डवोंसे क्षमा प्रार्थना कर सहर्ष अपने वासस्थानको चला गया। तद-नन्तर कृष्ण और पाण्डव भी द्रौपदीको साथ लेकर उसी प्रकार जलमार्ग द्वारा भरतक्षेत्रके लिये प्रस्थान कर गये।

जिस समय अमरकंका नगरीमें यह सब घटनाएँ घटित हो रहीं थीं, उसी समय चम्पानगरीके पूर्णभद्र नामक उद्यान-में सुव्रत मुनि पधारे हुए थे, कृष्णने युद्धके लिये प्रस्थान करते समय पाँच जन्य शंखका जो घोष किया था, वह वहाँ तक सुनायी दिया था। उस समय सुव्रत मुनिकी पर्षदामें बैठे हुए कपिल वासुदेवने उस शंखध्वनिको सुन-कर भगवानसे पूछा :—"हे स्वामिन्! मेरे शंखनादकी भाँति यह अत्यन्त चमत्कारी शंखनाद किसका है?"

सुव्रत मुनिने कहा :—"यह शंखध्वनि भरतार्धके स्वामी कृष्ण वासुदेव की है।"

कपिलने कहा :—"हे भगवन्! क्या दो वासुदेव एक स्थानमें एकत्र हो सकते हैं? मैंने तो सुना है कि ऐसा कभी नहीं होता।"

इस प्रश्नके उत्तरमें सुव्रत मुनिने द्रौपदी, आदिका वृत्तान्त कह सुनाया। इसपर कपिलने पुनः प्रश्न किया कि—"हे नाथ! यहाँ आये हुए अपने सहधर्मी अतिथिका क्या मैं स्वागत-सत्कार नहीं कर सकता?"

सुव्रत मुनिने कहा :—"यह एक साधारण नियम है कि एक स्थानमें दो तीर्थंकर, दो चक्रवर्ती, दो वासुदेव, दो बलदेव या दो प्रति वासुदेव कदापि एकत्र नहीं हो सकते। कृष्ण यहाँ कार्यवश आये हुए हैं। उनसे तुम्हारी भेट न हो सकेगी।"

यह जिन वचन सुनने पर भी कपिल अपनी उत्कण्ठाको न रोक सका। कृष्णसे भेट करनेके लिये रथके चिन्होंको देखता हुआ समुद्रके तटपर जा पहुंचा। उस समय कृष्णादिकके रथ समुद्रमें प्रवेश कर कुछ दूर निकल गये थे। इसलिये कपिलने स्वर्ण और रौप्यके पत्र समान उनके रथकी सफेद और पीली ध्वजा देख, अपने शंखसे अक्षरयुक्त ध्वनि करके कहा :—"मैं कपिल वासुदेव आपसे भेट करने आया हूँ, इसलिये आप वापस लौटनेकी कृपा कीजिये।"

कृष्णने भी अक्षरयुक्त शंखध्वनिसे इसका उत्तर देते हुए कहा :—"हम लोग बहुत दूर निकल आये हैं, इसलिये अब लौटनेमें असमर्थ हैं।"

कृष्णका यह उत्तर सुन, कपिल निराश होकर अपने वासस्थानको लौट आया। वहाँसे वह शीघ्रही अमरकंका नगरीको गया। वहाँपर पद्मनाभसे पूछताछ कि तो उसने अपने अपराधका वर्णन करते हुए कहा :—"हे प्रभो! आपके रहते हुए भी जम्बूद्वीपके कृष्णने मुझे पराजित कर दिया। ऐसे अवसर पर मुझे आपकी ओरसे सहायता मिलनी चाहिये थी!"

कपिलने कहा :—"हे दुरात्मन्! तूने देवी द्रौपदीको यहाँ लाकर घोर अन्याय किया था। कृष्ण असाधारण बलवान हैं। वे तेरा यह अन्याय कैसे सहन कर सकते थे? मैं भी अन्यायीका पक्ष नहीं ग्रहण कर सकता!" कपिलकी यह फटकार सुनकर पद्मनाभका चेहरा उतर गया।

कपिलने पुनः कहा :—"कृष्णने तेरा अपराध क्षमा कर दिया है, परन्तु मैं तुझे क्षमा नहीं कर सकता। तूने

इस कुकृत्य द्वारा राज-सिंहासनको कलंकित कर दिया है, इसलिये मैं तुझे पदच्युत करता हूँ।"

इतना कह कपिलने पद्मनाभको सिंहासनसे उतार कर उसपर उसके पुत्रको स्थापित कर दिया। अब पद्मनाभ अपनी करनीको कोसता हुआ इधर उधर भटकने लगा।

उधर कृष्णने पूर्ववत् समुद्र पार कर पाण्डवोंसे कहा:—"आपलोग गंगा नदी पार कीजिये, तब तक मैं सुस्थित देवसे विदा लेकर आता हूँ।"

कृष्णकी यह आज्ञा पाकर पाण्डव लोग नौका द्वारा बासठ योजन लंबी-चौड़ी गंगा नदीको पार कर गये। इसके बाद वे किनारे पर खड़े हो, आपसमें कहने लगे कि:—"आज कृष्णका बल देखना चाहिये। नौकाको अब उसपार भेजनेकी जरूरत नहीं। हमलोग छिपकर देखेंगे, कि वे गंगानदी किस प्रकार पार करते हैं?"

इस प्रकारकी बातें कर पाण्डवोंने कृष्णके लिये नौका न भेजी। तदनन्तर वे वहीं छिप रहे और चुप-चाप देखने लगे कि कृष्ण किस प्रकार इस पार आते

हैं। कुछही देरमें सुस्थितसे विदा ग्रहण कर कृष्ण गंगा नदीके तटपर आये। वहाँपर उतरनेके लिये किसी नौकाको न देखकर उन्होंने एक हाथसे अश्व सहित रथ उठा लिया और दूसरे हाथसे वे तैरते हुए नदी पार करने लगे। तैरते तैरते जब वे गंगाके मध्यभागमें पहुँचे, तब उन्हें कुछ थकावट मालूम हुई। इसलिये वे अपने मनमें कहने लगे कि :—"अहो! पाण्डव कितने समर्थ हैं, जो बिना नौकाके ही यह नदी पार कर गये। मैं तो बीचहीमें थक गया हूँ।"

इधर गंगाने जब देखा कि कृष्ण थक गये हैं, तब उसने थोड़ी देरके लिये अपना जल घटाकर उनके लिये मार्ग बना दिया। कृष्ण उसी मार्ग द्वारा आसानीसे नदीके इस पार आ पहुँचे। वहाँ पूछताछ करने पर पाण्डवोंने उनसे बतलाया कि हमलोगोंने तो नौका द्वारा नदी पार की थी। इसपर कृष्णने पूछा :—"वही नौका फिर मेरे लिये क्यों न भेज दी?"

पाण्डवोंने हँसकर कहा :—"हमलोग आपका बल देखना चाहते थे, इसीलिये हमने नौका न भेजी थी।"

यह सुनतेही कृष्णको क्रोध आगया। उन्होंने पाण्डवोंसे कहा :—"अहो! आपलोग अभी मेरा बल ही देख रहे हैं। क्या समुद्र पार करनमें और पद्म-नाभको पराजित करनेमें आप लोगोंने मेरा बल न देखा था?"

इतना कह कृष्णने लौह दण्डसे उनके रथ तोड़ फोड़ दिये। जिस स्थानपर कृष्णने यह कार्य किया, उसी स्थान पर आगे चलकर रथमर्दन नामक नगर बसाया गया। इसके बाद पाण्डवोंको देशसे निर्वासित कर, कृष्ण अपनी सेनाके साथ द्वारिका नगरीको लौट आये।

पाण्डवोंने अपने नगरमें जाकर माता कुन्तीसे यह सब हाल कह सुनाया। इसपर कुन्तीने द्वारिकामें आकर कृष्णसे कहा :—"आपने मेरे पुत्रोंको निर्वासनका जो दण्ड दिया है, उसके सम्बन्धमें मैं आपसे कुछ नहीं कहना चाहती, परन्तु मुझे यह तो बतलाइये कि वे अब कहाँ रहें? क्योंकि अर्ध भरतमें कोई भी ऐसा स्थान नहीं है, जिसपर आपका अधिकार न हो!"

कृष्णका क्रोध अभी शान्त न हुआ था, फिर भी

कुन्तीके कारण पाण्डवों पर दया आ गयी। इसलिये उन्होंने कहा :—"दक्षिण समुद्रके तटपर पाण्डुमथुरा नामक नयी नगरी बसाकर वे लोग वहाँ खुशीसे रह सकते हैं।"

कृष्णकी यह आज्ञा कुन्तीने पाण्डवोंको कह सुनायी। तदनुसार पाण्डव शीघ्रही दक्षिण समुद्रके तटपर चले गये और वहींपर पाण्डुनगर बसाकर निवास करने लगे। इधर कृष्णने हस्तिनापुरमें अभिमन्युके पुत्र परीक्षितको गद्दिपर बैठा दिया।

इधर नेमिनाथ भगवान धराधामको पावन करते हुए कुछ दिनोंके बाद भद्दिलपुर नामक नगरमें पधारे। वहाँ सुलसा और नागके छः पुत्र थे। यह वही छः पुत्र थे, जो देवकीके उदरसे उत्पन्न हुए थे और जिन्हें हरि-णीगमेषी देवने सुलसाको दिया था। उनमेंसे प्रत्येकने बत्तीस-बत्तीस कन्याओंसे विवाह किया था, किन्तु नेमि-नाथ भगवानका उपदेश सुनकर उन्होंने दीक्षा ले ली थी। यह सब चरम शरीरी द्वादशांगीको धारण करनेवाले और परम तपस्वी निकले। नेमिनाथ भगवान पर असीम

श्रद्धा और भक्ति होनेके कारण वे सदा उन्हींके साथ विचरण किया करते थे।

कुछ दिनोंके बाद नेमिजिन विहार करते हुए द्वारिका नगरीमें आये। वहाँ उन्होंने पूर्ववत् सहस्राम्र-वनमें वास किया। देवकीके उन छः पुत्रोंने भी इसी समय छट्ठ तप किया और वे पारणके लिये दो-दो की टोली बनाकर द्वारिका नगरीमें गये। इनमेंसे पहले अनिकयश और अनन्तसेन नामक दो जन देवकीके घर गये। उनका आकार प्रकार कृष्णके समान देखकर देवकीको अत्यन्त आनन्द हुआ और उसने उन्हें सिंहकेसरी मोदक खिलाकर पारण कराया।

उनके चले जानेपर अजितसेन और निहथशत्रु नामक दो भाई देवकीके यहाँ आये। उनको भी देवकीने आनन्दपूर्वक पारण कराया। किन्तु उनके चले जानेपर उसी तरह देवयश और शत्रुसेन भी आये। उनका आकार प्रकार भी कृष्णके ही सदृश था। इसलिये देवकीने इस बार हाथ जोड़ कर उनसे पूछा :—"क्या आपलोग रास्ता भूलकर वारंवार यहाँ आते हैं या मैं ही

आपलोगोंको पहचाननेमें भूल करती हूँ ? अथवा, ऐसी बात तो नहीं है कि इस स्वर्ग तुल्य नगरीमें मुनियोंको अन्नपानादि न मिलनेके कारण उन्हें बारंबार मेरा ही दरवाजा खटखटाना पड़ता है ?"

उन दोनोंने उत्तर दिया—"हम रास्ता भूलकर बारंबार यहाँ नहीं आते। इस नगरीमें आहार-पानीकी भी कमी नहीं है, न लोगही भाव रहित हैं, परन्तु आपको ऐसा सन्देह होनेका कारण हमारा रूप ही यानी हमलोग समान आकृतिके हैं। हमलोग छः भाई हैं। हमारे माता-पिताका नाम सुलसा और नाग है। वे भद्दिलपुर नामक नगरमें रहते हैं। हम सब भाइयोंने नेमि प्रभुका उपदेश सुनकर दीक्षा ले ली है। इस समय पारण करनेके लिये दो-दो की टोलियोंमें हमलोग यहाँ आ रहे हैं। पहले चार जन, जिन्हें आप पारण करा चुकी हैं, वे हमारे भाई हैं। हमलोग उनसे अलग हैं।

यह सुनकर देवकीने उन दोनोंको भी उसी तरह पारण करा दिया। उनके चले जाने पर वह अपने मनमें कहने लगी :—"यह छः भाई रूप रंगमें कृष्णके

ही समान क्यों प्रतीत होते हैं ? सृष्टिके साधारण नियमानुसार तो एक तिल भी दूसरे तिलके समान नहीं होता। हाँ, अतिमुक्तक मुनिने मुझे जीवित आठ पुत्रोंकी माता बतलाया था। क्या यह छः मेरे वह पुत्र तो न होंगे, जिन्हें मैं मरे हुए समझती हूँ ?"

उस दिन देवकी इसी बात पर विचार करती रही, किन्तु कुछ निश्चय न कर सकी। दूसरे दिन इस शंकाका निराकरण करानेके लिये वह समवसरणमें नेमिनाथ भगवानके पास गयी। उसको देखते ही भगवानने उसका भाव जानकर कहा :—"हे देवकी ! यह छः तुम्हारे ही पुत्र हैं। हरिणीगमेषी देवने इन्हें जीविता-वस्थामें ही सुलसाको दे दिया था।"

आन्तरिक प्रेमके कारण देवकीके स्तनोंसे दुग्धकी धार पहले हीसे स्रवित हो रही थी। अब भगवानका वचन सुनकर उसे पूर्ण रूपसे विश्वास हो गया कि वे सब उसीके पुत्र हैं। उसने उनको वन्दन करके कहा :—"हे पुत्रों ! यह मेरा परम सौभाग्य है, जो मैं तुम्हें देख सकी हूँ। मेरे पुत्र चाहे राजसिंहासनके अधिकारी हों,

चाहे उन्होंने दीक्षा ले ली हो, मेरे लिये वह सब समान हैं। किन्तु दुःखका विषय यह है, कि तुममेंसे एकको भी मैं अपनी गोदमें बैठा कर तुम्हारा दुलार नहीं कर सकी।"

इस पर भगवानने कहा :—"हे देवकी! इस बातके लिये तुझे वृथा खेद न करना चाहिये। यह तेरे पूर्व-जन्मके कर्मका फल है, जो इस जन्ममें उदय हुआ है। पूर्व-जन्ममें तूने अपनी सपत्नी (सौत) के सात रत्न ले लिये थे। इससे वह बहुत रोने लगी, तब तूने एक रत्न उसे वापस दे दिया था। यह तेरे उसी कर्मका फल है।"

भगवानके मुखसे यह हाल सुनकर देवकी अपने पूर्व-पापकी निन्दा करती हुई अपने वासस्थानको लौट आयी। किन्तु उसी समयसे उसके हृदयमें एक नयी अभिलाषा उत्पन्न हो गयी। वह चाहने लगी कि उसके एक और पुत्र उत्पन्न हो, तो उसे खिलाकर वह अपनी साध पूरी कर ले। इसी विचारसे वह रातदिन चिन्तित रहने लगी। उसकी यह अवस्था देखकर एकदिन कृष्णने

पूछा :—"हे माता! कुछ दिनोंसे तुम उदास क्यों रहती हो?"

देवकीने खिन्नता-पूर्वक उत्तर दिया :—"यह मेरा अहो भाग्य है, जो मेरे सभी पुत्र अब तक जीवित हैं, परन्तु मुझे इतनेहीसे सन्तोष नहीं हो सकता। तुम नन्दके गोकुलमें बड़े हुए और तुम्हारे छः भाई सुलसाके यहाँ लालित-पालित हुए हैं। मुझे तो कोयलकी भाँति अपने एक भी पुत्रका लालन-पालन करनेका सौभाग्य प्राप्त न हुआ—मैंने अपने एक भी पुत्रको स्तन-पान न कराया। हे कृष्ण! इसीलिये मेरे हृदयमें एक पुत्रकी इच्छा उत्पन्न हुई है। मैं तो उन पशुओंको भी धन्य समझती हूँ जो अपने बच्चोंको खिलाते हैं। सात पुत्रोंकी माता होकर भी मैं मातृत्वके इस स्वर्गीय सुखसे वंचित रह गयी।"

माताके यह वचन सुनकर कृष्णने उसे सान्त्वना देते हुए कहा :—"हे माता! आप धैर्य धारण करें। मैं आपकी यह इच्छा अवश्य पूर्ण करूँगा।"

इतना कह, कृष्ण माताके पाससे चले आये। इसके

बाद वे शीघ्रही अट्ठम तप द्वारा इन्द्रके सेनापति हरि-णीगमेषी देवकी आराधना करने लगे। इसपर हरि-णीगमेषीने प्रकट होकर कहा :—"हे कृष्ण ! आपकी इच्छानुसार आपकी माताके आठवाँ पुत्र अवश्य होगा, परन्तु पुण्यात्मा होनेके कारण यौवन प्राप्त होते ही वह दीक्षा ले लेगा।"

कृष्णने इसमें कोई आपत्ति न की, इसलिये वह देव कृष्णको वैसा वर देकर अन्तर्धान हो गया। इसके बाद शीघ्रही देवलोकसे एक महर्द्धिक देव च्युत होकर देवकीके उदरसे पुत्र रूपमें उत्पन्न हुआ। देवकीने उसका नाम गजसुकुमाल रक्खा। कृष्णके समान उस देवकुमार जैसे बालकको देवकीने खूब खिलाया और जी भर कर उसका दुलार-प्यार किया। क्रमशः जब वह बालक बड़ा हुआ और उसने युवावस्थामें पदार्पण किया, तब वसु-देवने द्रुम राजाकी प्रभावती नामक सुन्दर कन्यासे उसका विवाह कर दिया। दूसरी ओर कृष्णादिक भाइयोंने तथा माता देवकीने सोमा नामक एक कन्यासे विवाह करनेके लिये उस पर जोर डाला। सोमा

सोमशर्माकी पुत्री थी और एक क्षत्राणीके उदरसे उत्पन्न हुई थी। इच्छा न होने पर भी माता और भाइयोंकी बात माननेके लिये गजसुकुमालको उससे भी व्याह करना पड़ा।

उस व्याहके कुछ ही दिन बाद सहस्राम्रवनमें नेमि-प्रभुका शुभागमन हुआ। उनके आगमन समाचार सुन गजसुकुमाल भी स्त्रियों सहित उनकी सेवामें उपस्थित हो, बड़े प्रेमसे उनका धर्मोपदेश सुनने लगा। धर्मो-पदेश सुनकर उसे वैराग्य आगया, फलतः बड़ी कठिनाईसे मातापिता और भाइयोंको समझा कर, उसने दोनों स्त्रियों सहित प्रभुके निकट दीक्षा ले ली। उसके इस कार्यसे उसके मातापिता तथा कृष्णादिक भाइयोंको बड़ाही दुःख हुआ और वे उसके वियोगसे व्याकुल हो विलाप करने लगे।

इसके बाद संध्याके समय भगवानकी आज्ञा लेकर गजसुकुमाल श्मशानमें जाकर कायोत्सर्ग करने लगा। उस समय सोमशर्माने उसे देख लिया। देखते ही उसके बदनमें मानों आग लग गयी। वह क्रोध-पूर्वक अपने

मनमें कहने लगा कि :—"इस पाखंडी दुराशयको यदि दीक्षा लेनी थी, तो इसने मेरी पुत्रीसे विवाह कर उसका जीवन क्यों नष्ट कर दिया ?"

गजसुकुमाल और उसमें पूर्व-जन्मका वैर था, इसलिये इसी तरहके अन्यान्य विचारोंने उत्पन्न होकर उसकी क्रोधाग्निको और भी भड़का दिया। अन्तमें, क्रोधावेशके कारण, चिताकी अग्निसे भरा हुआ एक फूटा घड़ा उठा कर उसने गजसुकुमाल पर पटक दिया। इससे गजसुकुमाल कई जगह जल गया, परन्तु समाधि द्वारा उसने यह सब सहन कर लिया। इसके बाद कर्म रूपी इन्धनको भस्मकर, उसी रात्रिमें केवल ज्ञानकी प्राप्ति कर वह मोक्षका अधिकारी हो गया—उसने वह शरीर त्याग दिया।

उधर कृष्णादिक चिन्तामें पड़ गये। बड़ी कठिनाईसे रात्रि व्यतीत की। किसी तरह सवेरा होते ही गजसुकुमालको देखनेके विचारसे कृष्ण सपरिवार रथमें बैठकर भगवानको वन्दन करनेके लिये समवसरण की ओर चलने लगे। नगरसे बाहर निकलते ही उन्होंने

एक वृद्ध ब्राह्मणको देखा, जो ईंटें उठा उठाकर एक देवमन्दिरमें लिये जा रहा था। कृष्णको उस पर दया आ गयी, इसलिये उसके प्रति सहानुभूति दिखलाते हुए वे भी भट्ठेसे एक ईंट उठाकर उस देवमन्दिरमें रख आये। कृष्णके पीछे हजारों आदमियोंका झुण्ड था। वह सब लोग भी कृष्णका अनुकरण कर एक एक ईंट देवमन्दिरमें रख आये। फलतः सब ईंटें देखते ही देखते समाप्त हो गयीं। उस वृद्ध ब्राह्मणको इस प्रकार कृतार्थ कर कृष्ण नेमिभगवानके निकट जा पहुँचे।

वहाँपर कृष्णने चारों ओर अपनी दृष्टि दौड़ायी, परन्तु गजसुकुमाल कहीं भी उन्हें दिखायी न दिया। उसे देखनेके लिये वे पहले ही से उत्कण्ठित हो रहे थे, अब उनकी उत्कण्ठा और भी बढ़ गयी। उन्होंने नेमि प्रभुसे पूछा :—“हे भगवन्! मेरा भाई गजसुकुमाल कहाँ है?”

भगवानने इस प्रश्नका उत्तर देते हुए सोमशर्मा की भेटसे लेकर गजसुकुमालके मोक्ष गमन तकका सारा हाल कृष्णको कह सुनाया। उसे सुनकर कृष्ण मूर्च्छित हो

गये। थोड़ी देर बाद जब उनकी मूर्च्छा दूर हुई, तब उन्होंने फिर पूछा :—"हे प्रभो! मेरे भाईको वध करनेवाला इस समय कहाँ है और उसे इस कार्यके लिये कौनसा दण्ड देना उचित है?"

भगवानने कहा :—"हे कृष्ण! सोमशर्मा पर तुम्हें क्रोध न करना चाहिये। वह तो तुम्हारे भाईको तुरन्त मोक्ष दिलानेमें सहायक हुआ है। जो सिद्धि दीर्घकालमें सिद्ध होने वाली होती है, वह भी किसी प्रकारकी सहायताके योगसे तुरन्त सिद्ध हो जाती है। ठीक उसी तरह, जिस तरह वृद्ध ब्राह्मण की ईंटे ला देनेसे उसकी कार्यसिद्धि तुरन्त हो गयी। यदि सोमशर्मा तुम्हारे भाईके प्रति ऐसा व्यवहार न करता, तो उसे कालक्षेप बिना तुरन्त मोक्षकी प्राप्ति कैसे होती? यहाँसे वापस लौटते समय, तुम्हें नगरमें प्रवेश करते देख, अत्यन्त भयसे व्याकुल हो वह अपने आप अपना प्राण त्याग देगा। अतएव तुम्हें उसको दण्ड देनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।"

इस पर कृष्णने पुनः पूछा :—"हे प्रभो! मेरे

भाई और सोमशर्मा की यह शत्रुता इसी जन्मकी थी या पूर्वजन्म की ?"

भगवानने कहा :—"हे कृष्ण ! पूर्वजन्ममें तुम्हारा भाई एक स्त्री था। उसकी सपत्नी एकदिन अपने छोटे पुत्रको उसके पास छोड़कर कार्यवश कहीं बाहर गयी। उसके जाने पर ईर्ष्यावश उस स्त्रीने तुरन्त चूल्हेसे निकाली हुई गरम रोटी उस बालकके शिर पर रख दी, जिससे उस कुसुम समान कोमल बालककी मृत्यु हो गयी। घर आने पर उसकी माताने जब यह हाल देखा, तो उसे अत्यन्त दुःख हुआ। इसके बाद आयु पूर्ण होने पर उन दोनों स्त्रियोंकी मृत्यु हो गयी। मृत्युके बाद, नरक, निगोद और तिर्यञ्च योनिमें भ्रमण करनेके बाद अकाम निर्जराके योगसे कितने ही कर्मोंका क्षय करनेके बाद उन दोनोंको पुनः मनुष्य जन्म की प्राप्ति हुई। मनुष्य जन्मके बाद दोनों को पुण्ययोगसे देवत्व प्राप्त हुआ और वहाँसे च्युत होने पर वह दोनों सोमशर्मा तथा गज सुकुमाल हुए। वह बालक इस जन्ममें सोभा हुई। यहाँ भी पूर्वजन्मके वैरसे गजसुकुमालको देखते ही

सोमशर्माको क्रोध आ गया और उसने उस पर प्रहार किया, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी। हे कृष्ण! सच बात तो यह है कि पूर्वजन्मके उपार्जित कर्म अन्यथा नहीं होते।"

इस प्रकार प्रभुके मुखसे गजसुकुमालके पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनने और भव स्वरूपको जानने पर भी महा-मोहके कारण कृष्णका दुःख दूर न हुआ और उन्होंने रोते ही रोते उसके संस्कारादि किये। इसके बाद नगरमें प्रवेश करते समय उन्होंने सोमशर्माको मरा हुआ देखा। इससे उनका रोष कुछ कुछ शान्त हो गया। किन्तु उन्होंने उसके पैरमें रस्सी बँधवा कर उसे समूचे नगरमें घसिटवाया। और उसके शवको नगरके बाहर फिकवा दिया, जहाँ चील और गृद्धोंने उसे अपना आहार बना डाला।

गजसुकुमालके शोकसे यादव और वसुदेवको छोड़-कर शेष नव दशार्हाेंने भगवानके निकट दीक्षा ले ली। भगवानकी माता शिवादेवी, सात भाई, कृष्णके अनेक कुमार, राजीमती, एक नासापुट वाली नन्द कन्या तथा और भी अनेक यदु स्त्रियोंने श्रीनेमिके निकट दीक्षा ले

ली। कृष्णने अपनी कन्याओंका विवाह न करनेका अभिग्रह लिया, इसलिये उनकी समस्त कन्याओंने भी दीक्षा ले ली। कनकवती, रोहिणी और देवकीको छोड़कर वसुदेव की समस्त स्त्रियोंने संयम ग्रहण किया। भवस्थितिका विचार करते हुए कनकवतीके समस्त कर्म क्षय हो गये और उसे केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ। भगवान को यह हाल मालूम होने पर उनके आदेशानुसार देवताओंने उसका महोत्सव मनाया। इसके बाद दीक्षा ग्रहण कर वह प्रभुकी सेवामें उपस्थित हुई और उनके दर्शन कर उसने वनमें जा, तीस दिन तक अनशन किया, जिसके फल स्वरूप उसकी मृत्यु हो गयी और वह मोक्ष की अधिकारिणी हुई।

बलरामका पौत्र एवम् निषधका पुत्र सागरचन्द्र कुमार पहले ही से विरक्त था। इसलिये उसने इस समय अणुव्रत ग्रहण कर प्रतिमा धारण की और नगरके बाहर श्मशानमें जाकर कायोत्सर्ग ग्रहण किया। नभसेन उसके छिद्र देखनेके लिये सदा ही उसके पीछे पड़ा रहता था। इसलिये उसने सागरचन्द्रके पास जाकर

कहा :—"अरे पाखण्डी! यह तू क्या कर रहा है। ले, अब कमलामेलाके हरणका फल भी चख ले।" इतना कह, दुष्टाशय नभसेनने उसके शिर पर फूटा हुआ घड़ा रख, उसे चिताकी अग्निसे भर दिया। सुबुद्धि सागर चन्द्रने यह सब शान्तिपूर्वक सहन कर, पंच परमेष्ठीके स्मरण पूर्वक अपना शरीर त्याग कर देवलोकको गमन किया।

एकबार इन्द्रने अपनी सभामें कहा :—"भरत क्षेत्रमें कृष्ण दोषोंको त्याग कर सदा गुणकीर्तन ही करते हैं और युद्धमें भी न्याय तथा नीतिसे ही काम लेते हैं।" इन्द्रकी इन बातों पर विश्वास न आनेके कारण एक देव द्वारिका नगरीमें आया। उस समय कृष्ण रथपर बैठकर क्रीड़ा करनेके लिये बाहर निकले थे। यह देख, उस देवने अपनी मायासे एक मरा हुआ कुत्ता बनाकर उनके रास्तेमें डाल दिया। उस कुत्तेका रंग काला था। मरनेके बाद वह और भी बदसूरत हो गया था। उसके मुखसे इतनी दुर्गन्ध निकल रही थी, कि जो लोग उधरसे निकलते थे, वे नाक भौं चढ़ाये बिना न रहते थे।

किन्तु कृष्णका रथ जब उसके पाससे निकला, तब उन्होंने उसको देखकर कहा :—"अहो! इस काले कुत्तेके दाँत कितने सुन्दर हैं। दूरसे देखने पर ऐसा ज्ञात होता है, मानो मरकत रत्नके थालमें मोती सजाये हुए हैं!"

इसके बाद उस देवने अश्व हरण करने वालेका वेश धारण कर कृष्णका एक सुन्दर अश्व चुरा लिया। इसपर अनेक सैनिकोंने उसका पीछा किया, किन्तु उसने उन सबोंको पराजित कर दिया। कृष्णको यह हाल मालूम होने पर उन्होंने खुद उसका पीछा किया। उसके समीप पहुँचने पर उन्होंने उससे पूछा—"तुम मेरे अश्वको क्यों हरण किये जा रहे हो?"

देवने कहा :—"मुझे इसकी आवश्यकता है, इसलिये मैं इसे हरण किये जा रहा हूँ। यदि तुम इसे छीनना चाहते हो, तो तुम्हें मुझसे युद्ध करना होगा।"

कृष्णने कहा :—"अच्छी बात है, मैं युद्धके लिये तैयार हूँ, परन्तु मैं रथपर बैठा हूँ और तुम पैदल हो, इसलिये मेरी रथशालासे तुम पहले एक रथ ले आओ, तब मेरा और तुम्हारा युद्ध हो सकता है।"

देवने कहा :—"मुझे रथ और गजादिक की जरूरत नहीं है। न मुझे बाहु युद्ध आदिक दूसरे ही युद्ध पसन्द हैं। मैं तो तुम्हारे साथ पीठ युद्ध कर सकता हूँ।"

देवका यह वचन सुनकर कृष्ण हँस पड़े। उन्होंने कहा :—"भाई, तुम जीते और मैं हारा। तुम खुशीके साथ अश्वको ले जा सकते हो, क्योंकि सर्वस्व जाने पर भी मैं नीच युद्धको नहीं पसन्द कर सकता।"

कृष्णके यह वचन सुनकर वह देवता प्रसन्न हो उठा। उसने कृष्णसे इन्द्रकी प्रशंसाका सब हाल निवेदन करते हुए कहा :—"हे महाभाग! मैंने इन्द्रके मुखसे आपकी जैसी प्रशंसा सुनी थी वैसे ही आप हैं। इसलिये मैं आप पर बहुत ही प्रसन्न हूँ, यदि आप मुझसे कोई वर माँगना चाहें तो, खुशीसे माँग सकते हैं।"

कृष्णने कहा :—"मुझे किसी वस्तुकी जरूरत नहीं है, परन्तु इस समय मेरी द्वारिका नगरी रोगसे पीड़ित रहती है। यदि आप कुछ देना ही चाहते हैं, तो मुझे कोई ऐसी वस्तु दीजिये, जिससे रोगका यह प्रकोप शान्त हो जाय।"

कृष्णकी यह याचना सुनकर उस देवने कृष्णको एक भेरी देते हुए कहा :—"यदि आप इसे छः छः महीनेके अन्तरसे सारे नगरमें बजवाते रहेंगे, तो जहाँ तक इसका शब्द पहुँचेगा, वहाँ तकके सब लोग रोगसे मुक्त हो जायँगे और छः महीने तक कोई नये रोग पैदा न होंगे। यह कहते हुए वह देव चला गया।

तदनन्तर कृष्णने शीघ्रही नगरमें वह भेरी बजवा दी, जिससे समस्त रोगोंका प्रकोप शान्त हो गया। इसके बाद उन्होंने वह भेरी आदमीके सिपुर्द कर दी और उसका गुण बतलाकर उसे सूचना दे दी, कि बड़े यत्नसे इसे सुरक्षित स्थानमें रक्खे रहना।

कुछ दिनोंके बाद इस भेरीकी ख्याति सुनकर दूर देशान्तरसे एक धनीमानी रोगी द्वारिका नगरीमें आया। वह दाह ज्वरसे पीड़ित था। इसलिये उसने भेरीके रक्षकसे कहा :—"हे भद्र! मैंने सुना है कि इसके सेवनसे मेरा रोग आराम हो जायगा। इसलिये मैं आपसे याचना करता हूँ कि मुझसे लाख रुपये लेकर इस भेरीका एक छोटा सा टुकड़ा मुझे दे दो।"

लाख रुपयेका नाम सुनकर भेरी-रक्षकके मुँहमें पानी भर आया। उसने भेरीका एक टुकड़ा उसे देकर, उस जगह चन्दनकी लकड़ी भर दी। इसके बाद उस भेरी रक्षकका यही व्यवसाय हो गया। उसने एक एक करके अनेक आदमियोंके हाथ अत्यधिक मूल्य लेकर इसी तरह कई टुकड़े कर बेच दिये। इससे उस भेरीमें अनेक छिद्र हो गये और उसमें चन्दन-काष्ठ भरते भरते उसकी वास्तविक शक्ति भी नष्ट हो गयी।

कइ दिनोंके बाद एकबार फिर द्वारिकामें रोगका प्रकोप हुआ। इसलिये कृष्णने भेरी-रक्षकको बुलाकर उसे भेरी बजानेकी आज्ञा दी, परन्तु उस भेरीका स्वर इतना क्षीण हो गया था, कि वह समीपके आदमियोंको भी सुनायी न देता था। यह देख, कृष्णने इसका कारण जाननेके लिये उस भेरीको अपने पास मँगाकर देखा, तो उन्हें भेरी-रक्षककी धूर्त्तताका हाल मालूम हुआ। इससे उन्हें उसपर बड़ाही क्रोध आया और उन्होंने उसी समय उसे प्राणदण्ड दे दिया। इसके बाद उन्होंने अट्ठम तप द्वारा उस देवताको पुनः प्रसन्न

कर उससे दूसरी भेरी प्राप्त की और उसे नगरमें बजवा कर जनताको रोगसे छुटकारा दिलवाया।

इस दैवी भेरीके अतिरिक्त जनताकी चिकित्साके लिये कृष्णने धन्वन्तरि और वैतरणि नामक दो वैद्य भी नियुक्त कर दिये थे। इनमेंसे वैतरणि भव्य जीव था, इसलिये वह लोगोंकी चिकित्सामें सदा दत्तचित्त रहता था और किसीको औषधि देनेमें आलस्य न करता था, किन्तु धन्वन्तरि पाप बुद्धिसे चिकित्सा करता था, फलतः लोग उससे सन्तुष्ट न रहते थे। वह अनेक बार मुनियोंसे भी छल-पूर्वक कह दिया करता था, कि मैं साधुओंके योग्य कोई आयुर्वेद नहीं पढ़ा, इसलिये आपलोग अन्यत्र अपनी चिकित्सा करा सकते हैं।

एकबार कृष्णने नेमिभगवानसे पूछा :—"हे भगवन्! इन दोनों वैद्योंकी कौनसी गति होगी?"

भगवानने कहा :—"धन्वन्तरि वैद्य सातवें नरकके अप्रतिष्ठान नामक पाथड़ेमें जायगा और वैतरणि वैद्य विन्ध्याचलमें वानर होगा। वहीं यौवन प्राप्त होने पर वह यूथ-पति होगा। उसी वनमें एकबार सार्थके साथ

अनेक साधु आयेंगे, उनमेंसे एक साधुके पैरमें काँटा लग जायगा। अन्यान्य साधुओंको अपनी प्रतीक्षा करते देख वह साधु उनसे कहेगा कि आपलोग मुझे यहीं छोड़ कर चले जाइये, वर्ना सार्थसे अलग होकर आपलोग संकटमें पड़ जायँगे।

साधुलोग उसका काँटा निकालनेमें अपनेको असमर्थ पाकर अन्तमें निराश हो जायँगे और उसको उसी स्थानमें छोड़कर सार्थके साथ आगे निकल जायँगे। उनके चले जाने पर यूथ-पति वानर वहाँ आयेगा। उसके संगी समस्त वानर उस मुनिको देखकर किलकारियाँ मारने लगेंगे, इससे वह यूथ-पति रुष्ट होकर मुनिके पास आयगा, परन्तु उनको देखते ही वह अपने मनमें कहने लगेगा कि शायद इस मनुष्यको मैंने पहले भी कहीं देखा है। इस प्रकार का चिन्तन करते करते उसे अपने वैद्य-जीवनकी याद आ जायगी और वह पर्वतसे विशल्या तथा रोहिणी नामक औषधियोंको ला, विशल्याको अपने दाँतसे चिबाकर उस साधुके पैर पर लगायेगा, जिससे मुनिका पैर शल्य (कंटक) रहित बन जायगा। इसके बाद उस जख्मको

भरनेके लिये, वह उस स्थानमें रोहिणी नामक औषधि को लगायेगा, जिससे मुनिराज पूर्ण रूपसे स्वस्थ हो जायँगे।

इसके बाद वह वानर मुनिराजके सामने भूमिपर लिखकर उनसे कहेगा, कि मैं पूर्वजन्ममें द्वारिकानगरीमें वैतरणि नामक वैद्य था। यह सुनकर मुनिराज उसे धर्मोपदेश देंगे, जिससे उस वानरको ज्ञान उत्पन्न होगा और वह तीन दिन अनशन कर सहस्रार देवलोकमें जायगा। उसी समय अवधिज्ञानसे वह मुनिराजको अनशन स्थित अपने शवको नमस्कार करते देखकर उनसे कहेगा, कि :- "हे परोपकारी मुनीन्द्र! आपके प्रसादसे मुझे यह उत्तम-देव-समृद्धि प्राप्त हुई है।" इतना कह वह देव उन मुनिराजको लेकर आगे गये हुए साधुओंसे मिला देगा। तदनन्तर मुनिराज अन्य साधुओंसे उस वानरकी कथा कहेंगे।"

नेमि भगवानके मुखसे यह वृत्तान्त सुननेके बाद, कृष्ण उन्हें प्रणाम कर अपने वासस्थानको चले गये और भगवान वहाँसे विहार कर अन्यत्रके लिये प्रस्थान कर गये।

एकबार मेघकी भाँति जगतको तृप्त करने वाले नेमिनाथ भगवान वर्षा ऋतुके पहले द्वारिकामें पधारे।

उस समय एकदिन कृष्णने उनकी सेवा करते हुए पूछा :— "हे भगवन्! आप और अन्यान्य मुनि वर्षाकालमें विहार क्यों नहीं करते?"

प्रभुने उत्तर दिया :—"वर्षाकालमें पृथ्वी नाना प्रकारके जीवोंसे व्याप्त रहती है, इसीलिये जीवोंको अभय देने वाले मुनि उस पर विचरण नहीं करते।"

कृष्णने कहा :—"आपका कहना यथार्थ है। वर्षाकालमें वारंवार परिवार सहित आवागमन करनेसे मेरे द्वारा भी अनेक जीवोंका नाश होता होगा, इसलिये अब मैं भी वर्षाके दिनोंमें बाहर न निकला करूँगा।"

इस प्रकार अभिग्रह लेकर कृष्ण अपने वासस्थानको चले गये। उन्होंने वहाँ पहुँचते ही द्वारपालोंको आज्ञा दे दी कि जब तक वर्षाकाल रहे, तब तक किसीको मेरे पास न आने दिया जाये!

परन्तु कृष्णकी यह आज्ञा उनके एक भक्तके लिये बहुत ही कष्टदायक हो पड़ी। बात यह थी, कि द्वारिका नगरीमें वीर नामक एक बुनकर रहता था। वह कृष्णका इतना भक्त था, कि उनके दर्शन किये बिना कदापि

भोजन न करता था। परन्तु जिस दिनसे कृष्णने द्वार-पालोंको उपरोक्त आज्ञा दी, उस दिनसे उसके आने-जानेमें भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया। वीर उसदिन कृष्णके द्वार पर आया और जब उसे अन्दर जानेकी आज्ञा न मिली, तब वह वहीं बैठकर कृष्णकी पूजा करने लगा, परन्तु उनके दर्शन न मिलनेके कारण उसने अन्न ग्रहण न किया। इसी तरह उसने वर्षाकालके चार महीने बिता दिये। न कृष्ण घरसे बाहर निकले न उसने भोजन किया। वर्षाकाल पूर्ण होने पर कृष्ण अपने महलसे बाहर निकले। उस समय अन्यान्य राजाओंके साथ वीर भी उनकी सेवामें उपस्थित हुआ। उसे देखकर कृष्णने जब उसकी दुर्बलताका कारण पूछा, तब द्वारपालोंने उनको सब हाल कह सुनाया। कृष्ण उसे सुनकर अत्यन्त दुःखित हुए और उन्होंने उसे किसी भी समय अपने पास आनेकी आज्ञा दे दी। अपने ऊपरसे यह प्रतिबन्ध हट जानेके कारण वीरको अत्यन्त आनन्द हुआ और वह दूने उत्साहसे उनकी भक्ति करने लगा।

एकबार कृष्ण परिवार समेत, नेमिभगवानकी वन्दना

करने गये। उस समय भगवन्तके मुखसे यतिधर्म सुनकर उन्होंने कहा :—"हे भगवन्! मैं यतिधर्म पालन करनेमें असमर्थ हूँ, तथापि दूसरोंको दीक्षा और उपदेश देनेकी मैं प्रतिज्ञा करता हूँ। यदि कोई दीक्षा लेनेकी इच्छा प्रकट करेगा, तो मैं उसमें बाधा न दूँगा और अपने पुत्रकी भाँति उसका दीक्षा-महोत्सव करूँगा।"

प्रभुके निकट ऐसा अभिग्रह लेकर कृष्ण अपने राज-भवनको लौट आये। इसके कुछही दिन बाद एकदिन कृष्णकी कई युवती कन्याएँ उनको प्रणाम करनेके लिये उनके पास आयीं। उन सबोंकी अवस्था विवाह करने योग्य हो चुकी थी। इसलिये कृष्णने उनसे पूछा :—"तुम लोग रानी होना पसन्द करती हो या दासी होना?" कन्याओंने उत्तर दिया :—"हमें रानी होना पसन्द है।" इसपर कृष्णने कहा :—"तब तुम लोग नेमिप्रभुके पास जाकर दीक्षा ले लो! वैसा करने पर तुम्हें किसीका दासत्व न करना पड़ेगा और तुम लोग रानीकी तरह स्वतन्त्रतापूर्वक अपने दिन बिता सकोगी।"

पिताके यह वचन सुनकर कृष्णकी कन्याएँ असमंजसमें पड़ जाती थीं और अन्तमें उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर सहर्ष दीक्षा ले लेती थीं।

एकदिन कृष्णकी एक रानीने अपनी पुत्री केतुमंजरीसे कहा :—"बेटी! तुझसे जब तेरे पिता पूछें कि तुझे रानी होना पसन्द है या दासी होना, तब तू निःशंक होकर कह देना, कि मुझे दासी होना पसन्द है, रानी होना पसन्द नहीं।"

इस तरह पुत्रीको सिखा पढ़ाकर माताने उसे पिताके पास भेजा। वहाँ कृष्णके पूछने पर उसने उनको वही उत्तर दिया जो उसे उसकी माताने सिखाया था। उसे सुनकर कृष्ण विचारमें पड़ गये। वे अपने मनमें कहने लगे :—"पुत्रियोंका विवाह कर देनेसे वे जन्म और मृत्युके चक्करमें पड़ जायगी और कभी भी आत्मकल्याण कर न सकेंगी। इसलिये यह कार्य तो सर्वथा, अनुचित ही है। अब मुझे कोई ऐसा उपाय करना चाहिये, जिससे मेरी अन्य पुत्रियाँ माताओंकी बात मानकर ऐसा उत्तर न दें।"

यह सोचकर कृष्णने वीर बुनकरको अपने पास बुलाकर उससे पूछा :—"हे वीर ! तूने अपने जीवनमें कोई उत्तम कार्य किया है ?"

वीरने कहा :—"नहीं भगवन् ! मैंने अपने जीवनमें कोई ऐसा कार्य नहीं किया, जो उल्लेख करने योग्य हो !"

कृष्णने कहा :—"कुछ तो किया ही होगा। अच्छी तरह सोचकर उत्तर दो !"

वीरने हँसकर कहा :—"भगवन् ! एक बार मैंने एक बेर पर बैठे हुए कीड़ेको पत्थर मारकर भूमिपर गिरा दिया था, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी थी। इसी तरह गाड़ीकी लीकमें बहते हुए पानीको एकबार मैंने बायें पैरसे रोक दिया था, जिससे उसको अपना रास्ता बदल देना पड़ा था। एकबार एक घड़ेमें घुसी हुई मक्खियोंको भी मैंने बहुत देर तक बन्द कर रोक रक्खा था। हे भगवन् ! मैंने अपने जीवनमें ऐसी ही बहादुरियोंके काम किये हैं।"

इसपर कृष्णने हँसते हुए कहा :—"भाई ! यह

बातें भी कोई कम गौरवकी नहीं हैं। कल तुम राज-सभामें आना। वहाँ सबके सामने मैं तुम्हें सम्मानित करूँगा।"

कृष्णके आदेशानुसार वीर दूसरे दिन उनकी राज-सभामें उपस्थित हुआ। कृष्णने सम्मानपूर्वक उसे अपने पास बैठा कर सभाजनोंसे कहा:—"यह वीर यथा नाम तथा गुण है। इसकी वीरताके लिये इसकी जितनी प्रशंसा की जाय, उतनी ही कम है। इसने एकबार बदरी वनमें रक्त फनवाले भयंकर नागको एक ढ़ेलेसे मार डाला था। एकबार इसने चक्रसे खुदी हुई कलुष जल-वाली गंगाकी धाराको बायें पैरसे रोक दिया था। इसी तरह एकबार कलशीपुरमें गर्जना करती हुई सेनाको केवल एक हाथसे इसने दीर्घकाल तक रोक रक्खा था। ऐसे वीरतापूर्णकार्य संसारमें विरले ही मनुष्य कर सकते हैं। मैं इन सब कार्योंके कारण वीरसे अपनी एक पुत्रीका विवाह कर उसे सम्मानित करना चाहता हूँ।"

कृष्णके यह वचन सुनकर सब लोग वीरकी मुक्त-कंठसे प्रशंसा करने लगे। इसके बाद कृष्णने वीरकी

इच्छा न होनेपर भी उसके साथ केतुमंजरीका विवाह कर दिया। वीर भयसे काँपता हुआ उस राजकन्याको अपने घर लिवा ले गया। वहाँ वह कन्या रातदिन पलंगपर सोया करती और कोई काम-धन्धा भी नहीं करती। बेचारा वीर पति होने पर भी उसका मोल लिया हुआ गुलाम बन गया और सब काम धन्धा छोड़कर अपना सारा समय उसीका सेवामें व्यतीत करने लगा।

कुछ दिनोंके बाद एकदिन कृष्णने वीरको एकान्तमें बुलाकर पूछा :—"हे वीर! केतुमंजरी तुम्हारे आदेशानुसार तुम्हारी सेवा और गृहकार्य आदि करती है या नहीं?"

वीरने हाथ जोड़कर कहा :—"भगवन्! कहाँ वह राजकुमारी और कहाँ मैं? मैं तो आपकी तरह उसकी भी समस्त आज्ञाएँ सेवककी भाँति शिरोधार्य करता हूँ। हे प्रभो! उसके पीछे तो मेरा काम-धंधा भी बन्द हो गया है!"

कृष्णने भौएँ चढ़ाकर कहा :—"मैंने उसकी दासता

करनेके लिये तुम्हारे साथ उसका विवाह नहीं किया। उसे अब तुम राजकुमारी नहीं, किन्तु अपनी पत्नी समझो और पत्नीकी ही तरह उससे सब काम लो। यदि वह सीधी तरह सब काम न करे तो तुम मार-पीट भी कर सकते हो यदि तुम ऐसा न करोगे, तो मैं तुम्हें कैदखानेमें बन्द करवा दूँगा।

बेचारा वीर अपने भाग्यको कोसता हुआ अपने घर लौट आया। कृष्णकी यह कृपा उसके लिये भार रूप हो पड़ा थी, परन्तु अब क्या, अब तो गले पड़ा ढोल बजानेमेंही शोभा थी। इसलिये घर आते ही उसने केतुमंजरीको एक फटकार सुनाते हुए कहा :— "तू निठल्ली होकर क्या बैठी रहती है? कपड़ोंके लिये जल्दी माड़ बना ला!"

केतुमंजरी तो उसका यह रोब देखकर सन्नाटेमें आ गयी। उसने कहा :—"तू क्या जानता नहीं है, कि मैं कौन हूँ? मुझ पर हुक्म चलानेके पहले आइनेमें अपना मुँह तो देख आ!"

कृष्णने तो वीरसे मारपीट करनेको भी कह दिया

था, इसलिये केतुमंजरीके यह वचन सुनते ही, उसने एक रस्सीसे उसको अच्छी तरह पीट दिया। इससे केतु-मंजरीको बड़ाही दुःख हुआ और उसने रोते कलपते अपने पिताके निकट जाकर इसकी शिकायत की। इस-पर पिताने कहा :—"बेटी! मैं क्या करूँ? तूने तो स्वयं कहा था, कि मुझे दासी होना पसन्द है, रानी होना नहीं।"

केतुमंजरीने कहा :—पिताजी! मेरा अपराध क्षमा कीजिये। मैं अब रानी होना पसन्द करती हूँ। मुझे यह दासता न चाहिये।"

कृष्णने कहा :—"बेटी! अब मैं क्या कर सकता हूँ? तुम तो अब वीरके अधिकारमें हो!"

केतुमंजरीने कहा :—"पिताजी! आप सब कुछ कर सकते हैं। जैसे भी हो मुझे इस दुःखसे छुड़ाइये!"

केतुमंजरीकी यह प्रार्थना सुनकर कृष्णको उसपर दया आ गयी। इसलिये उन्होंने वीरको समझाकर, उसे नेमिभगवानके निकट दीक्षा दिलवा दी।

एकबार कृष्ण अपने परिवारके साथ समस्त मुनियों-

का द्वादशावर्त्तवन्दना करने लगे। उस समय समस्त राजा थक कर बीचहीमें बैठ गये, परन्तु कृष्णकी भक्ति और कृपाके कारण वीरको थकावट न मालूम हुई और उसने भी कृष्णकी भाँति द्वादशावर्त्त वन्दनामें सफलता प्राप्त की। वन्दना पूरी होने पर कृष्णने भगवानसे कहा :—"हे भगवन्! तीन सौ साठ संग्राम करने पर मुझे जितनी थकावट न मालूम हुई थी, उतनी यह वन्दना करने पर मालूम होती है!"

कृष्णका यह वचन सुनकर भगवानने कहा :—"तुमने आज बहुत पुण्य प्राप्त किया है और क्षायिक सम्यक्त्व तथा तीर्थंकर नाम कर्म भी उपार्जन किया है। अब तक तुम्हारी आयु सातवें नरकके योग्य थी, परन्तु आजसे वह घटकर तीसरे नरक योग्य हो गयी है। इसी पुण्यके प्रभावसे तुम अन्तमें निकाचित भी कर सकोगे।"

कृष्णने आनन्दित होकर कहा :—"हे नाथ! यदि ऐसी हीं बात है, तो एकबार मैं पुनः वन्दना करूंगा, जिससे मेरी नरकायु समूल नष्ट हो जाय।"

भगवानने कहा :—"अब तो तुम्हारी यह वन्दना द्रव्य वन्दना हो जायगी और फल तो भाव वन्दनासे ही प्राप्त होता है।"

यह सुनकर कृष्णने वैसा करनेका विचार छोड़ दिया। इसके बाद उन्होंने वीरकी वन्दनाका फल पूछा। इसपर भगवानने कहा :—"उसे केवल काय-क्लेशका फल हुआ है, क्योंकि उसने तो तुम्हारा ही अनुकरण किया है।"

इसके बाद कृष्णराज भगवानको वन्दन कर, इन्हीं सब बातों पर विचार करते हुए अपने राज-मन्दिरमें लौट आये।

एकबार नेमिनाथ भगवानने श्रोताओंको धर्मोपदेश देते हुए अष्टमी और चतुर्दशी आदि पर्वदिनोंका माहात्म्य वर्णन किया। उसे सुन, कृष्णने हाथ जोड़कर प्रभुसे पूछा :—"हे स्वामिन्! राज-काजमें व्यस्त रहनेके कारण मैं समस्त पर्व दिनोंकी आराधना नहीं कर सकता, इस-लिये मुझे एक ऐसा दिन बतलाइये, जो वर्ष भरमें सर्वो-त्तम हो!"

भगवानने कहा :—"ऐसा दिन तो मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशीका ही है। उस दिन तीर्थंकरोंके डेढ़ सौ कल्याणक हुए हैं। पूर्वकालमें भी सुव्रत श्रेष्ठी आदिने इसकी आराधना की है।"

कृष्णने पुनः पूछा :—"हे जिनेन्द्र! सुव्रत श्रेष्ठी कौन था?"

भगवानने इस प्रश्नके उत्तरमें सुव्रत श्रेष्ठीका समस्त वृत्तान्त कृष्णको कह सुनाया, जिसे सुनकर उन्हें अत्यन्त आश्चर्य हुआ। इसके बाद कृष्णने एकादशीके तपकी विधि पूछी, जिसके उत्तरमें भगवानने मौन सहित गुणणादि विधिका वर्णन कह सुनाया। सुनकर कृष्णको परम सन्तोष हुआ और उस समयसे वे प्रतिवर्ष अपनी प्रजाके साथ मौन एकादशीके महापर्वकी आराधना करने लगे।"

कृष्णकी एक रानीका नाम ढंढणा था, जिसके उदरसे ढंढण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। युवावस्था प्राप्त होनेपर ढंढणने अनेक राजकुमारियोंके साथ विवाह किया। एक बार भगवानका धर्मोपदेश सुनकर उसे वैराग्य आ गया। इससे कृष्णने उसका दीक्षा महोत्सव

कर, उसे दीक्षा दिला दी। उस दिनसे ढंढण प्रभुके साथ विचरण करने लगा और अपनी धर्मनिष्ठाके कारण वह अनेक साधुओंका प्रियपात्र हो पड़ा।

इतनेमें उसका अन्तराय कर्म उदय हुआ, इसलिये वह जहाँ जहाँ गया, वहीं उसे आहार-पानीकी कुछ भी सामग्री प्राप्त न हो सकी। उसके साथ जितने मुनि गये, उन सबोंको भी इसी तरह निराश होना पड़ा। यह देखकर उन मुनियोंने नेमिभगवानसे पूछा :-"हे स्वामिन्! इस नगरीमें धनीमानी, सेठ साहूकार और धार्मिक तथा उदार पुरुषोंकी कमी नहीं है। फिर भी यहाँपर ढंढण मुनिको भिक्षा नहीं मिलती, इसका क्या कारण है?"

प्रभुने विचार करनेके बाद कहा :—"एक समय मगध देशके धान्यपूरक नामक ग्राममें पराशर नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह राजाका प्रधान कर्मचारी था। इसलिये उसने एकदिन ग्राम्य जनोंको बेगारमें पकड़ कर उनसे सरकारी खेत जुतवाये। दो-पहरमें जब भोजनका समय हुआ, तब उन किसानोंके घरसे उनके लिये भोजन आया,-परन्तु पराशरने उनमेंसे किसीको

छुट्टी न दी। उसने क्षुधित और तृशित अवस्थामें ही उन किसान और बैलोंसे खेतोंमें एक एक फेरा और लगवाया। इससे उसने अन्तराय कर्म उपार्जन किया। मृत्युके बाद अनेक योनियोंमें भटककर वही पराशर ढंढण हुआ है। इस समय उसका वही कर्म उदय हुआ है, जिससे उसे भिक्षा नहीं मिल रही है।"

भगवानके यह वचन सुनकर ढंढण मुनिको संवेग उत्पन्न हुआ और उन्होंने प्रतिज्ञा की कि आजसे मैं परलब्धि द्वारा प्राप्त आहार ग्रहण न करूँगा। इसके बाद उन्होंने अन्य लब्धिसे आहार न ग्रहण करते हुए कुछ दिन इसी तरह व्यतीत किये।

एकदिन सभामें बैठे हुए कृष्णने भगवानसे पूछा :— "हे भगवन्! इन मुनियोंमें ऐसा मुनि कौन है, जो दुष्कर तप कर रहा हो?

भगवानने कहा :—"यद्यपि यह सभी मुनि दुष्कर तप करनेवाले हैं, किन्तु असह्य परिषहको सहन करनेवाले ढंढण इन सबोंमें श्रेष्ठ हैं।"

इसके बाद भगवानको वन्दन कर कृष्ण आनन्द-

पूर्वक द्वारिका नगरीमें प्रवेश करने लगे। मार्गमें उनकी दृष्टि ढंढण मुनि पर जा पड़ी, जो उस समय गोचरीके निमित्त नगरमें भ्रमण कर रहे थे। कृष्णने हाथीसे उतर-कर अत्यन्त सम्मानपूर्वक उनको वन्दन किया। उनका यह कार्य देखकर एक श्रेष्ठी अपने मनमें कहने लगा कि :—"यह कोई अवश्य ही महान मुनि हैं, तभी तो कृष्ण इनको वन्दन कर रहे हैं।"

इसके बाद गोचरीके निमित्त भ्रमण करते हुए ढंढण मुनि भी उसी सेठके घर जा पहुँचे। सेठने उनका अत्यन्त सत्कार कर भक्तिपूर्वक उनको लड्डू प्रदान किये। ढंढण लड्डू लेकर भगवानके पास आये और उनसे कहने लगे कि :—"हे स्वामिन्! मालूम होता है कि मेरा अन्तराय कर्म क्षीण हो गया है, क्योंकि आज मुझे अपनी लब्धिसे आहार प्राप्त हुआ है।"

भगवानने कहा :—"तुम्हारा अन्तराय कर्म क्षीण नहीं हुआ है। यह तो कृष्णकी लब्धि है। तुमको कृष्णने वन्दन किया था, इसीलिये भद्रकभावी श्रेष्ठीने तुमको आहार दिया है।"

यह सुनकर रागादि रहित ढंढण मुनिने उन लड्डु-ओंको परलब्धि मानकर उनका त्याग कर दिया। तदनन्तर वे अपने मनमें कहने लगे :—"अहो! जीवोंके पूर्वोपार्जित कर्म दुरन्त होते हैं।" इसी समय स्थिर ध्यान करते और भवका स्वरूप सोचते सोचते ढंढण मुनिको केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। फलतः देवताओंने उनकी पूजा की और उन्होंने केवलीकी सभामें स्थान ग्रहण किया।

एकबार नेमि प्रभु ग्राम, और नगरादिकमें विहार करते हुए पापादुर्ग नामक नगरमें जा पहुँचे। वहाँ भीम नामक राजा राज्य करता था। उसकी रानीका नाम सरस्वती था, जो राजगृहके राजा जितशत्रुकी पुत्री थी। सरस्वती जन्मसे ही परम मूर्ख थी। इसलिये उसके पतिने भगवानको वन्दन करनेके बाद उनसे प्रश्न किया कि :—"भगवन्! मेरी यह रानी इतनी मूर्खणी क्यों है।" इस पर भगवानने कहा :—"हे राजन्! पूर्व-जन्ममें पद्मराजके पद्मा और चन्दना नामक दो रानियाँ थीं। राजाने एकदिन पद्मासे एक गाथाका अर्थ पूछा,

जिसे पद्माने सहर्ष बतला दिया। उस पर पतिका अनुराग देख कर चन्दनाके हृदयमें ईर्ष्या उत्पन्न हुई और उसने उस पुस्तकको ही जला दिया। उस जन्ममें वही चन्दना तुम्हारी रानी हुई है और अपने उपरोक्त कर्मके कारण मूर्ख हुई है।" यह सुनकर सरस्वतीने कहा :—"हे भगवन्! मेरा यह ज्ञानान्तराय कर्म कैसे क्षीण हो सकेगा?"

भगवानने कहा :—"ज्ञानपञ्चमीकी आराधना करनेसे।"

तदनन्तर भगवंतके आदेशानुसार सरस्वतीने शीघ्रही ज्ञानपञ्चमीकी आराधना की, जिससे उसका ज्ञानान्तराय कर्म क्षीण हो गया।

इसके वाद वहाँसे विचरण करते हुए भगवान पुनः द्वारिकामें आये। इसी समय वहाँ एकवार अचानक वृष्टि हुई। वृष्टिके पहिले रथनेमि गोचरीके लिये भ्रमण करने निकला था। वहाँसे लौटते समय वह भीग गया और वर्षासे वचनेके लिये एक गुफामें जा छिपा। इसी समय साध्वी राजीमती भी भगवानको वन्दन कर वास-

स्थानकी ओर लौट रही थी। उसके साथकी अन्यान्य साध्वियाँ वृष्टिके भयसे इधर उधर भाग गयीं, किन्तु राजीमती धैर्यपूर्वक एक स्थानमें खड़ी हो गयी। वह उस स्थानमें बहुत देरतक खड़ी रही। उसके सब वस्त्र भीग गये और शरीर शीतके कारण थर थर काँपने लगा, किन्तु फिर भी जब वर्षा बन्द न हुई, तब आश्रय ग्रहण करनेके लिये अनजानमें वह भी उसी गुफामें चली गयी, जिसमें रथनेमि पहलेहीसे छिपा था। वहाँ अन्धकारमें वह रथनेमिको न देख सकी। उसने अपने भीगे हुए वस्त्रोंको खोलकर उन्हें सुखानेके लिये उसी गुफामें फैला दिये। उसको वस्त्र रहित देखकर रथनेमिके हृदयमें दुर्वासनाका उदय हुआ। उसने काम पीड़ित हो राजीमतीसे कहा :—"हे सुन्दरी! मैंने पहले भी तुमसे प्रार्थना की थी, और अब फिर कर रहा हूँ। आओ, हमलोग एक दूसरेको गले लगायें। विधाताने मानो हमारे मिलनके ही लिये हम दोनोंको इस एकान्त स्थानमें एकत्र कर दिया है।"

राजीमती आवाजसे ही रथनेमिको पहचान गयी।

उसने तुरन्त अपने कपड़े उठाकर अपना शरीर ढक लिया। तदनन्तर उसने रथनेमिसे कहा :—"हे रथ-नेमि ! कुलीन पुरुषको ऐसी बातें शोभा नहीं देतीं।" तुम सर्वज्ञ भगवन्तके लघु भ्राता और शिष्य हो। फिर ऐसी कुबुद्धि तुम्हें सूझ रही है? मैं भी सर्वज्ञ कि शिष्या हूँ, इसलिये स्वप्नमें भी तुम्हारी यह इच्छा पूर्ण नहीं कर सकती। साधु पुरुषको तो ऐसी इच्छा भी न करनी चाहिये, क्योंकि वह नरकमें डालनेवाली है। शास्त्रका कथन है कि चैत्य द्रव्यका नाश करने, साध्वीका सतीत्व नष्ट करने, मुनिका घात करने और जिन शासनकी उपेक्षा करनेसे प्राणी सम्यक्त्वरूपी वृक्षके मूलमें अग्नि डालता है। अगन्धक कुलमें उत्पन्न सर्प, जलती हुई अग्निमें प्रवेश कर सकते हैं, किन्तु खुद वमन किया हुआ विष कदापि पान नहीं कर सकते। परन्तु हे नराधम ! तुझे धिक्कार है कि तू अपनी दुर्वासनाको तृप्त करनेके लिये परस्त्रीकी कामना करता है। ऐसे जीवनसे तो तेरे लिये मृत्यु ही श्रेयस्कर है। मैं राजा उग्रसेन की पुत्री और तू राजा समुद्रविजय का पुत्र है। हमें अगन्धक

कुलके नागकी भाँति वमन किया हुआ विष-भोग न करना चाहिये। हे पामर! यदि तू अपना कल्याण चाहता है, तो निर्मल चारित्रका आचरण कर, सदाचारी वन! कामदेवसे पीड़ित होकर यदि तू स्त्रीकी इच्छा करेगा, तो वायु द्वारा प्रेरित वृक्षकी भाँति तू अस्थिर वन जायगा—तू कहींका न रह जायगा।"

राजीमतीका निन्दा पूर्ण यह उपदेश सुनकर रथनेमि सम्हल गया और वारंवार पश्चाताप करने लगा। इसके वाद वह भोगेच्छा त्यागकर तीव्र व्रतका पालन करने लगा। दुश्चरित्रका त्याग करने और एक वर्ष तक छद्मस्थ रहने पर रथनेमि मुनिकी वुद्धि शुद्ध हो गयी और अन्तमें उसे केवल ज्ञानकी प्राप्ति हुई।

इसके वाद नेमिनाथ भगवान इधर उधर विचरण कर पुनः एकवार गिरनार पर्वतके सहस्राम्र वनमें पधारे। उस समय कृष्णने पालक और शाम्ब आदिक पुत्रोंसे कहा :—"सुवह जो सवसे पहले भगवानकी वन्दना करेगा, उसे मैं मन पसन्द एक घोड़ा इनाम दूँगा।"

यह सुनकर सुवह शैय्यासे उठते ही शाम्ब अपने

घरमें बैठे ही बैठे अत्यन्त भावपूर्वक भगवानकी वन्दना करने लगा। दूसरी ओर पालक बड़ी रात रहते ही शैय्या त्याग, एक तेज घोड़े पर सवार हो, भगवानके समवसरणमें गया और वहाँ अभव्यता पूर्वक बड़ बड़ाते हुए उसने भगवानकी द्रव्य वन्दना की। इसके बाद उसने कृष्णके पास आकर कहा:—"पिताजी! मैंने सबसे पहले भगवानकी वन्दना की है, इसलिये मुझे दर्पक अश्व इनाम दीजिये।"

कृष्णने कहा:—"अच्छा, मैं भगवानसे पूछूँगा, यदि वे कहेंगे कि तुमने ही सबसे पहले वन्दना की है, तो मैं तुम्हें दर्पक अश्व जरूर दूँगा।"

इसके बाद कृष्णने प्रभुके पास जाकर पूछा:— "भगवन्! आज सबसे पहले आपको किसने वन्दन किया था?"

प्रभुने कहा:—"पालकने द्रव्य द्वारा और शाम्बने भाव द्वारा मुझे सर्व प्रथम वन्दन किया था।"

कृष्णने कहा:—"भगवन्! मैं आपकी बात अच्छी तरह समझ नहीं सका, इसलिये जरा समझा कर कहिये।"

यह सुनकर प्रभुने कृष्णको सारी बातें ठीक तरह समझा दीं। साथ ही उन्होंने कहा :—"द्रव्य पूजाकी अपेक्षा भाव पूजाका माहात्म्य अधिक है। इसके अतिरिक्त मैं यह भी कह सकता हूँ कि पालक अभव्य है और जाम्बवतीका पुत्र शाम्ब भव्य-धर्मात्मा है।"

इसपर कृष्णने पालकको देशसे निकाल दिया और शाम्बको मन पसन्द एक घोड़ा इनाम देकर उसे महा-मण्डलीक राजा बना दिया।

चोसवाँ परिच्छेद

द्वारिका दहन और कृष्णका देहान्त

एकबार धर्मोपदेशके अन्तमें विनीतात्मा कृष्णने श्री नेमिनाथ भगवानको नमस्कार करके पूछा कि—"हे प्रभो! द्वारिका नगरी, समस्त यादव और मेरा क्षय किस प्रकार तथा किस कारणसे होगा? हमलोगोंका

नाश किसी दूसरे द्वारा होगा या कालके ही कारण हम-लोगोंकी मृत्यु होगी ?"

भगवानने कहा :—"हे कृष्ण ! शौर्यपुरके बाहर एक आश्रममें पराशर नामक एक प्रधान तापस रहता था। उसने यमुनाद्वीपमें जाकर किसी नीच कन्याका सेवन किया, फलतः उसके द्वैपायन नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। द्वैपायन अब तक जीवित है। वह परम ब्रह्मचारी और परिव्राजक है। वह यादवोंके साथ मैत्री भावसे यहाँ वास करेगा। एकदिन मद्यपानसे उन्मत्त होकर शाम्ब आदिक उसे मारेंगे, जिससे वह क्रुद्ध होकर समस्त यादवों सहित द्वारिकाको जला देगा। और तुम्हारी मृत्यु तुम्हारे भाई जराकुमारके हाथसे होगी।"

भगवानके मुखसे अपने विनाशका यह हाल सुनकर कृष्ण तथा समस्त यादव काँप उठे। यादवगण उसी समयसे जराकुमारको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखने लगे। इससे जराकुमारको भी बड़ा दुःख हुआ। वह अपने मनमें कहने लगा :—"क्या वसुदेवका पुत्र होकर मैं अपने भाईका वध करूँगा ? नहीं नहीं, यह कदापि

नहीं हो सकता। मेरे लिये इससे बढ़कर अप्रतिष्ठाकी बात दूसरी नहीं हो सकती। मैं इस दुर्घटनाको रोकने की चेष्टा अवश्य करूँगा!"

द्वैपायनको भी यह हाल सुनकर बड़ाही दुःख हुआ और उन्होंने भी जराकुमारकी भाँति इस दुर्घटनाको रोकनेका निश्चय किया। जराकुमारने इसके लिये कृष्णकी रक्षा करना और द्वैपायनने द्वारिका तथा यादवोंकी रक्षा करना स्थिर किया। इस उद्देश्यको सफल बनानेके लिये वह दोनों उसी दिनसे वनवासी बन गये और द्वारिकानगरी त्याग कर समीपके वनमें निवास करने लगे।

इधर कृष्ण नेमिभगवानको वन्दन कर भवितव्यताका विचार करते हुए नगरको लौट आये। इसके बाद वे सोचने लगे कि यह सब अनर्थ मद्यके ही कारण होगा, इसलिये पहले मद्यपान पर ही प्रतिबन्ध क्यों न लगा दिया जाये। यह सोचकर उन्होंने यादवोंको आज्ञा दी कि:—"द्वारिकामें जितना मद्य तैयार हो, वह सब गिरनारकी कादम्बरी नामक गुफाके कुण्डमें डाल

आओ।" यह सुनकर यादवगण उसी समय द्वारिका नगरीमें गये और चारों ओरसे खोज-खाज कर सारा मद्य उस कुण्डमें डाल आये।

इसी समय सिद्धार्थ नामक सारथीने बलरामसे कहा :—"हे प्रभो! द्वारिका नगरी और यदुकुलकी यह दुरवस्था मैं अपनी आँखोंसे कैसे देख सकूँगा? मेरा हृदय तो उस प्रलयकालकी कल्पनासे ही काँप उठता है। आप मुझे आज्ञा दीजिये, तो मैं इसी समय भगवानके पास जाकर दीक्षा ले लूँ, क्योंकि यहाँ रहनेका अब मुझे साहस ही नहीं होता।"

सिद्धार्थ की यह बातें सुनकर बलरामने आँसू बहाते हुए कहा :—"भाई! तुम यह क्या करते हो? तुम्हें दीक्षा लेनेकी आज्ञा देते हुए मुझे बड़ा दुःख होता है, किन्तु इस सत्कार्य से मैं तुम्हें रोक भी नहीं सकता। खैर, तुम जाओ, लेकिन मृत्युके बाद जब तुम्हें देवत्व प्राप्त हो, तब मुझे उपदेश देनेके लिये तुम अवश्य आना। मुझे आशा है, कि मेरी इस बात पर तुम अवश्य ध्यान दोगे।"

सिद्धार्थने इसके लिये बलरामको वचन देकर नेमि प्रभुके निकट दीक्षा ले ली। दीक्षा लेनेके बाद छः मास तक सिद्धार्थने दुस्तप तप किया। इसके बाद उसकी मृत्यु हो गयी और वह देवलोकका अधिकारी हुआ।

इधर द्वारिका निवासी यादव लोग शिलाकुण्डमें जो मदिरा डाल आये थे, उसमें अनेक वृक्षोंके पुष्प गिरनेसे वह बहुत ही स्वादिष्ट बन गयी। एकबार वैशाख मासमें शाम्बकुमारका एक मित्र घूमता घामता वहाँ जा पहुँचा। तृषा लगने पर जल समझकर उसने उस मदिराका पान किया, तो उसके अपूर्व स्वादके कारण उसे बड़ाही मजा आया। वहाँसे लौटते समय वह एक मशक भरकर मदिरा अपने साथ लेता आया और वह मदिरा उसने शाम्बको दी। शाम्बको भी उसके पीनेसे अपूर्व आनन्द प्राप्त हुआ। इसलिये उसने उससे पूछा :—"हे भद्र! तुम्हें यह मदिरा कहाँ मिली?" इस प्रश्नके उत्तरमें उसके मित्रने उसे उस कुण्डका पता बतला दिया, जहाँ जलकी भाँति वह अपूर्व मदिरा भरी हुई थी।

दूसरे ही दिन शाम्ब अनेक कुमार तथा इष्ट मित्रोंको

साथ लेकर उस कादम्बरी गुफामें जा पहुँचा। वहाँपर मदिराका अक्षय भण्डार देखकर उसे असीम आनन्द हुआ। शीघ्र ही उसके हुक्मसे वन-वृक्षोंके बीचमें वनका एक भाग सुन्दर उद्यानके रूपमें परिणत कर दिया गया और वहीं बैठकर शाम्ब तथा उसके संगियोंने जी भरकर उस मदिराका पान किया।

यादवोंको मद्यपानका यह अवसर बहुत दिनोंके बाद मिला था। दूसरे वह मदिरा भी पुरानी थी और विविध द्रव्योंके मिश्रणसे बहुत ही मधुर बन गयी थी। यही कारण था कि उसके पीनेसे उन्हें तृप्ति ही न होती थी।

खूब मदिरा पी कर सब राजकुमार आसपासके स्थानमें मदोन्मत्तकी भाँति क्रीड़ा करने लगे। कादम्बरी गुफाके पास ही एक स्थानमें द्वैपायन मुनिका आश्रम था। शाम्ब अपने संगियोंके साथ घूमता हुआ वहाँ जा पहुँचा। उस समय द्वैपायन मुनि ध्यानमें मग्न थे। उन्हें देखकर शाम्बने अपने मित्रोंसे कहा :—"इसी तापसके हाथोंसे मेरी द्वारिका नगरी और यदुकुलका नाश होने-

वाला है। इसलिये आओ, हमलोग इसे इसी समय मार डालें। न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी। जब यही न रहेगा, तब हमारे कुलका नाश कौन करेगा ?"

शाम्बकी यह बात सब यादवोंको पसन्द आ गयी। उन्होंने लात-घूँसे और ढेला-पत्थर मार मार कर द्वैपायन को मृतप्राय कर डाला। इसके बाद वे द्वारिकाको लौट आये और इस प्रकार अपना कामकाज करने लगे मानों कुछ हुआ ही न हो। परन्तु कृष्णको अपने गुप्तचरों द्वारा इन सब बातोंका पता चल गया। उन्हें इससे बहुत ही दुःख हुआ। वे अपने मनमें कहने लगे :—"होनहारको कौन टाल सकता है ? इन अविचारी कुमारोंको इतना भी ज्ञान नहीं है, कि इस कार्य द्वारा हम अपने ही पैरोंमें कुल्हाड़ी मार रहे हैं।"

इसके बाद कृष्ण बलरामको साथ लेकर द्वैपायन मुनिको समझानेके लिये उनके आश्रममें गये। वहाँ कृष्णने देखा कि दृष्टि सर्पकी भाँति द्वैपायनके नेत्र लाल हो रहे हैं। जिस प्रकार मतवाले हाथीको महावत पुचकार कर शान्त करता है, उसी प्रकार कृष्ण उस महा

भयंकर मुनिको समझा बुझा कर शान्त करने लगे। उन्होंने कहा :—"हे मुनिराज! क्रोध महा शत्रु है। उसके कारण जीवको जन्मजन्मान्तर तक दुःख मिला करता है। हे मुने! मद्यपानसे अन्ध बनकर, अज्ञानताके कारण मेरे पुत्रोंने आपका जो अपराध किया है, उसे आप क्षमा करिये। बच्चे स्वभावसे ही उत्पाती होते हैं, उनपर आपको इस प्रकार क्रोध न करना चाहिये।"

इस प्रकार कृष्णने द्वैपायनको बहुत समझाया, किन्तु वह किसी तरह प्रसन्न न हुआ। उसने कहा :—"तुम्हारे इन मधुर वचनोंका मुझपर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। मैंने तुम लोगोंके कल्याणके लिये वनवास स्वीकार किया, फिर भी तुम्हारे पुत्रोंने मुझे बेतरह अपमानित किया। उन्होंने मेरी जो दुर्गति की है, उसे तुम देख ही रहे हो। अब तो मैंने प्रतिज्ञा की है, कि मैं समस्त यादवों सहित द्वारिकाको अवश्य भस्म कर दूँगा। मैं अपनी इस प्रतिज्ञासे किसी प्रकार टल नहीं सकता। हाँ, तुम दोनों भाई इस आपत्तिसे अवश्य बच सकते हो। मैं तुम्हें अपना शिकार न बनाऊँगा।"

द्वैपायनकी यह बातें सुनकर बलरामने कृष्णसे कहा :—"हे बन्धो ! इस जोगड़ेको समझाना बेकार है। यह बड़ा ही अधर्मी मालूम होता है। किसीने कहा भी है कि हाथ पैर और नाक यह तीनों जिसके टेढ़े होते हैं, होठ, दाँत और नाक यह तीनों जिसके स्थूल होते हैं, जिसके नेत्र विलक्षण और अंगोपाङ्ग हीन होते हैं, वे कभी शान्त नहीं होते। आप चाहे जितने नम्र वचन कहेंगे, इस अधर्मीसे चाहे जितनी क्षमा प्रार्थना करेंगे, किन्तु होनी होकर ही रहेगी। वह किसी प्रकार टल नहीं सकती। नेमिनाथ भगवानका वचन किसी प्रकार मिथ्या नहीं हो सकता।"

इस प्रकार बलरामके समझाने बुझाने पर कृष्ण उदास चित्तसे द्वारिका नगरीको लौट आये। उनके आते ही द्वैपायनकी प्रतिज्ञाका समाचार समूचे नगरमें विद्युत् वेगसे फैल गया। सुनते ही सब लोग भयसे काँप उठे और इस विपत्तिसे बचनेका उपाय सोचने लगे।

दूसरे दिन कृष्णने नगरमें घोषणा करा दी कि इस महान विपत्तिको टालनेके लिये सब लोगोंको धर्मकार्यमें

विशेष रूपसे प्रवृत्त रहना चाहिये, अतः सब लोग वैसा ही करने लगे। शीघ्र ही भगवानने भी वहाँ आकर रैवताचल पर निवास किया। भगवानके आगमनका समाचार सुनकर, कृष्ण उन्हें वन्दन करनेके लिये उनकी सेवामें उपस्थि हुए। प्रभुने सदाकी भाँति इसबार भी श्रोता गणोंको दिव्य धर्मोपदेश दिया। उसे सुनकर प्रद्युम्न, शाम्ब, निषध, उल्मुक, सारण आदि कई यदुकुमार और सत्यभामा रुक्मिणी तथा जाम्बवती आदि कई यादव-पत्नियोंको वैराग्य आ गया, फलतः उन्होंने प्रभुके निकट दीक्षा ले ली।

इसके बाद कृष्णके पूछने पर प्रभुने बतलाया कि :- "द्वैपायन आजसे बारहवें वर्ष द्वारिकानगरीको भस्म कर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करेगा। इसी तरह भगवानकी अन्यान्य बातें सुनकर कृष्ण अपने मनमें कहने लगे कि समुद्रविजयादिकको धन्य है, जिन्होंने पहलेहीसे दीक्षा ले ली। मैं दीक्षा रहित हूँ, इसलिये मुझे धिक्कार है।"

कृष्णका यह मनोभाव जानकर भगवानने कहा :— "हे कृष्ण! वासुदेव कभी भी दीक्षा नहीं लेते। उन्होंने

न कभी दीक्षा ली है, न कभी लेंगे। उनकी सदा अधोगति ही होती है। तुम्हें भी मृत्युके बाद तीसरा बालुका प्रभा नरक भोगना पड़ेगा।"

यह सुनकर कृष्ण बहुत उदास हो गये, किन्तु सर्वज्ञ प्रभुने उन्हें समझाते हुए कहा :—"हे कृष्ण! तुम्हें उदास होनेका कोई कारण नहीं। निरकसे निकल कर तुम पुनः मनुष्य होगे। वहाँसे मृत्यु होने पर वैमानिक देव होगे और वहाँसे उत्सर्पिणी काल आने पर वैताढ्य पर्वतके निकट पुंढ़ा नामक देशके गंगाद्वारनगरमें जितशत्रु राजाके पुत्र असम नामक बारहवें तीर्थंकर होगे। बलराम मृत्युके बाद पहले ब्रह्मदेवलोकमें जायँगे और वहाँसे च्यूत होकर मनुष्य होंगे। वहाँसे देवगतिमें जाकर वे पुनः इसी भरतक्षेत्रमें पुरुप होंगे। और जब तुम असम तीर्थंकर होगे, तब तुम्हारे तीर्थमें वे मोक्षके अधिकारी होंगे।"

इतना कह, नेमिभगवान विहार कर अन्यत्र चले गये। कृष्णको भी तीर्थंकर पदकी प्राप्तिका हाल सुनकर अत्यन्त आनन्द हुआ और वे द्वारिकानगरीको लौट

आये। वहाँ उन्होंने पुनः पहले जैसी घोषणा करायी, जिससे नगरनिवासी धर्मकार्यमें विशेष रूपसे प्रवृत्त रहने लगे।

उधर कुछ दिनोंके बाद द्वैपायन मुनिकी मृत्यु हो गयी। मृत्युके बाद दूसरे जन्ममें वह अग्निकुमार हुआ। यथा समय पूर्व वैरका स्मरण कर वह द्वारिकामें आया, किन्तु वहाँके लोगोंको चतुर्थ, षष्ठ अष्टमादिक तप तथा देवपूजा आदि धर्म-कार्य करते देख, वह उनका कुछ भी न बिगाड़ सका। इसके बाद अवसरकी प्रतीक्षा करते हुए उसने ग्यारह वर्षतक वहाँ वास किया। बारहवाँ वर्ष आरम्भ होने पर लोग समझने लगे कि हमारे धर्माचरणसे द्वैपायन पराजित हो गया। यदि इतने दिनोंमें वह हमारा कोई अनिष्ट न कर सका, तो अब उससे डरनेका कोई कारण नहीं।

इस प्रकार विचार कर सब लोग धर्म-कर्म छोड़, इच्छानुसार मद्यमांसका सेवन करने लगे। बस, लोगोंके धर्म-विमुख होते ही द्वैपायनको मौका मिल गया। अब आये दिन द्वारिका नगरीमें नये नये उत्पात होने

लगे। कभी उल्कापात होता, कभी मेघकीसी गर्जना सुनायी देती, कभी भूकम्प होता, कभी सूर्य्यमण्डलसे अग्निवर्षा होती, कभी अचानक सूर्य्य या चन्द्रग्रहण होता, पत्थरकी पुतलियाँ भी अस्वाभाविक रुपसे हास्य करने लगतीं, कभा चित्राङ्कित देव भी क्रोध दिखाते, कभी व्याघ्र आदिक हिंसक पशु नगरमें विचरण करते। और कभी द्वैपायन असुर, भूत, प्रेत तथा वैताल आदिको साथ लेकर चारों ओर घूमता हुआ दिखायी देता। उसी समय स्वप्नमें लोगोंको ऐसा मालूम हुआ मानो उनका शरीर रक्त वस्त्रसे ढका हुआ है और वे कीचड़में सने हुए, दक्षिण दिशाकी ओर खिंचे जा रहे हैं। कृष्ण और बलरामके हल मूशल तथा चक्रादिक अस्त्र भी इसी समय अचानक नष्ट हो गये। इन सब उत्पातोंके कारण नगरमें आतङ्क छा गया और सब लोग समझ गये कि अब विनाशकाल समीप आ गया है।

उपरोक्त प्रकारके आरम्भिक उपद्रवोंके बाद द्वैपायनने शीघ्र ही संवर्तक वायु उत्पन्न किया। इस वायुके कारण चारों 'ओरसे न जाने कितना तृणकाष्ठ द्वारिका

नगरीमें खिंच कर इकट्ठा हो गया। प्राण भयसे जो लोग भागकर नगरके बाहर चले गये थे, वे भी सब इस वायुसे खिंच कर नगरमें आ पड़े। इस प्रकार अगणित वृक्ष, बहत्तर कोटि नगर निवासी और साठ कोटि आस-पासके लोगोंको द्वारिकामें एकत्र कर द्वैपायनने उसमें आग लगा दी।

प्रलयकालके वायुसे प्रेरित और निबिड़ धूम्रसमूहसे संसारको अन्ध बनानेवाली वह अग्नि देखते ही देखते चारों ओर फैल गयी और समूची नगरी धाँय धाँय जलने लगी।

एक ओर वायुका प्रबल तूफान, दूसरी ओर अन्ध बनानेवाला धुआँ और तीसरी ओर आगकी भयंकर लपटोंने लोगोंको हत बुद्धि बना दिया। उन्हें अपनी रक्षाका कोई भी उपाय न सूझ पड़ा। वे एक दूसरेसे चिपट-चिपट कर जहाँके तहाँ खड़े रह गये और अग्निमें जलजल कर धुएँमें घुट घुट कर अपना प्राण त्याग करने लगे।

बलराम और कृष्णने वसुदेव, देवकी तथा रोहिणी-

का प्राण बचानेके लिये उनको एक रथपर बैठाया, किन्तु असुरद्वारा स्तम्भित होनेके कारण उसके अश्व और बैल अपने स्थानसे एक पद भी आगे न बढ़ सके। यह देखकर कृष्ण और बलराम स्वयं उस रथको खींचने लगे, परन्तु उस स्थानसे आगे बढ़ते ही रथके दोनों पहिये शाखाकी भाँति टूटकर गिर पड़े। यह देखकर वसुदेव आदिक बहुत भयभीत हो गये और 'हे बलराम! हे कृष्ण! हमें बचाओ! हमें बचाओ! आदि कह कह कर करुण-क्रन्दन करने लगे। इससे बलराम और कृष्ण बहुत खिन्न हो गये और किसी तरह अपने सामर्थ्यसे उस रथको नगरके द्वारतक घसीट ले गये। परन्तु वहाँ पहुँचते ही उस असुरने द्वारके किवाड़ बन्द कर दिये। यह देखकर बलरामने उन किवाड़ोंपर इतने वेगसे पाद-प्रहार किया, कि वे तुरन्त चूर्ण विचूर्ण हो गये, किन्तु इतने पर भी वह रथ वहाँसे बाहर न निकल सका और ऐसा मालूम होने लगा, मानो किसीने उसको जकड़ कर पकड़ रक्खा है।

इस पर भी बलराम और कृष्ण उस रथको बाहर

निकालनेकी चेष्टा करने लगे। यह देख, द्वैपायनने प्रकट होकर उनसे कहा :—"अहो! आप लोग मोहमें कितने फँसे हुए हो! मैंने पहलेसे ही कह दिया था कि तुम दोनोंको छोड़कर और कोई जीता न बच सकेगा। फिर यह व्यर्थ चेष्टा क्यों कर रहे हो?"

उसकी यह बातें सुनकर वसुदेव और देवकी आदिने जीवनकी आशा छोड़कर, कृष्ण तथा बलरामसे कहा :— "हे वत्स! तुम दोनों अब हमें यहीं छोड़कर कहीं अन्यत्र चले जाओ और जैसे भी हो, अपनी प्राणरक्षा करो। तुम दोनोंके जीवन समस्त यादवोंके जीवनकी अपेक्षा अधिक मूल्यवान हैं। तुमने हमारे प्राण बचानेके लिये यथेष्ट चेष्टा की, किन्तु भावीको कौन टाल सकता है? इसे हमलोगोंका दुर्भाग्य ही कहना चाहिये, जो हमलोगोंने नेमिभगवानके निकट दीक्षा न ले ली। तुम लोग खुशीसे जाओ, हमलोग अब अपने कर्मका फल यहींपर भोग करेंगे।

मातापिताके यह वचन सुनकर कृष्ण और बलरामका शोकसागर और भी उमड़ पड़ा। वे वहीं खड़े होकर

दोनों नेत्रोंसे अश्रुधारा बहाने लगे। किन्तु वसुदेव, देवकी और रोहिणीने उनकी ओर ध्यान न देकर कहा :- "अब हम त्रिगजतके गुरु नेमिनाथकी शरण स्वीकार करते हैं। हमने इसी समय चतुर्विध आहारका प्रत्याख्यान किया है। हमलोग अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु और आर्हत धर्मकी शरणमें हैं। अब इस संसारमें हमारा कोई नहीं और हम किसीके नहीं।"

इस प्रकार आराधना कर वे सब नमस्कार मन्त्रका स्मरण करने लगे। यह देख, द्वैपायनने उन तीनोंपर मेघकी भाँति अग्नि वर्षा की, जिससे मृत्यु प्राप्त कर वे स्वर्गके लिये प्रस्थान कर गये।

अब कृष्ण और बलरामके दुःखका वारापार न रहा। वे दोनों नगरके बाहर एक पुराने बागमें गये। वहाँसे वे दोनों जलती हुई नगरीका हृदयभेदक दृश्य देखने लगे। उस समय माणिक्यकी दीवालें पाषाणके टुकड़ोंकी तरह चूर्ण हो रही थीं, गोशीर्षचन्दनके मनोहर स्तम्भ धाँय धाँय जल रहे थे, किलेके कंगूरे भयंकर शब्दके साथ टुट टुट कर गिर रहे थे, बड़े बड़े मन्दिर और प्रासाद

भस्म हो होकर मिट्टीमें मिल रहे थे, चारों ओर अग्निकी भयंकर लपटोंके सिवा और कुछ भी दिखायी न देता था।" प्रलयकालके समुद्रकी भाँति उस समय समूचे नगर पर अग्निकी लपटें हिलोरें मार रही थीं। द्वारिका नगरीके समस्त लोग अपनी समस्त सम्पत्तिके साथ उसीमें विलीन हो रहे थे। उस समय उनका चित्कार सुननेवाला या उनके प्रति सहानुभूति दिखानेवाला कोई भी न था।

नगर और नगरनिवासियोंकी यह अवस्था देखकर कृष्णका हृदय विदीर्ण हो गया। उन्होंने बलरामसे कहा :—"अहो! मुझे धिकार है कि नपुंसककी भाँति इस समय मैं तटस्थ रहकर अपनी जलती हुई नगरीको देख रहा हूँ। मैं इस समय जिस प्रकार नगरीकी रक्षा करनेमें असमर्थ हूँ, उसी प्रकार इस प्रलयकारी दृश्यको देखनेमें भी असमर्थ हूँ। इसलिये हे आर्य! शीघ्र कहो, कि इस समय हमें कहाँ जाना चाहिये? मुझे तो इस विपत्तिकालमें कोई भी अपना मित्र नहीं दिखायी देता।"

बलरामने कहा :—"हे बन्धो! ऐसे समयमें

विचलित न होकर धैर्यसे काम लो। पाण्डव लोग हमारे मित्र और आत्मीय हैं। वे हमें भाईकी ही तरह प्रेम करते थे। इसलिये चलो, हमलोग इस समय उन्हींके यहाँ चलकर आश्रय ग्रहण करेंगे।"

कृष्णने कहा :—"भाई मैंने तो उन लोगोंको देशसे निर्वासित कर दिया था, इसलिये मुझे वहाँ जाते हुए लज्जा मालूम होती है। अब मैं कौन मुँह लेकर उनके यहाँ जाऊँगा ?

बलरामने कहा :—"आप इस संकोचको हृदयसे निकाल दीजिये। सज्जन पुरुष अपने हृदयमें सदा उपकारको ही धारण करते हैं और अपकारको कुस्वप्नकी भाँति भुला दिया करते हैं। पाण्डव भी सज्जन हैं। आपने उन पर अनेक उपकार किये हैं। इसलिये इस विपत्ति कालमें वे अपकार न कर, सत्कार ही करेंगे। मेरा दृढ़ विश्वास है कि वे कभी अकृतज्ञ न होंगे, इसलिये आप लज्जा-संकोच छोड़ कर उन्हींके यहाँ चलना स्थिर कीजिये।"

कृष्णने व्यथित हृदयसे बलरामका यह प्रस्ताव

स्वीकार कर लिया। उन्होंने अन्तिम बार अपनी प्राण-प्रिय नगरी पर एक दृष्टि डाली। इसके बाद वे बलरामके साथ पाण्डु-मथुराके लिये अग्नि कोणकी ओर चल पड़े।

कृष्णके चले जानेपर भी द्वारिका नगरी उसी तरह धाँय धाँय जलतीं रही। इस विपत्तिका शिकार होने-वालोंमें बलरामका एक पुत्र कुब्जवारक भी था। वह चरम शरीरी था। उसने राजमहलकी अट्टालिका पर चढ़, दोनों हाथ उठा, उच्च स्वरसे कहा :—"इस समय मैं नेमिनाथ भगवानका शिष्य हूँ। कुछ समय पहले भगवानने मुझे चरम शरीरी और मोक्षगामी बतलाया था। यदि जिनाज्ञा सच है, तो यह अग्नि मुझे क्यों जला रही है ?"

उसके यह वचन सुनते ही जृम्भक देव उसे उठाकर प्रभुके पास ले गये। उस समय नेमिनाथ भगवान पल्लव देशमें विराजमान हो रहे थे। वहाँ पुण्यात्मा कुब्जवारकने दीक्षा ले ली। उसके सिवा नगरमें जितने मनुष्य थे, वे सभी उसमें स्वाहा हो गये। बलराम और कृष्णकी जिन स्त्रियोंने दीक्षा न ली थी, उन्होंने भी

अनशन कर, नेमिनाथ भगवानका स्मरण करते हुए अपने प्राण त्याग दिये। समूची नगरी छः मास तक जलती रही। जब सब कुछ स्वाहा हो गया—वह कुवेर निर्मित सोनेकी द्वारिका मिट्टीमें मिल गयी, तब समुद्रने उस भस्मावशेष पर अपना शीतल जल छिड़क कर, उसे सदाके लिये शान्त कर दिया।

उधर कृष्ण द्वारिकासे प्रस्थान कर धीरे धीरे हस्तिकल्प नामक नगरमें पहुँचे। उस समय वे क्षुधासे पीड़ित हो रहे थे। इसलिये उन्होंने बलरामसे इसका जिक्र किया। इसपर बलरामने कहा :—"हे बन्धो! आप यहीं ठहरिये, मैं नगरमें जाकर आपके लिये कुछ भोजन सामग्री लिये आता हूँ। यदि नगरमें मुझे किसी प्रकारका कष्ट होगा, तो मैं सिंहनाद करूँगा। उसे सुनकर आप भी मेरी सहायताके लिये दौड़ आइयेगा।"

इस प्रकार कृष्णको सावधान कर बलराम नगरमें गये। वहाँ नगरनिवासी उनको देखते ही आपसमें कानाफूसी करने लगे। वे कहने लगे कि यह देवता समान पुरुष बलरामके सिवा और कोई नहीं हो सकता।

मालूम होता है, कि द्वारिका नगरी जल जानेपर यह वहाँसे यहाँ चले आये हैं।

राजाके गुप्तचरोंने भी बलरामका पीछा किया, किन्तु बलरामने इन सब बातोंका कोई खयाल न किया। उन्होंने एक हलवाईको अपनी मुद्रिका देकर उससे विविध पक्वान्न और एक कलालको अपना कड़ा देकर उसके बदलेमें मदिरा ले ली। इसकेबाद वे शीघ्रही वहाँसे चल पड़े। जब वे नगरके द्वारपर पहुँचे, तब राजाके गुप्तचरोंका सन्देह और भी दृढ़ हो गया॥

इस नगरमें धृतराष्ट्रका अच्छदन्त नामक एक पुत्र राज्य करता था। युद्धके समय पाण्डवोंने उसे जीताही छोड़ दिया था। यह गुप्तचर उसीके थे, इसलिये उन्होंने उसके पास पहुँच कर, उससे सब हाल कह सुनाया। साथ ही उन्होंने कहा कि :—"इस पुरुषने जो मुद्रिका और कड़ा हलवाईको दिया है, वह बहुत ही किमती है। इसीलिये हमलोग उसे चोर समझकर उसका पीछा कर रहे थे, परन्तु लोगोंका कहना है, कि वे बलराम हैं। खैर, वह चाहे जो हो, हमने आपको खबर दे दी। अब आप जो उचित समझे वह करें।"

यह समाचार सुनकर राजा अच्छदन्त प्रसन्न हो उठा। उसने कहा :—"कृष्ण और बलरामने हमारे शत्रु पाण्डवोंका पक्ष लिया था, इसलिये उनका वध करनेमें कोई दोष नहीं। यदि वह बलराम होगा, तो मैं उसे कदापि जीता न छोड़ूँगा।"

यह कहकर उसने उसी समय नगरके सभी द्वार बन्द करवा दिये और बलरामको अपनी सेना द्वारा चारों ओरसे घेर लिया। बलराम भी इस विपत्तिको देखकर सावधान हो गये। उन्होंने खाने-पीनेकी सामग्री एक किनारे रख, एक गज-स्तम्भ उखाड़ लिया और सिंहनाद कर उसीके द्वारा वे शत्रु-सेनाका संहार करने लगे।

बलरामका सिंहनाद सुनकर कृष्ण भी नगरकी ओर दौड़ पड़े। उन्होंने एक लात मारकर द्वारके दोनों कपाट तोड़ डाले। इसके बाद शत्रुसेनामें वे उसी तरह घुस पड़े, जिस तरह भेंड़बकरियोंके समूहमें व्याघ्र घुस पड़ता है। उन्होंने भी एक स्तम्भको उठाकर उसके प्रहारसे अगणित सैनिकोंको यमधाम भेज दिया। दोनों भाइ-

योंका अपूर्व पराक्रम देखकर समस्त सेना भाग खड़ी हुई। राजा अच्छदन्तके भी छक्के छूट गये और वह हथियार फेंक, कृष्णके चरणोंमें आ गिरा।

अच्छदन्तको क्षमा प्रार्थना करते देखकर कृष्णने कहा :—"हे अच्छदन्त! अब भी हमलोगोंका भुजबल कहीं नहीं गया। हमारी लक्ष्मी चली गयी है, किन्तु इससे क्या हुआ, वह तो पुरुषके शरीरका मैल है। हे नृपाधम! तूने निःसन्देह बहुत बुरा काम किया है, फिर भी हम तुझे मुक्त करते हैं। जा, हमारे प्रसादसे तू अपना राज्य पूर्ववत् भोग कर!"

इसप्रकार अच्छदन्तकी भर्त्सना कर कृष्णने उसे छोड़ दिया। इसके बाद उन दोनों भाइयोंने नगरके बाहर एक उद्यानमें भोजन कर, वहाँसे आगेके लिये प्रस्थान किया।

इस स्थानसे दक्षिणकी ओर आगे बढ़ने पर, उन दोनोंको कौशाम्ब नामक एक वन मिला। वहाँ पहुँचने पर मद्यपानके कारण, लवणाक्त भोजनके कारण, कड़ी धूपके कारण, थकावटके कारण, शोकके कारण या यों

कहिये, कि पुण्य क्षीण होनेके कारण कृष्णको जोरोंकी प्यास लगी। इसलिये उन्होंने बलरामसे कहा :—"भाई! प्यासके कारण मेरा कंठ बेतरह सूख रहा है। यद्यपि वृक्षोंकी घनी छायाके कारण यहाँ धूप नहीं लगी, तथापि तृषाके कारण अब एक पद भी आगे बढ़नेका मुझमें सामर्थ्य नहीं है।"

बलरामने कहा :—"हे बन्धो! आप सावधानीके साथ इसी वृक्षके नीचे विश्राम कीजिये, मैं अभी आपके लिये जल ले आता हूँ।"

इतना कह बलराम जल लेने चले गये और कृष्ण पैर पर पैर चढ़ा, पीताम्बर ओढ़ कर, वहींपर वृक्षके नीचे लेट रहे। थके पके तो वे थे ही; इसलीये भूमिपर लेटते ही उन्हें निद्रा आ गयी। चलते समय बलरामने पुनः कहा :—"हे बन्धो! मैं अभी आ रहा हूँ, मुझे अधिक समय न लगेगा, आप मेरे वापस आने तक खूब सावधान रहियेगा।"

इसके उत्तरमें कृष्णने शिर हिला दिया। परन्तु बलरामको आज किसी तरह मानो सन्तोष ही न होता

मेरे पैरमे यह बाण किसने मारा ?

(पृष्ठ ८५३)

था। कोई अज्ञात शंका रह रह कर उनके हृदयको कँपा देती थी। चलते चलते उन्होंने आकाशकी ओर मुख उठा कर कहा :—"हे वन देवता! मेरा छोटा भाई इस समय आपकी शरणमें है। हे भगवन्! आपही इसकी रक्षा कीजियेगा।"

पाठकोंको स्मरण होगा, कि जराकुमारने कृष्णकी रक्षाके लिये वनवास स्वीकार किया था, दैवयोगसे वह इसी वनमें रहता था और मृगादिकका शिकार कर अपना उदर भरता था। पूर्वसंचित कर्मोंकी प्रेरणासे, जिस समय बलराम जल लेने गये, उसी समय वह हरिणकी खोज करता हुआ वहाँ आ पहुँचा और दूरसे निद्राधीन कृष्णको मृग समझकर उन पर एक तीक्ष्ण बाण छोड़ दिया। वह बाण कृष्णके पैरमें जा लगा। बाण लगते ही कृष्ण उठ बैठे। उन्होंने कहा :—"अहो! मैं सर्वथा निरपराध हूँ। मुझे किसी प्रकारकी सूचना दिये बिना छलपूर्वक मेरे पैरमें यह बाण किसने मारा? मैंने अपने जीवनमें किसी पर भी उसका नाम और कुल जाने बिना शस्त्र प्रहार नहीं किया, इसलिये मैं अपने

मारनेवालेसे भी अपना नाम और कुल बतलानेका अनुरोध करता हूँ।"

इधर जराकुमार भी एक वृक्षकी ओटमें छिपा खड़ा था। अतः कृष्णके यह वचन सुनतेही वह चकित होकर कहने लगा :—"मेरा नाम जराकुमार है। मैं यदुवंशी राजा वसुदेव तथा जरा रानीका पुत्र और कृष्ण बलरामका बड़ा भाई हूँ। नेमि प्रभुका वचन सुनकर कृष्णकी रक्षाके लिये मैं इस वनमें चला आया था। यहाँ रहते मुझे आज बारह वर्ष हो गये, किन्तु अब तक इस वनमें मुझे कोई मनुष्य न दिखायी दिया था। हे भाई! तुम मनुष्यकी तरह बोलते हो पर कृपाकर बतलाओ, कि तुम कौन हो?"

कृष्णने कहा :—"हे नर व्याघ्र! आओ, मैं ही तुम्हारा भ्राता कृष्ण हूँ, कि जिसके लिये तुम वनवासी हुए हो। हे बन्धो! तुम्हारा यह बारह वर्षका परिश्रम उसी प्रकार बेकार हो गया, जिस प्रकार भूले हुए मुसाफिरका मार्ग चलना बेकार हो जाता है।"

अब जराकुमारके आश्चर्यका वारापार न रहा। वह

कहने लगा :—"कौन कृष्ण ? तुम यहाँ कहाँ ?" यह कहता हुआ वह कृष्णके पास दौड़ गया और कृष्णको देखतेही मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़ा। थोड़ी देरमें होश आनेपर उसने करुण क्रन्दन करते हुए कृष्णसे पूछा :—"भाई! यह क्या ? तुम यहाँ कैसे आ गये। क्या द्वारिका नगरी जल गयी ? क्या यादवोंका नाश हो गया ? तुम्हारी यह अवस्था देखकर मालूम होता है कि नेमिप्रभुकी सभी बातें सत्य प्रमाणित हुई हैं। हे भ्राता! जो कुछ समाचार हो, शीघ्र ही मुझसे कहो।"

कृष्णने जराकुमाको गले लगाकर, द्वारिका और यादवोंके विनाशका समस्त वृत्तान्त उसे कह सुनाया। इससे जराकुमार पुनः रुदन करने लगा। उसने कहा :— "हाँ! यहाँ आये हुए अपने भाईको मारकर मैंने क्या कोई उचित कार्य किया है ? कृष्ण तो अपने सभी भाइयोंसे प्रेम करते थे। फिर, इस समय वे विपत्ति-ग्रस्त थे। उन्हें मारकर मुझे नरक-पृथ्वीमें भी स्थान मिलेगा या नहीं, इसमें सन्देह है। हे कृष्ण! मैंने तुम्हारी रक्षाके लिये वनवास स्वीकार किया था, परन्तु मैं नहीं

जानता था, कि विधाता इस स्थानमें भी मुझसे यमका सा काम लेगा। हे पृथ्वी! मुझे मार्ग दे, ताकि मैं इसी शरीरसे नरक-पृथ्वीमें चला जाऊँ। यहाँ रहना अब नरकसे भी बढ़ कर दुःख दायी है, क्योंकि मुझे भ्रातृ-हत्याका दुःख प्राप्त हुआ है, जो समस्त दुःखोंसे बढ़ कर है। हा दैव! मैं वसुदेवका पुत्र और कृष्णका भाई क्यों हुआ? यदि मेरे हाथसे ऐसा अमानुषिक काम कराना था, तो हे विधाता! तूने मुझे मनुष्य ही क्यों बनाया? हा! आज यह दिन देखनेकी अपेक्षा, नेमिप्रभुका वचन सुनते ही मैं मर गया होता, तो वह भी इससे हजार गुणा अच्छा होता! हे कृष्ण! तुम्हारे जीवनके सामने मेरा जीवन किसी हिसाबमें नहीं है। हे बन्धो! यदि किसी तरह तुम्हारे जीवनकी रक्षा हो सके तो मुझसे कहो, मैं तुम्हारे लिये प्राण तक विसर्जन कर सकता हूँ।"

कृष्णने कहा:—"भाई! अब शोक करनेसे क्या लाभ? मैं या तुम कोई भी भवितव्यताको टाल नहीं सकते। करोड़ों यादवोंमेंसे केवल तुम्हीं जीते बचे हो,

इसलिये जैसे भी हो, तुम यहाँसे चले जाओ और अपनी प्राण रक्षा करो। यदि तुम ऐसा न करोगे, तो बलराम मेरे वधसे क्रुद्ध होकर तुम्हें मार डालेंगे। मैं चिन्ह स्वरुप अपना कौस्तुभ मणि तुम्हें देता हूँ। इसे लेकर तुम पाण्डवोंके यहाँ चले जाओ। उनसे सब वृत्तान्त कहने पर वे तुम्हें अवश्य सहायता करेंगे। जाते समय कुछ दूर तक तुम उलटे पैरोंसे जाना, जिससे अनुसरण करने पर भी बलराम तुम्हारा पता न पा सकें। मैंने पाण्डवोंको निर्वासनका दण्ड दिया था, इसलिये उनके जी दुःखित होंगे। तुम इसके लिये मेरी ओरसे क्षमा प्रार्थना कर, मेरा अपराध क्षमा करा देना।"

इस प्रकार कृष्णके बारंबार अनुरोध करने पर, जराकुमार उनके पैरसे बाण निकाल, कौस्तुभमणि लेकर शीघ्रता-पूर्वक वहाँसे पाण्डु-मथुराके लिये रवाना हो गया।

जराकुमारके चले जाने पर कृष्ण पैरकी वेदनासे व्याकुल हो उठे। उन्होंने उत्तर दिशाकी ओर मुख कर, हाथ जोड़कर कहा:—'अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु—इन सबोंको मेरा त्रिविध नमस्कार

है। विश्वके स्वामी श्रीअरिष्टनेमि भगवानको भी मैं नमस्कार करता हूँ, कि जिन्होंने हम पापियोंको त्याग कर इस पृथ्वीपर तीर्थ प्रवर्तित किया है।"

इतना कह, पैर पर पैर रख, उसे वस्त्रसे ढंक कर, भूमि पर लेटे ही लेटे कृष्ण पुनः अपने मनमें कहने लगे:—"श्रीनेमिनाथ भगवान, वरदत्तादिक गणधर, प्रद्युम्न शाम्ब आदि कुमार और सत्यभामा तथा रुक्मिणी आदि मेरी स्त्रियोंको धन्य है, जिन्होंने यथासमय गृह-त्याग कर दीक्षा ले ली। मुझे यह सब विडम्बना भोग करनी थी, इसलिये मैं ही इस लाभसे वञ्चित रह गया। धिक्कार है, मेरे इस निरर्थक जीवनको!"

इस प्रकारके विचार करते करते कृष्णके अंग प्रत्यङ्गमें असह्य वेदना होने लगी और वायुका प्रकोप भी वेतरह बढ़ गया। अन्तमें तृषा, शोक, वायु और वेदनाके कारण वे विवेक-भ्रष्ट हो गये और अपने मनमें कहने लगे कि:— "अबतक किसी भी देवता या मनुष्यने मुझे नीचा न दिखाया था, किन्तु द्वैपायनने मुझे नीचा दिखा दिया। वह दुष्ट यदि इस समय भी मेरे सामने आ जाय, तो

मैं उसका प्राण लिये बिना न छोड़ूँ! वह मेरे सामने किस हिसाबमें है? यदि मैं उसके पीछे पड़ जाऊँ तो मेरे हाथोंसे उसकी कोई भी रक्षा नहीं कर सकता।"

इस प्रकार क्षणभरके लिये रौद्र ध्यानको प्राप्त हो, परम प्रतापी कृष्णने अपना प्राण त्याग दिया। मृत्युके बाद निकाचित कर्म योगसे वे पूर्वोपार्जित तीसरी नरक-पृथ्वीके अधिकारी हुए।

कृष्णकी आयु पूरे एक हजार वर्षकी थी। इसमेंसे सोलह वर्ष कुमारावस्थामें, छप्पनवर्ष माण्डलिक पदपर, आठ वर्ष दिग्विजयमें और ९२० वर्ष उन्होंने वासुदेवके पद पर व्यतीत किये। जिनेन्द्रके कथनानुसार, इसी भरतक्षेत्रमें, अनागत चौवीसीमें वे अमम नामक तीर्थंकर होंगे। धन्य है, ऐसे प्रतापी महापुरुषको!

एकइसवाँ परिच्छेद

बलरामकी दीक्षा और नेमिप्रभुका मोक्ष

कृष्णकी मृत्युके बाद कुछ देरमें बलराम कमलपत्रके दोनेमें जल लेकर कृष्णके पास आये। पहले तो वे यह

समझकर चुपचाप बैठे रहे, कि कृष्णको नींद आ गयी है और उसमें बाधा न डालना चाहिये, परन्तु बादको जब उन्होंने उनके मुख पर मक्खियोंको देखा, तब उन्हें कुछ सन्देह हुआ। इसपर उन्होंने वस्त्र हटाकर देखा तो कृष्णके पैरमें ताज़ा जख्म दिखायी दिया। अब उन्हें समझ पड़ गयी, कि इसी चोटके कारण उनकी मृत्यु हुई है। कृष्णकी यह अवस्था देखते ही वे कटे हुए वृक्षकी भाँति मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़े।

कुछ देरके बाद जब बलरामकी मूर्च्छा दूर हुई, तब उन्होंने महा भीषण सिंहनाद किया। उस नादसे समूचा वन प्रतिध्वनित हो उठा और वहाँके पशु-पक्षी तक काँप उठे। बलरामने गंभीर स्वरमें कहा :—"यहीं आरामसे सोते हुए मेरे लघु बन्धुको जिस पापीने मारा हो, वह अपनेको प्रकट कर दे। यदि वह वीर हो तो मेरे सामने आये। निद्राधीन, प्रमत्त, बालक, मुनि और स्त्रीको मारना महापाप है, कायरता है, नीचता है।"

बलरामने इस तरहकी बात कहते हुए वनमें चारों ओर भ्रमण किया, किन्तु जब कोई कहीं दिखायी न

दिया, तब वे कृष्णके पास लौट आये और उनको आलिङ्गनकर अत्यन्त करुण स्वरसे विलाप करने लगे। वे कहने लगे :—"हा भ्रात! हा पुरुषोत्तम! हा मेरे हृदय-कमलके सूर्य! तुम मुझे अकेला छोड़ कर कहाँ चले गये! हे कृष्ण! तुम तो कहते थे कि तुम्हारे बिना मैं अकेला रहनेमें असमर्थ हूँ, किन्तु अब तो तुम मुझसे भी नहीं बोलते। हे केशव! तुम्हारा वह प्रेम कहाँ चला गया? संभव है कि मुझसे कोई अपराध हुआ हो और उसीके कारण तुमने मौनावलम्बन कर लिया हो, परन्तु मुझे तो वैसी कोई घटना याद नहीं है। यदि मुझसे वैसा कोई अपराध हुआ हो, तो तुम्हें क्षमा करना चाहिये था। हाँ, मुझे जल लानेमें विलम्ब हुआ, इसके कारण तुम रोष कर सकते हो, इसके लिये तुम्हारा यह रोष करना अनुचित भी नहीं, किन्तु हे वीराधिवीर! सूर्यास्त हो रहा है, इसलिये उठो, अब सोनेका समय नहीं है!"

इस प्रकार विलाप करते करते बलरामने रात्रि व्यतीत कर दी। सुबह भी बहुत देर तक वे इसी तरह

विलाप करते रहे, किन्तु जब अपने स्थानसे न उठे, तब बलराम मोहके कारण उनके मृत शरीरको कन्धे पर उठा, गिरि-गुहा और वनादिकमें भ्रमण करने लगे। दिनमें एकबार पुष्पादिक द्वारा उस शरीरकी पूजा कर देना और फिर उसे कन्धे पर लिये लिये दिन भर घूमते रहना यही बलरामका नित्यकर्म हो गया। इसी अवस्थामें उन्होंने छः मास व्यतीत कर दिये।

धीरे धीरे वर्षाकाल आ गया, किन्तु बलरामकी इस नित्यचर्यामें कोई परिवर्तन न हुआ। बलरामके मित्र सिद्धार्थ सारथीको इसके पहले ही देवत्व प्राप्त हो चुका था, उसे अवधि ज्ञानसे यह सब हाल मालूम हुआ। वह अपने मनमें कहने लगा :—"अहो! भ्रातृवत्सल बलराम कृष्णके मरे हुए शरीरको उठाकर चारों ओर घूम रहा है। उसे उपदेश देकर उसका मोह दूर करना चाहिये। उसने दीक्षा लेनेकी आज्ञा देते समय मुझसे उपदेश देनेकी प्रार्थना भी की थी। इसलिये मुझे अब अपना कर्त्तव्य अवश्य पालन करना चाहिये।"

यह सोचकर सिद्धार्थने पत्थरका एक रथ बनाया

और बलरामके सामने उसे पर्वतसे नीचेकी ओर उतरता हुआ दिखाया। पर्वतसे उतरकर जब वह रथ समतल भूमिमें पहुँचा, तब उसका एक अंश टूट गया। सिद्धार्थ सारथीके वेशमें उस रथको चला रहा था। रथ टूटते ही वह उससे उतरकर उसे जोड़ने लगा। उसका यह कार्य देखकर बलरामने कहा :—"हे भाई! तुम यह क्या कर रहे हो? तुम्हारा रथ विषम स्थानमें न टूटकर समतल भूमिमें आकर टूट गया! फिर, वह पत्थरका बना हुआ है। क्या अब किसी तरह उसका जुड़ना सम्भव है?"

सिद्धार्थने उत्तर दिया :—"जिसने अनेक युद्धोंमें विजय प्राप्त की थी, उसकी मृत्यु इस समय बिना युद्धके ही हो गयी! अब यदि वह जीवित हो सकता है तो मेरा रथ भी जुड़ सकता है।"

[illegible] सका यह उत्तर सुनकर निरुत्तर हो गये। वहाँसे [illegible] बलरामने देखा कि एक मनुष्य [illegible] रहा है। यह देख, बलरामने उससे [illegible] भाई! तुम्हारे समान मूर्ख मैंने

संसारमें कहीं नहीं देखा। पाषाणमें क्या कभी कमल ऊग सकते हैं ?"

मनुष्य वेशधारी सिद्धार्थने उत्तर दिया :—"यदि आपका यह लघु भ्राता जीवित हो सकता है, तो पाषाणमें कमल क्यों नहीं ऊग सकते ?"

बलराम इस उत्तर पर विचार करते हुए चुपचाप वहाँसे आगे बढ़ गये। कुछ दूर जाने पर उन्होंने देखा कि एक मनुष्य जले हुए वृक्षको सींच रहा है। यह देख, बलरामने कहा :—"हे बन्धो ! यह व्यर्थ परिश्रम क्यों कर रहे हो ? क्या जला हुआ वृक्ष, हजार सींचने पर भी कभी विकसित हो सकता है ?"

मनुष्य वेशधारी सिद्धार्थने उत्तर दिया :—"यदि तुम्हारे कन्धेका शव जीवित हो सकता है, तो यह वृक्ष क्यों नहीं पल्लवित हो सकता ?" बलराम पुनः निरुत्तर हो गये।

कुछ आगे बढ़ने पर बलरामने पुनः देखा कि एक मनुष्य कोल्हूमें बालू भर कर उसे पेर रहा है। यह देख, बलरामने पूछा :—"क्यों भाई ! इसमेंसे क्या तेल निकल

सकता है ?" इसपर उसने उत्तर दिया कि :—"यदि आपके मृत बन्धुका जीवित होना संभव है, तो इसमेंसे भी तेल निकलना असम्भव नहीं कहा जा सकता।" बलराम इस स्थानसे भी चुपचाप आगे बढ़ गये।

फिर कुछ दूर जाने पर उन्होंने देखा कि एक गोपाल एक मरी हुई गायके मुखमें हरी घास ठूँस रहा है। यह देख, बलरामने कहा :—"हे मूर्ख ! क्या यह मरी हुई गाय अब स्वप्नमें भी घास खा सकती है ?" इसपर गोपालने हँसकर कहा :—"यदि आपका भाई जीवित हो सकता है, तो निःसन्देह, यह गाय भी घास खा सकती है !"

बारंबार सब लोगोंके मुखसे एक समान ही उत्तर सुनकर बलरामकी विचार शक्ति कुछ जागृत हुई और वह अपने मनमें कहने लगे :—"क्या सचमुच कृष्णकी मृत्यु हो गयी है ? यदि ऐसा न होता तो सब लोग मुझसे एक ही समान बात क्यों कहते ?"

बलरामको इस प्रकार विचार करते देख, सिद्धार्थ अपने प्रकृत रूपमें उनके सामने आ उपस्थित हुआ।

उसने बलरामको अपना परिचय देते हुए कहा :—"हे प्रभो! मैं आपका सारथी सिद्धार्थ हूँ। दीक्षा लेनेके बाद मेरी मृत्यु हो गयी थी और मुझे देवत्व प्राप्त हुआ था। अब मैं आपको उपदेश देनेके लिये आपके पास आया हूँ, क्योंकि आपने इसके लिये मुझसे वचन ले लिया था। नेमि भगवानने बतलाया था कि कृष्णकी मृत्यु जराकुमारके हाथसे होगी। उनका वह वचन बिल्कुल सत्य प्रमाणित हुआ। क्या सर्वज्ञका कथन कभी अन्यथा हो सकता था? कृष्णने अपना कौस्तुभ रत्न चिह्न-स्वरुप देकर जराकुमारको पाण्डवोंके पास भेज दिया है। हे प्रभो! इन सब बातोंपर विश्वास कर, आपको मोहका त्याग करना चाहिये और कोई ऐसा कार्य करना चाहिये, जिससे आत्माका कल्याण हो।"

बलरामने स्वस्थ होकर कहा :—"हे देवोत्तम! मैं आपकी बातों पर विश्वास करता हूँ, किन्तु इस समय मैं बन्धुकी मृत्युके कारण शोक-सागरमें निमग्न हो रहा हूँ, मेरा चित्त अस्थिर हो रहा है। मेरी मानसिक शान्ति नष्ट हो गयी है। कृपया बतलाइये, कि इस

समय मुझे क्या करना चाहिये ?—ऐसा कौनसा कार्य है, जिसे करनेसे मेरा आत्म-कल्याण हो सकता है ?

सिद्धार्थने उत्तर दिया :—"हे प्रभो ! आप दीक्षा ग्रहण करिये। वह आपके लिये परम लाभदायी सिद्ध होगी। आपकी सारी अशान्ति और सारा शोक उससे दूर हो जायगा।"

बलरामने सिद्धार्थका यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उन्होंने शीघ्रही उसके साथ सिन्धु संगमपर जाकर कृष्णके शरीरका चन्दनादिक काष्ठ द्वारा अग्नि संस्कार किया।

तदनन्तर बलरामको दीक्षाभिलाषी जानकर इसी समय नेमि भगवानने एक विद्याधर मुनिको उनके पास भेजा, जिसके निकट बलरामने दीक्षा ले ली। इसके बाद बलराम तुंगिक पर्वतके शिखर पर जाकर तीव्र तप करने लगे और सिद्धार्थ उनका रक्षपाल बनकर निरन्तर उनकी रक्षा करने लगा।

एकबार मुनिराज बलराम मास-क्षमणका तप कर, पारण करनेके लिये किसी नगरमें गये। वहाँपर एक कूएं

पर एक स्त्री अपने बालकके साथ जल भरने आयी थी। बलरामका अलौकिक रूप देखकर उसका चित्त अस्थिर हो गया और वह घड़ेके बदले उस बालकके गलेमें रस्सी बाँधकर, उसे उस कुएंमें डालने लगी। उसका यह कार्य देखकर बलराम अपने मनमें कहने लगे :—"अहो! मेरे इस रूपको धिक्कार है, कि जिसको देखकर इस अबलाके चित्तमें चंचलता उत्पन्न हो गयी है। अब आज से मैं किसी भी ग्राम या नगरमें प्रवेश न करूँगा और वनमें काष्टादिक लेनेके लिये जो लोग आयेंगे, उन्हींसे भिक्षा माँगकर वहीं पारण कर लिया करूंगा। ऐसा करनेसे भविष्यमें किसी प्रकारका अनर्थ तो न होगा।"

इसके बाद उस स्त्रीको उपदेश देकर बलराम वनको चले गये और वहाँ पुनः मास क्षमणादिक दुस्तप तप करने लगे। पारणके समय तृण काष्टादिक संग्रह करने वाले उन्हें जो कुछ दे देते, उसीसे वे पारण कर लिया करते थे इससे उनके चित्तको परम सन्तोष और शान्ति मिलती थी।

कुछ दिनोंके बाद तृण काष्टादिक संग्रह करनेवालोंने

बलराम की इस तपस्याका हाल अपने अपने राजासे कहा। इसपर सभी राजा चिन्तित हो उठे और कहने लगे कि हमारा राज्य छीननेके लिये ही तो कोई यह तप नहीं कर रहा है? उन लोगोंमें अधिक विचार शक्ति न थी, इसलिये उन्होंने स्थिर किया कि उसे मारकर सदाके लिये यह चिन्ता दूर कर देनी चाहिये। निदान, उन सबोंने एक साथ मिलकर अपनी अपनी सेनाके साथ, उस वनके लिये प्रस्थान किया। जब वे बलराम मुनिके पास पहुँचे, तब उनके रक्षपाल सिद्धार्थने अनेक भयंकर सिंह उत्पन्न किये, जिनकी गर्जना से सारा वन प्रतिध्वनित हो उठा। राजागण इसे मुनिराजका प्रताप समझ कर बहुत ही लज्जित हुए और उनसे क्षमा प्रार्थना कर अपने अपने स्थानको वापस चले गये।

इस दिनसे बलराम आसपासके स्थानोंमें नरसिंह मुनिके नामसे सम्बोधित किये जाने लगे। उनकी तपस्या और उनके धर्मोपदेशके प्रभावसे सिंहादिक हिंसक पशुओंको भी आन्तरिक शान्ति प्राप्त हुई। उनमेंसे अनेक श्रावक हुए, अनेक भद्रक हुए, अनेकने कोयोत्सर्ग

किया, और अनेकने अनशन किया। मांसाहारसे तो प्रायः सभी निवृत्त हो गये और तिर्यञ्च रूपधारी शिष्यों की भाँति वे महामुनि बलरामके रक्षक होकर सदा उनके निकट रहने लगे।

जिस वनमें बलराम तपस्या करते थे, उसी वनमें एक मृग रहता था। वह बलरामके पूर्वजन्मका कोई सम्बन्धी था। जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न होनेके कारण उसे अत्यन्त संवेग उत्पन्न हुआ था, फलतः वह बलराम-का सहचारी बन गया था। बलराम मुनिकी उपासना कर, वह हरिण वनमें घूमा करता और अन्न सहित तृण काष्ठादिक संग्रह करनेवालोंको खोजा करता। यदि सौभाग्यवश, कभी कोई उसे मिल जाता, तो वह ध्यानस्थ बलराम मुनिके चरणों पर शिर रखकर, उन्हें इसकी सूचना देता। बलराम भी उसका अनुरोध मानकर, क्षण भरके लिये ध्यानको छोड़, उस अग्रगामी हरिणके पीछे पीछे उस स्थान तक जाते और वहाँसे भिक्षा ग्रहण कर अपने वासस्थानको लौट आते।

एकबार अच्छे काष्टकी तलाश करते हुए कई रथकार

वहाँ आये और सीधे सीधे वृक्षोंको पसन्द कर उन्हें काटने लगे। इसी समय उस हरिणने उनको देखकर बलरामको उनके आगमन की सूचना दी। बलरामने कुछ समयके लिये अपना ध्यान भंग कर दिया। उन्हें उसी दिन मास क्षमण व्रतका पारण करना था। इसलिये उस अग्रगामी हरिणके पीछे पीछे बलराम उन रथकारोंके पास गये। उस समय वे सब भोजन करने जा रहे थे। महामुनिको देखते ही उन रथकारोंका अग्रणी, जो एक वृद्ध पुरुष था, अपने मनमें कहने लगा :-"अहो! इस महारण्यमें भी जंगम कल्प वृक्ष समान इस साधुके मुझे दर्शन हुए। अहो! क्याही इसका सुन्दर रूप है! कैसा प्रबल तेज है! कैसा महान उपशम है! निःसन्देह, इस अतिथि मुनिके दर्शनसे मेरा जीवन आज सफल हो गया है।"

इस प्रकार सोचकर वह रथकार खड़ा हो गया और अत्यन्त आदरपूर्वक मुनिराजको वन्दन कर पारण करनेकी प्रार्थना करने लगा। प्रार्थना सुनकर बलराम अपने मनमें कहने लगे—"यह कोई शुद्धमति श्रावक है,

इसीलिये स्वर्ग फल रूप कर्म उपार्जन करनेकी इच्छासे मुझे भिक्षा देनेको तैयार हुआ है। यदि मैं यह भिक्षा न ग्रहण करूँगा, तो इसकी सद्‌गतिमें अन्तराय रूप बनूँगा। इसलिये इसकी प्रार्थना स्वीकार लेना ही उचित है।" इस प्रकार सोचकर बलरामने उसके दिये हुए अन्नपानादिक ग्रहण कर लिये।

वह हरिण इस समय भी बलरामके पास ही खड़ा था। उसके दोनों नेत्रोंसे अश्रुधारा बह रही थी। रथकार पर मुनिराजका अनुग्रह देखकर वह अपने मनमें कहने लगा :—"अहो! धन्य है, इस रथकारको, जिस पर मुनिराजने इतना अनुग्रह किया है। मुनिराजको अन्नपानादिक द्वारा पारण करानेसे इस रथकार का जीवन आज सफल हो गया। किन्तु मैं कैसा अभागा हूँ, कि न तो तप ही कर सकता हूँ, न मुनिराजको पारण ही करा सकता हूँ। धिक्कार है मेरे इस तिर्यञ्च जन्मको, जिसके कारण मैं इस प्रकार असमर्थ हो रहा हूँ।"

इस तरह जिस समय वह हरिण, मुनिराज और रथकार धर्मध्यानमें लीन हो रहे थे, उसी समय महा-

वायुके कारण एक अधकटा वृक्ष उन तीनोंपर गिर पड़ा, जिससे तत्काल उनकी मृत्यु हो गयी। मृत्युके बाद वे ब्रह्म देवलोकमें पद्मोत्तर नामक विमानमें देवता हुए।

बलरामने सब मिलाकर साठ मास-क्षमण, साठ पक्ष-क्षमण, और चार चातुर्मासिक तप किये थे। उन्होंने बारह सौ वर्षकी आयु भोग की थी, जिसमेंसे सौ वर्ष तक व्रतका पालन किया था। मृत्युके बाद पाँचवें देव-लोकमें जानेपर बलरामने अवधि ज्ञानसे तीसरे नरकमें अपने बन्धुको देखा। अपने प्रिय बन्धुको देखते ही उनसे मिलनेके लिये वे व्याकुल हो उठे और वैक्रिय शरीर धारण कर वे उनके पास गये। उन्होंने कृष्णको आलिङ्गन कर कहा :—"हे कृष्ण! मैं तुम्हारा बड़ा भाई बलराम हूँ और तुम्हारी रक्षा करनेके लिये, तुम जो कहो सो करनेको मैं तैयार हूँ।"

इतना कह बलरामने कृष्णको हाथसे उठाया, परन्तु वे पारेकी तरह हाथसे बिखरकर भूमिपर गिर पड़े और पुनः मिलकर पूर्ववत् हो गये। प्रथम आलिङ्गन करने, फिर पूर्वजन्मका परिचय देने और अन्तमें हाथ द्वारा

उठानेसे कृष्ण बलरामको पहचान गये। उन्होंने हर्षपूर्वक उठकर अपने ज्येष्ठ बन्धुको प्रणाम किया। इसके बाद बलरामने कृष्णसे कहा :-"भ्राता! श्रीनेमिप्रभुने विषय जन्य सुखोंको परिणाममें दुःखरूप बतलाया था। उनका वह कथन इस समय तुम्हें प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है। तुम कर्म-बन्धनोंसे जकड़े हुए हो, इसलिये मैं तुम्हें देव लोक ले जानेमें असमर्थ हूं। किन्तु हे कृष्ण! तुम्हारे ऊपर मेरा आन्तरिक प्रेम है। तुम कहो तो तुम्हारे पास रहनेके लिये मैं सहर्ष तैयार हूं।"

कृष्णने कहा :—"हे भाई! तुम्हारे यहाँ रहनेसे भी क्या हो सकता है? तुम्हारे रहने पर भी यह पूर्वोपार्जित नरकायु तो मुझे ही भोग करनी पड़ेगी। मैं अपनी इस अवस्थाके लिये अवश्य ही कुछ दुःखित हूं, किन्तु सबसे अधिक दुःखि तो मुझे इस बातके लिये है, कि मेरी इस अवस्थासे मेरे शत्रुओंको आनन्द और मेरे मित्रोंको खेद हो रहा होगा। यदि आप वास्तवमें मेरा दुःख-भार हलका करना चाहते हैं तो आप भरतक्षेत्रमें जाइये और वहाँ विमानमें बैठकर मेरा दिव्य रूप लोगोंको

दिखाइये। साथही आप भी अपना रूप सर्वत्र दिखाईये, जिससे लोगोंके मनसे तिरस्कार का भाव दूर हो जाय और वे समझने लगें कि कृष्ण और बलराम महा बलवान, और परमप्रतापी हैं। यदि आप ऐसा कर सकेंगे, तो मुझे अत्यन्त आनन्द और परम सन्तोष होगा।"

कृष्णका यह अनुरोध स्वीकार कर बलराम भरतक्षेत्रमें आये और वहाँ स्थान स्थानपर उन्होंने उसी तरह दो रूप बनाकर लोगोंको दिखाये। उन्होंने सबसे कहा कि तुम लोग हमारी सुन्दर प्रतिमाएँ बनाकर, सर्वोत्कृष्ट देवबुद्धिसे उनका स्वीकार और पूजन करो, क्योंकि हमीं सृष्टि स्थिति और संहार करनेवाले हैं। हमलोग देव-लोकसे यहाँ आये थे और अब स्वेच्छासे देवलोकको जा रहे हैं। द्वारिकापुरीका निर्माण हमींने किया था। और जानेकी इच्छा करनेपर हमींने उसका संहार किया है। हमारे सिवा और कोई कर्ता या हर्ता नहीं है। सबको स्वर्ग देनेवाले भी हमीं हैं।"

बलरामके यह वचन सुनकर सब लोग स्थान स्थानमें कृष्ण तथा बलरामकी प्रतिमाएँ स्थापित कर उनका

पूजन करने लगे। जिन लोगोंने ऐसा किया, उनकी उस देव (बलराम) ने बहुत उन्नति की। इससे कृष्ण और बलरामके भक्तोंकी संख्या दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ती गयी। बलराम कृष्णकी इच्छानुसार भरतक्षेत्रमें इस प्रकार कृष्ण-पूजाका प्रचार कर, उनके वियोगसे दुःखित होते हुए अपने वासस्थान (देवलोक) को लौट गये।

उधर जराकुमारने पाण्डवोंके पास पहुँच कर उनको कौस्तुभ रत्न दे, द्वारिका दहनका समाचार सुनाया। यह शोक संवाद सुनकर पाण्डव अत्यन्त दुःखित हुए और एक वर्षतक रुदन करते हुए उन्होंने विशेष रुपसे कृष्णकी उत्तर क्रिया की। इसके बाद उनको दीक्षाभिलाषी जानकर नेमिप्रभुने पाँच सौ मुनियोंके साथ महाज्ञानी धर्मघोष मुनिको उनके पास भेजा। पाण्डवोंने जराकुमारको अपने सिंहासन पर बैठाकर, द्रौपदी आदिक रानियोंके साथ तुरन्त उनके निकट दीक्षा ले ली। दीक्षा लेनेके बाद वे सब अभिग्रह सहित कठिन तप करने लगे। भीमने एक बहुतही कठिन अभिग्रह लिया, जो छः मासमें पूर्ण हुआ। उन्होंने क्रमशः द्वादशाङ्गीका

भी अभ्यास किया। कुछ दिनोंके बाद उन्हें नेमि भगवानको वन्दन करनेकी इच्छा उत्पन्न हुई, इसलिये वे पृथ्वी पर विचरण करते हुए नेमि भगवानके प्रवास-स्थानकी ओर विहार कर गये।

उस समय नेमिभगवान मध्य देशादिमें विहार कर उत्तर दिशामें राज-गृहादिक नगरोंमें विचरण कर रहे थे। वहाँसे ह्रीमान पर्वत पर जा, अनेक म्लेच्छ देशोंमें विचरण कर भगवानने वहाँके अनेक राजा तथा मन्त्री आदिको धर्म्मोपदेश दिया। इस प्रकार आर्य-अनार्य देशका भ्रमण समाप्त कर वे फिर ह्रीमान पर्वत पर लौट आये। वहाँसे वे किरात देशमें गये। इसके बाद ह्रीमान पर्वतसे उतर कर उन्होंने दक्षिण देशमें विचरण किया। इस प्रकार केवल ज्ञानकी उत्पत्तिसे लेकर इस समय तक उनके धर्मोपदेशसे अठारह हजार साधु, चालीस हजार साध्वियाँ, ४१४ पूर्वधारी, १५०० अवधिज्ञानी, १५०० वैक्रियलब्धिवाले और केवल ज्ञानी, १००० मनःपर्यव-ज्ञानी, ८०० वादी, १ लाख ६९ हजार श्रावक तथा ३ लाख ४९ हजार श्राविकाएँ हुईं।

इस प्रकार चतुर्विध संघके परिवारसे घिरे हुए और सुर, असुर तथा राजाओंसे युक्त भगवान अपना निर्वाण समय समीप जानकर गिरनार पर्वत पर गये। वहाँ इन्द्रोंके रचे हुए समवसरणमें विराजकर भगवान संसार पर दया कर अन्तिम धर्मोपदेश देने लगे। धर्मोपदेश सुनकर अनेक लोगोंने उसी समय उनके निकट दीक्षा ले ली। अनेक लोगोंने श्रावक धर्मको भी स्वीकार किया। इसके बाद भगवानने ५३६ साधुओंके साथ पादोपगमन अनशन किया और आषाढ़ शुक्ला ८ के दिन चित्रा नक्षत्रके साथ चन्द्रमाका योग होने पर, भगवानने सन्ध्याके समय उन मुनियोंके साथ निर्वाण प्राप्त किया। प्रद्युम्न, शाम्ब आदिक कुमार, कृष्णकी आठ पटरानियाँ भगवानके अनेक भ्राता तथा अन्यान्य साधु और राजीमती आदि साध्वियोंने भी परम पद प्राप्त किया। श्रीरथनेमिने चारसौ वर्ष गृहस्थावस्थामें, एक वर्ष छद्मस्थावस्थामें और पाँच सौ वर्ष केवलीकी अवस्थामें व्यतीत किये। कुमारावस्था, छद्मस्थावस्था और केवलज्ञानावस्थाके विभागसे राजीमतीकी आयुस्थिति भी इतनी ही समझनी

चाहिये। शिवादेवी और समुद्रविजय माहेन्द्र देवलोकमें गये। अन्यान्य दशार्ह भी महर्द्धिक देव हुए। कुमारावस्थामें ३०० वर्ष छद्मस्थावस्था और केवलीकीअवस्थामें ७०० वर्ष—इस प्रकार नेमिप्रभुने एक हजार वर्षकी आयु भोग की। नमिनाथ भगवानके निर्वाणसे ठीक पाँच लाख वर्ष बाद बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ प्रभुका निर्वाण हुआ।

नेमिप्रभुका निर्वाण होनेपर, सौधर्मेन्द्रकी आज्ञासे धनदने एक शिविका उत्पन्न की। इसके बाद शक्रने विधि-पूर्वक भगवानके अंगोंका पूजनकर, उनके शरीरको उस शिविका पर स्थापित किया। देवताओंने नैऋत्य दिशामें नानाप्रकारके रत्नकी शिला पर गोशीर्षचन्दन समान सुगन्धित काष्ठोंकी एक चिता तैयार की। सौधर्मेन्द्रने वहाँ प्रभुकी शिविका ले जाकर, उस चिता पर उनका शरीर स्थापित किया। इसकेबाद शक्रके आदेशसे अग्निकुमार देवताओंने चितामें अग्नि लगायी और वायुकुमारोंने उस अग्निको प्रज्वलित किया। कुछ देरमें, जब प्रभुका शरीर भस्म हो गया, तब मेघकुमारोंने क्षीर समुद्रके जलसे उस चिताकी अग्नि शान्त की। शक्र-

ईशानादि इन्द्रोंने भगवानकी दाढ़ें लीं, अन्यान्य देवोंने शेष अस्थियाँ, उनकी देवियोंने पुष्प, राजाओंने वस्त्र और सर्वसाधारणने नेमिप्रभुकी चिता-भस्म ग्रहण की॥ इसके बाद उस स्थानकी वैडुर्य शिलापर इन्द्रने वज्र द्वारा भगवानका नाम और उनके लक्षणादिक अंकित किये। इसके बाद सौधर्मेन्द्रादिक इन्द्र तथा समस्त लोग अपने अपने वासस्थानको लौट गये।

पाण्डवोंके भाग्यमें नेमिभगवानका दर्शन बदा न था; क्योंकि जिस दिन उनका निर्वाण हुआ, उस दिन पाण्डव गिरनारसे बारह योजनकी दूरी पर थे। इसलिये उन्होंने स्थिर किया, कि कल नेमिप्रभुको वन्दन कर, मासक्षमणका पारण करेंगे, किन्तु इतनेहीमें उन्होंने सुना कि नेमिप्रभुका तो निर्वाण हो गया। इस संवादसे पाण्डवोंको अत्यन्त खेद हुआ और उन्होंने जी भरकर अपने भाग्य को कोसा। इसके बाद अत्यन्त वैराग्यके कारण वे विमलाचल पर चले गये। वहाँ एक मासका अनशन कर, केवल ज्ञान प्राप्त कर वे मोक्षके अधिकारी हुए। और द्रौपदीको ब्रह्मदेवलोककी प्राप्ति हुई।

* समाप्त *